स्कन्द पुराण

(प्रथम खण्ड)

सरल भाषानुवाद सहित

सम्पादक

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्-दर्शन, २० स्

एवं १८ पुराणों के प्रसिद्ध भाष्यकार



प्रकाशक:

संस्कृति संस्थान

बरेली [उ०प्र]

विष्णोरंशो धर्मपाला बुधः साक्षात्स्वयं प्रभुः ।
अन्यकर्माणि भूरीणि भविष्यन्ति महात्मनः ॥
महेशाय च भक्तं द्वौ कृपायेता सदा मयि ।
ततः श्रेष्ठ च त मत्वाक्षोगेद मुनयोर्थेषु ॥
तथ योगेश्वरः श्लोक प्रवुध्यन्नमुमर्चतीव ।
ब्रह्माण सर्वभूतेषु परम ब्रह्मरूपिणम् ॥
सदाशिव च वन्दे तौ भवेतां मंगलाय मे ।
ततस्ते [illegible] विप्रा आगमन्नृपयः पुनः ॥
कैलासि दद्दशुः [illegible] वदत . [illegible] जा प्रति ।
एकादश्यां प्रनृत्यान्निजागरे विष्णु मेदुमति ॥
सदा तपस्या चरामि प्रीत्यर्थे हरिवेधसोः ।

'प्राचीन काल में एक समय नैमिषारण्य में निवास करने वाले ऋषि-मुनियों को यह जानने की जिज्ञासा हुई कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश इन तीनों देवताओं में सर्वश्रेष्ठ कौन है ? वे इसका निर्णय करने के विचार से ब्रह्मलोक को गये । वहाँ उन्होंने ब्रह्माजी को यह कहते सुना, [illegible] में कुछ [illegible] (विष्णु) को नमस्कार है, जिनका कहीं अन्त नहीं मिल [illegible] में यह एक शैव पुराण है, पर इसमें विष्णु को [illegible] सदाशिव मुक्त भक्त पर [illegible] नहीं है । 'वैष्णव खण्ड' में तो वेंकटाचल, जगन्नाथ पुरी, [illegible] सागर [illegible]यण आदि के वर्णन में विष्णु की पूजा, उपासना, स्तव आदि का परिचय और विधि-विधान दिया गया है । अन्य खण्डों में भी वि[illegible] चर्चा बराबर आई है और उनकी शिव की समानता का ही द[illegible] [illegible] गया है । 'काशी खण्ड' में कहा गया है ।

यथा शिवस्तथा विष्णुर्यथा विष्णुस्तथा शिवः ।
अन्तरं शिवविष्णोश्च मनागपि न विद्यते ॥

"भगवन् ! संसार के दृश्य और अदृश्य पदार्थों में से मैं किसको ग्रहण और किसको त्याग करूँ ? जगत में जितनी स्त्रियाँ हैं, वे सब मेरे लिए माता पार्वती के समान हैं, और जितने भी पुरुष हैं, उन सब को मैं आपके (शिवजी के) रूप में देखता हूँ। यह विवेक मैंने आपके ही प्रसाद से प्राप्त किया है, इसलिए आप मुझे नरक में डूबने से बचाइये ! भयंकर संसार-सागर में फिर न गिर जाऊँ आप इसी की चेष्टा करें। जैसे दीपक हाथ में लेकर किसी वस्तु को खोजने वाला उस वस्तु को पाकर अन्य साधनों की तरफ ध्यान नहीं देता उसी प्रकार योगी को यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वह सांसारिक माया मोह को त्याग देता है। सर्वव्यापी ब्रह्म को जान कर जिसके सब बन्धनात्मक कर्म निवृत्त हो जाते हैं उसी को विद्वान पुरुष योगी कहते हैं। मानवों के लिए ज्ञान अत्यन्त दुर्लभ है। ज्ञानीजन प्राप्त हुए ज्ञान को किसी प्रकार खोदेना नहीं चाहते। मैं संसार-बन्धन से छूटने की इच्छा करता हूँ इसलिए मुझसे ऐसी कोई बात नहीं कहनी चाहिए जिससे इन व्रतों के टूट होने की आशंका हो।"

इस प्रकार स्कन्द सदा 'कुमार' ही बने रहे और इसी नाम से प्रसिद्ध हुए। उन्होंने साधना-काल में आने वाली अणिमा आदि सिद्धियों को दूर भगा दिया और केवल निर्मल समदृष्टि को ही स्वीकार किया। इसलिये वे सदा केवल शत्रुओं पर ही विजयी नहीं रहे, पर काम क्रोध, मोह आदि षड्रिपुओं का भी उनके ऊपर कभी कोई प्रभाव नहीं पड़ सका।

सत्य की प्रतिष्ठा—

'दारुवन' का उपाख्यान सभी शैव पुराणों तथा ग्रन्थों में भी वर्णित है। पर 'स्कन्द पुराण' में उसे जिस रूप में दिया गया है उससे वह असत्य पर सत्य की विजय का दृष्टान्त बन गया है। उसके जिस

'शिव लिङ्ग' का वर्णन किया गया वह वास्तव में इस विश्व ब्रह्माण्ड को रचने वाली विराट परमात्म-शक्ति का ही स्वरूप है। वह शक्ति अनन्त है, उसका आदि-अन्त होना सम्भव ही नहीं है। पर जब परमात्मा के प्रतीक उस लिङ्ग के आदि-अन्त का पता लगाने के लिए ब्रह्मा और विष्णु से कहा गया, तो वे सामूहिक आदेश को शिरोधार्य करके इसका निर्णय करने के लिए आकाश और पाताल की तरफ रवाना हो गये। ब्रह्माजी को स्वभाव से कुछ 'चतुर' माना गया है, क्योंकि उनको 'सृष्टि' रचना में सभी तरह का टेढ़ा सीधा कार्य सम्पन्न करना पड़ता है। इसलिये जब उनको ऊपर के सातों लोक पार कर लेने पर भी लिङ्ग' के अन्तिम छोर का पता न लगा तो उन्होंने विचार किया कि यहाँ तक जाँच करने तो कोई आवेगा नहीं क्यों न मैं झूठ-मूठ लिङ्ग का मस्तक देखने की बात कह कर सब की 'वाहवाही' हासिल कर लूँ! पर ऐसी बात को समस्त दर्शक बिना प्रमाण के कैसे मान सकेंगे, इस आशंका से उन्होंने मार्ग में ही दो गवाह संग ले लिये। वे थे—सुरभी गाय और केतकी का पेड़। इन दोनों ने देव और ऋषियों के समूह के पास आकर ब्रह्माजी के इस दावे का समर्थन कर दिया कि ब्रह्माजी लिङ्ग का आदि देख आये हैं। इसी बीच विष्णुजी भी वहाँ आ पहुँचे और उन्होंने एक सत्यानुयायी की तरह कह दिया कि मैंने सातों पातालों से आगे बढ़ कर शून्य में भी लिंग के छोर की खोज की पर वह तो सर्वत्र इसी रूप में व्याप्त दिखाई दिया।

इस पर ब्रह्माजी की चढ़ बनी और वे बड़ी शान के साथ उच्चासन पर विराजमान हो गये। उसी समय आकाश वाणी हुई—"सुरभी तथा केतकी ने जो कुछ कहा है, वह सब मिथ्या है, आप इनकी बातों पर तनिक भी विश्वास मत कीजिए।" इस पर समस्त देवों ने शाप दिया कि 'आज से गाय का मुख पवित्र के बजाय अपवित्र हो जायगा और केतकी का फूल कभी शिवजी पर नहीं चढ़ाया जायगा।' इसके

पश्चात् पुनः आकाश वाणी हुई—"हे ब्रह्मा ! आपने मूर्खतावश जो मिथ्या वचन कहे हैं, इसलिए अब तुम्हारी पूजा नहीं होगी। जिन ऋषियों और भृगु आदि पुरोहितों ने तुम्हारा समर्थन किया है, वे भी अपूज्य और तत्व के न जानने वाले, मत्सरतायुक्त, याचक, आत्म प्रशंसा करने वाले बन जायेंगे। वे एक-दूसरे की निंदा करते हुए क्लेशयुक्त जीवन व्यतीत करने वाले होंगे।"

यह उपाख्यान सत्य के प्रभाव को सर्वोपरि बतलाता है। असत्य भाषण ब्रह्मा जैसे महान आत्मा के लिए भी कलंक और पतन का कारण होता है। मनुष्य समझते हैं कि अपनी झूठी प्रशंसा करके हम लोगों की दृष्टि में बड़े बन जायेंगे, तरह तरह का लाभ उठा सकेंगे, धन और पदवी प्राप्त कर सकेंगे। पर परिणाम प्रायः उल्टा ही होता है। झूठा आदमी दो-चार व्यक्तियों को बहका सकता है, पर वह सब की आँखों में धूल नहीं झोंक सकता। समझदार और निष्पक्ष मनोवृत्ति के लोग उसकी चालाकी को उसी समय समझ लेते हैं, और भण्डा-फोड़ कर देते हैं। इस कारण जो उसके पक्ष में होते हैं, वे भी कुछ समय पश्चात विक स्थिति को समझ जाते हैं और झूठे की सर्वत्र निन्दा और ना ही प्राप्त होती है। सत्य को चाहे कुछ समय तक संकट और पश्चात्पद स्थिति में रहना पड़े, पर अन्त में उसी की विजय होती है। ऐसा कभी नहीं हुआ कि सत्य हमेशा के लिए दब जाय अथवा नष्ट हो जाय। अगर ऐसा कभी देखने में आवे तो समझ लेना चाहिए कि उस 'सत्य' में कुछ दोष है अथवा उस व्यक्ति में कुछ त्रुटियाँ ऐसी हैं जो उसके गुण को उभरने नहीं देतीं।

भारत के तीर्थ—

जैसा हम आरम्भ में ही कह चुके हैं कि 'स्कन्द पुराण' का एक विशिष्ट लक्षण भारत के तीर्थों का वर्णन करना है। इसमें इतने अधिक

तीर्थों का वर्णन है कि इन सबको सहज में ध्यान में भी नहीं लाया जा सकता। हमारा अनुमान है कि इनमें से बहुसंख्यक तीर्थ तो सब काल प्रभाव से टूट फूट कर नष्ट हो ही चुके होंगे। हम अपने व्यक्तिगत अनुभव के आधार पर कह सकते हैं कि प्रयाग और मथुरा में पुराने समय के अनेक कुण्ड थे पर आज उनका नाम ही शेष है। प्रयाग में सूर्य कुण्ड के स्थान पर आज एक बिजलीघर बना है। मथुरा में अधिकांश कुण्ड टूट फूट कर केवल गड्ढे रह गए हैं और कुछ तो बिल्कुल टीले के रूप में परिवर्तित हो गए हैं। फिर भी स्कन्द पुराणकार ने जिन प्रमुख तीर्थों का वर्णन किया है और उनका माहात्म्य, पूजा-विधि, स्तुतियाँ आदि लिखी हैं, उनसे कितनी ही बातों की जानकारी होती है। "बदरिकाश्रम का अन्य तीर्थों से अधिक महत्व" शीर्षक अध्याय में भूमिका स्वरूप भारत के अधिकांश प्रमुख तीर्थों का उल्लेख किया गया है। उसमें शिवजी द्वारा स्कन्द से कहा गया है—

"हे षडानन! परमार्थ पथ के पथिक मनुष्यों को भगवान के वैकुण्ठ धाम का निवास प्रदान करने वाले बहुत-से तीर्थ और क्षेत्र हैं। उनमें से कोई कामना के अनुसार फल देने वाले हैं और कोई मोक्ष-दायक हैं। गङ्गा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा, तपती, शिप्रा, गोमती, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, वेत्रवती, सरयू, शतद्रु, पयस्विनी, गण्डकी, बाहुदा, सिन्धु, सरस्वती—ये सब पवित्र नदियाँ हैं और बार-बार सेवन करने पर भोग और मोक्ष का प्रदान करने वाली हैं। अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन) कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, काँची, पुरुषोत्तम क्षेत्र (जगन्नाथ), पुष्कर क्षेत्र, दर्दुर क्षेत्र, वाराह क्षेत्र, तथा बदरी नामक महापुण्यमय क्षेत्र सब मनोरथों के साधक उत्तम तीर्थ हैं। एक अयोध्यापुरी के दर्शन से ही मनुष्य सब पापों से मुक्त होकर भगवान का सान्निध्य प्राप्त करते हैं।"

'द्वारका में साक्षात् श्रीहरि विराजमान हैं' और वे अपने स्थान

को कभी नहीं छोड़ते। गोमती में स्नान करके भगवान कृष्ण का दर्शन करने से बिना ज्ञान के भी मुक्ति हो जाती है। वाराणसी क्षेत्र में मणिकर्णिका, ज्ञान वापी, विष्णु पादोदक, पंच गङ्गा में स्नान करके मनुष्य को पुनः माता के स्तनों का दूध नहीं पीना पड़ता। मथुरा में भगवान कृष्ण के जन्म स्थान पर जाकर मनुष्य सब पापों से मुक्त हो जाता है। उज्जैन में वैशाख मास पर कोटि तीर्थ में गोता लगाने और महाकालेश्वर शिव का दर्शन करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं। कुरुक्षेत्र तथा राम तीर्थ में सूर्य ग्रहण पर यथाशक्ति दान करने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। हरिक्षेत्र में पादोदक तीर्थ का स्नान मुक्तिदाता है। विष्णुकाञ्ची में साक्षात विष्णु और शिवकाञ्ची में भगवान शिव निवास करते हैं। पुरुषोत्तम क्षेत्र के मार्कण्डेय सरोवर में स्नान करके जगन्नाथ देव का दर्शन करने से मनुष्य पुनः इस नश्वर जगत में नहीं आता। कार्तिक पूर्णिमा को पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने से मृत्यु उपरान्त ब्रह्मलोक में स्थान मिलता है। माघ मास में भक्तिपूर्वक प्रयाग के त्रिवेणी संगम का स्नान अनन्त पुण्यफल का प्रदाता होता है।"

'भगवान विष्णु के बदरी क्षेत्र की महिमा समस्त तीर्थों से अधिक है। तप, योग, समाधि तथा सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान करने से जो फल प्राप्त होता है वह बदरी क्षेत्र में भली भाँति दर्शन करने से ही प्राप्त हो जाता है।"

हम यह स्वीकार करने में कोई विरोध नहीं कि हमारे पूर्वजों ने अनेक तीर्थों की स्थापना जन कल्याण की भावना तथा सामान्य जनता में आध्यात्मिक रुचि की वृद्धि के उद्देश्य से की थी। सैकड़ों वर्ष तक ये तीर्थ वास्तव में सद्विचारों तथा पुण्य-परम्पराओं का बीज वपन करने के स्रोत बने रहे। इनसे एक ओर जहाँ मनुष्यों को घर के संकीर्ण दायरे से निकल कर विस्तृत क्षेत्र में देश और समाज की स्थिति को समझने का अवसर मिलता था, वहीं उनमें त्याग और परमार्थ की प्रवृत्तियों को

प्रस्फुटित होने की सम्भावना भी बढ़ती थी। पर आज स्थिति उल्टी होती जा रही है। हमारे तीर्थ सत्प्रेरणा के बजाय दोषों और दुर्गुणों के गढ़ बनते जाते हैं। जहाँ किसी समय तीर्थ-यात्रियों के सम्मुख स्वार्थ-त्यागी और परोपकार व्रतधारी ऋषि-मुनि एवं परमार्थ का आदर्श उपस्थित करते रहते थे वहाँ आज पण्डे, पुरोहित तथा साधु वेषधारी धूर्त लोग वञ्चकता और ठगी का नमूना दिखलाते रहते हैं। परिणाम यह हुआ कि सर्व साधारण की श्रद्धा तीर्थों पर से क्रमशः हटती जाती है और समझदार तथा शिक्षित लोग तो इनके नाम से नाक-भौं सिकोड़ने लगते हैं। वास्तव में यह हिन्दू-समाज का बड़ा दुर्भाग्य है कि उसकी एक उपयोगी संस्था का स्वरूप ऐसा विकृत हो गया और वह कल्याण के बजाय अकल्याण का साधन बन गई।

ऋषियों की नामावली—

'सप्तावरण रहस्य स्थान वर्णन' शीर्षक अध्याय (पृष्ठ २४६) में मार्कण्डेय ऋषि द्वारा नन्दि से प्रश्न किया गया कि 'भगवान शिव की उपासना की दृष्टि से ऐसा स्थान कौन-सा है जहाँ पर सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति हो सके। उन्होंने कहा कि यह जिज्ञासा केवल मेरी ही नहीं है वरन् सभी ऋषि-मुनियों की है।" इसके बाद उन्होंने सब ऋषियों के नाम गिनाये हैं, जो लगभग १४० होंगे। इनमें सृष्टि के आदि में प्रकट होने वाले ब्रह्मा के मानस पुत्र सनक, सनन्दन, सनत्कुमार, मरीचि, पुलह, पुलस्त्य, वशिष्ठ, भृगु, अत्रि आदि से लेकर पाराशर, व्यास, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, चरक, सुश्रुत आदि तक के नाम दिये गये। एक प्रकार से यह कहा जा सकता है कि समस्त पुराणों की विविध कथाओं में जितने नाम ऋषियों के आये हैं वे सभी एक जगह इकट्ठे कर दिए गये हैं। इनमें से सनक-सनन्दन, मरीचि आदि नाम सृष्टि प्रारम्भ होने के समय के हैं, पाराशर, व्यास आदि द्वापर के अन्तिम भाग

के हैं और चरक, सुश्रुत आदि दो-चार हजार वर्ष पुराने आयुर्वेद ग्रन्थ के आचार्यों के हैं।

इस उदाहरण से प्रतीत होता है कि लेखक को सभी प्रसिद्ध ऋषियों की नामावली देनी थी, इसलिए जितने नाम उसे मिल सके वे सभी लिख डाले, यद्यपि पुराणों की ही वर्ष-गणना के हिसाब से इनके समय में लाखों वर्ष का अन्तर है। यह उदाहरण हमने इस उद्देश्य से दिया है कि जो लोग इन प्राचीन ग्रन्थों में लिखे प्रत्येक श्लोक को एक अकाट्य तथ्य मान लेते हैं, वे वास्तविक स्थिति को समझ सकें। जैसा हम अनेक बार बतला चुके हैं पुराणों की कथाएँ 'उपाख्यान' के रूप में लिखी गई हैं, जिसका आशय यह होता है कि उनके मूल में कुछ सचाई है पर कथा का पूरा ढाँचा रचयिता ने अपनी कल्पना और कवित्व-शक्ति से तैयार किया है। ऐसे कवि इस बात की चिन्ता नहीं करते कि वे दो विभिन्न कालों की घटनाओं या व्यक्तियों का वर्णन एक साथ मिला दे रहे हैं। अथवा अलग अलग दूरवर्ती स्थानों में होने वाली कई घटनाओं को किसी एक नये स्थान से सम्बद्ध किये दे रहे हैं। उनका ध्यान तो मुख्यतः काव्य के रस का परिपाक होने तथा छन्द-शास्त्र के नियमों का पालन करने में लगा रहता है, जिससे उनकी रचना प्रभाव-शाली और आकर्षक बन सके। यदि हम इस तथ्य को अच्छी तरह समझ लें और तदनुसार ही उनका स्वाध्याय करें तो उन व्यर्थ की शंकाओं से बच सकते हैं, जो प्रायः ऐसे प्राचीन कथा-ग्रन्थों के सम्बन्ध में पैदा हुआ करती हैं।

अहिंसा-धर्म की महत्ता—

आपस्तम्ब नाम के महर्षि एक समय साधना करने के निमित्त नर्मदा और मत्स्या नदियों के संगम पर जल के भीतर जा कर बैठ गए। वहाँ कितने ही मल्लाह मछली पकड़ रहे थे, संयोगवश वे मुनि भी

मछलियों के साथ उनके जाल में फँस कर बाहर निकल आये। उनको इस प्रकार निकला देख कर मल्लाह बहुत डरे और क्षमा-प्रार्थना करने लगे। पर मुनि उस समय मछलियों का संहार होता देख कर कुछ और ही सोच रहे थे। उन्होंने मल्लाहों से कहा—

"भेद-दृष्टि रखने वाले जीवों द्वारा दुःख में डाले हुए प्राणियों की ओर जो लोग ध्यान नहीं देते उनसे बढ़ कर क्रूर संसार में और कौन होगा? अहो! जीव अपने प्राणियों के प्रति यह निर्दयतापूर्ण तथा स्वार्थ के लिए उनका ध्वंस में बलिदान—यह कैसा आश्चर्य का विषय है? ज्ञानियों में भी जो केवल अपने ही हित में तत्पर है, वह श्रेष्ठ नहीं है, क्योंकि यदि ज्ञानी पुरुष भी अपने स्वार्थ का दृष्टिकोण रख कर ज्ञान-ध्यान में लगे रहते हैं, तो इस जगत के दुःखी प्राणी किसकी शरण जायेंगे? जो मनुष्य अकेला ही सुख भोगना चाहता है उसे मुमुक्षु पुरुष महापापी बतलाते हैं। मेरे लिए वह कौन-सा उपाय है जिससे मैं दुःखित चित्त वाले सम्पूर्ण जीवों के भीतर प्रवेश करके अकेला ही सब के कष्टों को भोगता रहूँ। मेरे पास जो कुछ भी पुण्य है, वह सभी दीन-दुःखियों के पास चला जाय और उन्होंने जो कुछ पाप किया है वह मेरे पास आ जाय। इन दरिद्र, विकलांग तथा रोगी प्राणियों के कष्टों को देख कर जिसके हृदय में दया उत्पन्न नहीं होती वह मेरे विचार से मनुष्य नहीं राक्षस है। जो समर्थ होकर भी प्राण-संकट में पड़े हुए, भय विह्वल प्राणियों की रक्षा नहीं करता, वह उनके पापों को ही भोगता है। अतः मैं इन दीन दुःखी मछलियों को दुःख से मुक्त करने का कार्य छोड़ कर मुक्ति को भी वरण नहीं करना चाहता, फिर स्वर्ग-लोक की तो बात ही क्या है।"

मल्लाहों ने आपस्तम्ब ऋषि की सब बातें जाकर महाराज नाभाग को बतलायीं। जब वे घटनास्थल पर आये तो ऋषि ने कहा कि

'इन मल्लाहों ने मुझे जल से निकालने में बड़ा परिश्रम किया है। इस लिए मेरा जो कुछ मूल्य तुम उचित समझो वह इनको दे दो।"

राजा नाभाग आपस्तम्ब के मूल्य के रूप में मल्लाहों को एक लाख से लगा कर अपना राज्य तक देने को तैयार हो गए, पर आपस्तम्ब ने उसे पर्याप्त न समझा। इस पर राजा बहुत चिन्तित हुआ। उसी समय लोमश ऋषि वहाँ पर आये और उन्होंने कहा कि महान ज्ञानी द्विज का मूल्य रुपया और राज्य नहीं हो सकता, वरन् उसका मूल्य तो गौयें हैं जो उसी की तरह जगत की हितकारिणी होती हैं। गौओं की महिमा में सत्य ही कहा गया है—

गाव: प्रदक्षिणा कार्या वन्दनीया हि नित्यश: ।
मंगला पतन दिव्या सृष्टास्त्वेता: स्वयम्भुवा ।।
अप्यागाराणि विप्राणां देवतायतनानि च ।
यद्गोमयेन शुद्धयन्ति किं ब्रूमो ह्यधिक तत: ।।
गोमूत्र गोमय क्षीर दधि सर्पिस्तथैव च ।
गवां पञ्च पवित्राणि पुनन्ति सकलं जगत् ।।

"ब्रह्मा जी ने गौओं को दिव्य गुणों से युक्त बनाया है। वे अत्यन्त मंगलकारिणी हैं। अत: सदैव उनकी परिक्रमा और वन्दना करनी चाहिए। जिन गौओं के गोबर से ब्राह्मणों के घर तथा देव-मन्दिर भी पवित्र हो जाते हैं उनसे बढ़ कर और किसे कहा जा सकता है? गौओं के मूत्र, गोबर, दूध, दही, घी—ये पाँचों वस्तुएँ पवित्र मानी गई हैं और ये सम्पूर्ण जगत को पवित्र करने वाली हैं।"

इस प्रकार आपस्तम्ब ऋषि ने प्राणियों की उपयोगिता और उनकी रक्षा तथा पालन करने का प्रतिपादन किया। निस्सन्देह किसी भी दु:खी प्राणी पर दया करके उसकी सहायता करना परम धर्म है। इससे उसके दु:खों का चाहे पूर्णतया अन्त न होता हो, पर इस प्रकार

की भावना से मनुष्य का अपना हृदय अवश्य उच्च और अधिक पवित्र बनता है। इस प्रकार जीव-दया और अहिंसा का व्यवहार ही मनुष्य को साधारण सांसारिक धरातल से उठा कर देवत्व की भूमिका में पहुँचा देता है। अपने लिए तो सभी जीते, परिश्रम और कष्ट सहन करते हैं। इसमें कोई आश्चर्य की अथवा बहुत बड़े महत्व की बात नहीं है। आत्म-रक्षा और आत्म-विकास प्रत्येक प्राणी का स्वाभाविक कर्तव्य है, जिसे वह अपने स्वार्थ की दृष्टि से करता ही रहता है। प्रशंसा तो उसी की है जो अपने स्वार्थ का ख्याल न करके दूसरे के दुःखों को अनुभव करता और उन्हें दूर करने के लिए प्रयोग करता है।

सदाचार महिमा—

यद्यपि पौराणिक धर्म में तीर्थ, व्रत, देव-दर्शन आदि की महिमा ही विशेष कही गई है और इन्हीं को पापों से छुटकारा दिलाने का साधन बतलाया गया है, तो भी बीच-बीच में यह संकेत पाया जाता है कि इन सब धर्म कार्यों में सदाचार का आधार अवश्य होना चाहिए। दुराचार से मनुष्य निरन्तर पाप-पङ्क में डूबता जाता है और सदाचार के सहारे वह उच्च धरातल पर प्रतिष्ठित होता है। इसलिए धर्म की कामना रखने वालों को सदाचार का पालन अवश्य करणीय है। इसके प्रतिपादन में 'ब्रह्म खण्ड' का निम्न उद्धरण महत्वपूर्ण है—

"आचार ही एक महान वस्तु है। आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति किया करता है और उसी से सुफल प्राप्त करता है, आचार से श्री (लक्ष्मी) की प्राप्ति होती है। इसका विवेचन करते हुए व्यास देव ने कहा है कि स्थावर, कृमि, जलज, पक्षी, पशु और मानव—ये क्रम से 'धार्मिक' होते हैं। इनसे विशेष धार्मिक सुर हुआ करते हैं। जो प्राणी पाप से छुटकारा पाने का प्रयत्न करते हैं वे सब 'महाभाग' कहे जाते हैं। उनमें श्रेष्ठ वे हैं जो बुद्धिपूर्वक आचरण करते हैं। समस्त बुद्धि वाले

प्राणियों में मानव श्रेष्ठ होता है। मनुष्यों में विप्र श्रेष्ठ होते हैं, विप्रों में विद्वान श्रेष्ठ हैं, उनमें श्रेष्ठ 'कृत-बुद्धि' होते हैं। 'कृत बुद्धि' में श्रेष्ठ 'कर्ता' और कर्ताओं में श्रेष्ठ 'ब्रह्म तत्पर' होते हैं। तप और विद्या की दृष्टि से ये एक दूसरे के पूजनीय माने जाते हैं। ब्रह्मा के द्वारा ही 'ब्राह्मण' की सृष्टि की गई है इसलिए वह सब प्राणियों में श्रेष्ठ और पूज्य है। पर समस्त श्रेष्ठताओं का आधार सदाचार ही है। जो आचार से रहित है वह तो कुछ भी नहीं है। इसलिए ब्राह्मण को सदा आचारवान होना चाहिए। वह राग और द्वेष से भी परे होता है और सभी बुद्धिमान उसका सम्मान करते हैं। उनके मतानुसार ऐसा सदाचार ही धर्म का मूल है। जो व्यक्ति अन्य प्रकार से धर्मात्माओं के लक्षणों से युक्त न जान पड़े पर जो गुण सम्पन्न हो और किसी से ईर्ष्या-द्वेष न रखता हो, वही सत्कर्मी है, उसका जीवन बहुत मान्य है, जिससे उसके द्वारा प्राणियों का हित साधन होता रहे।"

"इसलिए मनुष्यों को सदैव सावधान होकर सदाचार-धर्म का पालन करना चाहिए। जिसका झुकाव दुराचार की ओर होता है वह लोक में महान निन्दा का पात्र होता है। दुराचारी व्यक्ति अनेक प्रकार की व्याधियों—रोगों से घिरा रहता है और इस कारण उसका जीवन भी अल्प हो जाता है और वह हमेशा दुःख ही भोगा करता है। इसलिए मनुष्य को वही कर्म करना चाहिए जिसके करने से अन्तरात्मा प्रसन्न हो इसके विपरीत कर्म कभी नहीं करना चाहिए।"

'परलोक' में तो एकमात्र धर्म ही साथी होता है। इसलिए सर्वदा इस बात को ध्यान में रखे कि जीवन में पर पीड़ा रूप पाप कर्म कभी न हो। पिता, माता, पुत्र, भ्राता, स्त्री और बन्धु बान्धव तो केवल थोड़े समय तक साथ रहते हैं, अन्यथा यह जीव अकेला ही आता और अकेला ही जायगा। अपने शुभ अथवा अशुभ कर्मों का फल भी इसको स्वयं भोगना पड़ता है। इसके लिए अपनी भलाई बुराई समझकर

वाले व्यक्ति को सदैव उत्तम पुरुषों की ही संगति करनी चाहिए, जिससे श्रेष्ठ कर्मों की प्रेरणा मिलती रहे। जिन लोगों के विचार अधमता के हों, उनका सदैव परित्याग करना चाहिए। इसी मार्ग पर चलने से 'ब्राह्मण' सच्ची श्रेष्ठता और पूज्य पद प्राप्त किया करता है और इसके विपरीत चलने से वह नीचता को प्राप्त हो जाता है।"

राम-नाम की महिमा—

यद्यपि तीनों देवों—ब्रह्मा, विष्णु, महेश की एकता का प्रतिपादन अनेक पुराणों में किया गया है और हम इस भूमिका के प्रारम्भ में ही इस कथा को उद्धृत कर चुके हैं, जिससे प्रकट होता है कि ये महान देवगण परस्पर एक दूसरे को बढ़ कर मानते हैं। पर आगे चल कर 'ब्रह्म खण्ड' में राम नाम की महिमा का जिस रूप में वर्णन किया गया है, वह तो अभूतपूर्व है। तुलसी दासजी की 'रामायण' वर्तमान समय में 'राम' की महिमा का सबसे अधिक प्रचार करने वाला ग्रन्थ माना जाता है। उसके प्रारम्भ में ही शिव-पार्वती के सम्वाद के रूप में राम नाम की महिमा का वर्णन किया गया है। 'स्कन्द पुराण' के अवलोकन करने पर पता चलता है कि गोस्वामी जी ने उसका भाव इस पुराण से ही ग्रहण किया हो तो कुछ आश्चर्य नहीं। 'रामायण' में पार्वती जी ने शिवजी से कहा है—

जो मोपर प्रसन्न सुखरासी,
जानिअ सत्य मोहि निज दासी।
तो प्रभु हरहु मोर अग्याना,
कहि रघुनाथ कथा विधि नाना।
सेस सारदा वेद पुराना,
सकल करहिं रघुपति गुन गाना।

तुम्ह पुनि राम-राम दिन राती,
सादर जपहुँ अनंग आराती ।
जदपि जोषिता नहिं अधिकारी,
दासी मन क्रम वचन तुम्हारी ।

'स्कन्द पुराण' में भी कहा गया है कि जब शिव-पार्वती एकान्त स्थान में बैठे थे तो पार्वती जी ने उनसे कहा—

ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ।
इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वर ।।
त्वया किं जप्यते देव सन्देहयति मे मनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानाम् कृत्स्नकलेश्वरः ।।
त्वत्तः परतरं किंचिद्यत्त्वं ध्यायसि चेतसा ।
तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ।।

"उस अवसर पर जगत जननी पार्वती जी ने शङ्कर भगवान से कहा कि आप जो सदैव अपने हाथ में माला लेकर जप करते रहते हैं, वह क्या बात है ? मेरे मन में यही सन्देह बारम्बार उठता रहता है। आप तो समस्त प्राणियों के एकमात्र ईश्वर हैं। क्या आपके ऊपर भी कोई अन्य तत्व है, जिसका आप चित्त लगा कर ध्यान करते रहते हैं ? इसका जो कुछ रहस्य हो वह आप मुझे अवश्य बतायें क्योंकि मैं आपकी प्राण-प्रिया हूँ।"

श्री शिवजी ने उत्तर दिया— 'मैं जिस नाम का जप और ध्यान करता हूँ वह भगवान के समस्त नामों का सार रूप है। मैं 'राम' नाम वाले सर्वश्रेष्ठ अवतार का ध्यान करता हूँ। जिन भगवान के अभी तक २४ अवतार हो चुके हैं, मैं उन्हीं का जप करता रहता हूँ। इन सब का सार का भी सार है वह 'प्रणव' नाम वाला है और वह सनातन द्वादश

अक्षरों से संयुक्त ब्रह्म का ही रूप है । इस ओंकार के सहित जो द्वादश अक्षरों का बीजक है, उसका जाप करने वाले के लिए तो यह इतना प्रभावशाली सिद्ध होता है कि समस्त पापों को दावाग्नि के समान तनिक देर में भस्म कर देता है । यह सब से अधिक महान् और तेजस्वी है । यह इस लोक मे अत्यन्त दुर्लभ है और तीनो लोकों का यह भूषण है यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोडो जन्मो में प्राप्त होता है । द्वादश अक्षर का चिन्तन करना ही परम ज्ञान है ।"

पर विधि-विधानों के कारण सब लोगो के लिए पूरा द्वादश अक्षर मन्त्र का जप भी आवश्यक नही है । केवल 'राम' का नाम लेकर ही वे अपना उद्धार कर सकते हैं । इस सम्बन्ध में शिवजी ने बतलाया—

रामेति द्व्यक्षर जपः सर्व पापापनोदकः ।
गच्छस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजो राम कीर्तनात् ॥

इहनिर्वृतिमायाति प्रान्तेहरिगणो भवेत् ।
रामेति द्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्र कोटिशताधिकः ॥

न रामादधिक किंचित्पठन जगती तले ।
रामनामाश्रया ये वं न तेषां यम यातना ।

ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्रये ।
रामनाम्नैव विलय यान्ति नात्र विचारणा ॥

रमते सर्व भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्म स्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ॥

रामेति मन्त्र राजोऽयं भय व्याधि निपूदक ।
रणे विजयदश्चापि सर्व कार्यार्थ साधकः ॥

सर्व तीर्थ फल प्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ।

तस्मात् त्वमपि देवेशि राम नाम सदा वद ।
रा नाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्व किल्विषै ॥

" 'राम' इन दो अक्षरोंका जप समस्त पापोंको नष्ट करने वाला है। चलते-फिरते, बैठे हुए, लेटे हुए राम का जप करते रहने से मनुष्य निश्चय ही भव बन्धनों से छुटकारा पा कर भगवान का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। यह दो अक्षरों का 'राम' नाम मन्त्र करोड़ों मन्त्रों की अपेक्षा शक्तिशाली है। यह सभी प्रकृति वालों के लिए पाप नाशक कहा गया है। इस संसार में राम नाम से बढ़ कर पढ़ने लायक और कोई वस्तु नहीं है। जो केवल इस नाम का अवलम्बन लेता है उसको यम-यातना कदापि ग्रहण नहीं करनी पड़ती। सभी प्रकार के दोष, विघ्न, विग्रह, विनाश करने वाले कारण राम-नाम के प्रभाव से दूर हो जाते हैं। समस्त प्राणियों में चाहे वे स्थावर हों या जङ्गम श्रीराम ही अन्त-रात्मा के रूप में उपस्थित रहते हैं 'श्रीराम' का नाम ही मन्त्रराज है, जिससे संसार का प्रत्येक भय और व्याधि नष्ट हो सकती है। यह मन्त्र-राज सब तरह के संघर्षों में विजय प्राप्त कराने वाला और समस्त कार्यों में सिद्धि प्रदान करने वाला है। इसे समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है। यह विशेष रूप से भी समस्त कामनाओं को पूरा करने वाला होता है। जिस समय मुख से 'श्रीरामचन्द्र' 'श्रीराम' इन शब्दों का उच्चारण किया जाता है, तो तत्काल सब मनोरथ पूरे हो जाते हैं। इसलिए हे देवी (पार्वतीजी) आप भी 'श्रीराम' के शुभ नाम का उच्चारण किया करो, इससे समस्त पाप, दोष निश्चय ही दूर हो जाते हैं।"

'शिव' नाम की महिमा—

राम-नाम की महिमा सुन कर नैमिषारण्य के मुनियों ने शिव नाम की महिमा वर्णन करने की प्रार्थना की तो सूतजी कहने लगे—

"ओं शिवाय नमः—मन्त्र का जप करने का फल महान कल्याणकारी होता है। यह पंचाक्षरी मन्त्र अपने उपासक को निश्चय ही मुक्ति प्रदान करने वाला है। इसलिए मुक्ति की आकांक्षा रखने वाले सभी मुनि-ऋषियों द्वारा इसका सेवन किया जाता है। इस मन्त्र का माहात्म्य चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा भी नहीं कहा जा सकता। समस्त श्रुतियों, उपनिषदों तथा धर्म-शास्त्रों का सार इस शिव-मन्त्र में समझना चाहिए। सत् चित् और आनन्द के लक्षण वाले भगवान शिव स्वयं इसमें रमण किया करते हैं। इसी मन्त्रराज का आश्रय लेकर बड़े-बड़े ऋषि-मुनियों ने परम ब्रह्म को प्राप्त किया था। भगवान शिव को इस प्रकार नमस्कार करने से जीव, ब्रह्म-ऐक्य प्राप्त कर लेता है।"

"भव-बन्धनों में ग्रस्त प्राणियों के उद्धार के लिये ही भगवान शिव ने स्वयं इस 'ओं नमः शिवाय' मन्त्र को कहा था। यह मन्त्र जिस मनुष्य के हृदय तक आता है, फिर उसे बहुत-से अन्य जप तप, कष्ट सहन में क्या प्रयोजन है? ये देहधारी तभी तक अनेक दुःखों को भोगते हुए इस दारुण जगत में भ्रमण किया करते हैं, जब तक इस महामन्त्र का उच्चारण नहीं करते। यह पंचाक्षरी मन्त्र अनेक मन्त्रराजों का भी राजा है। यह सम्पूर्ण वेदान्तों में शिरोमणि है, सम्पूर्ण ज्ञान का निधान है, मोक्ष-मार्ग का दीपक है और अविद्या-समुद्र का बड़वानल है। यह महान पातकों को नष्ट करने के लिए दावाग्नि के तुल्य है। मुक्ति की इच्छा रखने वाला व्यक्ति, चाहे वह शूद्र, स्त्री अथवा निम्न समझी जाने वाली जाति का क्यों न हो, इसको बिना बाधा के धारण कर सकता है। इस मन्त्रराज में न कोई दीक्षा होती है, न होम होता है, न कोई संस्कार-तर्पण आदि करना पड़ता है। इस मन्त्र का कोई विशेष काल भी नहीं है, न कोई विशेष उपदेश होता है। यह मन्त्र तो सदा ही शुचि रहा करता है। इसीलिए कहा गया है—

महापातक विच्छित्त्यै शिवइत्यक्षर द्वयम्।

अल नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ।।
उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्त क्षेत्रेच पावने ।
सद्योयथेप्सितासिद्धि ददातीतिकिमद्भुतम ।

'महापातकों को दूर करने के लिये 'शिव' में दो अक्षर ही पर्याप्त होते हैं। जब इन दो अक्षरों में नम' क्रिया वाचक जोड़ दिया जाता है तो वह 'नम शिवाय' महामन्त्र मुक्ति प्रदाता बन जाता है। यदि इसका उपदेश किसी सद्गुरु से लेकर किसी पुण्य क्षेत्र में इसका जप किया जाय तो वह तुरन्त ही इच्छित मनोरथ की पूर्ति करने वाली होता है, इसमें कुछ भी आश्चर्य नहीं है।"

इसी प्रकार कृष्ण नाम' की महिमा भी उन्मुक्त भाव से कथन की गई है। भगवान विष्णु ने स्वयं ब्रह्माजी को बतलाया कि जो प्रति-दिन कृष्ण कृष्ण' का उच्चारण किया करता है वह कभी नरकगामी नहीं हो सकता—

कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः ।
जलं भित्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ।।

पाठक कदाचित् एकही साथ राम, कृष्ण, शिव तीनों का एक सा माहात्म्य और एक सा प्रभाव सुन कर इस असमंजस में पड़ जाय कि इन तीनों में से कौन ज्यादा ठीक है, अथवा विशेष फल देने वाला है ? अनेक तर्क वितर्कवादी इस प्रकार भिन्नतायुक्त कथनों को देख कर ही पुराणों की विपरीत आलोचना करने लगते हैं कि उनमें तो तरह तरह की परस्पर विरोधी बातें भरी हुई हैं। उनको जानना चाहिए कि इस प्रकार की भ्रान्ति रखने वालों को समझाने के लिए ही इन तीनों का वर्णन एक साथ किया गया है। हम ऐसे संशयग्रस्त या सम्प्रदायवादी सज्जनों को बतलाना चाहते हैं कि सभी मन्त्र, जप, अनुष्ठान उत्तम हैं,

यदि उसको शुद्ध मन और सच्चे भाव से किया जाय। समस्त शक्ति और सिद्धियाँ आपके हृदय के भीतर हैं। हमको तो इसमें कोई बुराई नहीं जान पड़ती कि यदि एक व्यक्ति राम का नाम लेता है, दूसरा शिव का जप करता है और तीसरा देवी की उपासना करता है। करोड़ों के जन-समूह में यदि संस्कार-भेद, देशभेद आदि के कारण दो चार तरह की उपासना पद्धतियाँ—भावना मार्ग प्रेम से चल रहे तो इसमें कोई हानिकारक बात नहीं जान पड़ती।

राम, शिव अथवा कृष्ण आदि नाम केवल एक सामान्य साधन मात्र है। आप दृढ़ श्रद्धा और सच्चे हृदय से जप अथवा तप और नियम-संयम पूर्वक उसका ध्यान करेंगे तो श्रेष्ठ फल का प्राप्त होना निश्चित है। इसमें किसी प्रकार के प्रमाण, तर्क या विवाद की गुंजाइश नहीं। हमारे मन की शक्ति और दृढ़ धारणा इतनी अधिक प्रभावशाली है कि यदि उसको समझ लिया जाय और उचित रीति से प्रयोग किया जाय, तो उसके लिए कोई कार्य असाध्य अथवा असम्भव नहीं है। विभिन्न इष्टदेवों अथवा विशिष्ट विधि क्रियाओं की शंकाएँ अथवा प्रश्न वे ही लोग उठाया करते हैं, जिनकी अन्तरात्मा अभी सोयी पड़ी है और जिन्होंने उसे पहिचाना नहीं है। अन्यथा यदि हम आचरण करें तो दो क्या एक ही प्रकार का मन्त्र हमारा बेड़ा पार कर सकता है।

पर इस विवरण से जो मुख्य बात प्रकट होती है, वह स्कन्द-पुराणकार की निष्पक्ष असाम्प्रदायिक भावना है। किसी एक इष्ट देव की मान्यता में कोई बुराई की बात नहीं है, पर यदि अपने इष्ट की महिमा के लिए दूसरे की निन्दा-बुराई की जाय तो यह निश्चय ही एक गर्हित आचरण है।

'स्कन्द पुराण' को एक प्रकार से तीर्थों की मार्गदर्शिका (गाइड) कहें तो अनुचित न होगा। इसमें सेतुबन्ध रामेश्वर से बद्रीनारायण तक

और जगन्नाथ पुरी से लेकर उज्जैन तक के हजारों तीर्थों का वर्णन है, और उन्हीं के सन्दर्भ में हजारों कथाएँ भी दी गई हैं। दक्षिण भारत (मद्रास) के अरुणाचल और वेंकटाचल, उड़ीसा के पुरी, उत्तर प्रदेश के काशी और मालवा के उज्जैन से सम्बन्धित समस्त छोटे-बड़े मन्दिरों, देवालयों, शिवालयों का तो इसमें विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। अयोध्या का भी वर्णन बहुत अधिक है और ब्रज का भी परिचय ठीक तरह से दिया गया है। द्वारिका-वर्णन इसमें नहीं पाया जाता, जिसका कारण सम्भवतः यह हो कि उसका महत्व तीन-चार सौ वर्ष से ही बढ़ने लगा है।

जैसा हम लिख चुके हैं समस्त पुराणों में 'स्कन्द पुराण' अधिक श्लोक संख्या वाला है। यह ग्रन्थ पचास वर्ष पहले जब छपा था तब १०० १५० रु० में मिलता था और अब तो अगर एकाध प्रति मिल भी सकती है तो कीमत दस गुनी माँगी जाती है। यही कारण है कि जनसाधारण 'सत्यनारायण की कथा' में इसका नाम 'इति श्रीस्कन्द पुराणे रेवा खण्डे' सुन लेने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते। हमने इसके छहों खण्डों की उपयोगी सामग्री को बड़े परिश्रम से संग्रहीत किया है। हमें आशा है कि हमारा यह सुलभ और संशोधित संस्करण पाठकों को अवश्य लाभकारी प्रतीत होगा।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

विषय-सूची

❈ वैष्णव-खण्ड ❈

❈ ब्रह्म खण्ड ❈

॥ स्कन्द पुराण ॥

॥ माहेश्वर खंड ॥

१—दक्ष वृत्तान्त वर्णन

ॐ नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीचैव ततो जयमुदीरयेत् ।१।
यस्याज्ञया जगत्स्रष्टा विरिञ्चिःपालकोहरिः ।
संहर्त्ता कालरुद्राख्योनमस्तस्मैपिनाकिने ।२।
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणांक्षेत्रमुत्तमम् ।
तत्रैव नैमिषारण्येशौनकाद्यास्तपोधनाः ॥
दीर्घसत्रं प्रकुर्वन्तः सत्रिणः कर्मचेतसः ।३।
तेषांसन्दर्शनोत्सुक्यादागतो हि महातपाः ।
व्यासशिष्योमहाप्राज्ञोलोमशोनामनामतः ।४।
तमागतं ते ददृशुर्मुनयो दीर्घसत्रिणः ।
उत्तस्थुर्युगपत्सर्वे सार्घ्यहस्ताः समुत्सुकाः ।५।
दत्त्वाऽर्घ्यपाद्यं सत्कृत्य मुनयोवीतकल्मषाः ।
तं पप्रच्छुर्महाभागाः शिवधर्मंसविस्तरम् ।६।

भगवान श्री नारायण की सेवा में नमस्कार समर्पित करके नरों में उत्तम नर को प्रणाम करके तथा देवी सरस्वती की वन्दना करके इसके पश्चात् जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए ।१। जिसकी आज्ञा से विरञ्चि इस जगत का सृजन करने वाला है—हरि (श्री विष्णु) इस जगत के पालक हैं और काल रुद्राख्य संहार किया करते हैं उन

भगवान पिनाकी के लिए नमस्कार है।२। यहीं पर नैमिषारण्य में जो समस्त तीर्थों में सर्वश्रेष्ठ उत्तम तीर्थ है तथा सम्पूर्ण क्षेत्रों में सर्वोत्तम क्षेत्र है शौनक आदि तपोधन जो कर्म करने में चित्त वाले थे तथा सत्र करने वाले थे दीर्घ सत्र कर रहे थे।३। उन समस्त तपस्वियों के दर्शन करने की उत्सुकता से महान् तपस्वी, महान् मनीषी, व्यासजी के शिष्य लोमश नामधारी आ गये थे।४। उन दीर्घ सत्र करने वाले महामुनियों ने वहाँ पर समागत हुए उनका दर्शन किया था। ज्यों ही उन्होंने लोमश मुनि को देखा था वे सबके सब बड़े ही समुत्सुक होते हुये अर्घ्य पात्र हाथों में ग्रहण करके एक साथ उठकर खड़े हो गये थे। उन मुनियों ने लोमश महर्षि का अर्घ्य-पाद्य समर्पित करके तथा सत्कार करके अपने समस्त कल्मषों को नष्ट करते हुए महान् भाग वाले उन मुनियों ने उन लोमश ऋषि से भगवान शिव के धर्म को विस्तार के सहित पूछा था।५,६।

कथयस्व महाप्राज्ञ ! देवदेवस्य शूलिनः।
महिमानं महाभागध्यानार्चनसमन्वितम् ।७।
सम्मार्जने किं फलं स्यात्तथारङ्गावलीषु च।
प्रदाने दर्पणस्याऽथ तथा वै चामरस्य च ।८।
प्रदाने च वितानस्य तथाधारागृहस्य च।
दीपदाने किं फलं स्यात्पूजायां किं फलं भवेत् ।९।
कानि कानि च पुण्यानि कथ्यतां शिवपूजने।
इतिहासपुराणानि वेदाध्ययनमेव च ।१०।
शिवस्याग्रे प्रकुर्वन्ति कारयन्त्यथवा नराः।
किं फलं च नृणां तेषां कथ्यतां विस्तरेण हि।
नावाख्यानपरो लोके त्वत्तो नान्योऽस्ति वै मुने ! ।११।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां मुनीनां भावितात्मनाम्।
उवाच व्यासशिष्योऽसौ शिवमाहात्म्यमुत्तमम् ।१२।

ऋषिगण ने कहा—हे महाप्राज्ञ ! अब आप कृपाकर शूली देवों के देव की महाभाग ध्यान और अर्चन से संयुक्त महिमा का वर्णन कीजिए ।७। संमार्जन करने में क्या पुण्य फल होता है—तथा रंगावली आदि करने में क्या फल होता है और दर्पण के प्रदान में एवं चामर के प्रदान से क्या पुण्य-फल हुआ करता है ? वितान के तथा धारा-ग्रह के समर्पण करने में क्या पुण्य होता है और दीपदान करने में एवं पूजा करने से क्या पुण्य फल हुआ करता है । हे भगवान ! यह बतलाइये कि भगवान शिव के पूजन में कौन-कौन से पुण्य हुआ करते हैं ? जो कोई मनुष्य भगवान शिव के आगे इतिहास पुराणों का पाठ-जाप तथा वेदों का अध्ययन किया करते हैं अथवा विप्रों से कराते हैं उन मनुष्यों को को क्या पुण्य-फल होता है—इस सम्पूर्ण विषयों का आप हमारे सामने अति विस्तार के सहित वर्णन कीजिये ।७।८।९।१०। हे मुनिवर ! लोक में भगवान शिव के आख्यान करने में आपके सिवाय अन्य कोई भी महा पुरुष नहीं है ।११। उन भावित आत्माओं वाले मुनियों के इस वचन का श्रवण करके व्यासजी के शिष्य लोमश महामुनि ने उत्तम शिव के माहात्म्य को कहा था ।१२।

अष्टादशपुराणेषुगीयते वै परः शिवः ।
तस्माच्छिवस्यमाहात्म्यंवक्तुंकोऽपि न पार्यते ।१३।
शिवेति द्व्यक्षरनामव्याहरिष्यन्तियेजनाः ।
तेषांस्वर्गश्चमोक्षश्च भविष्यतिनचान्यथा ।१४।
उदारो हि महादेवो देवानां पतिरीश्वरः ।
येन सर्वं प्रदत्तं हि तस्मात्सर्वं इतिस्मृतः ।१५।
ते धन्यास्ते महात्मानो ये भजन्ति सदाशिवम् ।१६।
विनासदाशिव यो हि संसारंततुंमिच्छति ।
स मूढो हि महापापः शिवद्वेषी न संशयः ।१७।
भक्षितं हि गरं येन दक्षयज्ञो विनाशितः ।
कालस्य दहनं येन कृतं राज्ञः प्रमोचनम् ।१८।

यथामरं भक्षितं च यथायज्ञो विनाशितः।
दक्षस्य च तथा ब्रूहि परं कौतूहलं हि नः ॥१६॥
दाक्षायणी पुरादत्ता शङ्कराय महात्मने ।
वचनाद्ब्रह्मणो विप्रा दक्षेण परमेष्ठिना ॥२०॥

महर्षि लोमश ने कहा—अठारह पुराणों में भगवान शिव को पर बताया जाता है। इस कारण से भगवान शिव के माहात्म्य को बतलाने में कोई भी समर्थ नहीं है। "शिव"—इस दो अक्षरों वाले नाम को जो मनुष्य कहेंगे उनको निश्चय ही स्वर्गलोक और मोक्ष होगा—इसमें तनिक भी अन्यथा अर्थात् असत्य नहीं है ॥१३।१४॥ समस्त देवगण का स्वामी ईश्वर महादेव परम उदार हैं जिसने सभी कुछ दे दिया है इसीलिए तो वे 'सर्व' इस नाम से कहे गए हैं। वे महान् आत्मा वाले पुरुष परम धन्य एवं भाग्यशाली हैं जो भगवान सदाशिव का भजन किया करते हैं ॥१५।१६॥ जो कोई भी पुरुष सदाशिव प्रभु की कृपा के बिना ही इस घोर संसार से पार होना चाहता है अर्थात् शिव की आराधना न करके ही सांसारिक बन्धन से छुटकारा पाकर परम गति को प्राप्त होना चाहता है वह महान् मूर्ख है, महान पापी है और भगवान शिव का द्वेषी है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है जिसने गरल का भक्षण किया था और दक्ष प्रजापति के यज्ञ का विनाश किया था। जिसने काल का दहन किया था और राजा का प्रमोचन किया था। ॥१७।१८॥ ऋषिगण ने कहा—हे भगवन् ! जिस प्रकार से गरल का भक्षण किया था और जिस तरह यज्ञ का विनाश किया था जोकि प्रजापति दक्ष ने आरम्भ किया वह सभी आप हमको बतलाइये। हमारे हृदय में इसका बड़ा कौतूहल हो रहा है ॥१६॥ सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! पहिले ब्रह्माजी के वचन से परमेष्ठी दक्ष ने महात्मा शङ्कर के लिये दाक्षायणी को प्रदान किया था ॥२०॥

एकदाहि स दक्षो वै नैमिषारण्यमागतः ।
यदृच्छयावशमापन्न ऋषिभिः परिपूजितः ॥२१॥

स्तुतिभिः प्रणिपातैश्च तथा सर्वैः सुरासुरैः ।
तत्र स्थितो महादेवो नाभ्युत्थानाभिवादने ।
चकार ऽस्य ततः क्रुद्धो दक्षो वचनमब्रवीत् ।२२।
सर्वत्र सर्वे हि सुरासुरा भृशं नमन्ति मां विप्रवराः समुत्सुकाः
कथं ह्यसौ दुर्जनवन्महात्मा भूतादिभिः प्रेतपिशाचयुक्तः ॥
श्मशानवासी निरपत्रपो ह्ययं कथं प्रणामं न करोति मेऽधुना ।२३।
पाखण्डिनो दुर्जनाः पापशीला विप्रं दृष्ट्वा चोद्धता दम्भदाश्च ।
बध्यास्त्याज्याः सद्भिरेवंविधा हि तस्मादेनं शापितुं चोद्यतोऽस्मि ।२४।
इत्येवमुक्त्वा स महातपा स्तदा रुषान्वितो रुद्रमिदं बभाषे ।२५
शृण्वन्त्वमी विप्रवमा ! इदानीं बधो हि मे कर्तुमिहार्हथैव ।
रुद्रो ह्ययं यज्ञबाह्यो कृतो मे वर्णवितो पर्णपरो यतश्च ।२६।
नन्दीनिशम्यतद्वाक्यं जलादोह्रिरुषान्वितः ।
अब्रवीत्त्वरितोदक्षं शापदत्तं महाप्रभम् ।२७।

यह इच्छा से वशीभूत होकर एक बार वही प्रजापति दक्ष नैमिषारण्य में आ गया था और वहाँ पर ऋषियों के द्वारा पूजा की गई थी सभी ने जिनमें सुर एवं असुर भी थे उनको स्तुति की थी एवं भली-भाँति दृष्टिपात भी किया था। वहीं पर महादेव भी संस्थित थे किन्तु उन्होंने दक्ष को न तो अभ्युत्थान ही किया और न अभिवादन किया था। इसे देखकर प्रजापति दक्ष को बहुत ही क्रुद्ध हुए थे और यह वचन बोले थे—।२१।२२। मुझको सभी जगह पर सभी सुर-असुर और विप्र वर बड़े ही उत्सुक होकर अत्यधिक नमन किया करते हैं फिर यह महान आत्मा वाला भूत आदि से युक्त और प्रेत तथा पिशाचों के सहित रहने वाला एक दुर्जन की भाँति मुझे देखकर भी बैठा रहा है।

यह श्मशान में निवास करने वाला निर्लज्ज मुझे इस समय में प्रणाम क्यों नहीं करता है ।२३। जो पाखण्डी हैं, दुर्जन हैं, पापों के करने के स्वभाव वाले हैं, विप्र को देखकर उद्धत रहते हैं तथा उन्मद हैं उन्हें सत्पुरुषों को त्याग देना चाहिए और वे तो वध करने के योग्य हैं। इसलिए मैं तो इसको अब शाप देने को उद्यत हो रहा हूँ ।२४। इस प्रकार से इतना कहकर वह महान तपधारी उस समय में क्रोध से संयुक्त होकर भगवान रुद्र से बोला—।२५। हे प्रियतमो ! आप जो यहाँ हैं ये सब सुन लेवें। इस समय मे जो भी मेरा वचन हैं उसे आप सब उसी भाँति करने के योग्य होते हैं। यह रुद्र यज्ञो से बहिष्कृत किया गया है ऐसा मुझे सम्मत है क्योंकि यह वर्णातीत और वर्ण पर एव यत है ।२६। नन्दी ने दक्ष के इस वाक्य का श्रवण करके वह शैलाद बहुत ही क्रोधित हुआ और बड़ी शीघ्रता के वंश गत होकर उस शाप देने वाले महा प्रभा सम्पन्न दक्ष से बोला ।२७।

यज्ञबाह्यो हि मे स्वामी महेशोऽयं कृतः कथम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण यज्ञाश्च सफला ह्यमी ।२ ।
यज्ञो दानं तपश्चैव तीर्थानि विविधानि च ।
यस्य नाम्ना पवित्राणि सोऽयं शप्तोऽधुना कथम् ।२६।
वृथा ते ब्रह्मचापल्याच्छप्तोऽयं दक्ष दुर्मते ।
येनेदं पालितं विश्वं सर्वेण च महात्मना ।
शप्तोऽयं स कथं पाप ! रुद्रोऽयं ब्राह्मणाधम ! ।३०।
एवं निर्भर्त्सितस्तेन नन्दिना हि प्रजापतिः ।
नन्दिनञ्चशशापाथ दक्षो रोषसमन्वितः ।३१।
यूयं सर्वे रुद्रगणा वेदबाह्याश्च वै भृशम् ।
शप्ता हि वेदमार्गैश्च तथा त्यक्ता महर्षिभिः ।३२।
पाखण्डवादसंयुक्ताः शिष्टाचारबहिष्कृताः ।
कपालिनः पानरतास्तथा कालमुखा ह्यमी ।३ ।

इतिशप्तास्तदातेन दक्षेण शिवकिंकराः।
तदा प्रकुपितो नन्दी दक्षं शप्तुं प्रचक्रमे ।३४।

नन्दी ने कहा—मेरे स्वामी भगवान महेश को यज्ञों से बहिष्कृत कैसे या क्यों किया है। जिस महात्मा शर्व ने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है। महेश का तो वह प्रभाव है कि जिसके केवल स्मरण भर कर लेने से ही ये समस्त यज्ञ सफल हुआ करते हैं ।२८। यज्ञ, दान, तप, तीर्थ जो कि अनेक हैं ये सभी जिसके नाम से ही पवित्र हुआ करते है उसी महाप्रभु को इस समय में क्यों शाप दिया गया है ? ।२९। हे दुष्ट बुद्धि वाले दक्ष ! आपने ब्रह्म की चपलता से वृथा ही इनको शाप दे दिया है। जिसने इस सम्पूर्ण विश्व को पालित किया है। हे ब्राह्मणों में नीच ! हे महापापी ! यह भगवान रुद्र हैं उनको क्यों शाप दिया गया है ? ।३०। उस नन्दी ने इस प्रकार से उस प्रजापति को फटकारा और रोष में भरकर दक्ष ने नन्दी को शाप दिया था ।३१। तुम सभी रुद्र वर अत्यन्त ही वेद बाह्य हो और वेदों के मार्ग वाले महर्षियों के द्वारा परित्यक्त एवं शस्त हैं। आप सभी पाषण्डवाद में रति रखने वाले, शिष्टों के आचार से बहिष्कृत, कपालधारी, पान करने में निरत तथा काल मुख हैं। इसी कारण उस समय में उस दक्ष ने वे शिव के सब किंकरों को शाप दिया था उसी समय में प्रकुपित होते हुए नन्दी ने दक्ष को शाप देने की तैयारी की थी ।३२।३३।३४।

शप्ता वयं त्वया विप्र साधवः शिवकिंकराः ।
वृथैव ब्रह्मचापल्यादहं शापं ददामिते ।३५।
वेदवादरता यूयं नान्यदस्तीति वादिनः ।
कामात्मनः स्वर्गपरा लोभमोहसमन्विताः ।३६।
वैदिकश्च पुरस्कृत्य ब्राह्मणाः शूद्रयाजकाः ।
दरिद्रिणो भविष्यन्ति प्रतिग्रहरताः सदा ।३७।
दक्ष ! केचिद् भविष्यन्ति ब्राह्मणाः ब्रह्मराक्षसाः ।
विप्रास्ते शापितास्तेन नन्दिना कोपिना भृशम् ।३८।

अथाकर्ण्येश्वरो वाक्यं नन्दिनः प्रहसन्निव ।
उवाच वाक्यं मधुरं बोधयुक्तं सदाशिवः ।३६।
कोपं नार्हसि वै कर्त्तुं ब्राह्मणान्प्रति वै सदा ।
ब्राह्मणाः गुरवो ह्येते वेदवादरताः सदा ।४०।
वेदोमन्त्रमयः साक्षात्तथासूक्तमयो भृशम् ।
सूक्ते प्रतिष्ठितो ह्यात्मासर्वेषामपिदेहिनाम् ।४१।
तस्मादात्मविदो निन्द्या आत्मैवाहं नचेतरः ।
कोऽयं कस्त्वं क्व चाहं वै कस्मात्छद्मा हि वै द्विजाः ।४२।

हे विप्र ! तुम परम साधु स्वभाव वाले शिव के सेवकों को आपने शाप दे दिया है । यह वृथा ही ब्रह्म चापल्य के होने के कारण से ही दिया है । अच्छा, अब मैं तुमको भी शाप देता हूँ ।३५। आप लोग वेदों के वाद करने मे रति रखने वाले हैं और दूसरा कोई नहीं है-ऐसा कहने वाले हैं । आप लोग कामात्मा और स्वर्ग परायण हैं तथा लोभ और मोह से समन्वित रहते है । ब्राह्मण लोग किसी एक वैदिक को आगे करके शूद्रों को यजन कराने वाले तथा सदा प्रतिग्रह ग्रहण करने में ही रति रखने वाले दरिद्री हो जायेंगे ।३६। हे दक्ष ! कुछ ब्राह्मण तो ब्रह्म राक्षस होंगे । लोमश मुनि ने कहा—इस प्रकार से कोप करने वाले नन्दी ने अत्यन्त ही अधिक उन ब्राह्मणों को शाप दे दिया था । इसके अनन्तर सदाशिव ने जो ईश्वर हैं इस नन्दी के वाक्य को सुनकर हँसते हुये बोध से युक्त परम मधुर वाक्य कहा—।३७।३८।३९। श्री महादेव ने कहा—हे नन्दी ! इन ब्राह्मणों के प्रति कोप करने के योग्य तुम नहीं होते हैं । ये ब्राह्मण तो सदा ही गुरु हैं और वेदवाद में अनुरत रहा करते हैं । वेद साक्षात् मन्त्रमय है और अत्यन्त अधिक सूक्तमय होता है । सूक्त में आत्मा प्रतिष्ठित है जो कि सभी देहधारियों का होता है । इसलिये आत्मा के ज्ञाताओं के साधारण निन्दा करने के योग्य नहीं होते हैं क्योंकि मैं आत्मा ही हूँ अन्य नहीं

हूं। यह कौन है, कौन उसको और कहा मैं हूं। कैसे ब्राह्मणों को शाप दिया है।४०।४१।४२।

प्रपञ्चरचनां हित्वा बुद्धो भव महामते ! ।
तत्त्वज्ञानेन निर्वर्त्यंस्वस्थ: क्रोधादि वर्जित: ।४३।

एवं प्रबोधितस्तेन शम्भुना परमेष्ठिना ।
विवेकपरमो भूत्वा शैलादो हि महातपाः।
शिवेन सह संगम्य परमानन्दसम्प्लुत: ।४४।

दक्षोऽपिहि रुषाविष्टऋषिभि: परिवारित: ।
यशोस्थानस्वकं तत्र प्रविवेशरुषान्वित: ।४५।

श्रद्धां विहाय परमां शिवपूजकानां ।
निन्दापर: स हि बभूव नराधमश्च ।४६।

सर्वे महर्षिभिरुपेत्य स तत्र शर्वम् देव।
निनिन्द व बभूव कदापि शान्त: ।४७।

इस प्रपञ्च की रचना का त्याग करके 'हे महामति वाले ! तुमको प्रबुद्ध हो जाना चाहिये। तत्त्वज्ञान से निवृ ति प्राप्त कर स्वस्थ एवं क्रोधादि से रहित हो जाइये। इस प्रकार से उन परमेष्ठी शम्भु के द्वारा प्रबोध दिये गये शैलाद जो कि महान तपस्वी थे विवेक परम होकर भगवान शिव के साथ जाकर परमानन्द से सम्प्लुत हो गये थे ।४३।४४। प्रजापति दक्ष भी रोष के आवेश में भरे हुये महर्षियों से चारों ओर घिरे हुए अपने स्थान को चले गये थे और वहाँ पर क्रोध से युक्त रहते हुए ही उनने प्रवेश किया था।४५। उस प्रजापति दक्ष ने अपनी परम श्रद्धा का एकदम त्यागकर दिया था और वह मनुष्यों में महान अधम शिव की पूजा करने वालो की निरन्तर निन्दा करने में ही तत्पर हो गया था सब महर्षियों के साथ वह उपस्थित होकर भगवान शर्व देव की निन्दा किया करता था और उसे कभी भी शान्ति प्राप्त नहीं हुई।थी ४६।४७।

२—दक्षयज्ञवर्णन

एकदा तु तदा तेनयज्ञः प्रारम्भितो महान् ।
तत्राऽऽहूतास्तदा सर्वे दीक्षितेनतपस्विना ।१।
ऋषयोविविधास्तत्रवशिष्ठाद्याः समागताः ।
अगस्त्यः कश्यपोऽत्रिश्चावामदेवस्तथाभृगुः ।२।
दधीचो भगवान्व्यासो भरद्वाजोऽथ गौतमः ।
एते चान्ये च बहवः समाजग्मुर्महर्षयः ।३।
तथा सर्वे सुरगणालोकपालास्तथाऽपरे ।
विद्याधराश्चगन्धर्वाः किन्नराप्सरसागणाः ।४।
सप्तलोकात्समानीतो ब्रह्मालोकपितामहः ।
वैकुण्ठाच्च तथाविष्णुः समानीतोमखम्प्रति ।५।
देवेन्द्रो हि समानीतइन्द्राण्यासह सुप्रभः ।
तथा चन्द्रो हि रोहिण्यावरुणः प्रिययासह ।६।
कुबेर पुष्पक रूढो मृगारूढोऽथ मारुतः ।
बस्तारूढः पावकश्च प्रेतारूढोऽथ निऋतिः ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा – एक समय में उस महान् तपस्वी दक्ष ने एक महान् यज्ञ का आरम्भ किया उस समय में उस दक्ष ने सभी को समाहूत किया था। उस यज्ञ में अनेक ऋषिगण वशिष्ठ आदि वहाँ पर समागत हुए थे। उन समागत हुए ऋषियों में अगस्त्य, कश्यप, अत्रि, वामदेव तथा भृगु थे। दधीच, भगवान् व्यास, भरद्वाज, गौतम ये सब और अन्य भी बहुत महर्षिगण वहाँ पर आये थे।१।२।३। समस्त सुरगण, सभी लोकपाल, विद्याधरगण, किन्नर, अप्सरागण वहाँ पर समागत हुए थे।४। सप्तलोक से ब्रह्मलोक के पितामह ब्रह्माजी को लाया गया था—वैकुण्ठ से भगवान विष्णु को उस महायज्ञ में बुलाया गया था और उस महान मख में उसको सम्मिलित किया गया था। देवों के इंद्र को भी इन्द्राणी के साथ वहाँ पर लाया गया था। रोहिणी के सहित

सुन्दर प्रभा से सम्पन्न मन्द्रदेव तथा अपनी प्रिया के साथ वरुण देव वहाँ पर बुलाये गये थे ।५।६। पुष्पक विमान पर समारोहण करने वाले कुवेर, मृग पर आरूढ मारुत देव, बस्तारूढ़ अग्निदेव और प्रेत पर सवारी करने वाले निऋ'ति देव वहाँ पर उस महान यज्ञ में समागत एवं समाहूत हुये थे ।७।

एते सर्वे समायातायज्ञवाटे द्विजन्मनः ।
ते सर्वे सत्कृतास्तेन दक्षेण च दुरात्मना ।८।
भवनानिमहार्हाणि सुप्रभाणिमहान्तिच ।
त्वष्ट्राकृतानिदिव्यानिकौशल्येन महात्मना ।९।
तेषु सर्वेषु धिष्ण्येषु यथाजोषं समास्थिताः ।१०।
वर्त्तमाने महायज्ञे तीर्थे कनखले तथा ।
ऋत्विजश्च कृतास्तेनभृग्वाद्याश्चतपोधनाः ।११।
दीक्षायुक्तस्तदा दक्षः कृतकौतुकमङ्गलः ।
भार्यंयासहितोविप्रैः कृतस्वस्त्ययनोभृशम् ।१२।
रेजे महत्त्वेन तदा सुहृद्भिः परितः सदा ।
एतस्मिन्नन्तरे तत्र दधीचिर्वाक्यमब्रवीत् ।१३।

ये सब द्विजन्मा उस यज्ञ बाट में आये थे। उस दुरात्मा दक्ष ने उन सब समागत महानुभावों को सत्कृत किया था। वहाँ पर सुन्दर प्रभा से सुसम्पन्न, परम विशाल और बहुमूल्य वाले भवन थे जिनको अपने बड़े ही कौशल से त्वष्टा ने निर्मित किया था और जो अत्यन्त दिव्य एवं उत्तम थे। उन सबमें जो बहुत ही उत्तम थे उन सबको बहुत ही शान्ति पूर्वक समास्थित किया था ।८।९।१०। उसकनखल तीर्थ में जो वर्तमान महान् यज्ञ हो रहा था उसमें भृगु आदि तपोधनों को उस प्रजापति दक्ष ने ऋत्विज नियुक्त किया था ।११। उस समय में दक्ष ने उस यज्ञ का सम्पादन करने के लिये दीक्षा ली थी और कौतुक मंगल किया था। विप्रो के सहित उसने अपनी भार्या को साथ मे लेकर बहुत ही अधिक स्वस्त्ययन किया था ।१२। उस अवसर पर-वह सदा सुहृदों

विराजमान है। लोकों के पितामह ब्रह्माजी सत्यलोक से यहाँ पर आये हुए हैं जिनके साथ सब वेद, उपनिषद् और आगम भी आये हुये हैं। ।२२।२३। इसी समस्त सुरों के समुदाय के साथ सुरों को राज भी स्वयं यहाँ पर आये हुए हैं। और मार कल्मषों से रहित ऋषिगण भी यहाँ पधारे हुए हैं। जो भी यज्ञ में आने के लिये समुचित पात्र हैं तथा परम शान्त हैं वे-वे सभी यहाँ पर समागत हो गये हैं। आप लोग सभी वेद और वेदार्थ के तत्वों के ज्ञाता और दृढ़ व्रत वाले हैं।२४।२५। यहाँ पर इसको रुद्र से भी क्या प्रयोजन रह गया है। हे विप्रगण! ब्रह्मा के कथन से ही मैंने उसको अपनी कन्या का प्रदान किया है। हे विप्रगण! यह सदा विप्रों को नष्ट करने वाला, नष्ट और अकुलीन है तथा भूत, प्रेत और पिशाचों के पति हैं एवं दुरत्यय है।२६।२७।

आत्मसम्भावितो मूढ स्तब्धो मौनी समत्सरः।
कर्मण्यस्मिन्नयोग्योऽसौ नानीतो हि मयाऽधुना।२८।
तस्मात्त्वया न वक्तव्यं पुनरेवं च भोद्विज!।
सर्वैर्मे वदिभः कर्त्तव्यो यज्ञोमे सफलोमहान्।२९।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य दधीचिर्वाक्यमब्रवीत्।३०।
सर्वेषामृषिवर्याणांसुराणांभावितात्मनाम्।
अनयोऽयमहाञ्जातोविनातेन महात्मना।३१।
विनाशोऽपिमहान्सद्यो ह्यनस्थानामविष्यति।
एवमुक्त्वाददधीचोऽगात्वेकएवविनिर्गतः।३२।
यज्ञवाटाच्च दक्षस्यत्वरित स्वाश्रमययौ।
मुनौ विनिर्गते दक्ष. प्रहस्यदमब्रवीत्।३३।
गतः शिवप्रियोधोरोदधीचिर्नामतः।
आविष्टचित्तास्त्वद्याच मिथ्यावादरताः खलाः।३४।
वेदबाह्या दुराचारास्त्याज्यास्ते ह्यत्र कर्माणि।
वेदवादरता यूयं सर्वेविष्णुपुरोगमाः।३५।

यज्ञं मे सफलं विप्राः कुर्वन्तु ह्यचिरादिव।
तदा ते देवयजनं चक्रुः सर्वे महर्षयः ।३६।

यह रुद्र आत्म सम्भावित, मूढ, स्तब्ध, मौनी और मात्सर्य से संयुत है। ऐसा यह इस हमारे कर्म में अयोग्य है इसीलिये मैंने उसे यहाँ पर नहीं बुलाया है।२८। हे द्विज! इस कारण से फिर इस प्रकार से आपको नहीं बोलना चाहिये आप सबके द्वारा ही मेरे इस महान यज्ञ को सफल बनाना चाहिये।२६। इस दक्ष के द्वारा कहे हुये वचन को सुनकर महर्षि दधीचि ने यह वाक्य कहा था—।३०। दधीचि ने कहा— समस्त ऋषियों का और भावितात्मा सुरों का एक उस महात्मा के बिना महान अनय (अन्याय) उत्पन्न हो गया है। दधीचि ने कहा कि यहाँ पर रहने वालों का तुरन्त ही महान् विनाश भी हो जायगा। ऐसा कहकर वह दधीचि अकेले ही यहाँ से निकल गये थे। ऐसा कहकर वह उस दक्ष के यज्ञवाद से शीघ्रता से समन्वित होकर अपने आश्रम को चले गये थे। उस मुनि के विनिर्गत हो जाने पर प्रजापति दक्ष हँसते हुये यह बोले—।३१।३२।३३। शिव का प्यारा वीर दधीचि नाम वाला चला गया। जो भी आक्रोश से भरे हुये चिरा वाले, मन्द, मिथ्यावाद में अनुराग रखने वाले हैं, खल हैं, वेद से बहिष्कृत और बुरे आचार वाले हैं वे सब इस कर्म में त्याज्य ही हैं। आप लोग सब वेद-वाद में रत विष्णु पुरङ्गामी हैं। हे विप्रगण! शीघ्र ही मेरे इस यज्ञ को सफल बनायें। उसी समय में उन सब महर्षियों ने देवों का यजन किया था।३४।३५।३६।

एतस्मिन्नन्तरे तत्र पर्वतेगन्धमादने।
धारागृहे विमानेन सखीभिः परिवारिता ।३७।
दाक्षायणीमहादेवीचकारविविधास्तदा।
क्रीडाविमानमध्यस्थाकन्दुकाद्याः सहस्रशः ।३८।
क्रीडासक्ता तदा देवीददर्शाऽथमहासती।
यज्ञं प्रयान्तं सोमञ्च रोहिण्यासहितंप्रभुम् ।३९।

क्वगमिष्यतिचन्द्रोऽयंविजये पृच्छसत्वरम् ।
तयोक्ताविजयादेवीतंपप्रच्छयथोचितम् ॥४०॥
कथितं तेनतत्सर्वंदक्षस्यवमखादिकम् ।
तच्छ्रुत्वा त्वरिता देवीविजया जातसम्भ्रमा ।
कथयामास तत्सर्वं यदुक्तं शशिना भृशम् ।४१।
विमृश्य कारणं देवी किमाह्वानं करोमि न ।
दक्षः पिता मे माता च विस्मृता मा कुतोऽधुना ।४२।

इसी बीच में यहाँ गन्ध मादन पर्वत पर धारा गृह में विमान के द्वारा सखियों से परिवारित होती हुई उस समय में महादेवी दाक्षायणी विमान के मध्य मे स्थित होकर कन्दुक आदि सहस्रों अनेक क्रीड़ायें कर रही थीं। उस समय में वह क्रीडा में समासक्त रहने वाली देवी जोकि महा सती थी देखा था कि सोम देव प्रभु अपनी पत्नी रोहिणी के साथ यज्ञ में प्रयाण कर रहे थे। यह चन्द्र देव कहाँ जायेंगे —हे विजये ! यह शीघ्र पूछो ऐसा महा सती ने विजया से कहा था। इस तरह कहने पर विजया देवी ने उससे यथोचित पूछा था। उसने दक्ष के यज्ञ आदि के विषय में सभी कुछ कह दिया था। यह सुनकर वह विजया देवी सम्भ्रम उत्पन्न हो जाने वाली होकर बहुत ही शीघ्रता से वापिस आई थी और उसने वह सभी कुछ कह सुनाया था जो चन्द्रदेव ने बारम्बार कहा था। उस समय में देवी ने कारण को विचार कर सोचा था क्या हमारा आह्वान नहीं किया गया है ? दक्ष तो मेरे पिता हैं—मेरी माता ने भी मुझे इस समय में क्यों भुला दिया है ।३७-४२।

पृच्छामि शङ्करं चाद्य कारणे कृतनिश्चया ।
स्थापयित्वा सखीस्तत्र आगता शङ्करम्प्रति ।४३।
ददर्श तं सभामध्येत्रिलोचनमवस्थितम् ।
गणैः परिवृतं सर्वैश्चण्डमुण्डादिभिस्तदा ।४४।

गणोभृङ्गिस्तथानन्दीशैलादोहिमातपाः ।
महाकालो महाचण्डोमहामुण्डो महाशिराः ।४५।
धूम्राक्षो धूम्रकेतुश्च धूम्रपादस्तथैवच ।
एतेचान्ये च बहवो गणा रुद्रानुवर्त्तिनः ।४६।
केचिद् भयानका रौद्राः कबन्धाश्च तथा परे ।
त्रिलोचनाश्च केचिच्च वक्षोहीनास्तथा परे ।४७।
एवं भूताश्च शतशः सर्वे ते कृत्तिवाससः ।
जटाकलापसम्भूताः सर्वे रुद्राक्षभूषणाः ।४८।
जितेन्द्रिया वीतरागाः सर्वे विषयवैरिणः ।
एभिः सर्वैः परिवृतः शङ्करो लोकशङ्करः ।
दृष्टस्तया उपाविष्ट आसने परमाद्भुते ।४६।

निश्चय करने वाली होती हुई आज भगवान् शङ्कर से इसका कारण पूछूँ—यह विचार कर अपनी सखियों को वहीं पर स्थापित करके वह सती देवी शङ्कर के समीप में आ गई थीं ।४३। उस समय में उसने भगवान् त्रिलोचन को सभा के मध्य में समस्त चण्ड मुण्ड आदि गणों से परिवृत होकर समवस्थित हुए देखा था । वहाँ पर उस समय में रुद्र देव के अनुवर्त्ती बहुत से गण उपस्थित थे। उनके नाम ये हैं—भृङ्गिगण, महान् तपस्वी शैलाद नन्दी, महाकाल, महाचण्ड, महामुण्ड, महाशिरा, धूम्राक्ष, धूम्रकेतु, धूम्रपाद, ये सब तथा अन्य भी अनेक गण थे ।४४।४५।४६। उन गणों में कुछ तो बहुत ही भयानक थे—कुछ बड़े रौद्र रूप वाले थे, कुछ केवल कबन्ध के स्वरूप वाले थे, कुछ तीन नेत्रों वाले और वक्षः स्थल से रहित थे ।४७। इस प्रकार के वे सब सैकड़ों थे जो कि कृत्ति (चर्म) का वसन धारण करने वाले थे । सभी जटा कलाप से युक्त और रुद्राक्ष के भूषणों वाले थे । सब इन्द्रियों को जीतने वाले, राग को त्याग देने वाले और विषयों से वैर रखने वाले थे । इन सबसे लोक के कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर घिरे हुए

थे। इस भाँति से परम अद्भुत आसन पर विराजमान भगवान् शङ्कर को देखा था ।४८।४९।

आक्षिप्तचित्ता सहसा जगाम शिवसन्निधिम् ।
शिवेन स्थापिता स्वांके प्रीतियुक्तेन वल्लभा ।५०।
प्रेम्णोदिता वचोभिः सा बहुमानपुरः सरम् ।
किमागमनकार्यं मे वद शीघ्रं सुमध्यमे ।५१।
एवमुक्ता तदा तेन उवाचासितलोचना ।५२।
पितुर्मम महायज्ञे कस्मात्तव न रोचते ।
गमनं देवदेवेश ! तत्सर्वं कथय प्रभो ।५३।
सुहृदामेष वै धर्मः सुहृद्भिः सह सङ्गतिम् ।
कुर्वन्ति यन्महादेवसुहृदां प्रीतिवर्धिनीम् ।५४।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन अनाहूतोऽपि गच्छ भोः ।
यज्ञवाट पितुर्मेऽद्य वचनान्मे सदाशिव ।५५।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा बभाषे सूनृतं वचः ।
त्वया भद्रे न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं प्रति ।५६।

महामनी उस समय में समाक्षिप्त चित्त वाली होती हुई सहसा शिव के समीप में चली गई थी। प्रीति से समन्वित भगवान् शिव ने अपनी प्रिया को अपनी गोद में स्थापित कर लिया था। शिव ने सती से बहुमान पूर्वक प्रेम के साथ वचनों के द्वारा पूछा था—हे सुमध्यमे ! इस समय में यहाँ पर आपके आगमन का क्या कारण है ? मुझे शीघ्र बतलाओ। जब इस प्रकार से सती से कहा गया था तो वह असित लोचनों वाली बोली ।५०।५१।५२। सती ने कहा—हे प्रभो ! आप तो देवों के देव के भी ईश हैं। मेरे पिता के इस महा यज्ञ में किस कारण से आपको अच्छा नहीं लगता है ? यह सभी मुझे आप बतलाइये ।५३। सुहृदों का यह धर्म है कि सुहृदों के साथ सङ्गति की जावे। जो महादेव सुहृदों की प्रीति के बढ़ाने वाली सङ्गति

को किया करते हैं। इस लिये हे प्रभो ! सभी प्रयत्नों के द्वारा बिना बुलाये हुए भी आप वहाँ पर जाइये। हे सदा शिव ! आज तो मेरे पिता के यज्ञ गृह में अवश्य ही जाइये। उस सती के इस वचन का श्रवण करके भगवान् शिव परम सूनृत वचन बोले—हे भद्रे ! तुमको इस दक्ष के भजन अर्थात् यज्ञ की ओर नहीं जाना चाहिए।५४।५५।५६।

तस्य ये मानिनः सर्वे ससुरासुरकिनराः।
ते सर्वे यजनं प्राप्ताः पितुस्तव न संशयः।५७।
अनाहूताश्च ये सुभ्रु गच्छन्ति परमन्दिरम्।
अपमानं प्राप्नुवन्ति मरणादधिकं ततः।५८।
परेषां मन्दिरं प्राप्त इन्द्रोऽपिलघुतां व्रजेत्।
तस्मात्त्वया न गन्तव्यं दक्षस्य यजनं शुभे।५९।
एवमुक्ता सती तेन महेशेन महात्मना।
उवाच रोषसंयुक्तं वाक्यं वाक्यविदांवरा।६०।
यज्ञो हि सत्यलोकेऽस्मिं स त्वं देववरेश्वर !।
अनाहूतोऽसितेनाद्य पित्रामिदुष्टचारिणा।
तत्सर्वं ज्ञातुमिच्छामि तस्य भावं दुरात्मनः।६१।
तस्माद्वाऽद्यैव गच्छामियज्ञवाटं पितुर्म्मम।
अनुज्ञां देहि मे नाथ देवदेव ! जगत्पते !।६२।
इत्युक्तोभगवान्रुद्रस्तया देव्याशिवः स्वयम्।
विज्ञाताखिलदृग्द्रष्टा भगवान्भूतभावनः।६३।

उसके जो भी मानी गण हैं वे सब सुर-असुर और किन्नर उस यज्ञ में पहुँच गए हैं जो कि तेरे पिता ने यज्ञ का समारम्भ किया है—इसमें लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। हे सुभ्रु ! किन्तु जो लोग बिना बुलाये के पराये मन्दिर में चले जाया करते हैं वे मृत्यु से भी अधिक अपमान को प्राप्त किया करते हैं। दूसरों के मन्दिर में बिना बुलाये हुए चले जाने वाला इन्द्र भी लघुता को प्राप्त हो जाया

करता है अन्य की तो बात ही क्या है। हे शुभे! इसीलिए इस दक्ष के यज्ञ में तुमको नहीं जाना चाहिए। इस प्रकार से उन महान् आत्मा वाले महेश के द्वारा कही गयी सती ने रोष से भरा हुआ वचन कहा क्योंकि वचनों के ज्ञान रखने वालों में वह परम श्रेष्ठ थीं। यज्ञ तत्व स्वरूप है और आप वही हैं जो कि लोक में देवों में श्रेष्ठों के भी स्वामी हैं। इस समय में दुष्ट आचरण वाले मेरे पिता ने आपको नहीं बुलाया है तो उस दुष्ट आत्मा वाले की समस्त इस दुर्भावना को जानना चाहती हूँ।५७।५८।५९।६०।६१। इसी में आज ही मेरे पिता ने उस यज्ञ वाट जाने की इच्छा रखती हूँ। हे देवों के भी देव! हे नाथ! हे जगत् के स्वामिन! आप मुझे अपनी आज्ञा प्रदान कर दीजिए। इस प्रकार से उस देवी सती के द्वारा कहे गये रुद्र शिव स्वयं विज्ञात थे क्योंकि सम्पूर्ण होने वाली बात के देखने वाले एवं ज्ञाता थे। भूतों पर दया करने वाले भगवान् शिव परम दयालु हैं।६२।६३।

स तामुवाच देवेशो महेशः सर्वसिद्धिद।
गच्छ देवि! त्वरायुक्तावचनान्ममसुव्रते।६४।
एवं नन्दिनमारुह्य नानाविधगणान्विता।
गणाः षष्टिसहस्राणिजग्मू रौद्राः शिवाज्ञया।६५।
तैर्गणैः संवृता देवी जगाम पितृमन्दिरम्।
निरीक्ष्यतद्वलसर्वं महादेवोऽतिविस्मित ।६६।
भूषणानि महार्हाणि तेभ्यो देव्यै परन्तपः।
प्रेषयामास चाव्यग्रो महादेवोऽनुपृच्छनः।६७।
देव्या गतं वै स्वपितुर्गृहं तदा विमृश्य सर्वं भगवान् महेशः।
दाक्षायणी पित्रवमानिता सती न यास्यतीति स्वपुरं पुनर्जगौ।६८।

सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाले देवों के ईश महेश उस सती से बोले—हे देवि! हे सुव्रते! मेरी आज्ञा है अब आप बहुत ही शीघ्रता से युक्त होकर जाइये। इस तरह से नन्दी पर समारोहण

करके अनेक गणों से समन्वित होकर जाइये। शिव की आज्ञा है। उससे साठ सहस्र रौद्र गण आयें। उन समस्त गणों से संवृत हुई देवी अपने पिता के मन्दिर में चली गयी थी। उसके बल को देख कर महादेव स्वयं अत्यन्त ही विस्मित हो गये थे। फिर परन्तप महादेव ने पीछे से अव्यग्र होकर उन सबके लिये और देवी के लिए महा मूल्य वाले भूषण भेजे थे।६४।६५।६६।६७। उस समय में देवी ने अपने पिता के घर में गमन किया था। उसी समय में भगवान् महेश ने सब कुछ होने वाली घटना का विचार करके पिता के द्वारा अपमानित हुई दाक्षायणी सती पुनः अपने पुर में नहीं आयगी—यह ज्ञान दिया था।६८।

३—सती का दक्ष-यज्ञशाला में प्रवेश

दाक्षायणी गतातत्र यत्र यज्ञो महानभूत्।
तत्पितुः सदनं गत्वा नानाश्चर्यसमन्वितम्।१।
द्वारिस्थितातदादेवीअवतीर्य निजासनात्।
नंदिनोहि महाभागा देवलोकं निरीक्ष्य च।२।
मातरं पितरं दृष्ट्वा सुहृत्सबन्धिबान्धवान्।
अभिवाद्य च पितरं मातरं च मुदान्विता।३।
समाप्य वचनं देवी प्रस्तावसदृशं तदा।
अनादृतस्त्वया कस्माच्छम्भुः परमशोभनः।४।
येन पूतमिदं सर्वं समग्रं सचराचरम्।
यज्ञो यज्ञविदां श्रेष्ठो यज्ञाङ्गो यज्ञदक्षिणः।५।
द्रव्यं मन्त्रादिकं सर्वं हव्यं कव्यं च यन्मयम्।
विना तेन कृतं सर्वमपवित्रं भविष्यति।६।
शंभुना हि विना तात कथं यज्ञः प्रवर्तते।
एते कथं समायाता ब्रह्मणा सहिताः पितः।७।

हे भृगो ! त्वं न जानासि हे कश्यप महामते ।
अत्रेवशिष्ठ एकस्त्वं शक्र किं कृतमद्यते ।८।
हे विष्णो त्वं महादेवं जानासि परमेश्वरम् ।
ब्रह्मन् किं त्वन्न जानासि महादेवस्य विक्रमम् ।६।

महर्षि लोमश ने कहा—दाक्षायणी वहाँ पर पहुँच गयी थी जहाँ पर यह महान् यज्ञ हो रहा था। फिर वह अपने पिता के गृह में गयी थी जो अनेक आश्चर्य युक्त वस्तुओं से समन्वित था। उस समय में देवी ने द्वार पर स्थित होकर अपने आसन से अवतरण किया था जो कि नन्दी पर समारूढ़ हो रही थी। फिर उस महान् भाग वाली ने सम्पूर्ण देव लोक का निरीक्षण किया था। सती ने अपने माता-पिता-सुहृत-सम्बन्धी और सम्पूर्ण बन्धुओं को देखा था। फिर बहुत ही आनन्द से संयुक्त होकर उसने अपने माता और पिता का अभिवादन किया था। प्रणाम करने के ही अनन्तर उस देवी ने उसी समय में प्रस्ताव के अनुरूप वचन बोला था—उसने परम शोभा सम्पन्न भगवान् शम्भु का क्यों अनादर किया है। वे तो स्वयं ही यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ है, यज्ञ के अङ्ग हैं और यज्ञ की दक्षिणा वाले हैं। यह सम्पूर्ण द्रव्य मन्त्रादिक और सभी हव्य-कव्य शिवमय हैं। उसके बिना किया हुआ यह सभी अपवित्र हो जायगा ।१।२।३।४।५।६। हे तात ! भगवान् शम्भु के बिना यह यज्ञ आपने कैसे प्रवृत्त कर दिया है ? हे पिता जी ! ब्रह्माजी के साथ सभी लोग कैसे यहाँ पर समागत हो गये हैं ? हे भृगो ! क्या आप नहीं जानते हैं ? हे महान् मति वाले कश्यप ! हे अत्रे ! हे वसिष्ठ ! क्या आप यह नहीं जानते हैं ? हे शक्र ! आप अकेले ही इस यज्ञ के भाग का कैसे ग्रहण कर रहे हैं। हे विष्णो ! आप तो स्वयं परमेश्वर महादेव को भली भाँति जानते हैं हे ब्रह्मन् ! क्या आप महादेव के विक्रम को नहीं समझते हैं ।७।८।६।

पुरा पञ्चमुखो भूत्वा गर्वितोऽसिसदाशिवम् ।
कृतश्चतुर्मु खस्तेनविस्मृतोऽसितदद्भुतम् ॥१०॥
भिक्षाटनं कृतं येन पुरा दारुवने विभुः ।
शप्तोऽयं भिक्षुको रुद्रो भवद्भिः सखिभिस्तदा ॥११॥
शप्तेनाऽपि च रुद्रेण भवद्भिर्विस्मृतं कथम् ।
यस्यावयवमात्रेण पूरितं सचराचरम् ॥१२॥
लिङ्गभूतं जगत्सर्वं जातं तत्क्षणमेवहि ।
लयनाल्लिङ्गमित्याहुः सर्वे देवाः सवासवाः ॥१३॥
सर्वे देवाश्च सम्भूता यतो देवस्य शूलिनः ।
सोऽसौवेदान्तगोदेवस्त्वयाज्ञातुंनपार्यते ॥१४॥

पहिले आप स्वयं पाँच मुख वाले होकर सदा शिव से भी अधिक गर्व करने वाले हो गये थे फिर उन्हीं भगवान सदाशिव ने आपको चार मुखों वाला बना दिया था। क्या उस परम अद्भुत घटना को आप अब भूल गये हैं ? ॥१०॥ पहिले प्राचीन समय में जिसने दारुवन में भिक्षाटन किया था। उस समय में आप सखा लोगों ने यह रुद्र भिक्षुक है—ऐसा शाप दिया था और रुद्र के द्वारा भी जो शप्त थे, उन भगवान रुद्रदेव को आप लोग इस समय में कैसे भूल गये हैं जिसके अवयव मात्र से यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् पूरित हो रहा है। उसी क्षण में यह समस्त जगत् लिङ्गभूत हो गया था। सब देवगण और इन्द्र लयन होने से ही लिंग—ऐसा कहते थे। जिन शूलधारी देव से ये सभी देवगण समुत्पन्न हुए हैं वही वेदान्तगामी देव आपके द्वारा नहीं जाना जा सकता है ॥११-१४॥

तस्यावचनमाकर्ण्य दक्षः क्रुद्धोऽब्रवीद्वचः ।
किंत्वयाबहुनोक्तेनकार्यंनास्तीहसाम्प्रतम् ॥१५॥
गच्छ वा तिष्ठ वा भद्रे ! कस्मात्त्वं हि समागता ।
अमंगलो हि भर्ता ते अशिवोऽसौ सुमध्यमे ॥१६॥

अकुलीनो वेदबाह्यो भूतप्रेतपिशाचराट् ।
तस्मान्नाकारितो भद्रे यज्ञार्थं चारुभाषिणी ॥१७॥
मया दत्ताऽसि सुश्रोणि पापिना मन्दबुद्धिना ।
रुद्रायाविदितार्थाय उद्धताय दुरात्मने ॥१८॥
तस्मात्कार्यं परित्यज्य स्वस्था भव शुचिस्मिते ।
दक्षेणोक्ता तदा पुत्री सा सती लोकपूजिता ॥१९॥
निंदायुक्तं स्वपितरं विलोक्य रुषिता भृशम् ।
चितयन्तीतदा देवी कथंयास्यामि मन्दिरे ॥२०॥
शङ्करं द्रष्टुकामाऽहं किं वक्ष्येतेनपृच्छिता ।
योनिंदतिमहादेवंनिद्यमानं शृणोतियः ।
तावुभौ नरके यातो यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥२१॥

सती देवी के इस वचन का श्रवण करके प्रजापति दक्ष अत्यन्त क्रुद्ध होकर यह वचन बोला—इस समय पर यहाँ पर बहुत अधिक तुम्हारे द्वारा कहने का क्या प्रयोजन है । यहाँ इस कथन का कुछ भी काम नहीं है । हे भद्र ! तुम जाओ अथवा रहो तुम यहाँ पर क्यों समागत हो गई हो ? हे सुमध्यमे ! तुम्हारी जो स्वामी है वह शिव नहीं अशिव स्वरूप और अमङ्गल है ।१५।१६। वह अकुलीन, वेदों से बहिष्कृत और भूत प्रेत तथा पिशाचों का राजा है । हे भद्रे ! तुम तो बहुत सुन्दर भाषण करने वाली हो । मैंने अपने इस महान् यज्ञ में इन्हीं कारण से उनको नहीं बुलाया है । हे सुश्रोणि ! मन्द बुद्धि वाले पापी मैंने पूरा समाचरण न जानने के कारण ही उस उद्धत दुरात्मा रुद्र के लिए तुमको उस समय में दे दिया था । इस कारण से कार्य का परित्याग करके हे शुचिस्मित वाली ! तुम अब स्वस्थ एवं शान्त हो जाओ । इस समय में दक्ष के द्वारा कही गई उस पुत्री सती ने जो सम्पूर्ण लोकों की परम पूजित थी बहुत ही अनुचित समझा था । और शिव की निन्दा से युक्त अपने पिता को देखकर उसको अत्यन्त अधिक क्रोध आया था । उस समय में देवी यही चिन्ता करने लगी थी कि मैं अब अपने मन्दिर में

कैसे क्या मुँह लेकर जाऊँगी । मैं भगवान शङ्कर के दर्शन करने की इच्छा रखती हूँ किन्तु जब वे मुझ से पूछेंगे तो मैं क्या कहूँगी । जो महादेव की निन्दा करता है और निन्दा करने वालों के वचनों का श्रवण किया करता है वे दोनों ही नरकगामी हुआ करते हैं और जब तक संसार में ये चन्द्र और सूर्य विद्यमान रहते हैं तब तक नरकों की यातनायें भोगते हैं ।१७-२१।

तस्मात्त्यक्ष्याम्यहं देहं प्रवक्ष्यामि हुताशनम् ।२२।
एवंमीमांसमानासाशिवरुद्रेतिभाषिणी ।
अपमानाभिभूतासाप्रविवेशहुताशनम् ।२३।
हाहाकारेण महता व्याप्तमासीद्दिगन्तरम् ।
सर्वे ते मञ्चमारूढाः शस्त्रैर्व्याप्तानिरन्तराः ।२४।
शस्त्रैः स्वैर्जघ्नुरात्मानं स्वानि देहानि चिच्छिदुः ।
केचित्करतले गृह्य शिरांसि स्वानि चोत्सुकाः ।२५।
नीराजयन्तस्त्वरिता भस्मीभूताश्च जज्ञिरे ।
एवमूचुस्तदा सर्वे जगर्जुरतिभीषणम् ।२६।
शस्त्रप्रहारैः स्वाङ्गानि चिच्छिदुश्चातिभीषणाः ।
ते तथा विलयं प्राप्ता दाक्षायण्या समन्ततः ।२७।
गणास्त्वयायुतेद्वे च तदद्भुतमिवाऽभवत् ।
ते सर्वे ऋषयो देवा इन्द्राद्याः समरुद्गणाः ।२८।
विश्वेऽश्विनौ लोकपालास्तूष्णीं भूतास्तदाऽभवन् ।
विष्णुं वरेण्यं केचिच्च प्रार्थयन्तः समन्ततः ।२९।

इसलिए मैं इस अपने देह का ही त्याग कर दूँगी और हुताशन मे जाऊँगी ।२२। इस प्रकार से विचार करने वाली देवी उसने 'हा शिव-हा रुद्र !'—इस तरह भाषण करते हुए अत्यन्त अधिक अपमान से अभिभूत होकर अग्नि में प्रवेश कर लिया था ।२३। उसी समय में महान् हाहाकार से समस्त दिशायें व्याप्त हो गई थी । वे सभी जो मञ्चों पर

समारूढ हो रहे थे शस्त्रों से व्याप्त हो गये थे तथा निरन्तर वहाँ पर शस्त्राघात आरम्भ हो गया था। उन्होंने शस्त्रों के द्वारा अपने आपका हनन किया था और अपने ही देहों का छेदन करने लगे थे। कुछ लोग तो अपने मस्तकों को काटकर करतल में रखकर समुत्सुक हो रहे थे।२४।२५। बहुत ही शीघ्रता से युक्त होते हुए वे नीराजन कर रहे थे और सब भस्मीभूत हो गये थे। इसी प्रकार से उस समय में बढ़ रहे थे और अत्यन्त भीषण ध्वनि के साथ गर्जना कर रहे थे। अत्यन्त भीषण स्वरूपधारी होकर शस्त्रों के प्रहारों के द्वारा अपने ही अङ्गों का छेदन करने लगे थे। वे सब इसी प्रकार से विलय को प्राप्त हो गये थे और दाक्षायणी के साथ ही उन्होंने प्राणों का त्याग कर दिया था। वहाँ पर दो अयुत गण थे और वह एक अद्भुत सा दृश्य उस समय में हो गया था। वहाँ पर जो भी सब ऋषिगण थे, इन्द्र आदि देवगण और मरुद्गण थे तथा विश्वेदेवी, अश्विनी कुमार और समस्त लोकपाल विद्यमान थे, उस समय में ये सब के सब चुप होकर मौन धारण कर गये थे। इनमें से जो कुछ लोग वरेण्य भगवान् विष्णु की सभी ओर से प्रार्थनायें कर रहे थे।२२-२९।

एवं भूतस्तदा यज्ञोजातस्तस्य दुरात्मनः ।
दक्षस्य ब्रह्मबन्धोश्चऋषयो भयमागताः ।३०।
एतस्मिन्नन्तरे विप्रा ! नारदेन महात्मना ।
कथितसर्वमेवैतद्दक्षस्य च विचेष्टितम् ।३१।
तदाकर्ण्येश्वरो वाक्यनारदस्यमुखोद्गतम् ।
चुकोपपरमक्रुद्ध आसनादुत्पतच्छिव ।३२।
उद्धृत्यचजटारुद्रो लोकसंहारकारकः ।
आस्फोटयामास रुषा पर्वतस्य शिरोपरि ।३३।
ताडनाच्चसमुद्भूतोवीरभद्रोमहायशाः ।
तथा कालीसमुत्पन्नाभूतकोटिभिरावृता ।३४।

कोपाग्निः श्वसितेनैवरुद्रस्य च महात्मनः।
ज्ञातं ज्वराणांचशतंसन्निपातास्त्रयोदश ।३५।

उस ब्रह्म बन्धु दुरात्मा दक्ष का यश का यज्ञ उस समय में इस प्रकार का हुआ था और सब ऋषिगण भय से व्याप्त हो गये थे। हे विप्रगण! इसी बीच से देवर्षि नारदजी ने जो एक महान आत्मा वाले हैं भगवान शिव के समीप में पहुंचकर यह दक्ष का पूरा समाचार जो भी कुछ कहने की चेष्टा उसने की थी भगवान शिव को कह सुनाया था। भगवान शिव ने नारद के मुख से कहे हुए इस वाक्य का श्रवण करके अत्यन्त अधिक क्रोध किया था और कोप के आवेश में आकर शिव अपने आसन से उछल पड़े थे।३०।३१।३२। समस्त लोकों के संहार करने वाले भगवान रुद्र ने अपनी जटा को खोल दिया था और उस जटा को पर्वत की शिखर पर बड़े ही रोष से फेंक कर मारा था। उस जटा के पंछाटने से महान् यश वाला वीर भद्र समुत्पन्न हो गया था तथा करोड़ों भूतों से समावृत महाकाली भी उत्पन्न हो गई थी। क्रोध के कारण जो भगवान् शिव के गर्म श्वास निकल रहे थे उनसे सैकड़ों प्रकार के ज्वर और त्रयोदश सन्निपात समुत्पन्न हो गये थे।३०-३५।

विज्ञप्तो वीरभद्रेणरुद्रोरौद्रपराक्रमः ।
किंकार्यं भवतः कार्यं शीघ्रमेव वद प्रभो ।३६।
इत्युक्तोभगवान्रुद्रोप्रेषयामास सत्वरम् ।
गच्छवीरमहाबाहोदक्षयज्ञंविनाशय ।३७।
शासनंशिरसाधृत्वादेवदेवस्यशूलिनः ।
कालिकाऽऽलिहितो वीरः सर्वभूतैः समावृतः।
वीरभद्रो महातेजा ययौ दक्षमखं प्रति ।३८।
तदानीमेवसहसादुर्निमित्तानि चाऽभवन् ।
रूक्षोववौतदा वायुः शर्कराभिः समावृतः ।३९।
असृग्वर्षति देवश्च (पर्जन्य) तिमिरेणाऽऽवृता दिशः।
उल्कापातास्च बहवः पेतुरुर्व्यां सहस्रशः ।४०।

एवं विधान्यरिष्टानि ददृशुर्विबुधादयः ।
दक्षोऽपिभयमापन्नोविष्णु शरणमाययौ ॥४१॥
रक्षरक्षमहाविष्णोत्वहिनः परमोगुरुः ।
यज्ञोऽसि त्वंसुरश्रेष्ठ ! भयान्मापरिमोचय ॥४२॥

वीर भद्र ने समुत्पन्न होते ही रौद्र पराक्रम वाले भगवान् रुद्र से प्रार्थना की थी—हे प्रभो ! शीघ्र ही मुझे आज्ञा प्रदान कीजिये कि इस समय में मुझे आपकी कौन सी सेवा करनी चाहिये । इस तरह से कहने पर भगवान् रुद्र ने उसे शीघ्र ही भेज दिया था और आज्ञा प्रदान की थी कि हे वीर ! हे महाबाहो ! तुम चले जाओ और शीघ्र ही दक्ष के यज्ञ का विध्वंस करादो । देवों के भी देव महादेवजी के इस शासन को शिरोधार्य करके कालिका के द्वारा मानिहित तथा भूतों से समावृत वीर वीरभद्र जोकि महान तेज से संयुत था दक्ष प्रजापति के यज्ञ की ओर रवाना हो गया था ।३६।३७।३८। उसी समय में सहसा बड़े-बड़े अपशकुन होने लगे थे और उस अवसर पर वायु बहुत ही रूक्ष होकर चलने लगा था जिसमे धूलि मिली हुई थी । मेघों में रुधिर की वर्षा होने लगी थी और सभी दिशाओं में घोर अन्धकार छा गया था । पृथ्वी पर सहस्रों ही उल्कापात आकर गिरने लगे थे ।३६।३४।।३८।३९।४०। देवगण आदि सबने इस तरह के अरिष्टों को देखा था । प्रजापति दक्ष भी परम भय को प्राप्त हो गया था और भगवान विष्णु की शरणागति में आ गयी था ।४१। दक्ष ने भगवान विष्णु से प्रार्थना की थी—हे विष्णो ! मेरी रक्षा करो, रक्षा करो । आप ही हमारे परम गुरु हैं । आप तो स्वयं यज्ञ रूप हैं और सभी देवगणों में सर्वश्रेष्ठ हैं । इस महान् भय से मेरा मोचन कीजिये ।४२।

दक्षेण प्रार्थ्यमानाह्विजगाद मधुसूदनः ।
मयारक्षा विधातव्याभवतोनात्र संशयः ॥४३॥
अवज्ञा हि कृतादक्ष त्वयाधर्ममजानता ।
ईश्वरावज्ञया सर्वं विफलचभविष्यति ॥४४॥

अपूज्यायत्र पूज्यन्तेपूजनीयोन पूज्यते ।
त्रीणि तत्रप्रवर्तन्तेदुर्भिक्षं मरणं भयम् ।४५।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेनमाननीयोवृषध्वजः ।
अमानितान्महेशात्त्वांमहद्भयमुपस्थितम् ।४६।
अधुनैव वयं सर्वे प्रभवोन भवामहे ।
भवतो दुर्नयेनैव नाऽत्रकार्या विचारणा ।४७।
विष्णोस्तद्वचनं श्रुत्वा दक्षश्चिन्तापरोऽभवत् ।
विवर्णवदनो भूत्वा तूष्णीमासीद्भुवि स्थितः ।४८।

जिस समय मे दक्ष के द्वारा इस रीति से भगवान से प्रार्थना की गई थी तो भगवान मधुसूदन ने कहा था। मेरे द्वारा आपकी रक्षा अवश्य ही की जायगी। इसमें कुछ भी संशय नही है ।४३। हे दक्ष! तुमने धर्म को न जानते हुए बड़ी भारी अवज्ञा की है। ईश्वर की इस महती अवज्ञा से तेरा यह सभी कुछ विफल अवश्य ही हो जायगा ।४४। जहाँ पर जो पूजने के योग्य हैं वे तो पूजे नहीं जाया करते हैं और पूजन करने के योग्य महान देवों की पूजा नहीं की जाती है वहाँ पर ये तीन कार्य हुआ करते हैं—महान दुर्भिक्ष का होना, मरण और तीसरा महान भय। इसलिये सभी प्रयत्नों के द्वारा भगवान् वृषध्वज का मान करना ही चाहिये। महेश के मान न करने से ही तुमको यह महान् भय इस समय में उपस्थित हो गया है ।४६। इसी समय में हम सब समर्थ नहीं हो सकते हैं। यह आपके दुर्नय से ही सब कुछ हो रहा है। इसमें अब अधिक विचार करने की कुछ भी आवश्यकता नही है ।४७। भगवान् विष्णु के इस वचन को सुनकर दक्ष परम चिन्ता से समाकुल हो गया था और कान्तिहीन मुख वाला होकर चुपचाप भूमि पर स्थित हो गया था ।४८।

वीरभद्रो महाबाहू रुद्रेणैवप्रचोदितः ।
काली कात्यायनीशानाचामुण्डा मुण्डमर्दिनी ।४९।

भद्रकालीतथाभद्रात्वरिताबैष्णवी तथा ।
नवदुर्गादिसहितोभूतानांगणोमहान् ॥५०॥
शाकिनी डाकिनी चैवभूतप्रमथगुह्यकाः ।
तथैवयोगिनीचक्रंचतुःषष्ट्या समन्वितम् ॥५१॥
निर्जग्मुः सहसा तत्र यज्ञवाटं महाप्रभम् ।
वीरभद्रसमेता ये गणाः शतसहस्रशः ॥५२॥
पार्षदाः शङ्करस्यैतेसर्वे रुद्रस्वरूपिणः ।
पञ्चवक्त्रा नीलकण्ठाः सर्वेतेशस्त्रपाणयः ॥५३॥
छत्रचामरसंवीताः सर्वे हरपराक्रमाः ।
दशबाहवस्त्रिनेत्रा जटिला रुद्रभूषणाः ॥५४॥
अर्धचन्द्रधराः सर्वे सर्वे चैव महौजसः ।
सर्वे ते वृषभारूढाः सर्वे ते वेषभूषणाः ॥५५॥
सहस्रबाहुर्भुजगाधिपंवृंतत्रिलोचनो भीमबलो भयावहः ।
एभिः समेतश्च तदा महात्मा स वीरभद्रोऽभिजगाम यज्ञम् ॥५६

महान् बाहुओं वाला वीरभद्र जिसको भगवान रुद्र ने प्रेरित कर प्रेषित किया था । काली देवी, कात्यायनी, ईशानी, चामुण्डा, मुण्डमर्दिनी, भद्र काली, भद्रा, त्वरिता तथा वैष्णवी इन सब दुर्गा आदि के सहित और महान् भूतों के गण, शाकिनी व डाकिनी, भूत, प्रमथ, गुह्यक तथा चौसठ योगिनियों से समन्वित पूर्ण चक्र ये सभी वहाँ से निकल पड़े थे । वहाँ पर महान् प्रभा वाले यज्ञवाट में पहुँच गए थे । वीरभद्र के सहित सैकड़ों और हजारों गण थे । ये सभी भगवान शङ्कर के पार्षद थे और सबका रुद्र के समान स्वरूप था । सबके पाँच मुख थे—नीले कण्ठ वाले थे और सबके हाथों में शस्त्र लगे हुए थे ।४९-५३। सब छत्र और चामरों से संवीत थे और हर के ही समान पराक्रम वाले थे । सबके दश बाहुयें थीं, जटाधारी थे और रुद्र के ही तुल्य भूषणों के धारण करने वाले थे ।५४। सब आधे चन्द्र को धारण करने वाले महान् ओज

से सम्पन्न थे। सभी वृष पर समारूढ़ और शिवतुल्य वेष भूषाधारी थे। सहस्र बाहुओं वाला, भुजगों के अधिपों से समावृत, तीन नेत्रों का धारी भीम बल वाला, भय देने वाला वह महात्मा वीर भद्र इन सब के साथ लिए हुये उस यज्ञ के समीप में पहुँच गया था।५५।५६।

युग्यानां च सहस्रेण द्विप्रमाणेनस्यंदनम् ।
सिंहानांप्रयुतेनैवबाह्यमानं च तस्य तत् ।५७।
तथैव दंशिताः सिंहावहवः पार्श्वरक्षकाः ।
शार्दूलामकरामत्स्यागजाश्चैव सहस्रशः ।
छत्राणि विविधान्येव चामराणि तथैव च ।५८।
मूर्द्ध निध्रियमाणानिसर्वतोऽग्राणिसर्वशः ।
ततोभेरी महानादाः शङ्खाश्चविविधस्वनाः ।
पटहा गोमुखाश्चैव शृङ्गाणि विविधानि च ।५९।
ततोऽवाद्यन्ततान्येवघनानिसुषिराणि च ।
कलगानपराः सर्वे सर्वे मृदङ्गवादिनः ।६०।
अनेकलास्यसंयुक्ता वीरभद्राग्रतोऽभवन् ।
रणवादित्रनिर्घोषैर्जगर्जु रमितौजसः ।६१।
तेन नादेन महता नादितं भुवनत्रयम् ।
एवं सर्वे समायाता गणारुद्रप्रणोदिताः ।६२।
यज्ञवाटं च दक्षस्यविनाशार्थंप्रहारिणः ।
रजसाचाऽऽवृतंव्योमतमसा च वृतादिशः ।६३।

उस वीरभद्र का द्वि प्रमाण संयुक्त रथ था जिसमें एक सहस्र अश्व थे और एक प्रयुत सिंहों द्वारा वह वाह्य मान हो रहा था। उसके बहुत से दंशित सिंह पार्श्व रक्षक थे। सहस्रों शार्दूल, मकरमत्स्य और गज थे। अनेक प्रकार के छत्र-चामर थे जो सबके आगे मस्तक पर धारण किये हुए थे। इसके अनन्तर महान नाद वाली भेरी और महान शब्द ध्वनि वाले शङ्ख बजा रहे थे। पटह, गोमुख और अनेक शृङ्ग

परिसान्त्वना देते हुए कहा था — ये वेद सब संगुण विषय वाले हैं सन्देह नहीं हुआ करते हैं ।१।२।३। वेदों के द्वारा कहे हुए ये सब कर्म ईश्वर के बिना कैसे सफल होंगे। ये तो सभी विफल ही होंगे। इसलिए अब तो अपने समस्त प्रयत्नों के द्वारा तुम ईश्वर की शरण में चले जाओ। भगवान् गोविन्द यह कह ही रहे थे कि वह सेना गणों की आकर वहीं पर उमड़ कर आ ही गया था। उस समय में देवों ने वीरभद्र के सहित ही सबको देखा था।४।५। इन्द्र ने उस समय में आरम्भवाद में रत भगवान् विष्णु की ओर हँसते हुए हाथ में वज्र ग्रहण करके सुरों के साथ युद्ध करने को इच्छा वाला हो गया था। भृगु ने शीघ्र ही उच्चाटन परायण होकर समाचरण किया था। उस समय में गणों ने देवों के साथ युद्ध किया था।६।७।

शरतोमरनाराचैर्जघ्नुस्तेच परस्परम् ।
नेदुः शङ्खाश्च बहुशस्तस्मिन्रणमहोत्सवे ।८।
तथा दुन्दुभयोनेदुः पटहाडिण्डिमादयः ।
तेन शब्देन महताश्लाघ्यमानास्तदा सुराः ।
लोकपालैश्च सहिता जघ्नुस्ताञ्छिवकिङ्करान् ।९।
खड्गैश्चाऽपि हताः केचिद्गदाभिश्चविपोथिताः ।
देवैः पराजिताः सर्वे गणाः शतसहस्रशः ।१०।
इन्द्राद्यैर्लोकपालैश्चगणास्तेचपराङ्मुखाः ।
कृताश्चतत्क्षणादेवभृगोर्मन्त्रबलेनहि ।११।
उच्चाटनकृतं तेषांभृगुणायज्विना तदा ।
यजनार्थं च देवानांतुष्ट्यर्थंदीक्षितस्य च ।१२।
तेनैव देवा जयिनोजातास्तत्क्षणमेवहि ।
स्वानां पराजयं दृष्ट्वा वीरभद्रोरुषान्वितः ।१३।
भूतान्प्रेतान्पिशाचांश्च कृत्वातानेव पृष्ठतः ।
वृषभस्यान्पुरस्कृत्य स्वयं चैव महाबलः ।
तीक्ष्णं त्रिशूलमादाय पातयामास तान्रणे ।१४।

वे सब परस्पर में शर-तोमर और नाराचों के द्वारा निहनन करने लगे थे। उस रण महोत्सव में बहुत बार शङ्खों की ध्वनियाँ हुई थीं। इसी प्रकार से उस रणक्षेत्र में दुन्दुभियाँ और पटह एवं डिण्डिम आदि रण के वाद्यों ने ध्वनियाँ की थी। उस महान शब्द से उस समय में सुरगण बहुत ही श्लाघ्यमान हुए थे और लोकपालों के सहित उन्होंने उन समाक्रमणकारी शिव के किङ्करों का खूब ही हनन किया था ८।९। कुछ लोग तो खड्गों के द्वारा निहत किए गये थे और कुछ गदाओं के प्रहारों से मारे गये थे अर्थात् विपोथित कर दिये गये थे। वे सैकड़ो और सहस्रों शिव के गण देवों के द्वारा पराजित कर दिये गये थे। इन्द्र आदि के और लोकपालो के द्वारा वे सब गण पराङ्मुख कर दिए गये थे। उसी समय में भृगु के मन्त्र बल के द्वारा उन सबका उच्चारण किया गया था। यज्वी भृगु ने देवों के यजन करने के लिए और यज्ञ में दीक्षित दक्ष प्रजापति की तुष्टि के लिये ही ऐसा मन्त्रों का प्रयोग किया था।१०।११।१२। उसी के द्वारा उसी क्षण में देवगण विजयी हो गये थे। अपने साथ सेना मे समागत गणों का पराजय देख कर वीरभद्र को बडा भारी क्रोध हुआ था। उसी समय में उन वीरभद्र ने उन पराङ्मुख होने वाले भूत-प्रेत और पिशाचों को पीछे की ओर करके जो वृषभों पर समारूढ थे उनको आगे किया था और महान बल-शाली स्वयं भी आगे बढ़कर आ गया था। फिर उसने अपने तीक्ष्ण शूल को हाथ मे लिया था और उन देवों को रणक्षेत्र में भूमिशायी कर दिया था।१३।१४।

देवान्यक्षान्पिशाचांश्च गुह्यकाश्चाक्षगांस्तथा ।
शूलघातैश्च ते सर्वगणादेवान्प्रजघ्निरे ।१५।
केचिद् द्विधाकृता: खड्गैर्मुद्गरैश्चाऽपि पोथिता: ।
परश्वधैः खण्डशश्च कृताः केचिद्रणाजिरे ।१६।
शूलैर्भिन्नाश्च शतशः केचिच्च शकलीकृता: ।
एवं पराजिताः सर्वे पलायनपरायणाः ।१७।

परस्परं परिष्वज्यगतास्तेऽपित्रिविष्टपम् ।
केवलंलोकपालाश्चइन्द्राद्यास्तस्थुरुत्सुकाः ।
बृहस्पतिं पृच्छमानाः कुतोऽस्माकं जयो भवेत् ।१८।
बृहस्पतिरुवाचेदं सुरेन्द्रं त्वरितस्तदा ।।
यदुक्तं विष्णुना पूर्वं तत्सत्यं जातमद्य नो ।१६।
अस्ति चेदीश्वरः कश्चित्फलरूप्यस्य कर्म्मणः ।
कर्तारंभजतेसोऽपिनह्यकर्तुः प्रभुर्हि सः ।२०।
न मन्त्रौषधयः सर्वेनाभिचारानलौकिकाः ।
न कर्माणि न वेदाश्च न मीमांसाद्वयं तथा ।२१।
ज्ञातुमीशाः सम्भवन्ति नवस्या नं यास्त्वनन्यया ।
शान्त्या च परया तुष्ट्या ज्ञातव्यो हि सदाशिवः ।२२।

उन सब गणों ने देवों को, यक्षों को, पिशाचों को, गुह्यकों को और राक्षसों को तथा देवों को शूल के घातों के द्वारा निहनन किया था ।१४। कुछ लोग तो खड्गों से दो टुकड़े कर दिये गए थे और मुद्गरों के द्वारा भी पीड़ित किये गये थे । कुछ सेन परश्वधों से खड-खड कर डाले थे । इस प्रकार से उस रणाङ्गन में हनन किया गया था ।१५। सैकड़ों तो परश्वधों के द्वारा भिन्न कर दिए थे और कुछ टुकड़े कर डाले थे । इस तरह से सब पराजित होते हुए भागने में परायण हो गये थे । ।१७। परस्पर में परिष्वजन करके वे भी सब स्वर्ग चले गये थे । वहाँ पर सिर्फ लोकपाल और इन्द्र आदि उत्सुक होते हुए स्थित रह गये थे । इन सबने बृहस्पति से पूछा था कि हमारा विजय कैसे होगा ।१८। उस समय में शीघ्रता से बृहस्पति ने सुरेन्द्र से यह कहा था । बृहस्पति ने कहा—जो कुछ भी भगवान् विष्णु ने पहिले कहा था वह सब कुछ आज सत्य ही हो गया है ।१६। इस फल रूप कर्म्म का यदि कोई ईश्वर है वह भी कर्त्ता का भजन किया करता है जो कर्त्ता का वह प्रभु नहीं होता है ।२०। सब मन्त्र और औषधियाँ—अभिचार, लौकिक, कर्म्म, वेद

भौर दोनों पूर्व भी मांस तथा उत्तर भी मांसा (वेदान्त) उसको जानने में समर्थ नहीं हैं। वह तो अनन्य भक्ति के ही द्वारा जानने योग्य है। शान्ति भौर परा बुद्धि से ही भगवान सदाशिव जानने के योग्य हुआ करते हैं।२१।२२।

तेन सर्वं सम्भवन्तिसुखदुः खात्मकं जगत् ।
परन्तु सम्वदिष्यामिकार्याकार्यं विवक्षया ।२३।
त्वमिन्द्र ! बालिशो भूत्वा लोकपालैः सहाद्य वै ।
आगतो बालिशो भूत्वा इदानीं किं करिष्यसि ।२४।
एतेरुद्रसहायाश्च गणाः परमशोभनाः ।
कुपिताश्च महाभागा न तु शेषं प्रकुर्वते ।२५।
एवं बृहस्पतेर्वाक्यंश्रुत्वातेऽपिदिवौकसः ।
चिन्तामापेदिरेसर्वेलोकपाला महेश्वराः ।२६।
ततोऽब्रवीद्वीरभद्रोगणैः परिवृतो भृशम् ।
सर्वे यूयं बालिशत्वादवदानार्थमागताः ।२७।
अवदानानिदास्यामितृप्त्यर्थंभवतात्वरन् ।
एवमुक्ता शितैर्बाणैर्जघानाऽथ रुषान्वितः ।२८।

उसी से यह दुःख-सुख स्वरूप वाला जगत् और सब समुत्पन्न हुआ करते हैं किन्तु कार्य भौर अकार्य की विवक्षा से मैं कहूँगा ।२३। हे इन्द्र ! तुम मूर्ख हो गए हो भौर इन सब लोकपालों के साथ भाज मूर्खता की है। यहाँ पर बिल्कुल मूढ़ बनकर तुम समागत हो गये हो। इस समय में क्या करोगे ? ।२४। ये समस्त गण भगवान रुद्र की सहायता वाले हैं भौर परम शोभन हैं। ये महाभाग अत्यधिक क्रोध में भरे हुए हैं ये शेष नहीं रखा करते हैं ।२५। इस प्रकार के कहे हुए बृहस्पती के वाक्य का श्रवण करके वे समस्त देवगण भी चिन्तित हो गए थे तथा सब महेश्वर लोकपाल भी चिन्ता को प्राप्त हो गए थे ।२६। इसके अनन्तर गणों से खूब घिरे हुए वीरभद्र बोले—भाप सब मूढ़ता के कारण से ही अवदान के लिए समागत हुए हैं ।२७। आपकी तृप्ति के

लिए बहुत ही शीघ्रता से मैं उन सब दानों को दूँगा। इस प्रकार से कहकर बड़े रोष से समन्वित होकर अपने तीक्ष्ण बाणों से हनन किया था।२८।

तैर्बाणैर्निहता सर्वे जग्मुस्ते च दिशो दश।२९।
गतेषु लोकपालेषु विद्रुतेषु सुरेषु च।
यज्ञवाटे समायातो वीरभद्रो गणान्वितः।३०।
तदा त ऋषयः सर्वे सर्वमेवेश्वरेश्वरम्।
विज्ञप्तुकामा सहसाऊचुरेव जनार्दनम्।३१।
रक्ष यज्ञं हि दक्षस्य यज्ञोऽसि त्वं न संशय।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषीणां वै जनार्दनः।३२।
योद्धुकामः स्थितो युद्धे विष्णुरध्यात्मदीपक।
वीरभद्रो महाबाहुः केशवं वाक्यमब्रवीत्।३३।
अत्र त्वयागत कस्माद्विष्णो! वेत्था महाबलम्।
दक्षस्य पक्षमाश्रित्य कथं जेष्यसि तद्वद।३४।
दाक्षायण्याकृतं यच्च न दृष्टं किं त्वयाऽनघ!।
त्वचाऽपि यज्ञे दक्षस्य अवदानार्थमागत।
अवदानं प्रयच्छामि तव चाऽपि महाभुज!।३५।

उन बाणों से उन सब को निहत कर दिया था और वे दशों दिशाओं में चले गये थे।२९। उन समस्त लोकपालों के चले जाने पर और देवगणों के विद्रुत हो जाने पर फिर वह वीरभद्र अपने गणों को साथ में लेकर उस यज्ञ वाट में समागत हुए थे।३०। उस समय में वे समस्त ऋषिगण समस्त ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान् जनार्दन से विज्ञापन करने की इच्छा वाले होते हुए सहसा कहने लगे थे। हे भगवन्! इस दक्ष के यज्ञ की रक्षा करिए क्योंकि आप यज्ञ स्वरूप हैं—इसमें कुछ संशय नहीं है। भगवान जनार्दन ने ऋषियों के वचनों को सुनकर युद्ध करने की इच्छा वाले होकर अध्यात्म दीपक वह भगवान विष्णु स्वयं

युद्ध स्थल में स्थित हो गए थे। उस समय में महाबाहु वीरभद्र ने भगवान् केशव से यह वाक्य कहा था—।३१।३२।३३। हे विष्णो ! आप यहाँ पर कैसे आ गए हैं। आप तो इस महाबल के ज्ञाता थे। आप इस दक्ष के पक्ष को ग्रहण करके इस रुद्र की सेना को कैसे जीत लेंगे—यही आप हमको बतला दीजिए। हे अनघ ! जो यहाँ पर दाक्षायणी किया है क्या आपने उस दुर्घटना को नहीं देखा था ? आप भी इस दक्ष के यज्ञ में अवदान ग्रहण करने के लिए ही समागत हुए हैं। हे महाभुज ! मैं वह अवदान आपको भी देता हूं।३४।३५।

एवमुक्त्वा प्रणम्यादौ विष्णुं सहस्ररूपिणम्।
वीरभद्रोऽग्रतो भूत्वा विष्णु वाक्यमथाऽब्रवीत्।३६।
यथाशम्भुस्तथात्वंहिममनास्त्यत्रसंशयः।
तथाऽपित्वंमहावाहोयोद्धुकामोऽग्रतः स्थितः।
नेष्याम्यपुनरावृत्ति यदि तिष्ठेस्त्वमात्मना।३७।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा वीरभद्रस्यधीमतः।
उवाच प्रहसन्देवोविष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः।३८।
रुद्रतेजः प्रसूतोऽसि पवित्रोऽसि महामते।
अनेन प्रार्थितः पूर्वं यज्ञार्थं च पुनः पुनः।३९।
अहं भक्तपराधीनस्तथासोऽपि महेश्वरः।
तेनैव कारणेनाऽत्रदक्षस्य यजनं प्रति।४०।
आगतोऽहं वीरभद्र ! रुद्रकोपसमुद्भव !।
अहं निवारयामित्वां त्वंवामां विनिवारय।४१।
इत्युक्तवतिगोविन्दे प्रहस्य स महाभुजः।
प्रश्रयावनतोभूत्वा इदमाह जनार्दनम्।४२।

इस प्रकार से कहकर सर्वप्रथम सहस्र स्वरूप वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम किया था और फिर वीरभद्र आगे होकर विष्णु भगवान् से यह वाक्य बोला था।३६। जिस प्रकार से मेरे माननीय भगवान् शम्भु हैं

वैसे ही आप भी हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है तो भी हे महाबाहो ! आप मुझसे युद्ध करने की कामना वाले होकर मेरे आगे समवस्थित हो गए हैं। यदि आप अपने आप ही इस रण में स्थित होकर लड़ते हैं तो मैं आपको अपुनरावृत्ति में पहुंचा दूंगा।३७। उस धीमान् वीरभद्र के इस वचन का श्रवण करके सबके ईश्वरों के भी ईश्वर विष्णुदेव हँसते हुए यह वचन बोले।३८। भगवान विष्णु ने कहा—हे महामते ! आप रुद्र के तेज से समुत्पन्न हुए हैं अतएव आप परम पवित्र हैं। देखो, इस दक्ष ने पहिले ही यज्ञ में समागत होने के लिए मुझे बारम्बार बुलाया था और मेरी प्रार्थना की थी। मैं तो भक्त के पराधीन हूं उसी तरह भगवान महेश्वर भी अपने भक्त के अधीन रहा करते हैं। इसी कारण से मैं दक्ष के इस यजन में आ गया हूं। हे वीरभद्र ! आप तो रुद्र के कोप से समुत्पन्न होने वाले हैं। मैं आपको निवारण करता हूं और आप मुझको विनिवारित कीजिये।३९।४०।४१। इस प्रकार से यह श्री गोविन्द के कहने पर वह महान भुजाओं वाला हूं सकर और प्रश्रय से एकदम विनम्र होकर जनार्दन से यह बोला—।४२।

यथा शिवस्तथा त्वं हि यथा त्वं च तथा शिवः ।
सेवकाश्च वयं सर्वे तव वा शङ्करस्य च ।४३।
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य सोऽच्युतः सम्प्रहस्य च ।
इदं विष्णुर्महावाक्यं जगादपरमेश्वरः ।४४।
योधयस्वमहाबाहोमयासार्धमशङ्कितः ।
तवाऽस्त्रैः पूर्यमाणोऽहं गच्छामिभवनंस्वकम् ।४५।
तथेत्युक्त्वा तु वीरोऽसौ वीरभद्रो महाबलः ।
गृहीत्वा परमास्त्राणिसिंहनादंजगर्जह ।४६।
विष्णुश्चाऽपिमहाघोषंशङ्खनादंचकारसः ।
तच्छ्रुत्वा ये गतादेवारणंहित्वाऽऽययुः पुनः ।४७।
व्यूहं चक्रुस्तदा सर्वे लोकपालाः सवासवाः ।
तदेन्द्रेण हतो नन्दी वज्रेण शतपर्वणा ।४८।

नन्दिना च हतः शक्रस्त्रिशूलेन स्तनान्तरे ।
वायुनाच हतो भृंगी भृङ्गिणा वायुराहतः ।४९।

जिस रीति से भगवान शिव हैं उसी भाँति आप हैं और जैसे आप हैं वैसे ही भगवान शिव हैं। हम सब तो भगवान शङ्कर के और आपके सेवक हैं ।४३। उसके इस वचन का श्रवण करके भगवान अच्युत हँस गये और फिर परमेश्वर भगवान विष्णु यह महावाक्य बोले ।४४। हे महाबाहो ! तुम शङ्का रहित होकर मेरे साथ युद्ध करो। तुम्हारे शस्त्रों से पूर्णमाण होकर ही मैं अपने भवन को चला जाऊँगा ।४५। ऐसा ही किया जायेगा—यह कहकर महान् बलवान् इस वीर वीरभद्र ने परम अस्त्रों को ग्रहण करके सिंह नादों के सहित गर्जना की थी ।४६। भगवान विष्णु ने भी महान घोष वाला शंख नाद किया था। यह सुन कर जो देवगण वहाँ से भागकर चले गये थे और युद्ध छोड़ चुके थे वे भी फिर वहाँ पर लौट कर वापिस आ गये थे। इन्द्र के सहित समस्त लोकपालों ने एक व्यूह (मोर्चा) की रचना की थी। इसके पश्चात् उसी समय में इन्द्रदेव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा नन्दी पर प्रहार किया था तथा नन्दी ने त्रिशूल के द्वारा स्तनों के मध्य में इन्द्र पर प्रहार किया था। वायुदेव ने भृङ्गि पर और भृङ्गी ने वायु पर प्रहार किए थे और दोनों एक दूसरे के प्रहारों से आहत हो गए थे ।४७।४८।४९।

शूलेन सितधारेण सनद्धो दण्डधारिणा ।
यमेन सह संग्रामं महाकालो बलान्वितः ।५०।
कुबेरेण च संगम्य कूष्माण्डानां पति स्वयम् ।
वरुणेन समं युद्धं मुण्डश्चैवमहानलः ।५१।
युयुधे परया शक्त्या त्रैलोक्यं विस्मयन्निव ।
नैऋतेन समागम्य चण्डश्च बलवत्तरः ।५२।
युयुधेपरमास्त्रेण नैऋंत्यं च विडम्बयन् ।
योगिनीचक्रसंयुक्तो भैरवो नायकोमहान् ।५३।

विदार्य देवानखिलान्पपौ शोणितमद्भुतम् ।
क्षेत्रपालास्तथा चान्ये भूतप्रमथगुह्यकाः ।५४।
शाकिनी डाकिनी रौद्रा नवदुर्गास्तथैव च ।
योगिन्यो यातुधान्यश्च तथा कूष्माण्डकादयः ।
नेदुः पपुः शोणितं च बुभुजु पिशितं बहु ।५५।
भक्ष्यमाणतदासैन्यं विलोक्यसुरराट् स्वयम् ।
विहायनन्दिनपश्चाद्वीरभद्र समाक्षिपत् ।५६।

तिनधार वाले शूल के द्वारा दण्डधारी यम के साथ बल से समन्वित महा काल संग्राम के लिए सन्नद्ध हो गया था । कुबेर के साथ सङ्गम करके स्वयं कुष्माण्डों का पति तथा महान बलशाली मुण्ड वरुण के साथ मिलकर युद्ध करने लगे थे । तीन लोकों को विस्मय में डालते हुए परमाधिक शक्ति से बलवानों में विशेष बलधारी चण्ड ने नैऋत देव के साथ मिलकर युद्ध किया था ।५०।५१।५२। योगिनियों के चक्र से समन्वित होकर महान् सेना के नायक भैरव ने परमास्त्र के द्वारा ईश देव को विडम्बित करते हुए घोर युद्ध किया था । समस्त देवों को विदीर्ण करके उस भैरव में अद्भुत देवों का रुधिर का पान किया था । उसी भाँति अन्य क्षेत्रपाल, भूत, प्रमथ, गुह्यक, शाकिनी, डाकिनी, परम रौद्र रूप वाली नव दुर्गा, योगिनियाँ, यातुधानियाँ, कूष्माण्ड आदि सबने महान घोर ध्वनि की, रक्त का खूब पान किया तथा मांस का अच्छी तरह से भक्षण किया था । उस समय में इस बुरी तरह से समस्त सेना का भक्षण होते हुये देखकर देवों के राजा इन्द्रदेव ने नन्दी के साथ युद्ध करना छोड़कर फिर वीरभद्र के ऊपर आक्रमण किया था ।५३।५४।५५।५६।

वीरभद्रो विहायैव विष्णुं देवेन्द्रमास्थितः ।
तयोर्युद्धमभूद्घोरं बुधाङ्गारकयोरिव ।५७।

वीरभद्रं पदाशक्रो हन्तुकामस्त्वरान्वितः ।
तावच्छक्रं गजस्थं हि पूरयामास मार्गणैः ।५८।
वीरभद्रो रुषाविष्टो दुर्निवार्यो महाबलः ।
तदेन्द्रेणाहतः शीघ्रं वज्रेण शतपर्वणा ।५९।
सगजञ्च सवज्रं च वासवं गन्तुमुद्यतः ।
हाहाकारोमहानासीद् भूतानांतत्रपश्यताम् ।६०।
वीरभद्रं तथाभूतं हन्तुकाम पुरन्दरम् ।
त्वरमाणस्तदा विष्णुर्वीरभद्राग्रतः स्थितः ।६१।
शक्रं च पृष्ठतः कृत्वा योधयामास वै तदा ।
वीरभद्रस्य विष्णोश्च युद्ध परमभूत्तदा ।६२।
शस्त्रास्त्रैर्विविधाकारैर्योधयामासतुस्तदा ।
पुनर्नन्दिनमालोक्य शक्रो युद्धविशारदः ।६३।

वीरभद्र ने भी भगवान विष्णु को छोडकर स्वयं देवेन्द्र को ऊपर आक्रमण के लिए समास्थित हो गया था । उस समय में उन दोनों का बुध और अङ्गारक के समान अत्यन्त घोर युद्ध हुआ था । इन्द्र बहुत ही शीघ्रता युक्त होकर पद से वीरभद्र का हनन करना चाहता था किन्तु तब तक वीरभद्र ने ऐरावत हाथी पर स्थित इन्द्र को बाणों से पूरित कर दिया था । वह महान बलवान वीरभद्र एक दम रोष के आवेश में हुआ था और दुर्निवार्य हो गया था । उसी समय में इन्द्रदेव ने शतपर्वा वज्र के द्वारा उसे शीघ्र ही समाहत कर दिया था ।५७।५८।५९। जिस समय में हाथी और वज्र के सहित इस पर गमन करने के लिए वह उद्यत हुआ था उस समय में वहाँ पर जो प्राणी देख रहे थे उनमें महान हाहाकार मच गया था । इस प्रकार से इन्द्रदेव का हनन करने की इच्छा वाले वीरभद्र को देखकर भगवान विष्णु शीघ्रता से समागत होते हुये वीरभद्र के आगे स्थित हो गये थे । इन्द्र अपने पृष्ठ भाग की ओर करके स्वयं ही उस समय में युद्ध करने लगे थे । उस अवसर पर वीर-

भद्र और भगवान विष्णु का परम घोर युद्ध हुआ था। वे दोनों ही अनेक भाँति के आकार वाले शस्त्र और अस्त्रों से युद्ध कर रहे थे। युद्ध करने की कला के महान पण्डित इन्द्र ने नन्दी को फिर देखा था।५७।५८।५९।६०।६१।६२।६३।

द्वन्द्वयुद्धं सुमुतुलं देवानां प्रमथैः सह ।
प्रमथा मथिता देवैः सर्वे ते प्राद्रवद्रणात् ।६४।
गणान्पराङ्मुखान्दृष्ट्वा वासवेतेव्याधयो भृशम् ।
रुद्रकोपात्समुद्भूतादेवाश्चाऽपिप्रदुद्रुवुः ।६५।
ज्वरैस्तु पीडितान्देवान्दृष्ट्वाविष्णुर्हसन्निव ।
जीवग्राहेण जग्राह देवांस्तांश्चपृथक्पृथक् ।६६।
देवाश्विनौ तदाऽऽहूय व्याधीन्हन्तुं तदाभृतिम् ।
ददौ ताभ्यां प्रयत्नेन गणयित्वा सुबुद्धिमान् ।६७।
ज्वरांश्चसन्निपाताश्च अन्येभूतद्रुहस्तदा ।
तान्सर्वान्निगृहीत्वाऽथअश्विनौतौमुदान्वितौ ।
विज्वरानथ देवांश्च कृत्वा मुमुदतुश्चिरम् ।६८।
तर्जित योगिनीचक्र भैरवं व्याकुलीकृतम् ।
तीक्ष्णाग्रैः पातयामासुः शरैर्भूतगणानपि ।६९।
सुरैर्विद्रावित सैन्य विलोक्य पतित भुवि ।
वीरभद्रो रुषाविष्टो विष्णुंवचनमब्रवीत् ।७०।

महान तुमुल द्वन्द्व युद्ध देवों का प्रमथों के साथ हुआ था। देवों के द्वारा मथित हुए वे सब प्रमथ गण रणक्षेत्र से भाग खडे हुए थे। गणों के पराङ्मुख देखकर वे समस्त व्याधियाँ जो बहुत अधिक परिमाण में भगवान रुद्रदेव के कोप से समुत्पन्न हो गई थीं उन्हें देखकर देवगण भी भाग गए थे। इस तरह से ज्वरों से पीडित देवों को देखकर भगवान विष्णु ने हँसते हुए ही उन देवों को पृथक-पृथक जीवग्राह से ग्रहण किया था।६४।६५।६६। उसी समय में अश्विनी कुमार दोनों देवों को

बुलाकर व्याधियों का हनन करने के लिए कहा गया था। तभी से लेकर उन्हें परम सुबुद्धिमान गिनकर उन दोनों को प्रयत्नपूर्वक दे दिया था।६७। वे दोनों अश्विनीकुमार उस समय में सब प्रकार के ज्वरों को, सन्निपातों को और अन्य प्राणियों को पीड़ा देने वाले रोगों को सबको निष्क्रीव करके परम प्रसन्न हुए थे। समस्त देवों को ज्वर से रहित करके चिरकाल पर्यन्त वे अश्विनी कुमार मुदित हुए थे।६८। फिर उन देवों ने भैरव को व्याकुलो कृत करके सम्पूर्ण योगिनी चक्र को जीत लिया था और तीक्ष्ण अप्रमाण वाले शरों के द्वारा भूतगणों को भी उन देवों ने रणक्षेत्र में गिरा दिया था।६९। इस तरह सुरों के द्वारा विद्रावित अपनी सेना को देखकर तथा सबको धराशायी विलोकन करके वीरभद्र को बड़ा भारी रोष आ गया था तथा क्रोध में भरकर वह भगवान विष्णु से यह वचन बोला था।७०।

त्वं शूरोऽसिमहाबाहो ! देवानांपालकोह्यसि ।
युध्यस्वमांप्रयत्नेनयदि ते मतिरीदृशी ।७१।
इत्युक्त्वा तं समासाद्य विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।
ववर्ष निशितैर्बाणैर्वीरभद्रोमहाबलः ।७२।
तदा चक्रेण भगवान्वीरभद्रं जघान सः ।
आयान्तं चक्रमालोक्यग्रसित वक्त्रेणाभ्यवतत् ।७३।
ग्रसितं चक्रमालोक्य विष्णुः परपुरञ्जयः ।
मुखतस्य परामृज्य विष्णुनोद्गलितं पुनः ।७४।
स्वचक्रमादाय महानुभावो दिवंगतोऽसौ भुवनैकभर्ता ।
ज्ञात्वा च तत्सर्वमिदं च विष्णुः कृती कृतं दुष्प्रसहं परेषाम्
।७५।

हे महाबाहो ! आप तो महान शूरवीर हैं और देवों के आप परम पालन करने वाले भी हैं। यदि आपकी ऐसी ही बुद्धि है तो प्रयत्न पूर्वक मेरे साथ अब आप ही स्वयं युद्ध कर लीजिए।७१। इतना

कहकर वह विष्णु भगवान के समीप में पहुँच गया था जो कि समस्त ईश्वरों के भी परम ईश्वर थे। महान बलवान वीरभद्र ने अत्यन्त तीखे बाणों के द्वारा उन पर वर्षा आरम्भ करदी थी।७२। उसी समय भगवान विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वीरभद्र का हनन किया था उस आते हुए चक्र को देखकर जो तत्क्षण ही ग्रसित कर लेने वाला था। पर पुरों का जय करने वाले भगवान विष्णु ने उस ग्रसित अपने चक्र को देखकर उसके मुख का परामृजन करके पुन. विष्णु ने उसे उद्गलित किया था। अपने चक्र को ग्रहण करके वे महानुभाव भगवान विष्णु जो समस्त भुवनों के एक ही भरण करने वाले हैं स्वर्गलोक में में चले गये थे। कृती विष्णुदेव ने इस सबका ज्ञान करके दूसरों का जो दुष्प्रसह था वह कर दिया था।७३।७४।७५।

५—वीरभद्र द्वारा दक्ष का शिरच्छेदन

विष्णौ गते तदा सर्वे देवाश्च ऋषिभिः सह।
विनिर्जिता गणैः सर्वे ये च यज्ञोपजीविन. ।१।
भृगुश्च पातयामास श्मश्रूणां लुञ्चनं कृतम्।
द्विजाश्चोत्पाटयामास पूष्णो विकृतविक्रियान् ।२।
विडम्बिता स्वधा तत्र ऋषयश्चविडम्बिताः ।
वघृपुस्ते पुरोषेणवितानाग्नौरुषान्विताः ।३।
अनिर्वाच्यं तदाचक्रुर्गणाः क्रोधसमन्विताः ।
अन्तर्वेद्यन्तरगतो दक्षो वै महतो भयात् ।४।
तं निलीनं समाज्ञाय आनिनाय रुषान्वितः।
कपोलेषु गृहीत्वा तं खड्गेनोपहतशिरः ।५।
अभेद्यं तच्छिरो मत्वा वीरभद्रः प्रतापवान्।
स्कन्धं पद्भ्यां समाक्रम्य कन्धरेऽपीडयत्तदा ।६।
कन्धरात्पाट्यमानाच्च शिरश्छिन्नं दुरात्मनः।
दक्षस्य च तदा तेन वीरभद्रेणधीमता।
तच्छिरः सुहुतं कुण्डे ज्वलिते तत्क्षणात्तदा ।७।

महर्षि प्रवर लोमश मुनि ने कहा था—भगवान् विष्णु के उस समय में वहाँ से चले जाने पर समस्त देवगण ऋषियों के सहित गणों के द्वारा जीत लिये गए थे जो भी वहाँ पर यज्ञ के उपजीवी थे सभी को वीरभद्र के गणों ने पराजित कर दिया था।१। उस वीरभद्र ने भृगु को नीचे गिरा दिया था और उसकी श्मश्रुओं का लुञ्चन कर डाला था पूष्णा को और विकृत विक्रिया वाले द्विजों को उत्पाटित कर दिया था।२। स्वधा को और ऋषियों को वहाँ पर विडम्बित कर दिया था। पाप से समन्वित होकर उन्होंने वितानाग्नि में पुरीष (मल) की वर्षा की थी। क्रोध से भरे हुए उन गणों ने उस समय में ऐसे कृत्य किये थे जो वचनों के द्वारा कहने के भी योग्य नहीं है। प्रजापति दक्ष महान् भय से अन्तर वेदी के अन्दर चला गया था किन्तु वहाँ पर उसको छिपा हुआ जानकर क्रोध से समन्वित होकर वह वीरभद्र उसको निकाल कर ले आया था। उसके कपोलों को पकड़कर उसका शिर खड्ग से काट डाला था।३।४।५। प्रतापशाली वीरभद्र ने उसके शिर को अभेद्य मानकर उसके स्कन्ध को पैरों से दबाकर कन्धरा में पीड़ित किया था।६। पीड्यमान कन्धरा से उस दुरात्मा का शिर छिन्न किया था। धीमान् उस वीरभद्र ने उस समय में इसी तरह से उसके मस्तक का छेदन किया था और उसी समय में उस जलती हुई अग्नि में तुरन्त ही कुण्ड में उसके शिर को भली-भाँति हुत कर दिया था।७।

ये चान्ये ऋषयो देवाः पितरो यक्षराक्षसाः।
गणैरुपद्रुताः सर्वे पलायनपरा ययुः।८।
चन्द्रादित्यगणाः सर्वे ग्रहनक्षत्रतारकाः।
सर्वे विचलिताह्याशन् गणैस्तेऽपह्युपद्रुताः।९।
सत्यलोकंगतो ब्रह्मा पुत्रशोकेन पीडितः।
चिन्तयामासचाव्यग्रः किं कार्यंकार्यमद्यवै।१०।
मनसा दूयमानेन शं न लेभे पितामहः।
ज्ञात्वा सर्वं प्रयत्नेन दुष्कृतं तस्य पापिनः।११।

गमनाय मतिं चक्रे कैलासं पर्वतं प्रति ।
हंसारूढो महातेजाः सर्वदेवैः समन्वितः ।१२।
प्रविष्टं पर्वतश्रेष्ठं स ददर्श सदाशिवम् ।
एकान्तवासिनं रुद्रं शैलादेन समन्वितम् ।१३।
कपर्दिनं श्रियायुक्तं वेदाङ्गानां च दुर्गमम् ।
तथाविधं समालोक्य ब्रह्माक्षोभपरोऽभवत् ।१४।
दण्डवत्पतितो भूमौ क्षमापयितुमुद्यतः ।
संस्पृशं तत्पदाब्जं च चतुर्मुकुटकोटिभिः ।
स्तुतिं कर्तुं समारेभे शिवस्य परमात्मनः ।१५।

जो अन्य ऋषिगण, देववृन्द, पितृगण, यक्ष और राक्षस थे वे सब गणों के द्वारा उपद्रुत होने पर पलायन परायण हो गये थे अर्थात् भाग गए थे ।८। उन रुद्रदेव के गणों के द्वारा पीडित होते हुए चन्द्र-सूर्य-ग्रह-नक्षत्र और तारक सभी विचलित हो गए थे ।९। अपने पुत्र दक्ष के शोक से पीडित होकर ब्रह्माजी सत्य लोक को चले गये थे और वे यह चिन्ता करने लगे थे कि आज मुझे अब कौन सा कार्य करना चाहिए । उस समय में ब्रह्मा बहुत ही अव्यग्र होकर यह सोच रहे थे ।१०। पितामह के मन में बहुत ही अधिक दुःख था और उसके दूयमान होने के कारण उनके मन में शान्ति नहीं हुई थी । उस पापी दक्ष का यह सब दुष्कृत खूब समझकर सब प्रकार के प्रयत्न से कैलास पर्वत की ओर ही गमन करने की मति स्थिर की थी । समस्त देवगणों को साथ में लेकर अपने हंस पर समारूढ होकर महान तेजस्वी उस परम श्रेष्ठ पर्वत में प्रविष्ट हो गये थे और वहाँ पर भगवान सदाशिव का दर्शन प्राप्त किया था । कैलास पर भगवान रुद्र शैलाद के साथ एकान्त में निवास कर रहे थे । कपर्दी श्री से समन्वित और वेदाङ्गों के द्वारा दुर्गम उस प्रकार से सम्वस्थित भगवान शिव का आलोकन करके ब्रह्माजी के हृदय में बड़ा भारी क्षोभ उत्पन्न हो गया था ।११।१२।१३।१४। ब्रह्मा सदाशिव के

चरणों में दण्ड की भाँति भूमि में गिर गये थे और अपराध की क्षमा याचना के लिए समुद्यत हो गए थे। उन्होंने अपने चारों मस्तकों पर धारण किये हुए मुकुटों की नोकों से शिव के चरण कमलों का स्पर्श किया था। फिर ब्रह्माजी ने परमात्मा शिव का स्तवन करने का प्रारम्भ किया था।१५।

नमो रुद्राय शान्ताय ब्रह्मणे परमात्मने।
त्वं हि विश्वसृजांस्रष्टा धाता त्वं प्रपितामहः।१६।
नमो रुद्राय महते नीलकण्ठाय वेधसे।
विश्वाय विश्वबीजाय जगदानन्दहेतवे।१७।
ओङ्कारस्त्वं वषट्कारः सर्वारम्भप्रवर्त्तकः।
यज्ञोऽसि यज्ञकर्माऽसि यज्ञानां च प्रवर्त्तकः।१८।
सर्वेषां यज्ञकर्तॄणां त्वमेव प्रतिपालकः।
शरण्योऽसि महादेव ! सर्वेषां प्राणिनां प्रभो।
रक्ष रक्ष महादेव ! पुत्रशोकेन पीडितम्।१९।

महादेव उवाच

शृणुष्वाऽवहितो भूत्वा मम वाक्यं पितामह !।
दक्षस्य यज्ञभङ्गोऽयं न कृतश्च मया क्वचित्।२०।
स्वीयेन कर्मणा दक्षो हतो ब्रह्मन्न संशयः।२१।

ब्रह्माजी ने कहा—परम शान्त स्वरूप, ब्रह्म, परमात्मा भगवान रुद्रदेव की सेवा में मेरा प्रणाम है। हे भगवन ! आप तो समस्त विश्व के सृजन करने वालों के भी स्रष्टा हैं। आप धाता हैं और सबके प्रपितामह हैं। नीलकण्ठ, महान और वेधा रुद्रदेव के लिए मेरा नमस्कार है। विश्व स्वरूप, विश्व के बीज और इस जगत को आनन्द प्रदान करने के हेतु आपके लिये प्रणाम है।१६।१७। आप ओङ्कार हैं, वषट्कार हैं और सब आरम्भों की प्रवृत्ति कराने वाले हैं। आप यज्ञ स्वरूप हैं, यज्ञ में होने वाले कर्म रूप हैं तथा समस्त यज्ञों के प्रवर्त्तक हैं। सभी यज्ञों

के करने वाले के आप ही प्रतिपालन करने वाले हैं। हे महादेव ! आप शरण्य, हैं हे प्रभो ! सब प्राणियों के शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं। हे महादेव ! परित्राण कीजिए, रक्षा कीजिए मैं अपने पुत्र के शोक से अत्यन्त पीड़ित हो रहा हूं।१८।१९। श्री महादेवजी ने कहा—हे पितामह ! आप सावधान होकर मेरे वाक्य का श्रवण कीजिये। यह दक्ष के यज्ञ का भङ्ग मैंने कभी भी नहीं किया है। हे ब्रह्मन् ! दक्ष अपने ही कर्म के द्वारा हत हो गया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।२०।२१।

परेषां क्लेशदं कर्म न कार्यं तत्कदाचन ।
परमेष्ठिन् परेषां यदात्मनस्तद्भविष्यति ।२२।
एवमुक्त्वा तदा रुद्रो ब्रह्मणा सहितः सुरैः ।
ययौ कनखलं तीर्थं यज्ञवाटं प्रजापतेः ।२३।
रुद्रस्तदा ददर्शाऽथ वीरभद्रेण यत्कृतम् ।
स्वाहा स्वधा तथा पूषा भृगुर्मतिमताम्वरः ।२४।
तदाऽन्यऋषयः सर्वे पितरश्च तथाविधाः ।
येऽन्ये च बहुस्तत्र यज्ञगन्धर्वकिन्नराः ।२५।
त्रोटिता लुञ्चिताश्चैव मृताः केचिद्रणाजिरे ।२६।
शम्भुं समागतं दृष्ट्वा वीरभद्रो गणैः सह ।
दण्डप्रणामसंयुक्तस्तस्थावग्रे सदाशिवम् ।२७।
दृष्ट्वा पुरः स्थितं रुद्र वीरभद्रं महाबलम् ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं किं कृतं वीरनन्दिदम् ।२८।

दूसरों को क्लेश देने वाला कार्य कभी भी नहीं करना चाहिए। हे परमेष्ठिन ! जो दूसरों के लिये होगा वही अपने लिये भी हो जायगा। ।२२। उसी समय में इस प्रकार से कहकर भगवान रुद्र ब्रह्माजी और समस्त देवगणों के साथ प्रजापति की यज्ञशाला में कनखल तीर्थ को चल दिये थे। उस समय में भगवान रुद्रदेव ने वहाँ पर पहुंच कर वह सभी स्वयं देखा था जो वीरभद्र ने किया था। स्वाहा, स्वधा, पूषा,

मतिमानों मे परम श्रेष्ठ भृगु, अन्य समस्त ऋषिगण, उसी प्रकार वाले सब पितर और जो बहुत से वहाँ पर यक्ष, गन्धर्व और किन्नर थे वे सभी श्रोटित एवं लुञ्चित और रणक्षेत्र में कुछ भरे हुये थे ।२३।२४।।२५।२६। भगवान शम्भु को वहाँ पर समागत हुये देखकर वीरभद्र अपने गणों के सहित दण्ड की भाँति गिरकर प्रणाम करके भगवान सदाशिव के आगे समवस्थित हो गया था ।२७। रुद्रदेव ने अपने आगे स्थित महान बलवान वीरभद्र को देखकर हँसते हुए यह वाक्य कहा था—हे वीर ! क्यों जी, तुमने यह क्या कर डाला है ? ।२८।

दक्षमानय शीघ्रं भो येनेदं कृतमीदृशम् ।
यज्ञे विलक्षणं तात यस्येदं फलमीदृशम् ।२९।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रस्त्वरान्वितः ।
कबन्धमानयित्वाऽथ शम्भोरग्रे तदाक्षिपत् ।३०।
तदोक्तः शङ्करेणैव वीरभद्रो महामनाः ।
शिरः कनापनीतं च दक्षस्याऽस्य दुरात्मनः ।३१।
दास्यामि जीवनं वीर कुटिलस्याऽपि चाधुना ।
एवमुक्तः शङ्करेण वीरभद्रोऽब्रवीत्पुनः ।३२।
मया शिरोहुतंचाग्नौतदानीमेव शङ्कर ! ।
अवशिष्टं शिरः शम्भो पशोश्च विकृताननम् ।३३।
इतिज्ञात्वा ततोरुद्रः कबन्धोपरिचाक्षिपत् ।
शिरः पशोश्चविकृतं कूर्चयुक्तं भयावहम् ।३४।
न दक्षो जीवितं लेभे प्रसादाच्छङ्करस्यच ।
सदृष्ट्वाऽग्रे तदारुद्रं दक्षोलज्जासमन्वितः ।
तुष्टाव प्रणतो भूत्वा शङ्कर लोकशङ्करम् ।३५।

हे वीरभद्र ! दक्ष को यहाँ पर बहुत शीघ्र लाओ जिसने यह ऐसा किया है । हे तात ! यज्ञ में जिसका ऐसा विलक्षण फल हुआ है । इस तरह से शङ्कर के द्वारा कहे गये वीरभद्र ने तुरन्त ही जाकर दक्ष

के कवन्ध को लाकर वहाँ पर शम्भु के आगे डाल दिया था ।२६।३०। उस समय में महान मन वाले वीरभद्र से भगवान शङ्कर ने कहा—इस दुरात्मा दक्ष का शिर किस ने दूर किया है ? हे वीर ! इस समय मे तो इस कुटिल को भी मैं जीवन दान दूंगा । इस प्रकार से शङ्कर के द्वारा कहे जाने पर फिर वीरभद्र ने कहा—।३१।३२। हे शङ्कर ! मैंने उसका शिर तो उसी समय मे अग्नि मे हवन कर दिया था अब तो हे शम्भो ! पशु का विकृत आनन ही अवशिष्ट रह गया है । उन दक्ष ने शङ्कर के प्रसाद से जीवन प्राप्त किया था । उसने उस समय में अपने आगे जब भगवान रुद्र को देखा तो वह दक्ष लज्जा से अवनत हो गया था । फिर उसने प्रणत होकर लोक के कल्याण करने वाले भगवान शङ्कर का स्तवन किया था ।३३।३४।३५।

नमामि देव वरदं वरेण्यं नमामि देवेश्वर सनातनम् ।
नमामि देवाधिपमीश्वरं हरं नमामि शम्भुं जगदेकबन्धुम्
।३६।
नमामि विश्वेश्वर ! विश्वरूप सनातन ब्रह्म निजात्मरूपम् ।
नमामि सर्वं निजभावभाव वरं वरेण्यं वरदं नतोऽस्मि ।३७
दक्षेण संस्तुतो रुद्रो बभाषे प्रहसन्नह. ।३८।
चतुर्विधाभजन्तेमाजना: सुकृतिन: सदा ।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थीज्ञानी च द्विजसत्तम. ! ।३९।
तस्मान्मेज्ञानिन: सर्वेप्रिया: स्युर्नाऽत्रसंशय: ।
विनाज्ञानेनमांप्राप्तुंयतन्तेतेहिबालिशा: ।४०।
केवलं कर्मणा त्वं हि संसारात्तर्तुमिच्छसि ।४१।
न वेदैश्चनदानैश्च न यज्ञैस्तपसावक्वचित् ।
न शक्नुवन्तिमांप्राप्तुंमूढा: कर्मवशा नरा: ।४२।

दक्ष ने कहा—वरदान प्रदान करने वाले, वरेण्य, देवों के ईशों में भी परमश्रेष्ठ ! सनातन देव को मैं प्रणाम करता हूं । देवों के

प्रथिप, ईश्वर, जगत के एकमात्र बन्धु हर शम्भु की सेवा में मैं प्रणाम करता हूँ ।३६। हे विश्वेश्वर ! विश्व के स्वरूप वाले, निज के आत्म रूप से युक्त सनातन ब्रह्म को मैं नमस्कार करता हूँ । निज भाव के भाव, वर, वरेण्य, वर प्रदान करने वाले आपको मेरा नमस्कार है। मैं आपकी सेवा में नत हो रहा हूँ ।३७। महर्षि लोमश ने कहा—इस प्रकार से दक्ष प्रजापति के द्वारा भली-भाँति स्तुति किये गये भगवान रुद्र प्रहास करते हुए एकान्त मे बोले ।३८। श्री हर ने कहा—हे द्विजों में परम श्रेष्ठ ! मेरे भजन एवं उपासना करने वाले चार प्रकार के प्राणी हुआ करते हैं जो परम सुकृती सदा होते हैं। एक तो उन चारों तरफ के जनों में वह है जो आर्त्त होता है अर्थात् परम पीड़ा से उत्पीड़ित होकर मेरा भजन किया करता है। दूसरा जिज्ञासु होता है जिसे ज्ञान की पिपासा हुआ करती है। तीसरा अर्थ की चाह रखने वाला प्राणी मेरी उपासना करता है और चौथा ज्ञान सम्पन्न व्यक्ति होता है। इन सब चारों तरह के भजन करने वालों में सभी ज्ञानी जन मेरे सदा परम प्रिय हुआ करते हैं -इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। बिना ज्ञान के जो मनुष्य मुझे प्राप्त करने की चेष्टा एवं प्रयत्न किया करते हैं वे महा मूर्ख ही होते हैं। तुम तो केवल कर्म्म के द्वारा ही इस संसार से उद्धार होने की इच्छा रखते हो ।३९।४०।४१। कर्म्म के वश में ही केवल रहने वाले मनुष्य महान मूढ होते हैं और वे वेदों के द्वारा, दानों से, यज्ञ कर्मों के द्वारा और तपश्चर्या से मुझको प्राप्त नहीं कर सकते हैं ।४२।

तस्माज्ज्ञानपरो भूत्वा कुरु कर्म्म समाहितः ।
सुखदुःखसमो भूत्वा सुखी भव निरन्तरम् ।४३।
उपदिष्टस्तदा तेन शम्भुना परमेष्ठिना ।
दक्षं तत्रैव संस्थाप्य ययौ रुद्रः स्वपर्वतम् ।४४।
ब्रह्मणाऽपि तथा सर्वे भृग्वाद्याश्च महर्षयः ।
आश्वासिता बोधिताश्च ज्ञानिनश्चाऽभवन्क्षणात् ।४५।

गतः पितामहो ब्रह्मा ततश्च सदनं स्वकम् ।४६।
दक्षोऽपिच स्वयं वाक्यात्परं बोधमुपागतः ।
शिवध्यानपरोभूत्वातपस्तेपे महामनाः ।४७।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन ससेव्यो भगवाञ्छिवः ।४८।

इसलिए ज्ञान मे परम परायण होकर ही समाहित होते हुए तुम जो कुछ भी कर्म हो उसे करो। सुख और दुःख को समान समझकर निरन्तर सुखी बनो।४३। महर्षि प्रवर लोमशजी ने कहा—उस समय परमेष्ठी भगवान शम्भु ने इस प्रकार से उपदेश दिया था और फिर भगवान् रुद्रदेव वहीं पर दक्ष प्रजापति को सस्थापित करके अपने पर्वत कैलास पर वापिस चले गये थे।४४। उस समय में ब्रह्माजी के द्वारा सभी भृगु आदि महर्षि गण उसी भाँति आश्वासित किये गये थे और उन्हें बोध दिया गया था और वे सभी तत्क्षण में सब ही ज्ञानी हो गये थे। फिर पितामह ब्रह्माजी अपने घर को वापिस चले गये थे।४५।४६। प्रजापति दक्ष भी भगवान शिव के द्वारा स्वयं कथित वाक्य से परम बोध को प्राप्त हो गये थे। महामना दक्ष ने फिर शिव के ध्यान मे तत्पर होकर तपश्चर्या की थी। इसलिए परम सार यही है कि सभी प्रयत्नो के द्वारा भगवान शिव की भली भाँति उपासना करनी चाहिये।४७।४८।

६ – लिङ्गप्रतिष्ठावर्णन

लिङ्गे प्रतिष्ठा च कथं शिवंहित्वाप्रवर्तिताः ।
तत्कथ्यतां महाभाग ! परं शुश्रूषताहि नः ।१।
यदा दारुवने शम्भुर्भिक्षार्थं प्राचरत्प्रभुः ।२।
दिगम्बरो मुक्तजटाकलापो वेदान्तवेद्यो भुवनैकभर्ता ।
स ईश्वरो ब्रह्मकलापधारो योगीश्वराणां परमः परश्च ।३।
अणोरणीयान्महतो महीयान्महानुभावो भुवनाधिपो महान् ।
स ईश्वरो भिक्षुरूपी महात्मा भिक्षाटनं दारुवने चकार ।४।

मध्याह्नेऽथ द्विजाश्चैव ऋषयो विप्रास्तीर्थं जग्मुः स्वकाश्रमात् ।
तदानीमेव सर्वास्ता ऋषिभार्याः समागताः ।५।
विलोक्य तन्त्र्यः शम्भुं वमाचख्युश्च परस्परम् ।
कोऽसौ भिक्षुकरूपोऽयमागतोऽपूर्वदर्शनः ।६।
अस्मै भिक्षां प्रयच्छामो वयं च सखिभिः सह ।
तथेति गत्वा सर्वास्ता गृहेभ्य आनयन्मुदा ।७।

ऋषिगण ने कहा—हे महाभाग ! भगवान शिव का त्याग करके शिव के लिंग की पूजा करने की प्रतिष्ठा कैसे प्रवर्त्तित हुई थी—यह बात हमारे सामने बतलाइये । इसके श्रवण करने की हमारी बडी भारी इच्छा है ।१। लोमश जी ने कहा—जिस समय में प्रभु शम्भु भिक्षाटन के लिए दारुवन मे प्रचरण कर रहे थे । उस समय मे शिव परम दिगम्बर अर्थात् नग्न थे । उनकी जटायें सब खुली हुईं थीं जोकि प्रभु वेदान्तों के द्वारा जानने के योग्य हैं और इस भुवन के एक ही पूर्ण भरण करने वाले हैं वह ईश्वर महा कलाप धारी और योगीश्वरों के परम पद थे ।२।३। वह ईश्वर अणु से भी छोटा है और महान से भी महान् अर्थात् बडा है, समस्त भुवनों का स्वामी, महान और महानुभाव है किन्तु वह एक भिक्षु का रूप धारण किए हुये दारुवन में भिक्षा का समाचरण करता था ।४। मध्याह्न के समय में सभी विप्र और ऋषिगण अपने आश्रमों से तीर्थ को चले गये थे । उसी समय में वे सब ऋषियों की भार्यायें वहाँ पर समागत हो गई थी ।५। उन्होंने उन दिगम्बर स्वरूप धारी भगवान शम्भु को देखकर वे परस्पर में कहने लगीं थी—यह ऐसा एक भिक्षुक के रूप को धारण करने वाला कौन है जो इस समय में यहाँ पर समागत हो गया है । यह तो अपूर्व ही दर्शन वाला है । इसको हम सब अपनी सखियों के साथ भिक्षा देवें । ठीक है ऐसा ही करो—यह कहकर वे सब अपने घरों से बहुत ही प्रसन्नता से भिक्षा ले आयीं थी ।६।७।

भिक्षान्नं विविधं श्लक्ष्णं सोपचारं च शक्तितः ।
प्रदत्तं भक्षितं तेन देवेदेवेनशूलिना ।८।
काचिद्प्रियतमंशम्भुं बभाषेविस्मयान्विता ।
कोऽसित्वंभिक्षुकोभूत्वाआगतोऽत्रमहामते ।९।
ऋषीणामाश्रम शुद्ध किमर्थं नो निषीदसि ।
तयोक्तोऽपि तदाशम्भुर्बभाषेप्रहसन्निव ।१०।
ईश्वरोऽहं सुकेशान्ते पावने प्राप्तवानिमम् ।
ईश्वरस्य वच श्रुत्वा ऋषिभार्याउवाचतम् ।११।
ईश्वरोऽसि महाभाग कैलासपतिरेव च ।
एकाकिन कथ देव ! भिक्षार्थमटन तव ।१२।
एवमुक्तस्तया शम्भुः पुनस्तामब्रवीद्वचः ।
दाक्षायण्या विरहितो विचरामि दिगम्बरः ।१३।
भिक्षाटनार्थं सुश्रोणि ! संकल्परहितः सदा ।
तया सत्या विना किञ्चित् स्त्रीमात्रं मम भामिनि ।
न रोचते विशालाक्षि ! सत्यं प्रति वदामि ते ।१४।

यह भिक्षा का अन्न अनेक प्रकार का था, परम श्लक्ष्ण और शक्ति भर उपचारों से समन्वित था । उसे उन सबने दिया था और उसे प्राप्त कर उन देवों के भी शूली ने भक्षण कर लिया था ।८। उनमें से किसी ने विस्मय से संयुत होकर प्रियतम भगवान शम्भु से कहा था—आप कौन हैं जो भिक्षुक होकर हे महान् मति वाले ! इस समय में यहाँ पर आपने पदार्पण किया है ? यह ऋषियों का आश्रय परम शुद्ध है । आप हमारे मध्य में किसलिए स्थित हो रहे हैं ? उन ऋषि पत्नी द्वारा इस तरह से कहे गये भी भगवान शम्भु ने हँसते हुए ही यह कहा था—हे सुकेशान्ते ! मैं ईश्वर हूं और इस परम पावन आश्रम में प्राप्त हो गया हू । ऐसे ईश्वर के वचन का श्रवण करके ऋषिभार्या ने उनसे कहा था—हे महाभाग ! आप जब ईश्वर हैं और कैलास पर्वत के स्वामी हैं तो हे देव ! फिर एकाकी आपका यह इस तरह से भिक्षाटन क्यों

होता है ? उस ऋषि की भार्या के द्वारा इस तरह कहे गये शम्भु ने फिर उनसे यह वचन कहा था मैं अपनी पत्नी दाक्षायणी से विरहित होकर दिग-वंर होते हुए इसी तरह विचरण किया करता हूं। हे सुश्रोणि ! भिक्षाटन के लिए भी मैं सदा सङ्कल्प से रहित रहा करता हूं। हे भामिनी ! उस सती के बिना मुझे स्त्री मात्र कुछ भी अच्छी नहीं लगा करती हैं। हे विशालाक्षि ! मैं यह बात आपको पूर्ण रूप से सत्य ही कह रहा हूं। ।६-१४।

तस्योक्तं वचनं श्रुत्वाऽउवाचकमलेक्षणा ।
स्त्रियो हि सुखसंस्पर्शाः पुरुषस्य न संशयः ।१५।
ताः स्त्रियो वर्जिताः शम्भो ! त्वादृशेन विपश्चिता ।१६।
इति च प्रमदाः सर्वामिलितायत्र शङ्करः ।
भिक्षापात्रं च तच्छम्भोः पूरित च महागुणैः ।१७।
अन्नैश्चतुर्विधैः षड्भी रसैश्च परिपूरितम् ।
यदा शम्भुर्गन्तुकामः कैलास पर्वतं प्रति ।
तदा सर्वा विप्रपत्न्यो ह्यन्वगच्छन्मुदान्विताः ।१ ।
गृहकार्यं परित्यज्य चेरुस्तद्गतमानसाः ।
गतासु तासु सर्वासु पत्नीषु ऋषिसत्तमाः ।१६।
यावदाश्रममभेत्य तावच्छून्यंव्यलोकयन् ।
परस्परमथोचुस्ते पत्न्यः सर्वाः कुतोगताः ।२०।
न विद्मोऽथवैसर्वाः केननष्टेन चाहृताः ।
एवं विमृश्यमानास्तेविचिन्वन्तस्ततस्ततः ।२१।
समपश्यंस्ततः सर्वे शिवस्यानुगताश्चताः ।
शिवं दृष्ट्वा तु सम्प्राप्ताऋषयस्ते रुषान्विताः ।२२।
शिवस्याथाग्रता भूत्वा ऊचुः सर्वे त्वरान्विताः ।
किं कृतं हि त्वया शम्भो ! विरक्तेन महात्मना ।
परदारापहर्ताऽसि त्वमृषीणां न संशयः ।२३।

भगवान शिव के द्वारा कथित इस वचन का श्रवण करके यह कमल के सदृश नेत्रों वाली ऋषि पत्नी बोली—स्त्रियाँ निश्चय ही पुरुष के सुख संश्रय वाली हुआ करती हैं—इसमें तनिक भी संशय नहीं है। हे शम्भो ! आप जैसे महान विद्वान पुरुष ने उन स्त्रियों को वर्जित कर दिया है ।१५।१६। और इस प्रकार से उन समस्त प्रमदाओं ने सम्मिलित होकर जहाँ पर भगवान शंकर विराजमान थे उनके भिक्षा के पात्र को महागुण वाले चार प्रकार के अन्नों से और छै प्रकार के रसों से परिपूर्ण कर दिया था। जिस समय में भगवान शम्भु अपने कैलास पर्वत को जाने की इच्छा वाले हुए थे उस समय में वे सब विप्रों की पत्नियाँ भी परमानन्द से समन्वित होकर उनके ही पीछे जाने लगी थी ।१७।१८। शम्भु में ही अपना मन समासक्त करके उन्होंने अपने गृह का सम्पूर्ण कार्य त्याग दिया था और उन्हीं शम्भु के साथ में चरण करने लगी थीं। उन सब पत्नियों के गमन करने के बाद परम श्रेष्ठ ऋषि वृन्द ने जैसे ही अपने आश्रमों में आकर देखा तो सबको उस समय में शून्य ही पाया था। वे सब आपस में कहने लगे ये सबकी सब पत्नियाँ कहाँ चली गयी हैं। हम सब कुछ नहीं जानते हैं कि इन सबको किस नष्ट हुए व्यक्ति ने समाहृत कर लिया है, इस तरह से विचार करते हुए वे जहाँ-तहाँ पर खोज करने में तत्पर हो रहे थे। बाद में उन्होंने देखा कि वे सभी पत्नियाँ शिव के पीछे २ चली गयी हैं। भगवान शिव को देखकर वे सब ऋषिगण रोष से संयुक्त होते हुए वहाँ उनके पास प्राप्त हुए थे। वे सब भगवान शिव के सामने उपस्थित होकर बड़ी ही शीघ्रता के साथ वे सब कहने लगे थे। हे शम्भो ! आपने जो बहुत बड़ी महान आत्मा वाले एवं परम विरक्त हैं, यह क्या किया है। आप तो पराई दाराओं के अपहरण करने वाले हैं और आपने हम लोग ऋषियों की पत्नियों का अपहरण किया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१९।२०।२१।२२।२३।

एवं क्षिप्तः शिवोमौनी गच्छमानोऽपि पर्वतम् ।
तदा सऋषिभिः प्राप्तो महादेवोऽव्ययस्तथा ।२४।
यस्मात्कलत्रहर्ता त्वं तस्मात्पण्डो भवत्वरम् ।
एवं शप्तः समुनिभिर्लिङ्गं तस्यापतद्भुवि ।
भूमिप्राप्तं च तल्लिङ्गं ववृधे तरसा महत् ।२५।
आवृत्य सप्तपातालान्क्षणाल्लिङ्गमधोर्ध्वतः ।
व्याप्य पृथ्वीं समग्रां च मन्तरिक्षं समावृणोत् ।२६।
स्वर्गाः समावृताः सर्वेस्वर्गातीतमथाभवत् ।
न मही न च दिक्चक्रं न तोयं न च पावकः ।२७।
न च वायुर्न वाऽऽकाशं नाहङ्कारो न वा महत् ।
न चाव्यक्तं न कालश्च न महाप्रकृतिस्तथा ।२८।

अपने कैलाश पर्वत पर जाते हुए भी भगवान शिव इस प्रकार से समाक्षिप्त होते हुए भी मौन धारण किये हुये थे। उस समय में उन अव्यय महादेवजी को ऋषियों ने प्राप्त कर लिया था।२४। क्योंकि आप कलत्रों के हरण करने वाले हैं इसलिए बहुत ही शीघ्र आप षण्ड हो जावें। इस प्रकार से मुनियों के द्वारा शिव को शाप दिया गया था। और इसका प्रभाव यह हुआ था कि भगवान शिव का लिंग भूमि पर गिर गया था। भूमि पर प्राप्त हुआ वह लिंग बड़े ही वेग से महान होकर बढ़ने लग गया था।२५। वह लिंग सातों पातालों को समावृत करके क्षण भर में ही वह लिङ्ग नीचे से ऊपर की तरफ बढ़कर आ गया था। सम्पूर्ण पृथ्वी को व्याप्त करके फिर उस लिंग ने सम्पूर्ण अन्तरिक्ष को व्याप्त कर लिया था। सभी स्वर्गों को समावृत कर लिया था और इसके उपरान्त स्वर्ग से भी अतीत हो गया था। मही, दिशाओं का समुदाय, जल, पावक, वायु, आकाश, अहङ्कार, महत्तत्व, अव्यक्त, काल और महा प्रकृति ये सभी एकमय हो गये थे।२६।२७।२८।

नासीद्द्वैतविभागश्च सर्वलीनं तु तत्क्षणात् ।
यस्माल्लीनं जगत्सर्वं तस्मिंल्लिङ्गे महात्मनः ।२९।

लयनाल्लिङ्गमित्येवं प्रवदन्ति मनीषिणः ।
तथाभूतं वर्द्धमानं दृष्ट्वा तेऽपि सुरर्षयः ।३०।
ब्रह्मेन्द्रविष्णुवाय्वग्निलोकपालाः सपन्नगाः ।
विस्मयाविष्टमनसः परस्परमथाब्रुवन् ।३१।
किमायाममचविस्तारवत्त्वान्तः क्वचपीठिका ।
इतिचिन्तान्वितोविष्णुमूनु सर्वेसुरास्तदा ।३२।
अस्य मूलं त्वया विष्णो ! पद्मोद्भव ! च मस्तकम् ।
युवाभ्यां च विलोक्य स्यात्स्थाने स्यात्परिपालको ।३३।
श्रुत्वा तुतौमहाभागौवैकुण्ठकमलोद्भवौ ।
विष्णुर्गतो हि पाताल ब्रह्मा स्वर्गंजगामह ।३४।
स्वर्गं गतस्तदा ब्रह्मा अवलोकनतत्परः ।
नापश्यत्तत्र लिंगस्य मस्तकं च विचक्षणः ।३५।

उस भगवान सदाशिव के लिङ्ग को वृद्धि के कारण द्वैत विभाग ही नहीं रहा था । उसी क्षण में सब लीन हो गये थे । क्योंकि यह सम्पूर्ण जगत् उन महात्मा के लिंग मे लीन हो गया था । लय हो जाने से मनीषीगण सब कुछ को लिंग ही कहते थे क्योंकि सर्वत्र उन्हें लिङ्ग के दर्शन होते थे और अन्य सभी उसी मे लीन हो गये थे। उस प्रकार से वर्द्धमान होकर सर्वत्र व्याप्त हुए शिव के उस लिंग को देखकर वे सब सुरर्षिगण, ब्रह्मा, इन्द्र, विष्णु, वायु, अग्नि, समस्त लोकपाल, पन्नग आदि सभी विस्मय से समाविष्ट मन वाले होकर आपस में कहने लगे थे इसका कितना आयाम है, कैसा विलक्षण विस्तार है, इसका कहाँ पर अन्त है और कहाँ इसकी पीठिका है, इस तरह की चिन्ता से अत्यन्त समाकुल होते हुये सब सुरों ने उस समय में भगवान विष्णु से कहा था ।२९। ।३०।३१।३२। देवों ने कहा—हे विष्णो ! हे पद्म से उद्भव प्राप्त करने वाले ! आप इसका मूल और मस्तक दोनों ही के द्वारा देखने के योग्य हैं और आप दोनों ही समुचित परिपालक हैं । इसको भगवान विष्णु

और ब्रह्माजी ने श्रवण करके दोनों महाभागों ने यह जानने का विचार किया था। भगवान विष्णु तो पाताल लोक को गये थे और ब्रह्माजी स्वर्गलोक में यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए गये थे। स्वर्ग में गये ब्रह्माजी अवलोकन करने परायण हो गए थे किन्तु विचक्षण ब्रह्माजी ने उस शिव लिङ्ग का मस्तक वहाँ पर कहीं भी नहीं देखा था।३३।३४। ।३५।

तथागतेन मार्गेण प्रत्यावृत्तोऽब्जसम्भवः ।
मेरुपृष्ठमनुप्राप्तः सुरभ्या लक्षितस्ततः ।३६।
स्थिता या केतकीच्छायामुवाच मधुरंवचः ।
तस्या वचनमाकर्ण्य सर्वलोकपितामहः ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं छलोक्त्या सुरभिं प्रति ।३७।
लिङ्गं महाद्भुतंदृष्टं येनव्याप्तं जगत्त्रयम् ।
दर्शनार्थं च तस्यान्तं देवैः सम्प्रेषितोऽस्म्यहम् ।३८।
न दृष्टं मस्तकं तस्यव्यापकस्य महात्मनः ।
किं वक्ष्येऽहं च देवाग्रे चिन्तामेनाभिवर्त्तते ।३९।
लिङ्गस्य मस्तकं दृष्टं देवानां च मृषा वदे: ।
ते सर्वे यदि वक्ष्यन्तिइन्द्राद्यादेवतागणाः ।४०।
ते सन्ति साक्षिणो देवा अस्मिन्नर्थे वद स्वरम् ।
अर्थेऽस्मिन्भव साक्षी त्वं केतक्या सह सुव्रते ।४१।
तद्वचः शिरसागृह्य ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
केतकी सहिता तत्र सुरभी तदमानयत् ।४२।

कमल से समुत्पन्न ब्रह्माजी तथागत मार्ग से प्रत्यावृत्ति के द्वारा मेरु के पृष्ठ भाग पर प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर सुरभि ने उनको देखा था। वह वहाँ पर केतकी की छाया में स्थित थी। उसने परम मधुर वचन कहा था। उसके वचन का श्रवण करके समस्त लोकों के पितामह ने छल की उक्ति से सुरभि के प्रति हँसते हुए यह वाक्य कहा था।

।३६।३७। एक महान अद्भुत लिंग देखा था जिसने तीनों जगतों को व्याप्त कर रक्खा है। उसी के दर्शन के लिए देवगणों ने मुझे यहाँ भेजा है और उसका अन्त कहाँ पर यह जानने के लिए भी मैं उनके द्वारा भेजा गया हूँ। उस व्यापक महात्मा का मस्तक भी कहीं नहीं देखा गया है। अब मैं जाकर उन देवगणों के आगे बतलाऊँगा—यही मुझे एक बड़ी भारी चिन्ता व्याप्त हो रही है। या मैं यह मिथ्या उन देवगणों के आगे बोल दूं कि मैंने लिंग का मस्तक देख लिया है। यदि वे सब देवता जिनमें इन्द्र आदि सभी हैं यह कहेंगे कि तुम्हारे कोई साक्षिगण हैं तो आप इस विषय में शीघ्र बोलो। इस विषय में हे सुव्रते ! केतकी के साथ मेरे साक्षी बन जाओ।३८।३९।४०।४१। परमेष्ठी ब्रह्माजी के उस वचन को शिर के बल ग्रहण करके वहाँ पर केतकी के सहित सुरभी उसको मान लिया था।४२।

एवं समागतो ब्रह्मा देवाग्रे समुवाच ह ।४३।
लिङ्गस्य मस्तकं देवा दृष्टवानहमद्भुतम् ।
समीचीनं चर्चितं च केतकीदलसंयुतम् ।४४।
विशालं विमलं श्लक्ष्णं प्रसन्नतरमद्भुतम् ।
रम्यं च रमणीयं दर्शनीयं महाप्रभम् ।४५।
एतादृशं मयादृष्टं न दृष्टं तद्विनाक्वचित् ।
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सुराविस्मयमाययुः ।४६।
एवं विस्मयपूर्णास्तेइन्द्राद्यादेवतागणाः ।
तिष्ठन्ति तावत्सर्वेशोविष्णुरध्यात्मदीपकः ।४७।
पातालादागतः सद्यः सर्वेषामवदत्तदा ।
तस्याप्यन्तो न दृष्टो मे ह्यवलोकनतत्परः ।४८।
विस्मयोमे महाञ्जातः पातालात्परतश्चरन् ।
अतलं सुतलं चापि वितलं च रसातलम् ।४९।

इस प्रकार से ब्रह्माजी वहाँ वापिस समागत हो गये थे और देवों के समक्ष में यह बोले—हे देवगण ! इस लिंग का मस्तक मैंने देख लिया

है जोकि परम अद्भुत है। यह बहुत ही समीचीन है, चर्चित है और केतकी के दल से संयुत है ।४३।४४। यह बड़ा विशाल है, विमल है, लक्षण है, प्रसन्न तर एवं अद्भुत है। परमरम्य, रमणीय, दर्शन करने के योग्य और महान् प्रभा वाला है ।४५। ऐसा मैंने देखा है और उसके बिना कहीं नहीं देखा है। ब्रह्माजी के इस वचन को सुनकर सुरगण परम विस्मय को प्राप्त हो गये थे। इस प्रकार से विस्मय में भरे हुए इन्द्र आदि सभी देवगण तब तक वहीं पर स्थित रहे थे जब तक सर्व्वा-रम दीपक भगवान विष्णु तुरन्त ही पाताल लोक से समागत हो गये थे उनने उन सभी देवगणों से शीघ्रतापूर्वक कहा था। मैंने उसका कोई भी अन्त नहीं देखा है और मैं इसके बराबर अवलोकन करने में तत्पर होकर लगा रहा हूँ। पाताल से भी आगे विचरण करते हुए मुझे बड़ा भारी विस्मय उत्पन्न हो गया है। मैंने अतल, सुतल, वितल और रसा-तल तक खाक छान ली है ।४६-४९।

तथा गतस्तलं चैव पातालं च तथातलम् ।
तलातलानि तान्येवं शून्यवद्धि भाव्यते ।५०।
शून्यादपि च शून्यं च तत्सर्वं सुनिरीक्षितम् ।
न मूलं च तमध्यश्चान्तो ह्यस्यनविद्यते ।५१।
लिंगरूपी महादेवो येनेदं धार्यते जगत् ।
यस्य प्रसादादुत्पन्ना यूयं च ऋषयस्तथा ।५२।
श्रुत्वा सुराश्च ऋषयस्तस्यवाक्यमपूजयन् ।
तदा विष्णुरुवाचेदं ब्रह्माणं प्रहसन्निव ।५३।
दृष्टं हि चेत्त्वया ब्रह्मन् मस्तकं परमार्थतः ।
साक्षिणः के त्वयात्र प्रस्मिन्नर्थे प्रकल्पिताः ।५४।
आकर्ण्य वचनं विष्णोर्ब्रह्मालोकपितामहः ।
उवाच त्वरितेनैव केतकी सुरभीति च ।५५।
तेदेवा मम साक्षित्वे जानीहि परमार्थतः ।
ब्रह्मणो हि वचः श्रुत्वा सर्वे देवास्त्वरान्विताः ।५६।

इनके भी आगे मैं तल में गया था फिर पाताल और तलातल तक पहुँच गया था किन्तु वे सब शून्य की भाँति विभावित होते हैं। मैंने शून्य से भी परम शून्य सम्पूर्ण स्थल का भली-भाँति निरीक्षण किया था किन्तु इस लिंग का न तो कहीं पर मूल है, न मध्य है और न कहीं इसका अन्त ही है। यह तो लिंग रूपी सर्वेश महादेव ही है जिनके द्वारा यह समस्त जगत् धारण किया जाता है जिसके प्रसाद से आप लोग और सब ऋषिगण समुत्पन्न हुए हैं।५०।५१।५२। सुरों ने और ऋषियों ने यह सुनकर उनके वाक्य का बड़ा सत्कार किया था। उसी समय में भगवान विष्णु ने हँसते हुए ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन् ! यदि वास्तव में आपने इस शिव लिंग के मस्तक को देखा है तो आप ने इस अर्थ के विषय में कौन से साक्षी कल्पित किये हैं ? लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने भगवान विष्णु देव के इस वचन को सुनकर बहुत ही शीघ्रता से कहा था—केतकी और सुरभी ये दोनों ही हे देवगणो ! मेरे साक्षी हैं और इनको ही आप लोग साक्ष्य (गवाही) देने वाले समझ लो जो परमार्थ रूप से हैं। ब्रह्माजी के इस वचन का श्रवण करके सब देवता लोग बहुत ही शीघ्रता वाले हो गये थे।५३-५६।

आह्वानं चक्रिरे तस्याः सुरभ्याश्च तया सह।
आगते तत्क्षणादेवकार्यार्थं ब्रह्मणस्तदा ।५७।
इन्द्राद्यैश्च तदादेशैरुक्ता च सुरभीततः ।
उवाच केतकी सार्द्धं दृष्टो वै ब्रह्मणा सुराः ।५८।
लिंगस्य मस्तको देवा केतकीदलपूजितः ।
तदा नभोगता वाणीसर्वेषां शृण्वतामभूत् ।५९।
सुरभ्याचैवयत्प्रोक्त केतक्याचतथा सुराः ।
तन्मृषोक्तं च जानीध्वंनदृष्टोह्यस्यमस्तकः ।६०।
तदा सर्वेऽर्थविबुधाः सेन्द्रा वै विष्णुना सह ।
शेपुश्च सुरभिरोषान्मृषावादनतत्पराम् ।६१।

मुखेनोक्तं त्वयाऽद्यचं मनृतं च तथा शुभम् ।
अपवित्रं मुखंतेऽस्तु सर्वधर्मबहिष्कृतम् ।६२।
सुगन्धकेतकीचाऽपिअयोग्या त्वं शिवार्चने ।
भविष्यसि न सन्देहोअनृताचोवभामिनि ।६३।

इन देवों ने उसके तकी के सहित उस सुरभी का वहाँ पर समाह्वान किया था । उसी समय में उसी क्षण में ब्रह्माजी के कार्य को सम्पादन करने के लिए वे वहाँ पर आ गयीं थी । फिर इन्द्र आदि देवों ने सुरभी से कहा था । तब केतकी के सहित सुरभी ने कहा था—हे सुरगणो ! ब्रह्माजी ने केतकी के दल से पूजित लिंग का मस्तक देखा है । उसी समय में सब लोगों के श्रवण करते हुए आकाश में स्थित रहने वाली वाणी हुई थी—सुरभी ने तथा केतकी ने यह जो कुछ भी कहा है वह सभी मिथ्या ही कहा है । आप लोग अब यह समझ लीजिये कि ब्रह्माजी ने तथा इन दोनों ने लिंग का मस्तक नहीं देखा है ।५७।५८। ।५६।६०। उसी समय में इसके अनन्तर सब देवताओं ने इन्द्रदेव के साथ तथा भगवान विष्णु के सहित रोष से मिथ्या बोलने में तत्पर सुरभी को शाप दिया था—तूने इस अपने मुख से आज यह मिथ्या वचन कहे हैं इसलिए यह तुम्हारा परम शुभ मुख जो परम पवित्र माना जाता था आज से ही अपवित्र और सब धर्मों से बहिष्कृत हो जायगा । यह सुन्दर गन्ध वाली केतकी भी शिव अर्चना के अयोग्य हो जायगी । हे भामिनी ! इसमें अब कुछ भी सन्देह नहीं है कि आप अनृत भाषिणी हैं अतएव मिथ्या ही हो जायगी ।६१।६२।६३।

तदानभोगतावाणीब्रह्माणं च शशाप वै ।
मृषोक्तं च त्वया मन्द ! किमर्थं बालिशोन्नहि ।६४।
भृगुणा ऋषिभिः सार्कं तथैव च पुरोधसा ।
तस्माद्य य न पूज्याश्चभवेयुः क्लेशभागिनः ।६५।
ऋषयोऽपि च धर्मिष्ठास्तत्ववाक्यबहिष्कृताः ।
विवादनिरता मूढा अतत्वज्ञाः समत्सराः ।६६।

याचकाश्चावदान्याश्च नित्यं स्वज्ञानघातकाः ।
आत्मसंभाविताः स्तब्धाः परस्परविनिन्दकाः ।६७।
एवं शप्ताश्च मुनयो ब्रह्माद्या देवतास्तथा ।
शिवेन शप्तास्ते सर्वेलिङ्गं शरणमाययुः ।६८।

उसी समय मे आकाशवाणी ने ब्रह्माजी को भी शाप दिया था—हे मन्द ! आपने भी यह सब मिथ्या वचन कहे हैं । मूर्खता के वश में आकर ऐसा किस लिए तुमने कह दिया है ? भृगु पुरोहित और समस्त ऋषियो के सहित आपने ऐसा किया है । इससे आप लोग पूजा के योग्य नही रहोगे तथा सब लोग क्लेशो के भोगने वाले बन जाओगे । ऋषिगण भी बडे ही धर्मिष्ठ हैं किन्तु अब तत्व वाक्यों से बहिष्कृत, वेदो के वादों मे ही सर्वदा निरत रहने वाले, मूढ़, तत्वों के न जानने वाले, मात्सर्य्य से युक्त, याचक अवदान्य (दानशील न होने वाले), नित्य ही अपने ज्ञान के घात करने वाले, आत्म सम्भावित (अपने आप को प्रतिष्ठित मानने और कहने वाले) स्तब्ध और परस्पर में एक दूसरे की निन्दा करने वाले हो जायेंगे । इस प्रकार से सब मुनिगण और ब्रह्मादि देवगण शिव के द्वारा शाप दिये गये थे । वे फिर सबके सब शिव के लिंग की शरणागति में समागत हुये थे ।६४-६७।६८।

७—देवों द्वारा लिङ्ग की स्तुति

तदा च ते सुराः सर्वे ऋषयोऽपिभयान्विताः ।
ईडिरे लिङ्गमीशञ्चब्रह्माद्याज्ञानविह्वलाः ।१।
त्वं लिगरूपी तु महाप्रभावो वेदान्तवेद्योऽसि महात्मरूपी ।
येनैव सर्वं जगदात्ममूलं कृतं सदानन्दपरेण नित्यम् ।२।
त्वं साक्षीसर्वलोकानाहर्ता त्वं च विचक्षणः ।
रक्षणोऽसिमहादेवभैरवोऽसिजगत्पते ।३।
त्वया लिगस्वरूपेणव्याप्तमेतज्जगत्त्रयम् ।
क्षुद्राश्चैव वयं नाथ ! मायामोहितचेतसः ।४।

अहं सुराऽसुराः सर्वे यक्षगन्धर्वराक्षसाः ।
पन्नगाश्चपिशाचाश्च तथा विद्याधराह्यमी ।५।
त्वं हि विश्वसृजांस्रष्टा त्वं हि देवोजगत्पतिः ।
कर्त्तात्वंभुवनस्यास्यत्वंहर्तापुरुषः परः ।६।
त्राह्यस्माकं महादेव ! देवदेवनमोऽस्तुते ।
एवं स्तुतो हि वै धात्रा लिङ्गरूपीमहेश्वरः ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा—उस समय में वे सब सुरगण, ऋषि वृन्द और ज्ञान विह्वल ब्रह्मा प्रभृति सब भय से अत्यन्त भीत हो हो गए थे और फिर इन सब ने भगवान शिव के लिङ्ग का स्तवन किया था ।१। ब्रह्माजी ने कहा—हे भगवन ! आप महान् प्रभाव वाले लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले हैं आप वेदान्तों के द्वारा जानने योग्य हैं और महात्मा रूपी हैं । जिसने ही सानन्द परायण ने यह सब जगत आत्म मूल निरय कर दिया है ।२। आप समस्त लोकों के साक्षी और हर्त्ता हैं। आप परम विचक्षण हैं । आप ही रक्षा करने वाले हैं । हे महादेव ! आप इस जगत के पति हैं और भैरव हैं । आपने इस समय मे अपने इस लिंग के स्वरूप से इस त्रिलोकी को ही व्याप्त कर लिया है । हे नाथ ! हम लोग तो बहुत ही क्षुद्र हैं और माया से सम्मोहित चित्त वाले भी हो रहे हैं । मैं सब सुर, असुर, यक्ष, गन्धर्व, राक्षस, पन्नग, पिशाच और ये विद्याधर हैं किन्तु आप तो इन विश्व के सृजन करने वालों के भी सृजन करने वाले हैं । हे देव ! आप तो इस जगत के स्वामी हैं । आप ही इस भुवन के करने वाले हैं । आप ही इसके संहार करने वाले हैं । आप पर पुरुष हैं । हे महादेव ! आप अब हमारा परित्राण कीजिए । हे देवों के भी देव ! आपकी सेवा में हम सबका प्रणाम है । इस प्रकार से धाता के द्वारा वह लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले महेश्वर महाप्रभु की स्तुति की गई थी ।३-७।

ऋषयः स्तोतुकामास्तेमहेश्वरमकल्मषम् ।
अस्तुवन्गीभिरग्याभिः श्रुतिगीताभिराहृताः ।८।
अज्ञानिनो वयं कामान्न विदामोऽस्य सस्थितिम् ।
त्वं ह्यात्मा परमात्मा च प्रकृतिस्त्वं विभाविनी ।९।
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमीश्वरो वेदविदेकरूपो महानुभावैः परिचिन्त्यमानः ।१०।
त्वमात्मा सर्वभूतानामेको ज्योतिरिवैंधसाम् ।
सर्वं भवति यस्मात्त्वत्तस्मात्सर्वोऽसि नित्यदा ।११।
यस्माच्च सम्भवत्येतत्तस्माच्छम्भुरिति प्रभु ।१२।
त्वत्पादपङ्कजं प्राप्ता वयं सर्वे सुरादयः ।
ऋषयो देवगन्धर्वा विद्याधरमहोरगाः ।१३।
तस्माच्च कृपया शम्भो पाह्यस्माञ्जगतः पते ! ।१४।

उन कल्मष रहित महेश्वर देव की स्तुति करने की कामना वाले ऋषिगण भी जो श्रुति गीता से समागत थी अपनी परमोत्तम वाणियों के द्वारा स्तुति करने लगे थे। ऋषियों ने कहा—हम लोग तो बहुत ही अज्ञानी हैं क्योंकि कामना से परिपूर्ण रहा करते हैं आपकी संस्थिति को नहीं जानते हैं। आप तो आत्मा-परमात्मा और विभाविनी प्रकृति हैं। आप ही हम सबकी माता तथा पिता हैं। आप ही हमारे बन्धु हैं और आप ही हमारे सखा भी हैं। आप ईश्वर, वेदवित् और एक रूप हैं। आप महानुभावों के द्वारा सर्वदा परिचिन्त्य मान होते हैं।८।९।१०। आप समस्त भूतों के आत्मा हैं, आप एधों की एक ही ज्योति हैं। क्योंकि जिससे यह सभी कुछ होता है इसलिये आप नित्य ही सर्व स्वरूपों वाले हैं। जिससे यह सभी कुछ सम्भूत अर्थात् समुत्पन्न होता है इसी कारण से आप शम्भु प्रभु हैं। हम सभी सुर आदि आपके चरण रूपी कमलों की शरण मे प्राप्त हुए हैं। हम मे सब ऋषिगण, देव, गन्धर्व, विद्याधर और महोरग भी हैं। इसलिए हे

शम्भो ! हे जगत् के स्वामिन् ! अब कृपा करके इस महान् समागत भय से हमारी रक्षा कीजिए ।११—१४।

शृणुध्वं तु वचोमेऽद्य क्रियतां च वरान्वितैः ।
विष्णुं सर्वं प्रार्थयन्तुत्वरितेनतपोधनाः ।१५।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा शङ्करस्य महात्मनः ।
विष्णुं सर्वं नमस्कृत्यईडिरे च तदा सुराः ।१६।
विद्याधराः सुरगणा ऋषयश्च सर्वं
त्रातास्त्वयाऽद्य सकला जगदेकबन्धो ।
तद्वत्कृपाकर ! जनान्परिपालयाऽद्य
त्रैलोक्यनाथ ! जगदीश ! जगन्निवास ! ।१७।
प्रहस्य भगवान्विष्णुरुवाचेदं वचस्तदा ।
दैत्यैः प्रपीड़िता यूयं रक्षिताश्च पुरामयाः ।१८।
अद्यैवभयमुत्पन्नं लिङ्गादस्माच्चिरन्तनम् ।
न शक्यतेमयात्रातुमस्माल्लिङ्गभयात्सुराः ।१९।
अच्युतेनैवमुक्तास्तेदेवाश्चिन्तान्विताभवन् ।
तदानभोगतावाणीउवाचाश्वास्यवैसुरान् ।२०।
एतल्लिङ्गं सवृणुध्व पूजनाय जनार्दन ।
पिण्डीभूत्वा महाबाहोरक्षस्व सचराचरम् ।
तथेति मत्वा भगवान्वीरभद्रोऽभ्यपूजयत् ।।२१।

श्री महादेव जी ने कहा—आप लोग आज मेरा वचन श्रवण करो और त्वरा से समन्वित होकर उसी काम को आप लोगों को करना भी चाहिए। आप सब लोग शीघ्रता से समन्वित होकर—हे तपोधनो ! भगवान विष्णु की प्रार्थना करो। महान आत्मा वाले भगवान शङ्कर के उस वचन का श्रवण करके उस समय में सब सुरगणों ने भगवान विष्णु को नमस्कार करके उनका स्तवन करना आरम्भ कर दिया था ।१५।१६। देवगण ने कहा—हे जगत के एक बन्धो ! समस्त

सुरगण, ऋषि वृन्द और विद्याधर समस्त आज आपके द्वारा ही रक्षित हैं और रहे हैं। हे कृपा करने वाले ! आप तो इस त्रिलोकी के नाथ हैं, जगत् के ईश हैं और इस जगत् के आश्रय हैं। उसी भाँति जैसे समय-समय पर आप रक्षा करते रहे हैं अपने इन जनों का परिपालन करिये। उस समय में भगवान विष्णु हँसकर यह वचन बोले थे। आप लोगों पहिले दैत्यों ने पीडित किया था तो मैंने आपकी सुरक्षा की थी। आज ही इस लिंग से विरञ्जन भय समुत्पन्न हो गया है। हे सुरगणो ! इस लिंग के महान भय से मैं आपका त्राण नहीं कर सकता हूं। जब भगवान अच्युत ने इस प्रकार से कहा तो वे देवता लोग परम चिन्ता में आतुर हो गये थे। उसी समय में आकाश गामिनी वाणी ने समस्त सुरों को समाश्वासन प्रदान करते हुए कहा था—हे जनार्दन ! पूजन के लिए इस लिंग का सम्वरण कीजिये। हे महाबाहो ! पिण्डी भूत होकर इस समस्त चराचर जगत् की रक्षा कीजिये। तब भगवान ने तथास्तु (ऐसा ही होगा) यह मानकर वीरभद्र ने अभिपूजन किया था। ।१७-२१।

ब्रह्मादिभिः सुरगणैः सहितैस्तदानींसम्पूजितः
शिवविधानरतो महात्मा।
स वीरभद्रः शशिशेखरोऽसौ शिवप्रियो
रुद्रसमाखिलोक्याम् ।२२।
लिङ्गस्यार्चनयुक्तोऽसौ वीरभद्रोऽभवत्तदा।
तद्रूपस्यैव लिङ्गस्य येन सर्वमिद जगत् ।२३।
उद्भाति स्थितिमाप्नोतितथाविलयमेति च।
तल्लिङ्ग लिङ्गमित्याहुर्लयनात्तत्त्ववित्तमाः ।२४।
ब्रह्माण्डगोलकैर्व्याप्तं तथा रुद्राक्षभूषितम्।
तथा लिङ्गं महज्जातं सर्वेषां दुरतिक्रमम् ।२५।

तदा सर्वेऽथ विबुधा ऋषयो ये महाप्रभाः।
तुष्टुवुश्च महालिंगं वेदवादैः पृथक्-पृथक् ।२६।
अणोरणीयांस्त्वंदेवतथा त्वं महतोमहान् ।
तस्मात्त्वयाविधातव्यसर्वेषांलिङ्गपूजनम् ।२७।
तदानीमेव सर्वेण लिङ्गं च बहुशः कृतम् ।
सत्ये ब्रह्मेश्वरं लिंगं वैकुण्ठे च सदाशिवः ।२८।

उस समय में द्विज से समन्वित ब्रह्मा आदि महान् सुरगणों के द्वारा शिव की समर्चा के विधान मे रति रखने वाले महात्मा वह वीर सम्पूजित हुए थे जो चन्द्र को मस्तक में धारण करने वाले शिव के परम प्रिय और त्रिभुवन में भगवान् रुद्र के ही तुल्य थे ।२२। उस अवसर मे यह वीरभद्र शिव लिङ्ग की अर्चना में समायुक्त हो गये थे। यह लिङ्ग साक्षात् उन शिव के ही स्वरूप वाला था जिसके द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् उद्भूत होता है-स्थिति को प्राप्त होता है और विलय को प्राप्त हुआ करता है। हे तत्त्व के ज्ञाता मुनो ! लय होने से ही लिङ्ग "लिङ्ग" इस नाम से कहा गया है ।२३।२४। ब्रह्माण्ड गोलकों के द्वारा व्याप्त तथा रुद्राक्षों से विभूषित यह लिङ्ग सभी के लिये दुरति क्रम वाला महान् समुत्पन्न हो गया था ।२५। उस समय में समस्त देवगण और महती प्रभा से सुसम्पन्न ऋषि गणों ने वेद वादों के द्वारा पृथक्-पृथक् स्तवन किया था—हे देव ! आप अणु से भी अधिक अणु है और आप महान से अधिक महान् हैं। इस लिए आपके द्वारा सभी को लिंग का पूजन करना चाहिए। उसी समय में भगवान् शर्व ने बहुत-से लिंग कर दिये थे। सत्य लोक में ब्रह्मेश्वर नाम वाला लिंग है और वैकुण्ठ में सदाशिव हैं ।।२५-२८।।

अमरावत्यां सुप्रतिष्ठममरेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
वरुणेश्वरं च वारुण्यां याम्यांकालेश्वरंप्रभुम् ।२६।

नैऋ तेश्वरं च नैऋ त्या वायव्यांपावनेश्वरम् ।
केदार मृत्युलोके च तथैव अमरेश्वरम् ।३०।
ओङ्कार नर्मदाया च महाकालं तथैव च ।
काश्या विश्वेश्वर देव प्रयागेललितेश्वरम् ।३१।
त्रियम्बक ब्रह्मगिरौ कलौ भद्रेश्वरं तथा ।
द्राक्षारामेश्वरलिंग गङ्गासागरसङ्गमे ।३२।
सौराष्ट्रे च तथा लिंगसोमेश्वरमितिस्मृतम् ।
तथा सर्वेश्वर विन्ध्येश्रीशैलेशिखरेश्वरम् ।
कान्त्यामल्लालनाथ च सिंहनाथ च सिंगले ।३३।
विरूपाक्ष तथा लिंगकोटिशङ्करमेव च ।
त्रिपुरान्तक च भीमेशममरेश्वमेव च ।३४।
भोगेश्वरं च पाताले हाटकेश्वरमेव च ।
एवमादान्यनेकानि लिंगानि भुवनत्रये ।
स्थापितानि तदा देवैविश्वोपकृतिहेतवे ।३५।

अमरावती में अमरेश्वर नाम वाले सुप्रतिष्ठित हुए थे । वारुणी दिशा में वटेश्वर और याम्मी दिशा में कालेश्वर प्रभु सस्थापित हुए थे। नैऋ त्य दिशा मे नैऋ तेश्वर तथा वायव्य कोण में पावनेश्वर विराजमान हुए थे । इस मृत्युलोक मे केदार तथा अमरेश्वर स्थापित हुए । नर्मदा में ओङ्कार तथा महाकाल प्रतिष्ठित हुए थे । काशी पुरी में विश्वेश्वर (विश्वनाथ) और प्रयाग मे ललितेश्वर हैं ।२९।३०।३१। ब्रह्मगिरि में त्रियम्बक है, कलि में भद्रेश्वर हैं और गङ्गा सागर सगम में द्राक्षा रामेश्वर लिंग विराजमान है ३२। सौराष्ट्र मे सोमेश्वर लिंग है, विन्ध्य मे सर्वेश्वर तथा श्री शैल मे शिखरेश्वर नाम वाला लिंग प्रतिष्ठित है । क्रान्ति मे मल्लाल नाथ तथा सिंगल मे सिंहनाथ नामक लिंग विराजमान है ।३३। विरुपाक्ष लिंग कोटिशङ्कर, त्रिपुरान्तक, भीमेश, अमरेश्वर, भोगेश्वर और पाताल मे हाटकेश्वर लिंग हैं । इस प्रकार से

उपर्युक्त अनेक लिंग इस त्रिभुवन में प्रतिष्ठित हैं और उस समय में सम्पूर्ण विश्व के उपकार के लिए देवगणों ने इन्हें स्थापित किया है।३४।३५।

लिंगेशैश्च तथा सर्वैः पूर्णमासीज्जगत्त्रयम् ।
तथा च वीरभद्रांशाः पूजार्थममरैः कृताः ।३६।
तत्र विंशति संस्कारास्तेषामष्टाधिकाभवन् ।
कथिताः शंकरेणैव लिंगस्यार्चनसूचकाः ।३७।
सन्ति रुद्रेण कथिताः शिवधर्माः सनातनाः ।
वीरभद्रो यथा रुद्रस्तथाऽन्ये गुरवः स्मृताः ।३८।
गुरोर्जाताश्च गुरवो विख्याता भुवनत्रये ।
लिंगस्य महिमानं तु नन्दीजानातितत्त्वतः ।३९।
तथास्कन्दोहिभगवानन्येतेनामधारकाः ।
यथोक्ताः शिवधर्माहिनन्दिनापरिकीर्तिताः ।४०।
शैलादेन महाभागा विचित्रा लिंगधारकाः ।
शवस्योपरिलिंग च ध्रियते च पुरातनैः ।४१।
लिंगेन सहपञ्चत्वं लिंगेन सह जीवितम् ।
एते धर्माः सुमतिष्ठाः शैलादेन प्रतिष्ठिताः ।४२।

समस्त लिंगेशों के द्वारा ये तीनों जगत् परिपूर्ण था और अमर गणों के द्वारा पूजा के लिए वीर भद्रांश कर दिए गये थे। वहाँ पर आठ अधिक विंशति अर्थात् अट्ठाईस संस्कार हुए थे वे भगवान् शङ्कर ने ही लिंग की अर्चना के सूचक कहे थे ।३६।३७। भगवान् शिव के द्वारा कहे गये सनातन शिवधर्म हैं। जिस प्रकार से भगवान् रुद्र हैं उसी तरह वीर भद्र हैं अन्य गुरुगण कहे गये हैं ।३८। गुरु से गुरुवृन्द समुत्पन्न हुए थे जो भुवन त्रय में विख्यात थे। लिंग की महिमा को तत्त्व पूर्वक नन्दी जानते हैं। उसी प्रकार से भगवान् स्कन्द भी जानते हैं। अन्य जो हैं वे नाम धारक हैं। जो जिस तरह से शिवधर्म कहे

गये हैं वे नन्दी के द्वारा परिकीर्तित किये गये हैं ।३९।४०। शैलाद के द्वारा महाभाग विचित्र लिंग धारण हुए हैं । पुरातनों के द्वारा शव के ऊपर लिंग को धारण किया जाता है । लिंग के सह पञ्चत्व है और लिंग के साथ जीवित है । ये सब सुप्रतिष्ठ धर्म शैलाद के द्वारा प्रतिष्ठित हुए हैं ।४१।४२।

धर्मः पाशुपत श्रेष्ठः स्कन्देन प्रतिपालितः ।४३।
शुद्धापञ्चाक्षरीविद्याप्रासादी तदनन्तरम् ।
षडक्षरी तथा विद्याप्रासादस्यचदीपिका ।४४।
स्कन्दात्तत्समनुप्राप्तमगस्त्येन महात्मना ।
पश्चादाचार्यभेदेन ह्यागमा बहवोऽभवन् ।४५।
किं नु वै बहुनोक्तेन शिव इत्यक्षरद्वयम् ।
उच्चारयन्ति ये नित्यं ते रुद्रा नात्र संशयः ।४६।
सतामार्गंपुरस्कृत्य ये सर्वे ते पुरान्तकाः ।
वीरा माहेश्वरा ज्ञेयाः पापक्षयकरानृणाम् ।४७।
प्रसंगे नानुपगेणश्रद्धयाचयदृच्छया ।
शिवभक्तिम्प्रकुर्वन्ति ये वै ते यान्तिसद्गतिम् ।४८।
शृणुध्वं कथयामीह इतिहासं पुरातनम् ।
कृतं शिवालये यच्च पतग्या मार्जनं पुरा ।४९।

भगवान् स्कन्द के द्वारा प्रतिपालित पाशुपत धर्म परमश्रेष्ठ है ।४३। इसके अनन्तर प्रासादी शुद्धा पञ्चाक्षरी विद्या तथा प्रासाद की दीपिका षडक्षरी विद्या महान् आत्मा वाले अगस्त्य के द्वारा भगवान् स्कन्द से भली भाँति प्राप्त की थी । पीछे आचार्यों के भेद से बहुत से आगम हुए थे ।४४।४५। अत्यधिक कथन करने से क्या लाभ है । केवल 'शिव' — ये दो अक्षरों को जो नित्य ही उच्चारण किया करते हैं वे साक्षात् रुद्र ही हैं — इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ।४६। जो सत्पुरुषों के मार्ग को पुरस्कृत करके रहने वाले हैं वे सब

पुरान्तक हैं। मनुष्यों के पापों का क्षय करने वाले माहेश्वर वीर जानने के योग्य होते हैं।४७। जो प्रसग से अनुषंग से, श्रद्धा से और यदृच्छा से भगवान् सदाशिव की भक्ति किया करते हैं वे सद्गति को प्राप्त होते हैं।४८। यहाँ पर एक परम पुरातन मैं इतिहास कहता हूं उसका आप सब लोग श्रवण करिये। पहिले जो पतंग्या ने शिवालय में मार्जन किया था।४६।

आगता भक्षणार्थं हि नैवेद्यं केन चार्पितम्।
मार्जनं रजसस्तस्याः पक्षाभ्यामभवत्पुरा।५०।
तेन कर्मविपाकेन उत्तमं स्वर्गमागता।
भुक्त्वा स्वर्गसुखं चोग्रं पुनः संसारमागता।५१।
काशिराजसुता जातासुन्दरी नामविश्रुता।
पूर्वाभ्यासाच्च कल्याणी बभूवपरमासती।५२।
उपस्युपसि तन्वगीशिवद्वाररतासदा।
सम्मार्जनं च कुरुते भक्त्या परमया युता।५३।
स्वयमेव तदा देवी सुन्दरीराजकन्यका।
तथाभूतां च तां दृष्ट्वाऋषिरुद्दालकोऽब्रवीत्।५४।
सुकुमारी सती बाले स्वयमेव कथं शुभे!।
समार्जनं च कुरुषे कन्यकेत्वंशुचिस्मिते!।५५।
दासी दास्यश्चबहवः सन्ति देवि! तवाग्रतः।
तवाज्ञयाकरिष्यन्तिसर्वंसंमार्जनादिकम्।५६।

ये किसी के द्वारा समर्पित किये हुए नैवेद्य के भक्षण करने के लिये वहाँ शिवालय मे समागत हुए थे। पहिले उस पतंग्या के पंखों से वहाँ की रज का मार्जन हुआ था।५०। उस रज के मार्जनस्वरूप कर्म के विपाक से वह स्वर्ग में आ गई थी। वहाँ पर परमोग्र स्वर्ग के सुख का उपभोग करके पुनः वह संसार मे आ गयी थी। यहाँ पर वह सुन्दरी — इस नाम से प्रसिद्ध काशिराज की पुत्री होकर समुत्पन्न हुई

थी। पूर्व जन्म के अभ्यास से वह कल्याणी परम सती हुई थी।५१।
।५२। प्रत्येक दिन में प्रातः काल के समय में वह तत्वगी सदा भगवान्
शिव के द्वार पर रत रहा करती थी और परम भक्ति से युक्त होकर
वहाँ पर शिवालय में सम्मार्जन किया करती थी।५३। उस समय में
राजकन्या सुन्दरी स्वय ही शिवालय के मार्जन को किया करती थी।
उस प्रकार से सम्मार्जन करने वाली उसको देखकर उद्दालक ऋषि ने
उससे कहा था—हे बाले! हे शुभे! हे कन्यके! हे शुचि स्मितवाली!
आप तो परम सुकुमारा है और परम सती हैं। यहाँ पर आप स्वयं ही
यह शिवालय का सम्म जन क्यो करती हैं। हे देवि! आप तो राज-
कन्या हैं, आपके तो दास और दासियाँ ही अनेक हैं जो आपके आगे
यह सभी सम्मार्जन आदि कर्म आपकी आज्ञा से ही कर लेंगे।५४।
।५५।५६।

ऋषेस्तद्वचनश्रुत्वा प्रहस्येदमुवाच ह।
शिवसेवा प्रकुर्वाणा शिवभक्तिपुरस्कृताः।५७।
ये नराश्चैव नार्यश्च शिवलोकं व्रजन्तिवै।५८।
समार्जनचपाणिम्यापद्भ्यायानशिवालये।
तस्मान्मया च क्रियतेसम्मार्जनमतन्द्रितम्।५९।
नान्यत्किञ्चिन्न जानामिएकसम्मार्जनं विना।
ऋषिस्तद्वचनश्रुत्वामनसा च विमृश्यहि।६०।
अनया किं कृतं पूर्वं केन कस्य प्रसादनः।
तदा ज्ञातं च ऋषिणा तत्सर्वं ज्ञानचक्षुषा।
विस्मयेन समाविष्टस्तूष्णीभूतोऽभवत्तदा।६१।
सविस्मयोऽभूदथ तद्विदित्वा उद्दालको ज्ञानवतां वरिष्ठः।
शिवप्रभावं मनसा विचिन्त्य ज्ञानात्परं बोधमवाप शान्तः।६२।

ऋषि के उस वचन का श्रवण कर वह हँसकर ऋषि से यह
बोली थी—जो नर और नारियाँ शिव की भक्ति की भावना में निमग्न

होकर शिवकी सेवा किया करते हैं वे निश्चय ही शिव के लोक मे गमन किया करते हैं ।५७।५८। जो अपने हाथों से ही स्वयं सम्मार्जन किया करते हैं तथा अपने पैरो से चलकर शिवालय तक गमन किया करते हैं उन्हें ही शिवलोक को प्राप्त हुआ करता है । इसी कारण मैं मेरे द्वारा स्वयं ही निरालस्य होकर यहाँ पर नित्य ही सम्मार्जन किया जाता है ।५६। इस एक सम्मार्जन के अतिरिक्त अन्य मैं कुछ भी नहीं जानती हूं । महर्षि ने उसके इस वचन का श्रवण करके मन से विचार किया था कि यह कौन है और किसके प्रसाद से इसने पहिले जन्म मे क्या किया है । ऐसा विचार-विमर्श करने पर उस समय ऋषि ने अपने ज्ञान चक्षु के द्वारा उसी समय मे वह सभी कुछ ज्ञान कर लिया था । प्रासाद प्रणव है—यह मन्त्र शासन में प्रणव प्रासाद बीज संज्ञा होती है । उस समय में वह ऋषि विस्मय से समाविष्ट होकर तूष्णीभूत अर्थात् चुप हो गया था ।५६।६०।६१। वह विस्मय से समन्वित हो गया था। इसके अनन्तर ज्ञान वालो में परम वरिष्ठ उद्दालक यह सभी कुछ जान कर और भगवान् शिव के प्रभाव को मन मे सोच कर परम शान्त होते हुए ज्ञान से उसने परम ज्ञान प्राप्त किया था ।६२।

८—रावणोपाख्यान

रावणेन तपस्तप्तं सर्वेषामपि दुःसहम् ।
तपोधिपो महादेवस्तुतोष च तदा भृशम् ।१।
वरान्प्रायच्छत तदा सर्वेषामपि दुर्लभान् ।
ज्ञानं विज्ञानसहितं लब्धतेन सदाशिवात् ।२।
अजेयत्वं च संग्रामे द्वैगुण्यं शिरसामपि ।
पञ्चवक्त्रो महादेवोदशवक्त्रोऽथ रावणः ।३।
देवानृषीन्पितृंश्चैव निर्जित्यतपसा विभुः ।
महेशस्यप्रसादाच्चसर्वेषामधिकोऽभवत् ।४।

राजा त्रिकूटाधिपतिर्महेशेनकृतो महान् ।
सर्वेषां राक्षसानां च परमासनमास्थितः ।५।
तपस्विनां परीक्षार्थं यद्दर्षीणां विहिंसनम् ।
कृतं तेन तदा विप्रा रावणेन तपस्विना ।६।
अजेयो हि महाञ्जातो रावणो लोकरावणः ।
सृष्ट्यन्तरं कृतं येन प्रसादाच्छंकरस्य च ।७।

लोमश महर्षि ने कहा—रावण ने सब लोगों के लिए परम दुःसह तप का तपन किया था । उस समय में तप का स्वामी महादेव अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए थे ।१। उसी समय में सबको अतीव दुर्लभ वरदान प्रदान किये । उसने सदाशिव भगवान् से विज्ञान के सहित ज्ञान प्राप्त किया था ।२। संग्राम में उसने अजेयत्व की प्राप्ति की थी और शिर भी दुगुने प्राप्त कर लिये थे । महादेव तो पाँच ही मुख वाले थे किन्तु रावण दश मुखों वाला हो गया था ।३। विभु उसने समस्त देवों को, ऋषियों को और पितरों को तप के द्वारा निर्जित करके महेश के प्रसाद से सबसे अत्यधिक हो गया था ।४। महेश भगवान् ने महान् त्रिकूट का अधिपति राजा कर दिया था । वह रावण समस्त राक्षसों के परमासन पर समास्थित हो गया था ।५। हे विप्रगण ! उस समय में परम तपस्वी रावण ने तपस्वियों की परीक्षा के लिये ऋषियों का विहिंसन किया था । वह लोक रावण महान् अजेय हो गया था जिसने भगवान् शङ्कर के प्रसाद से सृष्ट्यन्तर अर्थात् रचना में अन्तर कर दिया था ।६।७।

लोकपाला जितास्तेन प्रतापेन तपस्विना ।
ब्रह्माऽपि विजितो येन तपसा परमेण हि ।८।
अमृतांशुकरो भूत्वा जितो येन शशी द्विजाः ।
दाहकत्वाज्जितो वह्निरीशः कैलासतोलनात् ।९।

ऐश्वर्येणाजितश्चेन्द्रो विष्णुः सर्वगतस्तथा।
लिंगार्चनप्रसादेन त्रैलोक्यंच वशीकृतम् ।१०।
तदा सर्वे सुरगणा ब्रह्मविष्णुपुरोगमाः।
मेरुपृष्ठं समासाद्य सुमंत्रं चक्रिरे तदा।११।
पीड़िताः स्मोरावणेनतपसादुष्करेण वै।
गोकर्णाख्येगिरौदेवाः श्रूयतां परमाद्भुतम् ।१२।
साक्षाल्लिगार्चनं येन कृतमस्ति महात्मना।
ज्ञानगेयं ज्ञानगम्यं यद्यत्परममद्भुतम् ।१३।
तत्कृतं रावणेनैव सर्वेषां दुरतिक्रमम् ।१४।

उस प्रतापी तपस्वी ने सम्पूर्ण लोक पालों को जीत लिया था और जिसने अपने परम उग्र तप के द्वारा ब्रह्मा जी को भी जीत लिया था। हे द्विजगण ! जिसने अमृतांशु कर होकर चन्द्र को जीत लिया था और दाहकत्व के होने से अग्नि को जीत लिया था। कैलास पर्वत को उत्तोलित अर्थात् हाथों से उठाकर भगवान् शिव को भी जीत लिया था क्योंकि शङ्कर भगवान् उस कैलास पर ही विराज मान रहा करते थे।८।९। ऐश्वर्य से इन्द्र को जीत लिया था तथा सर्वत्र रहने वाले भगवान् विष्णु को जीत लिया था। लिंग की अर्चना के प्रसाद से उस रावण ने सम्पूर्ण त्रैलोक्य को अपने वश में कर लिया था। उस समय में सब देवगणों ने जिनमें ब्रह्मा और विष्णु पुरोगामी थे मेरु पर्वत की पृष्ठ भूमि पर एकत्रित होकर मन्त्रणा करने लगे थे कि हम सब लोग परम दुष्कर तपश्चर्या के द्वारा रावण से उत्पीड़ित हो गये है। गोकर्ण नामक गिरि पर हे देव गणो ! इस परम अद्भुत का श्रवण करो। जिस महात्मा ने साक्षात् शिव के लिंग का अर्चन किया है। ज्ञान के द्वारा गेय (गान करने के योग्य), ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य जो-जो भी परम अद्भुत है वह सभी कुछ सबके लिये दुरतिक्रम रावण ने ही किया है ।।१०।११।१२।१३।१४।।

वैराग्यपरमास्थायऔदार्यं च ततोऽधिकम् ।
तेनैव ममता त्यक्तारावणेनमहात्मना ।१५।
सवत्सरसहस्राच्च स्वशिरो हि महाभुजः ।
कृत्वा करेणलिंगस्य पूजनार्थं समर्पयत् ।१६।
रावणस्य कबध चनदग्रे च समीपत. ।
योगधारणया युक्तं परमेण समाधिनाः ।१७।
लिंगेलयसमाधायकयापिकलया स्थितम् ।
अन्यच्छिरोविवृश्च्यैवतेनापिशिवपूजनम् ।१८।
कृत नैवान्यमुनिना तथा चैवापरेण हि ।१९।
एव शिरास्येव बहूनि तेन समर्पितान्येव शिवार्चनार्थे ।
भूत्वा कबधो हि पुन, पुनश्च तदा शिवोऽपी वरदो बभूव ।२०।
मया विनासुरस्तत्र पिंडीभूतेन वै पुरा ।
वरान्वरय पौलस्त्ययथेष्टं तान्ददाम्यहम् ।२१।

उस महात्मा रावण ने परम वैराग्य में समास्थित होकर और उससे भी अधिक औदार्य में समास्थित होकर ममता का पूर्ण रूप से त्याग कर दिया था। महान भुजाओ वाले उसने एक सहस्र वर्ष तक घोर तपश्चर्या करते हुए अपना मस्तक हाथ मे लेकर उसे लिंग की पूजा के लिए समर्पित कर दिया था। उस लिंग के समीप मे ही उसके आगे रावण का कबन्ध (धड़) योग की धारणा से युक्त होकर परम समाधि से लिंग मे किसी भी अत्यद्भुत कला से लय को प्राप्त कर स्थित रहा था। इसी भाँति उसके अपने अन्य शिर भी काट कर भगवान शिव का पूजन किया था। ऐसा अन्य किसी भी मुनि ने तथा किसी दूसरे ने नही किया था।१५।१६।१७।१८।१९। इस प्रकार से उसने अपने बहुत से शिरों को ही भगवान शिव की अर्चना के लिए समर्पित कर दिया था बारम्बार कबन्ध स्वरूप हो गया था। उसी समय में शिव वर प्रदान करने वाले हो गये थे।२०। वहाँ पर बिना सुर के पिण्डी भूत मैंने

उसने पहिले ही कहा था—हे पौलस्त्य ! वरदानों की कामना कर जो जो भी तुमको अभीष्ट हो, मैं उन सब वरों को देता हूँ ।२१।

रावणेन तदा चोक्तः शिवः परममङ्गलः ।
यदि प्रसन्नोभगवन्देयो मे वर उत्तमः ।२२।
न कामयेऽन्यं च वरं प्रार्थये त्वत्पदाम्बुजम् ।
यथातथा प्रदातव्यं यद्यस्ति च कृपा मयि ।२३।
तदा सदाशिवेनोक्तोरावणोलोकरावणः ।
मत्प्रसादाच्च सर्वंत्वंप्राप्स्यसेमनसेप्सितम् ।२४।
एवं प्राप्तं शिवात्सर्वं रावणेनसुरेश्वराः ।
तस्मात्सर्वंभवद्भिश्च तपसापरमेण हि ।२५।
विजेतव्योरावणोऽयमितिमे मनसिस्थितम् ।
अच्युतस्यवचः श्रुत्वाब्रह्माद्यादेवतागणाः ।२६।
चिन्तामापेदिरे सर्वे चिरन्तो विपथान्विताः ।
ब्रह्माऽपि चेन्द्रियग्रस्तः सुतां रमितुमुद्यतः ।२७।
इन्द्रोहि जारभावाच्च चन्द्रोहि गुरुतल्पगः ।
यमः कदर्यभावाच्च चञ्चलत्वात्सदागतिः ।२८।

उस समय में परम मङ्गल स्वरूप भगवान शिव से कहा था—हे भगवन् ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं तो मुझे एक ही सर्वोत्तम वरदान देने की कृपा कीजिए । मैं अन्य कोई भी वरदान नहीं चाहता हूँ, मैं केवल आपके चरण कमलों के समाश्रय प्राप्त करने का ही वरदान चाहता हूँ । यदि मुझ पर आपकी कृपा है तो यथा तथा यही मुझे प्रदान करिये ।२२।२३। उस समय उस लोकरावण रावण से भगवान सदाशिव ने कहा था—मेरे प्रसाद से सभी कुछ जो भी तुम्हारे मन में है तथा अभीष्ट है वह तुम अवश्य प्राप्त कर लोगे ।२४। हे सुरेश्वरो ! इसी प्रकार से उस रावण ने भगवान शिव से सभी कुछ प्राप्त कर लिया है इसलिए अब आप सबके द्वारा परमोत्तम तपश्चर्या से इस रावण को

भी जीत लेना चाहिए, यही बात मेरे मन में स्थित है। भगवान अच्युत के इस वचन का श्रवण करके ब्रह्मादि देवगण सब बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे क्योंकि वे चिरकाल से विषयों में लिप्त थे। पितामह ब्रह्मा भी इन्द्रियों में ग्रस्त थे और अपनी सुता के साथ रमण करने को समुद्यत हो गये थे। इन्द्रदेव भी जार भाव से युक्त थे तथा चन्द्रदेव भी गुरु शय्या पर गमन करने वाला था। यम में पूर्ण तथा कदर्य भाव था। सदागति वायुदेव चञ्चल थे।२५—२८।

पावकः सर्वभक्षित्वात्तथाऽन्येदेवतागणाः ।
अशक्ता रावणंजेतु तपसा च विजृम्भितम् ।२९।
शैलादो हि महातेजा गणाध्यक्षः पुरातनः ।
बुद्धिमान्नीतिनिपुणो महाबलपराक्रमो ।३०।
शिवप्रियो रुद्ररूपी महात्मा ह्युवाच सर्वानथ चंद्रमुख्यान् ।
कस्माद्यूय सम्भ्रमादागताश्च एतत्सर्वं कथ्यतां विस्तरेण ।३१।
नन्दिना च तदा सर्वे पृष्टाः प्रोचुस्त्वरान्विताः ।३२।
रावणेन वयंसर्वेनिर्जितामुनिभिः सहः ।
प्रसादयितुमायाताः शिव लोकेश्वरेश्वरम् ।३३।
प्रहस्य भगवान्नंदी ब्रह्माणं वै ह्युवाच ह ।
क्वयूयं क्व शिवः शम्भुस्तपसा परमेण हि ।
द्रष्टव्यो हृदि मध्यस्थः सोऽद्य द्रष्टुं न पार्यते ।३४।
यावद्भावा ह्यनेकाश्चइन्द्रियार्थास्तथैव च ।
यावच्च ममताभावस्तावदसौ हि दुर्लभः ।३५।

अग्निदेव सर्व भक्षिता का दोष था तथा अन्य भी सब देवता-गण अशक्त थे। तपश्चर्या के द्वारा रावण को जीतना एक विजृम्भित मात्र ही था। शैलाद पुरातन गणों में श्रेष्ठ महान तेजस्वी था। यह महान बुद्धिमान, नीति शास्त्र में परम निपुण, महान बल और पराक्रम से समन्वित थे। शिव के परम प्रिय रुद्र के रूप धारण करने वाले,

महात्मा वह चन्द्र जिनमें प्रमुख थे उन सबने बोले—आप सब किस सम्भ्रम से यहाँ पर समागत हुए हैं—यह विस्तार पूर्वक हमको बतलाइये। इस प्रकार से जब नन्दी के द्वारा पूछे गये तो सभी देवगण स्वरान्वित होकर कहने लगे थे।२९।३०।३१।३२। देवगण ने कहा—रावण ने समस्त मुनिगण के साथ हम लोगों को जीत लिया है इसलिए हम सब लोकों के ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान सदाशिव को प्रसन्न करने के लिए यहाँ पर आये हुए हैं। उस समय में भगवान नन्दी ने हँसकर ब्रह्माजी से कहा था—कहाँ तो आप हैं और कहाँ परम तप से समन्वित भगवान शम्भु शिव हैं। वह तो हृदय के मध्य में स्थित ही देखने के योग्य हैं। वे अब आज देखे नहीं जा सकते हैं। जब तक अनेक भाव हृदय में विद्यमान हैं तथा इन्द्रियों के अर्थ अर्थात् बहुत प्रकार के विषय मन में प्रविष्ट हो रहे हैं एवं जिस समय तक ममता की भावना हृदय में स्थित है तब तक भगवान ईश परम दुर्लभ ही हैं।३३।३४।३५।

जितेन्द्रियाणांशांतानांतन्निष्ठानांमहात्मनाम् ।
सुलभोलिंगरूपीस्याद्भवताहिसुदुर्लभः ।३६।
तदा ब्रह्मादयो देवा ऋषयश्च विपश्चितः ।
प्रणम्यनंदिनं प्राहुः कस्मात्त्वं वानराननः ।३७।
तत्सर्वं कथयास्य च रावणस्य तपोबलम् ।
कुबेरोऽधिकृतस्तेनशंकरेणमहात्मना ।
धनानामाधिपत्ये च तं द्रष्टुं रावणोऽव्रवीं ।३८।
आगच्छत्त्वरया युक्तः समारुह्यस्ववाहनम् ।
मां दृष्ट्वा चाब्रवीत्क्रुद्धः कुबेरोह्यत्रआगतः ।३९।
त्वया दृष्टोऽथवाऽत्रासीकथ्यतामविलम्बितम् ।
किंकार्यं धनदेनात्रइतिपृष्टोमयाहिसः ।४०।
तदोवाच महातेजा रावणो लोकरावणः ।
मय्यश्रद्धान्वितो भूत्वा विपयात्मासुदुर्मदः ।४१।

शिक्षापयितुमारब्धोमेवंकार्यमितिप्रभो ।
यथाऽहं च श्रियायुक्तआढ्योऽहं बलवानहम् ।
तथा त्वं भव रे मूढ मा मूढत्वमुपार्जय ।४२।

जो अपनी इन्द्रियो के जीतने वाले हैं, परम शान्ति की भावना से युक्त हैं, शिव मे ही परम निष्ठा रखने वाले हैं और महान आत्मा वाले हैं उनको ही लिंग रूपी भगवान शिव सुलभ हुआ करते हैं आप लोगो को तो वे सुदुर्लभ ही हैं।३६। उसी समय में ब्रह्मा आदि समस्त देवताओ और महान विद्वान ऋषिगणों ने नन्दी को प्रणाम करके कहा था कि आप वानर के तुल्य मुख वाले किस कारण से हो गये हैं यह सब कथा हमको बतलाइये तथा अन्य जो रावण का तपोबल है उसे भी कहिये।३७। नन्दीश्वर ने कहा—महात्मा शङ्कर ने कुबेर को धनो के आधिपत्य में अधिकृत कर दिया था। यहाँ पर उसको देखने के लिए अपने वाहन पर समारूढ होकर बडी ही शीघ्रता से युक्त होकर यहाँ पर रावण आया था। उसने यहाँ पर मुझको देखकर अत्यन्त क्रोधित होते हुए कहा था कि क्या यहाँ पर कुबेर आया था ? क्या आपने उसको यहाँ पर देखा है ? वह बहुत ही शीघ्र बिना कुछ बिलम्ब किये मुझे बतलाओ कि क्या वह यहाँ पर है। उस समय मे मैंने उससे पूछा था कि आज आपको धनद (कुबेर) से क्या काम है। उस समय मे लोक रावण, महान तेजस्वी रावण ने कहा था—मुझसे अश्रद्धा से युक्त होकर विषयों मे लिप्त आत्मा वाला तू अतीव सुदुर्मद हो गया है। मुझे ही आज शिक्षा देना तुमने आरम्भ कर दिया है। हे प्रभो ! ऐसा तुमको नही करना चाहिये। जैसा मैं श्री से युक्त हूँ और परम आढ्य हू तथा मैं बलवान भी हूँ। रे मूढ ! उसी प्रकार का तू भी हो जा और इस मूढता का उपार्जन मत करो।३८—४२।

अहं मूढः कृतस्तेन कुबेरेणमहात्मना ।
मया निराकृतो रोषात्तपस्तेपे स गुह्यकः ।४३।

कुबेरः स हि नंदिन्किमागतस्तव मन्दिरम् ।
दीयतां च कुबेरोऽद्यनात्रकार्याविचारणा ॥४४॥
रावणस्यवचः श्रुत्वाह्यवोचत्वरितोऽप्यहम् ।
लिंगकोसिमहाभागत्वमहं च तथाविधः ॥४५॥
उभयोः समतांज्ञात्वावृथाजल्पसि दुर्मते ।
यथोक्तः स त्ववादीन्मां चदनार्थंबलोद्धतः ॥४६॥
यथा भवद्भिः पृष्टोऽहं वदनार्थे महात्मभिः ।
पुरावृत्तं मयाप्रोक्तं शिवार्चनविधेः फलम् ।
शिवेन दत्तं सारूप्यं न गृहीतं मया तदा ॥४७॥
याचितं च मया शंभोर्वदनं वानरस्य च ।
शिवेन कृपया दत्तं मम कारुण्यशालिना ॥४८॥
निराभिमानिनो ये च निर्दंभानिष्परिग्रहाः ।
शंभोः प्रियास्तेविज्ञेयाह्यन्येशिववहिष्कृताः ॥४९॥

उस महात्मा कुबेर के द्वारा मैं मूढ बना दिया गया हूं। जब मैंने रोष से उसका निरादर कर दिया था तो उस गुह्यक (कुबेर) ने तपश्चर्या की थी ॥४३॥ रावण ने कहा—हे नन्दिन ! वह कुबेर आपके मन्दिर मे क्यों समागत हुआ था ? आज उस कुबेर को तुम मेरे सुपुर्द कर दो और इस विषय मे कुछ भी विचार मत करो ॥४४॥ रावण के इस वचन को सुनकर मैंने तुरन्त ही उससे यह कहा था—हे महाभाग ! आप लिङ्गक हैं अर्थात् शिव लिङ्ग की उपासना करने वाले हैं और मैं भी उसी प्रकार का उपासक हूँ। हम तुम दोनों की समता का ज्ञान प्राप्त करके भी हे दुर्मते ! यह सब व्यर्थ ही कह रहे हो। ऐसा ज्यों ही मैंने उससे कहा था वह मुझसे बोला—वदनार्थ में बल से उद्धत हो गया है। महान आत्मा वाले आपने जैसा मुझसे वदनार्थ में पूछा है। मैंने शिवार्चन की विधि का फल पुरावृत्त कहा है। भगवान शिव ने मुझे अपना सारूप्य प्रदान किया था, किन्तु उस समय में मैंने उसे स्वी-

कार नहीं किया था ।४५।४६।४७। मैंने उस समय मे भगवान शम्भु से वानर का मुहन याचित किया था। करुणाशाली शिव ने कृपा करके मुझे वह प्रदान कर दिया था ।४८। जो अभिमान से रहित हैं, दम्भ से शून्य हैं और परिग्रह हीन होते हैं वे ही लोग भगवान शम्भु के परम प्रिय होते हैं और अन्य जो होते हैं वे शिव के द्वारा बहिष्कृत हुआ करते हैं ।४९।

तथावदन्मया साद्‌र्धं रावणस्तपसोबलात् ।
मया च याचितान्येवदश वक्त्राणिधीमता ।५०।
उपहासकरं वाक्यंपौलस्त्यस्यतदासुराः ।
मयातदा हि शप्तोऽसौरावणोलोकरावणः ।५१।
ईदृशान्येव वक्त्राणि येषा वै सम्भवन्ति हि ।
तैः समेतो यदाकोऽपिनरवर्यो महातपाः ।
मा पुरस्कृत्य सहसा हनिष्यति न संशयः ।५२।
एवं शप्तोमया ब्रह्मन्रावणो लोकरावणः ।
अर्चितं केवलं लिंग विना तेन महात्मना ।५३।
पीठिकारूपस्येनविनातेनसुरोत्तमाः ।
विष्णुनाहिमहाभागास्तस्मात्सर्वं विधास्यति ।५४।
देवदेवोमहादेवो विष्णुरूपो महेश्वरः ।
सर्वे यूयमप्रार्थयन्तु विष्णुं सर्वगुहाशयम् ।५५।
अहं हि सर्वदेवाना पुरोवर्ती भवाम्यतः ।
ते सर्वे नन्दिनो वाक्यं श्रुत्वा मुदितमानसाः ।
वैकुण्ठमागता गीर्भिर्विष्णुं स्तोतुं प्रचक्रिरे ।५६।

तपोबल से रावण ने मेरे साथ इस प्रकार से कहा था कि धीमान् मैंने तो भगवान शम्भु से दशमुखों के हो जाने की याचना की थी। हे सुरगण ! यह उस समय मे पौलस्त्य का परम उपहास के करने वाला वाक्य था। उस समय मे लोको को डराने वाले उस रावण को

मैंने शाप दे दिया था। जिनको ऐसी ही मुख हुआ करते हैं, जिस समय में उनसे युक्त महान तपस्वी कोई नरवर्य होगा वह सहसा मुझको आगे करके मार डालेगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।५०।५१।५२। इस तरह से मेरे द्वारा शाप दिया हुआ है ब्रह्मन्! वह लोकरावण रावण था। उसने उस महात्मा के बिना केवल लिङ्ग का ही अर्चन किया था। हे महान भाग वाले सुरोत्तमो! उसने पीठिका रूप संस्थित उस विष्णु भगवान के बिना ही यह समर्चना की थी। अतएव वह विष्णु ही सब कुछ करेंगे। देवो के भी देव महेश्वर विष्णु के स्वरूप वाले महादेव हैं। इसलिए आप सब लोग सबके गुहाशय अर्थात् सबके अन्तर्यामी भगवान विष्णु की प्रार्थना करिये ।५३।५४।५५। इसलिए मैं आप सब लोगो के आगे रहने वाला होऊँगा। वे समस्त देवता लोग नन्दी के इस वाक्य का श्रवण कर बहुत ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे। फिर वे सभी वैकुण्ठ में समागत हो गये थे और वाणियों के द्वारा भगवान विष्णु की स्तुति करने लगे थे ।५६।

नमो भगवते तुभ्यं देवदेव! जगत्पते!।
त्वदाधारमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।५७।
एतल्लिंगंत्वयाविष्णोधृतं वै पिण्डरूपिणा।
महाविष्णुस्वरूपेणघातितौ मधुकैटभौ ।५८।
तथा कमठरूपेण धृतो वै मंदराचलः।
वराहरूपमास्थाय हिरण्याक्षो हतस्त्वया ।५९।
हिरण्यकशिपुर्दैत्यो हतोनृहरिरूपिणा।
त्वयाचैव वलिर्बद्धो दैत्यो वामनरूपिणा ।६०।
भृगूणामन्वये भूत्वा कृतवीर्यात्मजोहतः।
इतोप्यस्मान्महाविष्णो तथैव परिपालय ।६१।
रावणस्य भयादस्मात्त्रातुं भूयोऽर्हसि त्वरम् ।६२।

एवं सम्प्रार्थितो देवैर्भगवान्भूतभावनः ।
उवाच च सुरान्सर्वान्वासुदेवो जगन्मयः ।६३।
हे देवाः श्रूयतां वाक्यप्रस्तावसदृशमहत् ।
शैलादिं च पुरस्कृत्यसर्वे यूय त्वरान्विताः ।
अवतारान्प्रकुर्वन्तु वानरीं तनुमाश्रिताः ।६४।

देवगण ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस सम्पूर्ण जगत् के स्वामी हैं। भगवान आपके लिए हमारा नमस्कार है। इस सम्पूर्ण चराचर जगत् के आप ही एक मात्र आधार हैं ।५७। हे विष्णो ! पिण्ड रूपी आपने इस लिंग को धारण किया है। महा विष्णु के स्वरूप से आपने मधु और कैटभ दोनों असुरों का हनन किया था ।५८। आपने कमठ रूप से मन्दराचल को धारण किया था तथा आपने वराह के स्वरूप में समास्थित होकर हिरण्याक्ष का वध किया था। नृसिंह के स्वरूप को धारण करके आपने हिरण्यकशिपु दैत्य का हनन किया था और वामन रूपी आपने ही बलि दैत्य को बद्ध किया था। भृगुओं के वंश में जन्म धारण करके कृतवीर्य के पुत्र सहस्रार्जुन का हनन किया था। हे महा विष्णो ! उसी भाँति से यहाँ पर भी हमारी रक्षा आप कीजिए। रावण के इस भय से आप बहुत ही शीघ्र पुनः रक्षा करने के योग्य होते हैं ।५९।६०।६१ ६२। इस प्रकार से देवगणों के द्वारा भूतों पर दया करने वाले भगवान् समस्त देवों से जगन्मय वासुदेव बोले—हे देवगणों ! आपके इस प्रस्ताव के सदृश मेरा महान् वाक्य श्रवण करो। आप सभी लोग अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होते हुए शैलादि को अपने आगे करके वानरी तनु (शरीर) का समाश्रय ग्रहण करते हुए अवतारों को करो ।६३।६४।

अहं हि मानुषो भूत्वा ह्यज्ञानेन समावृतः ।
संभविष्याम्ययोध्यायां गृहे दशरथस्य च ।
ब्रह्मविद्यासहायोऽस्मि भवतां कार्यसिद्धये ।६५।

जनकस्य गृहे साक्षाद् ब्रह्मविद्या जनिष्यति ।
भक्तो हि रावणः साक्षाच्छिवध्यानपरायणः ।६६।
तपसा महता युक्तो ब्रह्मविद्यां यदेच्छति ।
तदा सुसाध्यो भवति पुरुषो धर्मनिर्जित. ।६७।
एवं संभाष्य भगवान्विष्णुः परममङ्गलः ।
वालीचेन्द्रांशसम्भूत सुग्रीवोंऽशुमतः सुतः ।६८।
तथा ब्रह्मांशसम्भूतो जाम्बवानृक्षकुञ्जरः ।
शिलादतनयो नन्दीशिवस्यानुचरः प्रियः ।६९।
यो वै चैकादशो रुद्रो हनूमान्स महाकपिः ।
अवतीर्णः सहायार्थं विष्णोरमिततेजसः ।७०।

मैं फिर अज्ञान से समावृत होकर मनुष्य होऊँगा और राजा दशरथ के घर में अयोध्या पुरी में जन्म ग्रहण करूँगा। आप सब लोगों के कार्य की सिद्धि के लिये मैं ब्रह्म विद्या की सहायता वाला होऊँगा। वह ब्रह्म विद्या राजा जनक के गृह में जन्म ग्रहण करेगी। परमभक्त रावण साक्षात् शिव के ध्यान में परायण होकर महान् तपश्चर्या से युक्त जब ब्रह्म विद्या की इच्छा करेगा तो उसी समय में वह धर्म निर्जित पुरुष सुसाध्य हो जायगा।६५।६६।६७। परम मङ्गल स्वरूप भगवान् विष्णु ने इस तरह से कहकर इन्द्र के अंश से सम्भूत बाली, अंशुमान् का पुत्र सुग्रीव का ऋक्ष कुञ्जर जाम्बवान् ब्रह्मा के अंश से सम्भूत हुआ। शिलाद का तनय (पुत्र) नन्दी भगवान् शिव का प्रिय अनुचर था जो एकादश रुद्र रूप महा कपि था वह हनुमान् हुआ। इसी भाँति से अपरिमित तेज धारण करने वाले भगवान् विष्णु की सहायता करने के लिये अवतीर्ण हुए थे।६८।६९।७०।

मैन्दादयोऽथ कपयस्ते सर्वे सुरसत्तमाः ।
एवं सर्वसुराणामवतेरुर्यथाक्रमम् ।७१।

तथैव विष्णुरुत्पन्नः कौशल्यानन्दवर्द्धनः ।
विश्वस्य रमणाच्चैव राम इत्युच्यते बुधैः ।७२।
शेषोऽपि भक्त्या विष्णोश्च तपसाऽवातरद्भवि ।७३।
दोर्दण्डावपि विष्णोश्च अवतीर्णौप्रतापिनौ ।
शत्रुघ्नभरताख्यौ च विख्यातौभुवनत्रये ।७४।
मिथिलाधिपतेः कन्यायाउक्ताब्रह्मवादिभिः ।
सा ब्रह्मविद्याऽवतरत्सुराणांकार्यसिद्धये ।
सीता जाता लाङ्गलस्य इव भूमिविकर्षणात् ।७५।
तस्मात्सीतेति विख्याता विद्या सान्वीक्षिकी तदा ।
मिथिलायां समुत्पन्ना मैथिलीत्यभिधीयते ।७६।
जनकस्य कुले जाता विश्रुताजनकात्मजा ।
ख्याता वेदवती पूर्वं ब्रह्मविद्याऽघनाशिनी ।७७।

वे सब सुरश्रेष्ठ तथा मैन्द आदि ऋषिगण इसी प्रकार से यथातथ अवतीर्ण हुए थे। उसी भाँति कौशल्या के आनन्द का वर्द्धन करने वाले भगवान् विष्णु समुत्पन्न हुए थे। समस्त विश्व के रमण कराने से बुधो के द्वारा "राम"—इस नाम से कहे जाते हैं। भगवान् शेष भी विष्णु भगवान् की भक्ति के कारण से तप के द्वारा इस भू-मण्डल में अवतीर्ण हुए थे। प्रतापी दोर्दण्ड भी जो भगवान् विष्णु के थे उस समय में अवतीर्ण हुए थे। वे दोनो दोर्दण्ड भुवनत्रय मे भरत और शत्रुघ्न इन दो शुभ नामो से विख्यात हुए थे ।७१।७२।७३।७४। जो मिथिला देश के स्वामी की कन्या थी वह ब्रह्म वादियों के द्वारा ब्रह्म-विद्या कही गयी थी जो कि सुरो के कार्य की सिद्धि के लिए अवतीर्ण हुई थी। यह सीता हल के द्वारा भूमि के विकर्षण से समुत्पन्न हुई थी ।७५। इसी कारण से उस समय मे वह आन्विक्षिकी की विद्या "सीता" इस नाम से विख्यात हुई थी। यह मिथिला देश मे समुत्पन्न हुई थी इसलिये यह "मैथिली"—इस शुभ नाम से भी कही जाती है। वह

राजा जनक के कुल में समुत्पन्न हुई थी अतएव वह जनक राजा—इस नाम से विश्रुत हुई थी। यह सबको के नाश करने वाली ब्रह्म विद्या पहिले वेदवती—इस नाम से विख्यात हुई थी।७६।७७।

सा दत्ता जनकेनैव विष्णवे परमात्मने।७८।
तयाऽथ विद्यया सार्द्धं देवदेवो जगत्पतिः।
उग्रे तपसि लीनोऽसौ विष्णुः परममङ्गलः।७९।
रावणं जेतुकामो वै रामो राजीवलोचनः।
अरण्यवासमकरोद् देवानां कार्यसिद्धये।८०।
शेषावतारोऽपि महांस्तपः परमदुष्करम्।
तताप परयाशक्त्या देवानां कार्यसिद्धये।८१।
शत्रुघ्नो भरतश्चैव तेपतुः परमन्तपः।८२।
तथाऽसौ तपसा युक्तः सार्द्धं तं देवतागणैः।
सगणं रावणं रामः षड्भिर्मासैरथोऽहनत्।
विष्णुना पातितः शस्त्रैः शिवसायुज्यमाप्तवान्।८३।
सगणः स पुनः सद्यो बन्धुभिः सह सुव्रताः।८४।

उसको स्वयं राजा जनक ने ही परमात्मा विष्णु को प्रदान किया था।७८। इसके अनन्तर देवों के देव भगवान् जगत्पति उस विद्या के साथ में परमोग्र तप में यह परम मङ्गल प्रभु लीन हो गये थे। राजीव (कमल) के समान लोचनों वाले भगवान् श्री राम रावण को जीतने की कामना वाले थे। उन्होंने देवगणों के कार्य की सिद्धि के लिये अरण्य का निवास किया था। शेष के अवतार वाले ने भी देवताओं के कार्य की सिद्धि के लिए अपनी परा शक्ति के द्वारा परम दुष्कर एवं महान् तपश्चर्या की थी। शत्रुघ्न और भरत ने भी परम तप का तपन किया था।७९।८०।८१।८२। इसके उपरान्त देवगणों के साथ तपश्चर्या से युक्त इन भगवान् श्री राम ने छै ही मासों के अन्दर गणों के सहित रावण को मार डाला था। भगवान् विष्णु ने शस्त्रों से उसका

वध किया था। वह रावण भगवान् शिव के स्वरूप को प्राप्त हो गया था। हे सुव्रतो ! उसने अपने समस्त बन्धु गणों के साथ तथा अपने गणों के सहित पुनः तुरन्त ही शिव की स्वरूपता प्राप्त कर ली थी ।८३।८४।

शिवप्रसादात्सकलं द्वैताद्वैतमवाप ह।
द्वैताद्वैतविवेकार्थमृषयोऽप्यत्र मोहिताः।
तत्सर्वं प्राप्नुवन्तीह शिवार्चनरता नराः।८५।
येऽर्चयन्ति शिवं नित्यं लिङ्गरूपिणमेव च।
स्त्रियो वाऽप्यथवा शूद्राः श्वपचा ह्यन्त्यवासिनः।
तं शिवं प्राप्नुवन्त्येव सर्वदुःखोपनाशनम्।८६।
पशवोऽपि परं याताः किं पुनर्मानुषादयः।८७।
ये द्विजा ब्रह्मचर्येण तपः परममास्थिताः।
वर्षैरनेकैर्यज्ञानां तेऽपि स्वर्गपरा भवन्।८८।
ज्योतिष्टोमो वाजपेयो ह्यतिरात्रादयो ह्यमी।
यज्ञाः स्वर्गं प्रयच्छन्ति सत्रिणां नात्र संशयः।८९।
तत्र स्वर्गसुखं भुक्त्वा पुण्यक्षयकरं महत्।
पुण्यक्षयेऽपि यज्वानो मर्त्यलोकं पतन्ति वै।९०।
पतितानां च संसारे दैवाद्बुद्धिः प्रजायते।
गुणत्रयमयी विप्रास्तासु तास्विह योनिषु।९१।
यथा सत्त्वं संभवति सत्त्वयुक्तभवं नराः।
राजसाश्च तथा ज्ञेयास्तामसाश्चैव ते द्विजाः।९२।

उसने भगवान् शिव प्रसाद से सम्पूर्ण द्वैता द्वैत की प्राप्ति कर ली थी। यह द्वैता द्वैत विवेक ऐसा है जिसको जानने के लिए इस विषय में बड़े-बड़े महर्षि गण भी मोहित हो जाया करते हैं। उस सम्पूर्ण द्वैता द्वैत सिद्धान्त को भगवान् शिव के समर्चन में निरत रहने वाले मनुष्य इस संसार में प्राप्त कर लिया करते हैं।८५। जो पुरुष नित्य प्रति लिंग स्वरूप वाले भगवान् शिव का अर्चन किया करते हैं

चाहे वे स्त्रियाँ हों अथवा पुरुष हों, शूद्र हों, श्वपच हों या अन्त्यवासी हों क्यों न हों वे सभी शिव के लिगार्चन के प्रभाव से समस्त दुःखों के रूप नाश करने वाले भगवान् शिव की सन्निधि को अवश्य ही प्राप्त कर लिया करते हैं ।८६। शिव लिंग की अर्चना का प्रभाव तो ऐसा कि वश पशु भी परम पद को प्राप्त कर लिया करते हैं फिर मनुष्य आदि की तो बात ही क्या है ।८७। जो द्विज ब्रह्मचर्य पूर्वक अनेक वर्षों तक यज्ञों के परम तप में समास्थित हैं वे भी स्वर्ग पर हो जाया करते हैं । ज्योतिष्टोम, वाजपेय और ये अतिरात्रादि यज्ञ यजन करने वालों को स्वर्ग प्रदान किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । यह स्वर्ग प्राप्ति का सुख महान् पुण्यों के क्षय करने वाला है—उस सुख को भोग कर किये हुए समस्त पुण्य के क्षीण हो जाने पर यज्ञगामी फिर इसी मर्त्य लोक में पतन प्राप्त किया करते हैं । जब इस संसार में पुनः पतन हो जाता है तो उन पतितों की दैव वश से बुद्धि उत्पन्न हो जाया करती है । वह बुद्धि गुणत्रय मयी होती है । हे विप्रगण ! जिस प्रकार से सत्त्व सत्त्व युक्त भव काल जन्म ग्रहण किया करता है । हे द्विजगण ! वे मनुष्य राजस और तामस ही जानने चाहिए ।८८-९२।

एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमिता बहवो जनाः ।
यदृच्छयादैवगत्या शिवं संसेवते नरः ।९३।
शिवध्यानपराणां च नाराणां यतचेतसाम् ।
मायानिरसनंसद्योभविष्यति न चान्यथा ।९४।
मायानिरसनात्सद्यो नश्यत्येव गुणत्रयम् ।
सदागुणत्रयातीतोभवतीति स मुक्तिभाक् ।९५।
तस्माल्लिङ्गार्चनं भाव्यंसर्वेषामपिदेहिनाम् ।
लिङ्गरूपी शिवोभूत्वात्रायते सचराचरम् ।९६।
पुरा भवद्भिः पृष्टोऽहं लिङ्गरूपीकथंशिवः ।
तत्सर्वं कथितं विप्रायाथातथ्येन सम्प्रति ।९७।

कथं गरं भक्षितवाञ्छिवो लोकमहेश्वरः ।
तत्सर्वं श्रूयतां विप्रा यथावत्कथयामि वः ।६८।

इस प्रकार से इस संसार के चक्र में बहुत-से मनुष्य भ्रमण किया करते हैं। दैवगति से यदृच्छा से मनुष्य भगवान् शिव का सेवन किया करता है। जो नर भगवान् शिव के ध्यान में परायण होते हैं और संयत चित्त वाले होते हैं उनकी माया का निरसन तुरन्त ही हो जायगा—इसके अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार से नहीं होता है। जब माया का निरसन हो जाता है तो तुरन्त सत्त्व, रज, तम इन तीनों गुणों का नाश हो जाया करता है। जब मनुष्य गुणों से अतीत हो जाया करता है तो वह मुक्ति के प्राप्त करने का पूर्ण अधिकारी हो जाता है। इसीलिए समस्त देहधारियों को शिव लिंग का अर्चन अवश्य ही करना चाहिए। लिंग रूपी शिव होकर इस चराचर जगत् का त्राण किया करता है। पहिले मुझ से आप लोगों ने पूछा था कि यह भगवान् शिव लिंग के स्वरूप को धारण करने वाले कैसे हुए थे। हे विप्रगण! वह सभी कुछ इस समय मे याथातथ्य रूप से आप लोगों को कह कर बतला दिया है। लोक महेश्वर भगवान् शिव ने गरल का भक्षण कैसे किया था—इस सबको भी हे विप्र वृन्द! आप श्रवण करिये। मैं यथावत् सब आपको बतला रहा हूँ ।।६३-६८।।

६—गुरु की अवज्ञा से इन्द्र का राज्य भङ्ग

एकदा तु सभामध्यआस्थितोदेवराट्स्वयम् ।
लोकपालैः परिवृतोदेवैश्चऋषिभिस्तथा ।१।
अप्सरोगणसंवीतो गन्धर्वैश्च पुरस्कृतः ।
उपगीयमानविजयः सिद्धविद्याधरैरपि ।२।
तदाशिष्यैः परिवृतो देवराजगुरुः सुधीः ।
आगतोऽसौ महाभागोबृहस्पतिरुदारधीः ।३।

तं दृष्ट्वः सहसाः देवाः प्रणेमुः समुपस्थिताः ।
इन्द्रोपिददृशे तत्र प्राप्तंवाचस्पतिंतदा ।४।
नोवाच किञ्चिद्दुर्मेधावचो मानपुरः सरम् ।
नाह्वानं नासनं तस्य न विसर्जनमेवच ।५।
शक्रं प्रमत्तं ज्ञात्वाऽथ मदाद्राज्यस्य दुर्मतिम् ।
तिरोधानमनुप्राप्तो बृहस्पतीरुषान्वितः ।६।
गते देवगुरोतस्मिन्विमनस्काऽभवन्सुराः ।
यक्षानागाः सगन्धर्वाश्चृषयोऽपिनथाद्विजाः ।७।

महर्षि लोमश ने कहा—एक बार सभा के मध्य में देवराज इन्द्र स्वयं समास्थित हो रहे थे । उनके चारों ओर लोकपाल, देव और ऋषिगण विराजमान थे । वह अप्सराओं के नृत्य को देखने में मग्न थे गन्धर्वगण आगे गमन कर रहे थे और सिद्ध तथा विद्याधरों के द्वारा उनके विजय यश का गायन हो रहा था । उसी समय में शिष्यों के सहित देवराज के सुधी गुरुदेव उदार बुद्धि वाले महाभाग बृहस्पति वहाँ पर समागत हो गये थे ।१।२।३। उनको देखकर सब देवगण सहसा उठ खड़े हुए और सबने उनको प्रणाम किया था । उस समय में वहाँ पर प्राप्त हुए वाचस्पति को इन्द्रदेव ने भी स्वयं देखा था किन्तु उस दुष्ट बुद्धि वाले ने मान पूर्वक उनसे कुछ भी नहीं कहा था । न तो उनका कुछ स्वागत ही किया—न आसन दिया और और न उनकी विदाई ही की । इसके अनन्तर बृहस्पति जी ने इन्द्र को राज्य के मद से प्रमत्त दुर्मति समझकर क्रोध से युक्त होकर अपना तुरन्त ही वहाँ से तिरोधान कर लिया था ।४।५।६। देव गुरु के चले जाने पर समस्त सुरगण बहुत ही उदास हो गये थे । सब यक्ष, नाग, गन्धर्व, ऋषिवृन्द और द्विजगण विमनस्क हो गये थे ।७।

गान्धर्वस्यावसानेतु लब्धसञ्ज्ञोहरिः सुरान् ।
पप्रच्छक्वरितेनैव क्व गतो हि महातपाः ।८।

तदैव नारदेनोक्त शक्रो देवाधिपस्तथा ।
त्वयाकृताह्यवज्ञा च गुरोर्नान्यत्र संशयः ।९।
गुरोरवज्ञया राज्य गतं ते बलसूदन ! ।
तस्मात्क्षमापनीयोऽसौ सर्वभावेन हि त्वया ।१०।
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्यनारदस्य महात्मनः ।
आसनात्सहसोत्थायतैः सर्वैः परिवारितः ।
आगच्छत्त्वरया शक्रो गुरोर्गेहमतन्द्रितः ।११।
पृष्ट्वा ताराप्रणम्यादौ क्व गतो हि महातपाः ।
न जानामीत्युवाचेद तारा शक्रं निरीक्षती ।१२।
तदा चिन्तान्वितोभूत्वाशक्रः स्वगृहमाव्रजत् ।
एतस्मिन्नन्तरे स्वर्गेह्यनिष्टान्युद्भुतानि च ।१३।
अभवन्सर्वदुःखार्थं शक्रस्य च महात्मनः ।
पातालस्थेन बलिना ज्ञातं शक्रस्य चेष्टितम् ।१४।
ययौ दैत्यैं परिवृतः पातालादमरावतीम् ।
तदा युद्धमतीवाऽऽसीद्देवाना दानवैः सह ।१५।

गन्धर्वों का गायन जब समाप्त हो गया तो उस समय में इन्द्र को कुछ होश पाया था और उसने देवताओं से शीघ्र ही पूछा था—महान तपस्वी गुरुदेव कहाँ चले गये हैं ? उसी समय में देवर्षि नारदजी ने देवों के स्वामी इन्द्रदेव से कहा था—तुमने गुरु की अवज्ञा की थी है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे बलसूदन ! तेरा राज्य गुरुदेव की अवज्ञा से गया है। इसलिए आपको अब सर्वतोभाव से उनसे क्षमा-मन कराना चाहिए। महात्मा श्री नारदजी के इस वचन का श्रवण करके वह अपने आसन से सहसा समुत्थित हो गया था और उन सबके द्वारा परिवारित होता हुआ बड़ी ही शीघ्रता के साथ इन्द्र अतन्द्रित होकर गुरुदेव के घर मे आया था। सर्व प्रथम गुरु पत्नी तारा को प्रणाम करके उसने पूछा था—महान तपोमूर्ति गुरुदेव इस समय में

कहाँ चले गये हैं ? शची ने इन्द्र को देखते हुए यही उत्तर दिया था कि मैं नहीं जानती हूँ। उस समय में परम चिन्ता से समन्वित होकर इन्द्र वापिस अपने घर में आ गये थे। इसी बीच में स्वर्ग अत्यद्भुत अनिष्ट हुए थे जो सब प्रकार के दुःखों के लिए ही महात्मा इन्द्र को हुये थे। पाताल में स्थित बलि ने इन्द्र की इस दुश्चेष्टा को समझ कर वह पाताल से दैत्यों से परिवृत होता हुआ अमरावती में गया था। उस समय में देवों का दानवों के साथ अतीव घोर युद्ध हुआ था।८-१५।

देवाः पराजिता दैत्यैः राज्य शक्रस्य तत्क्षणात् ।
सम्प्राप्त सकलं तस्य मूढस्य च दुरात्मनः ।१६।
नीतं सर्वप्रयत्नेन पाताल दैत्यरिन गताः ।
शुक्रप्रसादात्ते सर्वे तथा विजयिनोऽभवन् ।१७।
शक्रोऽपि निःश्रीकोजातोदेवैरन्यैश्चतैर्भृशम् ।
देवीतिरोधानगताबभूव कमलेक्षणा ।१८।
ऐरावतो महानागस्तथैवोच्चैः श्रवा हयः ।
एवमादीनि रत्नानिअनेकानि बहून्यपि ।१९।
नीतानिसहसादैत्यैर्लोभादसाधुवृत्तिभिः ।
पुनर्भाग्ने च तान्येवपतितानि च सागरे ।
तदा स विस्मयाविष्टो बलिराह गुरुम्प्रति ।२०।
देवान्निर्जित्य चास्माभिरानीतानिबहूनि च ।
रत्नानि तु समुद्रेऽपतितानि तदद्भुतम् ।
बलेस्तद्वचनं श्रुत्वा उशना प्रत्युवाच तम् ।२१।

दैत्यों के द्वारा सब देवगण पराजित हो गये थे और दुरात्मा महामूढ इन्द्र का सम्पूर्ण राज्य दैत्यों ने प्राप्त कर लिया था। वे सब राज्य के सम्पूर्ण वैभव को लेकर शीघ्र ही वापिस पाताल लोक को चले गये थे। दैत्यों के गुरुदेव शुक्राचार्य के प्रसाद से वे सब दैत्यगण विजयी हो गये थे। इन्द्र भी श्रीहीन हो गया था और समस्त देवों के द्वारा

वह अत्यन्त त्याग दिया गया था। कमलेक्षणा देवी भी तिरोधानगत हो हो गई थी अर्थात् वहाँ से छिपकर लुप्त हो गई थी। महानाग ऐरावत तथा उच्चैःश्रवा अश्व आदि इस प्रकार से अनेक बहुत से रत्न भी सहसा दैत्यों ने जो असाधु चरित्र वाले थे लोभ से ले लिए थे। ये सब रत्न परम पुण्यात्म के ही उपभोग करने के योग्य थे इसलिए वे सब सागर में पतित हो गये थे। उस समय में अतीव विस्मय से समाविष्ट होकर राजा बलि ने गुरुदेव शुक्राचार्य जी से कहा था।१६-२०। हे गुरुदेव ! देवों को युद्ध में जीतकर हमने ये सब रत्न बहुत से प्राप्त किये थे किन्तु ये सभी रत्न समुद्र में गिर गये हैं—यह एक बहुत ही अद्भुत घटना है। दैत्यराज बलि के इस वचन का श्रवण करके शुक्राचार्य ने उसको इसका उत्तर दिया था।२१।

अश्वमेधशतेनैव सुरराज्यं भविष्यति ।
दीक्षितस्य न सन्देहस्तस्माद्भोक्ता स एवच ।२२।
अश्वमेध विना किञ्चित्स्वर्गं भोक्तुं न पार्यते ।२३।
गुरोर्वचनमाज्ञाय तूष्णीभूतो बलिस्ततः ।
बभूव देवैः सार्द्धं च यथोचितमकारयत् ।२४।
इन्द्रोऽपिशोच्यताप्राप्तोजगाम परमेष्ठिनम् ।
विज्ञापयामासतथासर्वं राज्यभयादिकम् ।
शक्रस्य वचनं श्रुत्वा परमेष्ठी उवाच ह ।२५।
सम्मिलित्वा सुरान्सर्वांस्त्वया साकं त्वरान्विताः ।
आराधनार्थं गच्छामो विष्णुं सर्वेश्वरेश्वरम् ।२६।
तथेति मत्वा ते सर्वेशक्राद्यालोकपालकाः ।
ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य तटं क्षीरार्णवस्य च ।२७।
प्राप्योपविश्य ते सर्वे हरिं स्तोतुं प्रचक्रमुः ।२८।

सौ अश्वमेध यज्ञों के करने पर ही सुर राज्य के वैभव का आनन्द प्राप्त होगा जबकि इस प्रकार से दीक्षित तुम हो जाओगे।

इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है। इससे इन समस्त स्वर्गों का भोक्ता वह ही होता है जो भी अश्वमेध कर लिया करता है। बिना अश्वमेध यज्ञ के स्वर्ग का मुख भोग नहीं किया जा सकता है ।२२।२३। गुरुदेव के इस वचन का श्रवण करके फिर दैत्यराज बलि चुप हो गया था और देवों के साथ उसने यथोचित व्यवहार कराया था ।२४। देवराज इन्द्र भी परम शोक को प्राप्त होकर परमेष्ठी ब्रह्माजी के पास गया था और वहाँ जाकर सब राज्य भङ्ग आदि की घटना का समाचार सुनाया था। इन्द्र-देव के इस वचन को सुनकर ब्रह्माजी ने कहा---।२५। अत्यन्त शीघ्रता से समन्वित होकर समस्त सुरों के साथ मिलकर सर्वेश्वरेश्वर भगवान् विष्णु की समाराधना करने के लिए चलें। ऐसा ही करना चाहिए--- यह विचार कर वे सब इन्द्र आदि लोकपाल जाकर ब्रह्माजी को अपना अग्रगामी बना कर क्षीर सागर के तट के समीप में प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर देखकर उन सबने श्री हरि का स्तवन करना आरम्भ कर दिया था ।२६-२७-२८।

देवदेव जगन्नाथ सुरासुरनमस्कृत ।
पुण्यश्लोकाव्ययानन्त परमात्मन्नमोऽस्तु ते ।२९।
यज्ञोऽसि यज्ञरूपोऽसि यज्ञाङ्गोऽसि रमापते ।
ततोऽद्य कृपया विष्णो देवानां वरदो भव ।३०।
गुरोरवज्ञया चाद्य भ्रष्टराज्यः शतक्रतुः ।
जातः सुरर्षिभिः सार्द्धं तस्मादेनं समुद्धर ।३१।
गुरोरवज्ञया सर्वं नश्यतीति किमद्भुतम् ।
ये पापिनोऽह्यधर्मिष्ठाः केवलं विषयात्मकाः ।
पितरौ निन्दितौ येन निर्दयास्ते न संशयः ।३२।
अनेन यत्कृतं ब्रह्मन्पुरस्तत्फलमागतम् ।
कर्मणा चास्य शक्रस्य सर्वेषां संकटागमः ।३३।

विपरीतो यदा कालः पुरुषस्य भवेत्तदा ।
भूतमैत्रीं प्रकुर्वन्ति सर्वकार्यार्थसिद्धये ।३४।
तेन वै कारणेनेन्द्र मदीयं वचनं कुरु ।
कार्यहेतोस्त्वया कार्यो दैत्यैः सह समागमः ।३५।

ब्रह्माजी ने कहा—हे देवों के भी देव ! आप तो इस जगत् के स्वामी हैं। सुर और असुर सभी आपको नमस्कार करते हैं। हे पुण्य श्लोक ! आप विनाश रहित हैं और अनन्त स्वरूप वाले हैं। हे परमात्मन् ! आपको हम सबका नमस्कार है।२६। आप यज्ञ स्वरूप हैं और स्वयं ही साक्षात् यज्ञ हैं। हे रमापते ! आप यज्ञ के अङ्ग हैं। इसलिए हे विष्णो ! आज अपनी परम कृपा करके इन समस्त देवों को वरदान देने वाले हो जाइये। अब अपने गुरुदेव की अवज्ञा करने के कारण इन्द्र अपने राज्य से भ्रष्ट हो गए हैं। यह सुरर्षियों के सहित अत्यन्त ही हीन दशा को प्राप्त हो गया है। इसलिए आप अब कृपा करके इसका उद्धार कर दीजिये।३०।३१। श्री भगवान ने कहा—गुरु की अवज्ञा करने से सभी कुछ नाश को प्राप्त हो जाया करता है—इसमें अद्भुत क्या बात है। जो पापी और अधर्मिष्ठ हैं तथा केवल विषयात्म ही हैं अर्थात् विषयों के उपभोग करने में ही लिप्त रहा करते हैं और जिन्होंने अपने माता-पिता की निन्दा की है वे निर्दैव अर्थात् भाग्यहीन ही होते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है।३२। इस इन्द्र ने जो कुछ भी किया है उस कर्म का तुरन्त ही इसे फल भी प्राप्त हो गया है। इस इन्द्र के ही इस दुष्कर्म से आप सभी को सङ्कट प्राप्त हो गया है।३३। जिस समय में पुरुष का विपरीत काल आकर उपस्थित हो जावे ये उस समय में समस्त कार्यों की अर्थ-सिद्धि के लिए मनुष्य भूत मैत्री अर्थात् समस्त प्राणि मात्रों से मित्रता का व्यवहार करना चाहिये। हे इन्द्र ! इस कारण से अब तुम मेरा वचन स्वीकार करो। कार्य के हेतु से तुमको दैत्यों के साथ समागम कर लेना चाहिये।३४-३५।

एवं भगवताऽऽदिष्टः शक्रः परमबुद्धिमान् ।
अमरावतीं परोहित्वा सुतलं दैवतैः सह ।३६।
इन्द्रं समागतं श्रुत्वा इन्द्रसेनो रुषान्वितः ।
बभूव सह सैन्येन हन्तुकामः पुरन्दरम् ।३७।
नारदेन तदा दैत्या बलिश्च बलिनां वरः ।
निवारितस्तद्वधाच्च वाक्यैरुच्चावचैस्तथा ।३८।
ऋषेस्तस्यैव वचनात्त्यक्तमन्युर्बलिस्तदा ।
बभूव सह सैन्येन आगतो हि शतक्रतुः ।३९।
इन्द्रसेनेन दृष्टोऽसौ लोकपालैः समावृतः ।
उवाच त्वरयायुक्तः प्रहसन्निव दैत्यराट् ।४०।
कस्मादिहागतः शक्र ! सुतलं प्रतिकथ्यताम् ।
तस्यैतद्वचनं श्रुत्वाऽस्मयमानउवाचतम् ।४१।
वयं कश्यपदायादा यूयं सर्वे तथैव च ।
यथा वयं तथा यूयं विग्रहोऽहि निरर्थकः ।४२।
मम राज्यं क्षणेनेव नीतं दैववशात्त्वया ।
तथा ह्येतानि तान्येव रत्नानि सुबहून्यपि ।
गतानि तत्क्षणादेव यत्नानीतानि वै त्वया ।४३।

परम बुद्धिमान इन्द्र ने इस भाँति भगवान के द्वारा समादिष्ट होकर अपनी अमरावती का त्याग करके वह देवगणों के साथ सुतल को चले गये थे। वहाँ पर इन्द्र को समागत सुनकर इन्द्रसेन क्रोध से युक्त होकर इन्द्र को हनन करने की कामना वाला होकर अपनी सेना के साथ हो गया था। उस समय में देवर्षि नारद के द्वारा दैत्यगण और बलियों में परम श्रेष्ठ बलि को उसके वध से ऊँचे-नीचे वाक्यों के द्वारा निवारित कर दिया गया था। उस समय में उसी ऋषि के वचन से राजा बलि ने अपना क्रोध त्याग दिया था। इन्द्र अपनी सेना के साथ समागत हुआ था। इन्द्रसेन ने लोकपालों से उसे समावृत देखा था। वह

दैत्यराज बहुत ही शीघ्रता के साथ हँसते हुए ही यह बोला था। हे इन्द्र ! आप इस सुतल लोक में किस कारण से समागत हुए हैं—यह बतलाइये। उसके इस वचन को श्रवण करके मुस्कराते हुए इन्द्रदेव ने उससे कहा था।३६-४२। हम सभी लोग महर्षि कश्यप के दामाद हैं और आप भी सब लोग उसी भाँति के हैं। जैसे हम हैं वैसे ही आप भी सब लोग हैं। हमारे आपके बीच में विग्रह निरर्थक ही है। दैव वश से एक ही क्षण में आपने मेरा सम्पूर्ण राज्य ले लिया था। उसी भाँति से बहुत से वे ही रत्न हैं जो आपने ही बड़े यत्न से समानीत किये थे। वे सभी उसी क्षण में चले गये हैं।४३।

तस्माद्विमर्शः कर्तव्यः पुरुषेणविपश्चिता।
विमर्शाज्जायते ज्ञानं ज्ञानान्मोक्षो भविष्यति।४४।
किंतु मे वत उक्तेन जाने नच तवाग्रतः।
शरणार्थी ह्यह प्राप्त सुरैः सहतवान्तिकम्।४५।
एतच्छ्रुत्वा तु शक्रस्यवाक्यंवाक्यविदां वरः।
प्रहस्योवाचमतिमाञ्छक्रं प्रतिविदांवरः।४६।
त्वमागतोऽसि देवेन्द्र ! किमर्थं तन्न वेद्म्यहम्।४७।
शक्रस्तद्वचनं श्रुत्वा ह्यश्रुपूर्णाकुलेक्षणः।
किञ्चिन्नोवाच तत्रैनं नारदो वाक्यमब्रवीत्।४८।
बले त्वं किंनजानासिकार्याकार्यविचारणाम्।
धर्मो हि महतामेषशरणागतपालनम्।४९।
शरणागतं च विप्रं न रोगिणं वृद्धमेव च।
य एतान्न च रक्षन्ति ते वै ब्रह्महणो नराः।५०।
शरणागतशब्देन आगतस्तव सन्निधौ।
संरक्षणाय योग्यश्च त्वया नास्त्यत्र संशयः।
एवमुक्तो नारदेन तदा दैत्यपतिः स्वयम्।५१।

इसलिए विद्वान पुरुष के द्वारा विमर्श अवश्य ही करना चाहिए। विमर्श करने से ज्ञान की उत्पत्ति होती है और ज्ञान प्राप्त हो जाने पर ही मोक्ष होगा।४८। किन्तु मेरा यह कथन ही है इससे क्या होगा। मैं तो आपके आगे कुछ भी नहीं जानता हूँ। मैं तो सब देव वृन्दों के साथ आपके समीप में शरणार्थी होकर ही प्राप्त हुआ हूँ।४५। वाक्यों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ और विद्वानों में उत्तम वह मतिमान इन्द्र के इस वचन का श्रवण कर हंसते हुए इष्टदेव से यह बोला—हे देवेन्द्र ! तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो—यह मैं नहीं जानता हूँ।४६।४७। इन्द्र ने उसके इस वचन का श्रवण करके आँसुओं से अपनी भर कर कुछ भी न बोला वहाँ पर इसमें देवर्षि नारदजी ने यह वचन कहा था—।४८। हे बले ! क्या आप कार्य (करने के योग्य) और अकार्य (न करने के योग्य) की विचारणा को नहीं जानते हो ? महान् पुरुषों का यही धर्म होता है कि जो भी कोई शरणागत हो उसका पूर्ण पालन करे। अपनी शरण में समागत, विप्र, रोगी और वृद्ध पुरुष, इनकी जो रक्षा नहीं करता है वे मनुष्य ब्राह्मण ही हुआ करते हैं। यह इन्द्र तो शरणागत शब्द से आपकी सन्निधि में प्राप्त हुआ है और आप इसके संरक्षण के लिए परम योग्य भी हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस प्रकार से जब श्री नारद जी के द्वारा दैत्यपति से कहा गया था तब उसने स्वयं विचार किया था।४९–५१।

विमृश्य परया बुद्धया कार्याकार्यविचारणम्।
शक्रं प्रपूजयामास बहुमानपुरः सरम्।
लोकपालैः समेतं च तथा सुरगणैः सह।५२।
प्रत्ययार्थं च सत्त्वानि ह्यनेकानि व्रतानि वै।
बलिप्रत्ययभूतानि च चकार पुरन्दरः।५३।
एवं स समयं कृत्वाशक्रः स्वार्थपरायणः।
बलिना सहचावात्सीदयं शाख्यपरो महान्।५४।

एवं निवसतस्तस्य सुतलेऽपि शतक्रतोः ।
वत्सरा बहवोह्यासस्तदा बुद्धिमकल्पयत् ।
संस्मृत्य वचनं विष्णोर्विमृश्य च पुनः पुनः ।५५।
एक तु सभामध्यआसीनोदेवराट् स्वयम् ।
उवाचप्रहसन्वाक्यंबलिमुद्दिश्यनीतिमान् ।५६।

दैत्यों के राजा बलि ने अपनी परावुद्धि से कार्याकार्य के विचार का विमर्श करके फिर उसने बहुमान पूर्वक इन्द्र की पूजा की थी और समस्त लोकपालों एव सुरगणो का भी परम समादर किया था ।५२। उप इन्द्रदेव ने दैत्यराज बलि के विश्वास के स्वरूप वाले उसके विश्वास को समुत्पन्न करने के ही लिए उस इन्द्रदेव ने अनेक सत्र वचनों को उस समय वहाँ पर किया था । इस प्रकार से परम स्वार्थ में परायण इन्द्र ने सन्धि करके महान अर्थशास्त्र मे परायण वह पुरन्दर वहाँ पर बलि दैत्यराज्य के साथ ही निवास करने लग गया था ।५३।५४। इस रीति से सुतल लोक मे दैत्यो के राजा बलि के साथ निवास करते हुए उस इन्द्र देवराज को बहुत से वर्ष व्यतीत हो गये थे । उस समय मे फिर उसने अपनी बुद्धि से विचार किया था । जबकि भगवान विष्णु के कहे वचनों का उसे सस्मरण हुआ था और बारम्बार उसने उस पर विचार किया था । एक बार वह देवराज स्वयं सभा के मध्य मे विराजमान थे । उस परम नीति मे निपुण इन्द्र ने उस समय में दैत्यराज बलि का उद्देश करके हँसते हुए यह वाक्य कहा था ।५५।५६।

प्राप्तव्यानित्वयावीरअस्माकं च त्वयाबले ।
गजादीनिबहून्येव रत्नानि विविधानि च ।५७।
गतानि तत्क्षणादेवसागरेपतितानि वै ।
प्रयत्नो हि प्रकर्तव्योह्यस्माभिस्त्वरयान्वितैः ।५८।
तेषां चोद्धरणे दैत्य रत्नानामिह सागरात् ।
तर्हि निर्मथनं कार्यंभवताकार्यसिद्धये ।५९।

बलिः प्रवर्तितस्तेनशक्रेण सुरसूदनः ।
उवाच शक्रं त्वरितः केनेदं मथनं भवेत् ।६०।
तदा नभोगतावाणीमेघगंभीरनिः स्वना ।
उवाच देवादैत्याश्च मन्थध्वं क्षीरसागरम् ।६१।
भवतां बलवृद्धिश्च भविष्यति न संशयः ।६२।
मन्दरश्वंबमन्थानं रज्जुं कुरुत्ववासुकिम् ।
पश्चाद्देवाश्चदैत्याश्चमेलयित्वाविमध्यताम् ।६३।
नभोगता च तां वाणीनिशम्याथतदा सुराः ।
दैत्यैः सार्द्धंततः सर्वे उद्यम चक्रुरुद्यताः ।६४।

हे दैत्यराज बले ! आप तो बड़े ही वीर पुरुष हैं हमारे जो रत्न हैं वे आपको अवश्य ही प्राप्त कर लेने चाहिये । ऐरावत आदि बहुत से अनेक परम सुन्दर रत्न विद्यमान हैं । वे सब चले गये हैं और सागर मे जाकर पतित हो गये हैं । अब उनको प्राप्त करने के लिए हम सभी को बहुत ही शीघ्रता के साथ अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए । हे दैत्यराज ! उन रत्नों का सागर से उद्धरण करने के लिए अब आपको कार्य सिद्धि के लिए समुद्र का निर्मथन करना ही चाहिये। ।५७।५८।५९। वह सुर सूदन दैत्यराज बलि उस इन्द्रदेव के द्वारा प्रवर्तित किया गया था और वह फिर इन्द्र से बोला था कि वह निर्मथन बहुत ही शीघ्रता से होने वाला किसके द्वारा होगा ।६०। उस समय में मेघ के समान परम गम्भीर ध्वनि वाली आकाश गामिनी वाणी ने कहा था—"हे देववृन्द ! और हे दैत्यगण ! अब आप लोग क्षीर सागर का मन्थन करो इसके करने से आप लोगों के बल की वृद्धि होगी—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । आप लोग इस क्षीर सागर के मन्थन करने के लिए मन्दराचल को मन्थन बनाइये और वासुकि सर्पराज को उसकी रज्जु करिये । इसके पश्चात देवता और दैत्यगण सब मिलकर सागर का मन्थन करो । इस तरह कथित नभोगत वाणी

को उसी समय में श्रवण कर देवों ने दैत्यों के साथ मिलकर उद्यत होते हुए सबने मन्थन करने के लिए उद्यम किया था।६१—६४।

१०—लक्ष्मी देवी का प्रादुर्भाव

पुनः सर्वे सुसरब्धाममन्थुः क्षीरसागरम् ।
मथ्यमानात्तदा तस्मादुदधेश्च तथाऽभवत् ।१।
कल्पवृक्षः पारिजातश्च चूतः सन्तानकस्तथा ।
तान्द्रुमानेकतः कृत्वा गन्धर्वनगरोपमान् ।
ममन्थुश्च त्वरिताः पुनः क्षीरार्णवं बुधाः ।२।
निर्मथ्यमानादुदधेरभवत्सूर्यवर्चसम् ।
रत्नानामुत्तमं रत्नं कौस्तुभाख्यं महाप्रभम् ।३।
स्वकीयेन प्रकाशेन भासयन्तं जगत्त्रयम् ।
चिन्तामणिंपुरस्कृत्य कौस्तुभं ददृशुर्हि ते ।४।
सर्वेसुराददुस्तं वै कौस्तुभंविष्णवेतदा ।
चिन्तामणिं ततः कृत्वा मध्ये चैवसुरासुराः ।
ममन्थुः पुनरेवाब्धिं गर्जन्तस्ते बलोत्कटाः ।५।
मथ्यमानात्ततस्तस्मादुच्चैः श्रवाः समुद्भुतम् ।
बभूव अश्वोरत्नानां पुनश्चैरावतो गजः ।६।
तथैवगजरत्नं च चतुःषष्ट्यासमन्वितम् ।
गजानांपाण्डुराणां च चतुर्दन्तंमदान्वितम् ।७।

महर्षि लोमश जी ने कहा—फिर सभी देव और दैत्यगण ने सुसरब्ध होकर उस क्षीर सागर का मन्थन किया था। उस समय में मन्थन किये गये उस सागर से उस प्रकार से हुआ था कि कल्प, वृक्ष, पारिजात, सन्तानक, चूत ये वृक्ष समुत्पन्न हुये थे। उन सब द्रुमों को एक जगह करके जो गन्धर्व नगर के तुल्य थे फिर देवगण ने बहुत ही शीघ्र वाशाली होकर उग्रता से उस क्षीर सागर का मथन किया था।

।१।२। उस निर्मथ्यमान सागर से सूर्यदेव के समान वर्चस वाला समस्त रत्नों में परम श्रेष्ठ रत्न महती प्रभा से समन्वित कौस्तुभ नाम वाला समुत्पन्न हुआ था। अपने प्रकाश से तीनों भुवनों को भासित करते हुए चिन्तामणि रत्न को आगे करके उन्होंने कौस्तुभ को देखा था। सब सुरों ने उस कौस्तुभ मणि को उसी समय भगवान विष्णु को समर्पित कर दिया था। इसके अनन्तर चिन्तामणि को मध्य में करके उन सुर और असुरों ने जो परम बल से उत्कट थे गर्जना करते हुये फिर उस सागर का मन्थन किया था।३।४।५। इसके उपरान्त मन्थन किए गये उस समुद्र से उच्चैःश्रवा अश्व समुद्भूत हुआ था जो एक उन रत्नों में से था। इसके पश्चात् ऐरावत हाथी समुत्पन्न हुआ था।६। उसी प्रकार से चौंसठ से समन्वित गजरत्न जो पाण्डुर गजों में चतुर्दन्त और मदान्वित था उदधि से समुत्पन्न हुआ था।७।

तान्सर्वान्मध्यतः कृत्वा पुनश्चैव ममन्थिरे।
निर्मथ्यमानादुदधेर्निर्गतानि बहून्यथ ।।
मदिरा विजया भृंगो तथा लशुनगृंजनाः।
अतीव उन्मादकरा धत्तूरः पुष्करस्तथा ।६।
स्थापितानेकपद्ये ततो रेनदनदोपतेः ।
पुनश्चतेतत्रमहासुरेन्द्रा ममन्थुरब्धिसुरसत्तमैः सह ।१०।
निर्मथ्यमानादुदधेस्ततस्तोरसा दिव्यलक्ष्मीभुवनैकनाथा।
आन्वीक्षिकी ब्रह्मविदो वदन्ति तथा चान्ये मूलविद्यां गृणन्ति।
।११।
ब्रह्मविद्यां केचिदाहुः समर्था. केचित्सिद्धिमृद्धिमाज्ञामथाशाम्।
यां वैष्णवीयोगिनः केचिदाहुस्तथा च मायां मायिनो नित्य-
युक्ताः।१२।
वदन्ति सर्वे केनसिद्धान्तयुक्तां यां योगमायां ज्ञानशक्त्यान्विता
ये।१३।

ददृशुस्तामहालक्ष्मीमायान्तीशनकैस्तदा ।
गौरां च युवतीस्निग्धापद्मकिंजल्कभूषणाम् ।।१४।

उन सबको मध्य में करके फिर उन्होंने मन्थन किया था। इस तरह से निर्मथ्यमान सागर से बहुत से रत्न निकले थे। मदिरा, विजया, भृङ्गी, लहसुन, गृञ्जन (गाजर) और अत्यन्त उन्माद के करने वाला धतूरा तथा पुष्कर सागर से निकले थे। ये सब एक ही साथ नद नदी पति अर्थात् सागर के तीर पर स्थापित किये गये थे। फिर वहाँ पर उन महान असुरेन्द्रों ने देवगणों के साथ मिलकर उस सागर का मन्थन किया था।८।९।१०। उस समय से मन्थन किए गये सागर से वह दिव्य लक्ष्मी प्रकट हुई थी जो भुवनों की एकमात्र स्वामिनी है। ब्रह्म वेत्ता इस देवी को आन्वीक्षिकी कहा करते हैं तथा अन्य लोग इसी देवी को मूलविद्या इस नाम से ग्रहण किया करते हैं।११। कुछ लोग इस देवी को ब्रह्म विद्या कहते हैं और कुछ समर्थ लोग इसको ऋद्धि एवं सिद्धि कहते हैं तथा आशा भी कहा करते हैं। योगी लोग जिसको वैष्णवी देवी कहते हैं और कुछ नित्य युक्त मायी लोग इसको "माया"—इस नाम से पुकारते हैं। केनोपनिषद् के द्वारा प्रतिपाद्य सिद्धान्त (उमा शब्द वाच्य ब्रह्मविद्या) से युक्त जिस देवी को ज्ञान की शक्ति से समन्वित जो लोग हैं वे योगमाया कहते हैं।१२।१३। उस समय में आती हुई उस महालक्ष्मी को जो गौर वर्ण वाली, युवती, स्निग्धा और पद्मकिंजल्क के भूषणों वाली थी, धीरे से सबने देखा था अर्थात् सबको उस देवी के दर्शन हुए थे।१४।

आलोकितास्तया देवास्तया लक्ष्म्या श्रियान्विताः ।
सञ्जातास्तत्क्षणादेव राज्यलक्षणलक्षिताः ।१५।
दैत्यास्ते निःश्रिका जाता ये श्रियाऽनवलोकिताः ।१६।
निरीक्ष्यमाणा च तदा मुकुन्दं तमालनीलं सुकपोलनासम् ।
विभ्राजमानं वपुषा परेण श्रीवत्सलक्ष्मं सदयावलोकत् ।१७।

दृष्ट्वा तदैव सहसा वनमालयान्विता लक्ष्मीर्गजादवततार
सुविस्मयन्ती ।
कण्ठे ससर्ज पुरुषस्य परस्य विष्णोर्मालां श्रिया विरचितां
भ्रमरैरुपेताम् ।१८।
वामाङ्कमाश्रित्य तदा महात्मनः सोपाविशत्तत्र
समीक्ष्य ता उभौ ।
सुराः सदैत्या मुदमापुरद्भुतां सिद्धाप्सरः
किन्नरचारणाश्च ।१६।

उस सती महा लक्ष्मी देवी ने उन सब देवगणों—दानवों और सिद्धों—चारणों एवं पन्नगों को जिस तरह से माता अपने पुत्रों को देखा करती है उसी भाँति देखा था। लक्ष्मी देवी ने श्री से समन्वित देवों का अवलोकन किया था। उसी क्षण में वे सब देवगण राज्य लक्षणों से लक्षित हो गये थे।१५। वे सब दैत्यगण जो श्री के द्वारा अवलोकित नहीं हुए थे निःश्रीक अर्थात् श्री से हीन हो गये थे।१६। उस समय में भगवान् मुकुन्द को जो तमाल के समान नीलवर्ण वाले—सुन्दर कपोल और नासिका से युक्त, परमोत्तम वपु से विभ्राजमान, श्री वत्स के वक्षःस्थल में चिह्न वाले तथा दया पूर्वक सबकी ओर अवलोकन करने वाले थे ऐसे भगवान् का निरीक्षण करती हुई महालक्ष्मी तुरन्त ही उसी समय में देखकर ही वनमाला से समन्वित होकर मुस्कराती हुई गज से नीचे उतर गई थी और वनमाला परम देव पुरुष भगवान् विष्णु के कण्ठ में डाल दी थी जो कि श्री देवी के द्वारा विरचित की हुई और भ्रमरों के समूह से संयुत थी। उस समय में महान् आत्मा वाले भगवान् के वामाङ्क में समाश्रित होकर वह देवी उपविष्ट हो गई थी। वहाँ पर उन दोनों देवों तथा दैत्यों के दलों ने उसको देखा था। सुर और असुर, सिद्ध, किन्नर, चारण और अप्सराओं के गण ने लक्ष्मी देवी के

रहित विष्णु का दर्शन करके परम आनन्द को प्राप्त किया था अर्थात् सबको अत्यन्त ही प्रसन्नता हुई थी ।१७।१८।१९।

सर्वेषामेवलोकानामेकपद्येन सर्वशः ।
हर्षो महानभूत्तत्र लक्ष्मीनारायणागमे ।२०।
लक्ष्म्यावृतो महाविष्णुर्लक्ष्मीस्तेनैव सम्वृता ।
एवं परस्परं प्रीत्याह्यवलोकनतत्परो ।२१।
शंखाश्च पटहाश्चैव मृदंगानकगोमुखाः ।
भेर्यश्च झर्झरीणां च स शब्दस्तुमुलोऽभवत् ।२२।
बभूव गायकानां च गायनं सुमहत्तदा ।
ततानि विततान्येव घनानि सुषिराणि च ।२३।
एवं वाद्यप्रभेदैश्चविष्णुं सर्वात्मना हरिम् ।
अतोषयन्सुगीतज्ञागन्धर्वाप्सरसांगणाः ।२४।
तथा जगुर्नारदतुम्बुरादयो गन्धर्वयक्षाः सुरसिद्धसंघाः ।
संसेवमानाः परमात्मरूपं नारायणं देवमगाधबोधम् ।२५।

उस समय में लक्ष्मी नारायण के समागम के होने पर वहाँ पर समस्त लोकों को एक साथ महान् हर्ष हुआ था । महान् विष्णु लक्ष्मी देवी से आवृत थे और महा लक्ष्मी देवी उन विष्णु भगवान् से सम्वृत थीं । इस प्रकार से परस्पर में ये दोनों ही प्रीति पूर्वक एक दूसरे के समवलोकन करने में परायण हो रहे थे ।२०।२१। उस समय में चारों ओर शङ्ख, पटह, मृदङ्ग, आनक, गोमुख, भेरी, झर्झरी—इन सब प्रकार के बाजों की तुमुल ध्वनि हुई थी । उस आनन्द के काल में गायक गणों के गायन का सुमहान् शब्द हो रहा था । तत-वितत-घन और सुषिर प्रभृति वाद्यों के प्रभेदों के द्वारा सबने इस रीति से सर्वात्म भाव से श्री हरि विष्णु का परम तोष किया था । सुन्दर गीतों के ज्ञाता गन्धर्व, अप्सराओं के गण, नारद, तुम्बर आदि, गन्धर्व, यक्ष, सुर, सिद्धों के समुदाय ने गान किया था और परमात्मा के स्वरूप वाले,

अगाध बोध से सुसम्पन्न देव नारायण की सबने परम सेवा की थी ॥२२-२४॥

११—अमृत विभाजन वर्णन

प्रणम्य परमात्मानं रमायुक्तं जनार्दनम् ।
अमृतार्थ ममन्थुस्ते सुरासुरगणाः पुनः ।१।
उदधेर्मथ्यमानाच्च निर्गतः सुहायशाः ।
धन्वन्तरिरिति ख्यातो युवामृत्युञ्जयः परः ।२।
पाणिभ्यां पूर्णकलशंसुधायाः परिगृह्य वै ।
यावत्सर्वे सुराः सर्वे निरीक्षन्तेमनोहरम् ।३।
तदा दैत्याः सम गत्वा हर्तुकामा बलादिव ।
सुधया पूर्णकलश धन्वन्तरिकरे स्थितम् ।४।
यावत्तरङ्गमालाभिरावृतोऽभुन्द्रिपक्रम ।
शनैः शनैः समायातो दृष्टोऽसौ वृषपर्वणा ।५।
करस्थः कलशस्तस्य हृतस्तेन बलादिव ।
असुराश्च ततः सर्वे जगर्जु रतिभीषणम् ।६।
कलशं सुधया पूर्णं गृहीत्वातेसमुत्सुकाः ।
दैत्याः पातालमाजग्मुस्तदादेवाश्रमान्विताः ।७।
अनुजग्मुः सुसंनद्धायोद्धुकामाश्च तैः सह ।
तदा देवान्समालोक्य बलिरेवमभाषत ।८।

महर्षि प्रवर लोमश ने कहा—रमादेवी से समन्वित परमात्मा भगवान् जनार्दन को प्रणाम करके फिर उन सुर और असुरों के गण ने अमृत की प्राप्ति करने के लिए समुद्र का मन्थन करना आरम्भ कर दिया था ।१। उस मथ्यमान उदधि से सुन्दर महान् यश से सम्पन्न, युवा मृत्यु पर विजय प्राप्त करने वाले, परम "धन्वन्तरि"—इस नाम से विख्यात निर्गत हुए थे ।२। उनके दोनों हाथों में सुधा से परिपूर्ण कलश परिगृहीत हो रहा था । उनको सभी सुरगण बहुत ही सुन्दर के साथ

देख रहे थे । उसी समय में दैत्यगण एक साथ एकत्रित होकर बल पूर्वक उस अमृत के कलश को हरण करने की इच्छा वाले हो गये थे जो कि सुधा का कलश भगवान् धन्वन्तरि के कर में स्थित था ।३-४। वह भिषकों में श्रेष्ठ जब तक तरङ्गों की मालाओं से समावृत थे और बहुत ही धीरे-धीरे समायात हो रहे थे तभी तक वृषपर्वा ने उन को देख लिया था । उस इन्द्र ने उन धन्वन्तरि के हाथ में स्थित उस सुधा के कलश को बल पूर्वक ग्रहण कर लिया था । इसके पश्चात् सब असुर गण अत्यन्त भीषणता के साथ गर्जना करने लगे थे ।५।६। उस सुधा से परिपूर्ण कलश को असुरों ने ग्रहण कर लिया था और बहुत ही उत्सुक होते हुए दैत्यगण पाताल में आ गये थे । उस समय में समस्त देवता श्रम युक्त हो गये थे । वे सभी उन दैत्यों के पीछे ही चले गये और उन दैत्यों के साथ युद्ध करने की इच्छा करने लगे थे । तब बलि ने उन देवों को देख कर इस प्रकार से उनसे कहा था ।७।८।

वयं तु केवलं देवाः सुधया परितोषिताः ।
शीघ्रमेव प्रगन्तव्यं भवद्भिश्च सुरोत्तमैः ।९।
त्रिविष्टपं मुदायुक्तैः किमस्माभिः प्रयोजनम् ।
पुराऽस्माभिः कृतंमौत्रंभवद्भिः स्वार्थतत्परैः ।
अधुना विदितं तत्तु नात्र कार्या विचारणा ।१०।
एवं निर्भर्त्सितास्तेन बलिना सुरसत्तमाः ।
यथागतेन मार्गेण जग्मुर्नारायणं प्रभुम् ।११।
तं दृष्ट्वा विष्णुना सर्वे सुरा भग्नमनोरथाः ।
आश्वासितावचोभिश्चनानानुनयकोविदैः ।१२।
मा त्रासं कुरुतानाथ आनयिष्यामि तां सुधाम् ।
एवमाभाष्य भगवान्मुकुन्दोऽनाथसंश्रयः ।१३।
स्थापयित्वा सुरान्सर्वांस्तत्रैव मधुसूदनः ।
मोहिनीरूपमास्थायदैत्यानामग्रतोऽभवत् ।१४।

तावद्दैत्याः सुसंरब्धाः परस्परमथाब्रुवन् ।
विवादः सर्वदैत्यानाममृतार्थे तदाऽभवत् ।१५।

दैत्यराज बलि ने कहा—हे देवगणो ! हम तो केवल सुधा से ही परिशोधित हो गये हैं । हे सुरोत्तमो ! आप लोगों को अब यहाँ से बहुत शीघ्र ही चले जाना चाहिए । आप लोग आनन्द से युक्त होकर अपने स्वर्गलोक में चले जाओ । अब हम लोगों से आपका क्या प्रयोजन है ? पहिले ही स्वार्थ में परायण होकर आप सबने हमारे साथ मैत्री का व्यवहार किया था । अब हमको वह सब ज्ञात हो गया है । इसलिए अब इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ।६।१०। इस प्रकार से बलि के द्वारा सब देवगण बहुत फटकारे गये थे । फिर वे सब यथागत मार्ग के द्वारा परम प्रभु नारायण के समीप में चले गये थे । भगवान् विष्णु ने उन समस्त सुरों को भग्न मनोरथों वाले देखकर अनेक अनुनय से परिपूर्ण वचनों के द्वारा भगवान् ने उन सबको समाश्वासन दिया था ।११।१२। हे देवगणो ! इस विषय में आप लोग अपने मनमें किसी भी प्रकार का त्रास मत करो । मैं उस सुधा के कलश को ले आऊँगा । इस तरह से अनाथों को समाश्वास प्रदान करने वाले भगवान् मुकुन्द ने उन सब देवताओं से कहा था । भगवान् मधुसूदन ने वहाँ पर समस्त सुरों को स्थापित करके अपना एक मोहिनी का रूप धारण किया और उन दैत्यों के सामने जाकर स्थित हो गये थे । तब तक वे सब दैत्यगण सुसंरब्ध होकर परस्पर में बातचीत कर रहे थे । उस समय में सब दैत्यों का उस अमृत के लिए बड़ा भारी विवाद हो गया था ।१३।१४।१५।

एवं प्रवर्त्तमानेतु मोहिनीरूपमाश्रिताम् ।
दृष्ट्वा योषां तदा दैत्यास्सर्वभूतमनोरमाम् ।१६।
विस्मयेन समाविष्टा बभूवुस्तृषितेक्षणाः ।
तां सेमान्य तदा दैत्यराजो बलिरुवाच ह ।१७।

सुधा त्वयाविभक्तव्या सर्वेषां गतिहेतवे।
शीघ्रत्वेन महाभागे कुरुष्व वचनं मम ॥१८॥
एवमुक्ता ह्युवाचेदं स्मयमाना बलिप्रति।
स्त्रीणांनैवचविश्वासः कर्तव्योहिविपश्चिता ॥१९॥
अनृतंसाहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्घृणत्वंचस्त्रीणांदोषा स्वभावजाः ॥२०॥
निःस्नेहत्वंच विज्ञेयं धूर्तत्वंचैव तत्त्वतः।
स्वस्त्रीणांचैवचिज्ञ यादोषानास्त्यत्र संशयः ॥२१॥

ऐसा होने पर उसी समय मे मोहिनी के स्वरूप में समाश्रित–सब प्राणियों के लिए परम मनोरमा उस स्त्री को देखकर सभी दैत्यगण अत्यन्त विस्मय को प्राप्त हो गये थे और सब पियासित नेत्रों वाले होकर स्थित हो गये थे। उस समय में दैत्यराज बलि ने उस मोहिनी का बड़ा भारी सम्मान किया था और उससे कहा था—दैत्यराज बलि ने कहा—आपको इन सबकी भलाई के लिये इस सुधा का विभाजन कर देना चाहिए। हे महाभागे! आप बहुत ही शीघ्रता से मेरे इस वचन को स्वीकृत कर लीजिए।१६।१७।१८। जब इस प्रकार से देवी मोहिनी से कहा गया तो वह मुस्कराती हुई दैत्यराज बलि से बोली—विद्वान् पुरुष को स्त्रियों का कभी भी विश्वास नहीं करना चाहिये। क्योंकि स्त्रियों के अनृत (मिथ्याभाषण), साहस, माया, मूर्खता, अत्यन्त लालच, अशौच, निर्घृणत्व ये स्वभाव सिद्ध दोष हुआ करते हैं। स्नेह का न होना और तात्त्विक रूप से धूर्तता ये दोष भी स्त्रियों के जानने के योग्य हुआ करते हैं। ये दोष तो अपनी स्त्रियों में भी समझ लेने चाहिए—इस विषय मे लेश मात्र भी संशय नहीं है। ।१९।२०।२१।

यथैव श्वापदानांचवृकाहिंसापरायणाः।
काका यथाण्डजानांचश्वापदानांचजम्बुकाः।

धूर्ता तथा मनुष्याणां स्त्री ज्ञेया सततं बुधैः ।२२।
मया सह भवद्भिश्च कथं सख्यं प्रवर्तते ।
सर्वथाऽत्र न विज्ञेयाः के यूयं चैव काह्यहम् ।२३।
तस्माद्भवद्भिः संचिन्त्य कार्याकार्यविचक्षणैः ।
कर्तव्यं परया बुद्ध्याऽप्यायातासुरसत्तमाः ।२४।
यास्त्वया कथिता नार्यो ग्राम्या ग्राम्यजनप्रियाः ।
तासां त्वं कथ्यमानानां मध्यगा नासि शोभने ! ।२५।
किं त्वया बहुनोक्तेन कुरुष्व वचनं हि नः ।
सा मोहिनीदं प्रोवाच बलेर्वाक्यादनन्तरम् ।२६।
करिष्यामि च ते वाक्यं सूक्तासूक्तमिति प्रभो ! ।२७।
अद्यामृतं च सर्वेषां विभजस्व यथातथम् ।
त्वया दत्तं च गृह्णीमः सत्यं सत्यं वदामि ते ।२८।
एवमुक्ता तदा देवी मोहिनी सर्वमङ्गला ।
उवाचाऽप्यासुरान्सर्वान्सोपमेल्लौकिकीं स्थितिम् ।२९।

जिस प्रकार से श्वापदों (जानवरों) के मध्य में वृक (भेड़िया) हिंसा परायण हुआ करते हैं—और पक्षियों के मध्य में हिंसा परायण होते हैं तथा श्वापदों में जम्बुक (शृगाल) हिंसक वृत्ति वाले होते हैं ठीक उसी भाँति मनुष्यों में बुद्ध पुरुषों को स्त्रियों को निरन्तर समझ लेना चाहिए ।२२। मेरे साथ आपका मित्र भाव किस तरह से प्रवृत्त रहेगा ? इस विषय में हम लोग सब प्रकार से जानने के योग्य नहीं हैं। कौन लोग आप हैं और कौन मैं हूँ ? इस लिए कार्याकार्य में परमकुशल आप लोगों का बहुत ही अच्छा तरह से विचार करके परा बुद्धि के द्वारा ही करना चाहिए। हे असुरश्रेष्ठो आप आइये ।२३।२४। दैत्यराज बलि ने कहा—हे देवी ! आपने जो नारियों के विषय में दोष आदि के बाबत कहा है वे ग्राम्य नारियाँ ही होती हैं और ग्राम्य जनों की ही प्रिय

हुआ करती हैं। आप उन कही हुई नारियों के मध्य में रहने वाली हे शोभने! नहीं हैं।२५। आपके ऐसे अत्यधिक कथन से क्या लाभ है? आप तो मेरे निवेदित वचन को ही करिये। वह मोहिनी दैत्य राज बलि के वाक्य के अनन्तर यह वचन बोली—हे प्रभो! आपके सूक्ता-सूक्त वाक्य का मैं अवश्य ही पालन करूँगी।२६।२७। बलि ने कहा—आज आप इस अमृत को यथातथ्य अर्थात् ठीक-ठीक रूप से सबको विभाजित कर दीजिएगा। आपके द्वारा दिये हुए इस अमृत को हम सब लोग ग्रहण कर लेंगे। यह बात हम बिल्कुल आपसे सत्य-सत्य कह रहे हैं। इस प्रकार से उस समय में कही हुई सर्व मङ्गला मोहिनी देवी समस्त असुरों से लौकिक स्थिति को रोचित करती हुई बोली। ।२८।२९।

यूयं सर्वेकृतार्थाश्च जातादैवेनकेनचित् ।
अद्योपवाससयुक्ता अमृतस्याधिवासनम् ।३०।
क्रियतामसुराः श्रेष्ठाः शुभेच्छाकिञ्चिदस्तिवः ।
श्वोभूते पारणाकुर्याद्व्रतार्चनरतिश्च वः ।३१।
न्यायोपार्जितवित्तेन दशमांशेन धीमता ।
कर्तव्यो विनियोगश्च ईशप्रीत्यर्थहेतवे ।३२।
तथेति मत्वा ते सर्वे यथोक्तंदैवमायया ।
चक्रुस्तथैव दैतेया मोहिता नातिकोविदाः ।३३।
मयासुरेण च तदा भवनानि कृतानिवै ।
मनोज्ञानि महार्हाणि सुप्रभाणि महान्तिव ।३४।
तेषूपविष्टास्ते सर्वे सुस्नाताः समलङ्कृताः ।
स्थापयित्वा सुसरब्धाः पूर्णं कलशमग्रतः ।३५।
रात्रौ जागरणं सर्वैः कृत परमया मुदा ।
अथोषसि प्रवृत्ते च प्रातः स्नानयुता भवन् ।३६।

असुरा बलिमुख्याश्च पङ्क्तिभूता यथाक्रमम् ।
सर्वमावश्यकं कृत्वा तदा पानरतामवन् ।३७।

मोहिनी के स्वरूप को धारण करने वाले श्री भगवान ने कहा—आप सब लोग किसी दैव के द्वारा परम सफल हो गये हैं। हे श्रेष्ठ असुर गणो! यदि आपकी कुछ शुभेच्छा है तो आज आप लोग सब उपवास से संयुक्त होओ अर्थात् उपवास करो और इस प्राप्त हुए अमृत का अधिवासन करो। कल प्रातःकाल होने पर इस उपवास का पारण करना चाहिए। आप लोगों की व्रतार्चन की रति समुत्पन्न होगी। धीमान् पुरुष के द्वारा ईश की प्रीति के लिए न्याय से समुपार्जित वित्त के दशम अंश से विनियोग करना चाहिये।३०।३१।३२। उन सब ने 'ऐसा ही किया जायेगा'—इस तरह से जो कुछ भी देव माया ने कहा था उसको मान लिया था। उन दैत्यों ने मोहित होते हुए वैसा ही सब कुछ किया था क्योंकि वे अत्यन्त कोविद तो थे नहीं।३३। उस समय में मयासुर के द्वारा परम सुन्दर-सुन्दर प्रभा से समन्वित, विशाल एवं बहुमूल्य भवनों की रचना की गई थी। उन भवनों में वे सब भली-भाँति स्नानादि करके समलङ्कृत होते हुए उपविष्ट हो गये थे। सुसंरब्ध उन्होंने सुधा से परिपूर्ण कलश को आगे स्थापित करके रात्रि में सबने बहुत ही अधिक प्रसन्नता के साथ जागरण किया था। इसके अनन्तर प्रातः काल के प्रवृत्त होने पर सब लोगों ने स्नानादि किया था। जिनमें बलि प्रधान था उन सब असुरों ने अपनी पङ्क्ति यथाक्रम से बना ली थी। सभी कुछ आवश्यक कर्म करके वे सब अमृत के पान करने के लिए निरत हो गये थे।३४-३७।

करस्थेन तदा देवी कलशेन विराजिता ।
शुशुभे परया कान्त्या जगन्मङ्गलमङ्गला ।३८।
परिवेषधरा सर्वे सुरास्तेह्यसुरान्तिकम् ।
आगतास्तत्क्षणादेव यत्र ते ह्यसुरोत्तमाः ।
तान्दृष्ट्वा मोहिनी सद्य उवाच प्रमदोत्तमा ।३९।

एते ह्यतिथयो ज्ञेया धर्मसर्वस्वसाधनाः ।
एभ्योदेयं यथाशक्त्या यदि सत्यवचोमम ।
प्रमाणं भवतां चाद्य कुरुध्वं मा विलम्बय ।४०।
परेषामुपकारं च ये कुर्वन्तिस्वशक्तिनः ।
धन्यास्ते चैव विज्ञेयाः पवित्रालोकपालकाः ।४१।
केवलात्मोदरार्थाय उद्योगंये प्रकुर्वते ।
ते क्लेशभागिनो ज्ञेया नात्रकार्या विचारणा ।४२।

उस समय मे वह मोहिनी देवी अपने कर मे स्थित अमृत के कलश से शोभायमान हो रही थी। वह जगन्मङ्गलों के भी परम मङ्गल स्वरूपिणी अपनी परमाधिक कान्ति से सुशोभित हो रही थी। परिवेष को धारण करने वाले वे समस्त देवगण भी उन असुरों के ही समीप में उसी क्षण में समागत हो गये थे जहाँ पर वे असुर श्रेष्ठ विराजमान हो रहे थे। उनको देखकर वह प्रमदाओं मे परमोत्तमा मोहिनी तुरन्त ही बोली थी।३८।३९। मोहिनी ने कहा—ये सब कभी धर्म सर्वस्व के साधन करने वाले अतिथिगण हैं। इनके लिए भी यथाशक्ति कुछ अवश्य ही देना चाहिये। यदि मैं मत्त वचन सर्वथा सत्य कह रही हूँ तो अब आज आप लोग ही सब कुछ करने के लिए समर्थ हैं जो भी कुछ आप चाहें वैसा ही करिये। अब इसमें विलम्ब मत करिये।४०। जो लोग अपनी शक्ति से दूसरों का उपकार किया करते है वे ही इस विश्व में परम धन्य हैं। ऐसे ही लोगों को परम पवित्र और लोकों के पालन करने वाले समझना चाहिये।४१। जो केवल अपने ही उदर के भरने के लिए उद्योग किया करते हैं, वे इस जगत् मे क्लेशों के भोगने वाले ही हुआ करते हैं ऐसा ही जानना चाहिये। इस विषय मे बिल्कुल विचार नही करना चाहिये।४२।

तस्माद्विभजनं कार्यं मयैतस्यशुभव्रताः ।
देवेभ्यश्च प्रयच्छध्वं यदि चात्मप्रियाप्रियम् ।४३।

इत्येवं वचने देव्यास्तथाचक्रुरतन्द्रिताः ।
आह्वाययामासुरसुराः सर्वान्देवान्सवासवान् ।४४।
उपविष्टास्चते सर्वे अमृतार्थं वभाद्विजाः ।
तेषूपविश्यमानेषु ह्युवाच परमं वचः ।
मोहिनी सर्वधर्मज्ञा असुराणां स्मयन्निव ।४५।
आदौ ह्यभ्यागताः पूज्या इति व वैदिकी श्रुतिः ।४६।
तस्माद्यूयं वेदपराः सर्वे देवपरायणाः ।
ब्रुवन्तु त्वरितेनैव आदौ केषां ददाम्यहम् ।
अमृतं हि महाभागा बलिमुख्या वदन्तु भोः ।४७।
बलिनोक्तातदादेवी यत्ते मनसिरोचते ।
स्वामिना त्वं न सन्देहो ह्यस्माकंमुन्दरानने ।४८।
एवं समानिता तेन बलिना भाविनात्मना ।
परिवेषणकार्यार्थं कलश गृह्य सत्वरा ।४९।

हे शुभ व्रत वालो ! मुझे तो इस अमृत का विभाजन सभी के लिए कर देना चाहिये । जो भी अपना प्रिय तथा अप्रिय भी हो उसको देवों के लिए भी दो । इस वचन के कहने पर जोकि देवी मोहिनी ने कहा था, उन असुरों ने अतन्द्रित होकर वैसा ही स्वीकार कर लिया था और फिर असुरों ने उन सब सुरगणों को भी जिनमें इन्द्रदेव भी विद्यमान थे वहीं पर बुला लिया था ।४३।४४। हे द्विजगणो ! उस अमृत के पान करने के लिए वे सभी वहीं पर उपविष्ट हो गये थे। उन सबके वहीं पर बैठ जाने पर सब प्रकार के धर्मों के जानने वाली मोहिनी असुरों की ओर मुस्कराते हुए यह परम वचन कहा था—।४५। मोहिनी ने कहा—वैदिकी श्रुति का यही आदेश है कि सबके आदि में अभ्यागत गणों का पूजन करना चाहिये ।४६। इसलिए आप सभी लोग वेदों को मानने में परायण हैं और आप सब देव परायण भी हैं । अतएव अब आप सब लोग मुझे अति शीघ्रता से बतलाइये कि सबसे प्रथम में किन को इस अमृत को दूँ । हे महाभाग

वालो ! दैत्यराज बलि जिनमे परम प्रधान हैं वे सभी मुझे अब बतलाइये ।४६। उस समय में इस प्रकार से कहने पर दैत्यराज बलि ने मोहिनी से कहा था—हे सुन्दरानने ! जो भी आपको अपने मन में अच्छा लगे वैसा ही करिये । आप तो हम सबकी स्वामिनी हैं । इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं । इस तरह से भावितात्मा बलि के द्वारा सम्मानित हुई उस मोहिनी देवी ने परिवेषण करने के लिए शीघ्र ही उस सुधा के कलश को ग्रहण कर लिया था ।४७।४८।४९।

तस्मान्नरेन्द्रकरभोरुलसद्दुकूला
श्रोणीतटालसगतिर्मदविह्वलाङ्गी ।
सा कूजती कनकनूपुरसिञ्जितेन
कुम्भस्तनी कलशपाणिरथाविवेश ।५०।
तदा तु देवी परिवेषयन्ती स मोहिनी देवगणाय साक्षात् ।
ववर्ष देवेषु सुधारस पुनः पुनः सुधाहाररसामृतं यथा ।५१।
पुनश्च ते देवगणाः सुधारसं दत्तं तया परया विश्वमूर्त्या ।
देवेन्द्रमुख्याः सह लोकपाला गन्धर्वयक्षाप्सरसा गणाश्च ।५२
सर्वे दैत्या आसनस्थास्तदानी
चिन्तान्विताः क्षुधया पीडिताश्च ।
तूष्णीभूता बलिमुख्या द्विजेन्द्रा
मनस्विनो ध्यानपरा बभूवुः ।५३।
ततस्तथाविधान्दृष्ट्वा दैत्यास्तान्मोहमाश्रितान् ।
तदाराहुश्चकेतुश्चद्वावेतौ दैत्यपुङ्गवौ ।५४।
देवाना रूपमास्थाय अमृतार्थंत्वरान्वितौ ।
उपविष्टौ तदा पङ्क्त्यादेवानाममृतार्थिनौ ।५५।
यदाऽमृतं पातुकामो राहुः परमदुर्जयः ।
चन्द्रार्काभ्यां प्रकथितो विष्णोरमिततेजसः ।५६।

तदा तस्य शिरश्छिन्नं राहोर्दुर्विग्रहस्य च ।
शिरो गगनमापेदे कबन्धं च महीतले ।
भ्रममाणं तदा ह्यद्रीश्चूर्णयामास वै तदा ।५७।

श्रेष्ठ पुरुष के करभ के सदृश ऊरुओं पर शोभित दुकूल (वस्त्र) वाली श्रोणी तट से मन्द गति से युक्त, मद से विलुलित अङ्गों वाली, सुवर्ण के नूपुरों की ध्वनि से कूजन करती हुई, कुम्भ के तुल्य स्तनों से समन्वित कलश हाथों में ग्रहण किये हुई उस मोहिनी इसके अनन्तर वहाँ पर प्रवेश किया था ।५०। उस समय में देवगण के लिये साक्षात् परिवेषण करती हुई उस मोहिनी देवी ने जिस प्रकार से सुधा के आहार का रसामृत हो उस तरह से बारम्बार उन देवगणों में सुधा रस की खूब वृष्टि का थी ।५१। परा विप्र मूर्ति उसके द्वारा दिए उस सुधा के रस का उन सब देवगणों, देवेन्द्र मुख्यों, लोकपालों और गन्धर्व, यक्ष तथा अप्सराओं के समुदाय ने बारम्बार खूब पान किया था। ५२। उस समय मे सब दैत्यगण अपने आसनों पर स्थित हुये परमाश्चिन्तित हुये थे और क्षुधा से पीड़ित हो रहे थे। हे द्विजेन्द्रो ! बलि दैत्य जिनमें प्रधान था वे सब दैत्यगण ध्यान मे परायण होते हुए मनस्वी चुप ही रह गये थे। इसके अनन्तर मोह न समाश्रित हुए उस प्रकार से स्थित उन समस्त दैत्यों को देखकर उसी समय मे राहु और केतु ये दोनों दैत्यश्रेष्ठ देवों का स्वरूप धारण करके बहुत ही शीघ्रता से अमृतपान करने के लिए अमृतार्थी ये दोनों देवों के पंक्ति में आकर बैठ गये थे। जिस समय मे अमृत पान करने की कामना वाला परम दुर्जय राहु प्रस्तुत हो रहा था उसी समय चन्द्र और सूर्य, इन दोनों देवों ने अपरिमित तेज वाले भगवान विष्णु से इसको बतला दिया था। उस समय मे उस दुर्विग्रह राहु का शिर छिन्न हो गया था और वह शिर गगन में पहुंच गया था तथा उसका धड़ महीतल पर गिर गया था। उस धड़ ने भ्रमण करते हुए उस समय में पर्वतों को चूर्णित कर दिया था। ।५३-५७।

साद्रिश्च सर्वभूलोकश्चूर्णितश्च तदाऽभवत् ।
तया तेन च देहेन चूर्णितं सचराचरम् ।५८।
दृष्ट्वा तदा महादेवस्तस्योपरितुसंस्थितः ।
निवासः सर्वदेवाना तस्याः पादतलेऽभवत् ।५९।
पीडन तत्समापेऽथ निवास इति नाम वै ।६०।
महतामालययस्माद्यस्यास्तच्चरणाम्बुजम् ।
महालयेतिविख्याता जगत्त्रयविमोहिनी ।६१।
केतुश्चधूमरूपोऽसावाकाशे विलय गतः ।
सुधा समर्प्य चन्द्राय तिरोधानगतोऽभवत् ।६२।
वासुदेवोजगद्योनिर्जगता कारणं परम् ।
विष्णो प्रसादात्तज्जातं सुराणाकार्यसिद्धिदम् ।६३।
असुराणा विनाशाय जात दैवविपर्ययात् ।
विना दैवेनजानीध्वमुद्यमो हि निरर्थकः ।६४।
युगपद्येन हो सर्वे क्षीराब्धेर्मथनंकृतम् ।
सिद्धिर्जाता हि देवनामसिद्धिरसुरान्प्रति ।६५।
ततश्च ते देववराःप्रकोपिता दैत्याश्च
मायाप्रविमोहिताः पुनः ।
अनेकशाखाप्लुतास्तदाऽभवन्विष्णो
गते गर्जमानास्तदानीम् ।६६।

पर्वतो के सहित सम्पूर्ण यह भूलोक उस समय मे चूर्णित हो गया था और उससे तथा उसके देह से जड-चेतन सभी कुछ चूर्णित हो गया। उस काल में महादेव जी ने देखा कि सर्व देवो का निवास उसके ऊपर जो संस्थित था वह उसके पाद तल मे हो गया था और उसके समीप मे पीडन हो रहा था। इसके 'निवास' यह नाम हो गया था। ।५८।५९।६०। क्योकि उसका चरणाम्बुज महान् पुरुषो का आलय था इसलिए 'महालया'— इस नाम से वह जगत् त्रय को विमोहन करने

वाली विख्यात हो गई थी। यह केतु जो धूम रूप वाला था वह आकाश में विलय को प्राप्त हो गया था। उस सुधा को चन्द्र के लिये समर्पित करके वह तिरोधानगत हो गया था। भगवान वासुदेव इस सम्पूर्ण जगत् की योनि थे और जगतों के परम कारण थे। भगवान विष्णु के प्रसाद से वह सुरों के कार्यों की सिद्धि का प्रदान करने वाला हो गया था।६१-६४। दैव के विपर्यय होने ही से वह असुरों के विनाश करने के लिये हुआ था। यह जान लेना चाहिये कि बिना दैव के समस्त उद्यम निरर्थक ही हुआ करता है। उन सबने एक ही साथ मिलकर उस क्षीर सागर का मन्थन किया था किन्तु उस मन्थन करने की सिद्धि देवगणों को ही हुई थी और असुरों को केवल परिश्रम ही मिला था और सर्वथा असिद्धि उनको प्राप्त हुई थी। इसके अनन्तर माया से प्रकृष्ट रूप से विमोहित हुए वे सब दैत्यगण देवों के प्रति अत्यधिक आकुपित हुये थे। उस समय में अनेक शस्त्र और अस्त्रों से संयुत होकर वे सब भगवान विष्णु के चले जाने के पश्चात् उसी समय में बहुत अधिक गर्जना करने लगे थे।६५।६६।

१२—शिव लिङ्ग माहात्म्य वर्णन

हत्वा तं तारकं सद्ये कुमारेण महात्मना।
किं कृतं सुमहद्विप्र तत्सर्वं वक्तुमर्हसि ।१।
कुमारो ह्यपरः शम्भुर्येन सर्वमिदं ततम् ।
तपसा तोषितः शम्भुर्ददाति परमं पदम् ।२।
कुमारो दर्शनात्सद्यः सफलो हिनृणांसदा।
येपापिनोऽप्यधर्मिष्ठाः श्वपचाअपिलोमशा।
दर्शनाद्धूतपापास्ते भवन्त्येव न संशयः ।३।
शौनकस्य वचः श्रुत्वा उवाच चरितं तदा।
व्यासशिष्योमहाप्राज्ञः कुमारस्यमहात्मनः ।४।

हत्वा त तारकं सत्ये देवानामजयं ततः ।
अवध्यं च द्विजश्रेष्ठाः कुमारोजयमाप्तवान् ।५।
महिमा हि कुमारस्य सर्वशास्त्रेषु कथ्यते ।
वेदैश्च स्वागमैश्चापि पुराणैश्च तथैव च ।६।
तथोपनिषदैश्चैव मीमासाद्वितयेन तु ।
एवं भूत कुमारोयमशक्यो वर्णितुं द्विजाः ।७।

शौनक जी कहा—हे विप्रवर ! महात्मा कुमार द्वारा रण स्थल मे उस तारक का हनन करके फिर सुमहान क्या कर्म किया था वह सभी कुछ मार वर्णन करने के योग्य है ।१। भगवान कुमार तो दूसरे शम्भु ही हैं जिनने यह सभी कुछ विस्तृत किया है। तपश्चर्या के द्वारा तोषित हुए भगवान शम्भु परम पद प्रदान किया करते हैं ।२। भगवान कुमार सदा ही मनुष्यो के लिए दर्शन से ही तुरन्त फल दाता हो जाया करते हैं। हे लोमश ! जो महापापी हैं, अधार्म्मिष्ठ है और श्वपच हैं वे भी सब दर्शन से ही निष्पाप हो जाया करते हैं—इसमे लेश मात्र भी संशय को कोई बात नहीं है ।३। शौनक ने इस वचन का श्रवण करके उसी समय मे महान पण्डित श्री व्यास देव के शिष्य ने महात्मा कुमार का चरित कहा था। लोमश महर्षि ने कहा —हे द्विजो में परम श्रेष्ठो ! युद्ध स्थल मे देवो के द्वारा अजय उस तारकासुर को हनन करके जोकि वध करने के योग्य ही नहीं था, कुमार ने विजय प्राप्त करने का यश प्राप्त किया था । भगवान कुमार की महिमा समस्त शास्त्रो मे कही जाती है। वेदो के, आगमो के, पुराणो के, उपनिषदो और दोनो प्रकार के मीमासाओ के द्वारा भी कुमार की महिमा का गान किया जाता है। हे द्विजगण ! इस प्रकार का यह कुमार है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।४ ७।

यो हि दर्शनमात्रेण पुनाति सकलंजगत् ।
त्रातारं भुवनस्यास्यनिशम्यपितृराट्स्वयम् ।८।

ब्रह्माणं च पुरस्कृत्य विष्णुं चैव सवासवम् ।
स ययौ स्वरितैर्यमंकरं लोकशंकरम् ।
तुष्टाव प्रयतो भूत्वा दक्षिणाशापतिः स्वयम् ।६।
नमो भर्गाय देवाय देवानां पतये नमः ।
मृत्युञ्जयाय रुद्राय ईशानाय कपर्द्दिने ।१०।
नीलकंठाय शर्वाय व्योमाव्ययवरूपिणे ।
कालाय कालनाथाय कालरूपाय वै नमः ।११।
यमेन स्तूयमानो हि उवाच प्रभुरीश्वरः ।
किमर्थमागतोऽसि त्वं तत्सर्वंकथयस्व नः ।१२।
श्रुत्वा देवदेवेन वाक्यं वाक्यविशारद ।
तपसा परमेणैव तुष्टि प्राप्तोऽसिशङ्कर ।१३।
कर्मणा परमेणैव ब्रह्मा लोकपितामहः ।
तुष्टिमेति न संदेहो वरार्थो हि सदा प्रभुः ।१४।

जो दर्शन मात्र से सम्पूर्ण जगत् को पवित्र कर दिया करता है और इस भुवन का परित्राण करने वाला है—ऐसा पितृराट् यम ने स्वयं श्रवण किया था । वह ब्रह्माजी को और इन्द्र के सहित भगवान् विष्णु को अपने आगे करके बहुत ही शीघ्रता के साथ लोकों का कल्याण करने वाले भगवान् शङ्कर के समीप में गया था । दक्षिण दिशा के स्वामी यमराज ने स्वयं प्रयत होकर स्तवन किया था । देवों के पति भर्ग देव के लिये बारम्बार नमस्कार है । भगवान् मृत्युञ्जय, रुद्र, ईशान, कपर्दी, नीलकण्ठ, शर्व, व्योमाव्यय रूपी, काल, काल नाथ और कालरूप के लिये हम सबका नमस्कार है । इस प्रकार से यम के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु ईश्वर ने कहा—तुम यहाँ किस प्रयोजन से आये हो—यह सब हमको बतलाओ । यमराज ने कहा—हे देवों के भी देवेश ! आप तो वाक्य कहने में महान् विशारद हैं । मेरा वाक्य श्रवण कीजिए । हे शङ्कर ! आप परमाधिक तप से तुष्टि को प्राप्त हो गये हैं ।

लोकों के पितामह ब्रह्मा जी परम कर्म में ही तुष्टि को प्राप्त हो जाते हैं। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि वरों के प्रदान करने में सदा प्रभु हैं ॥८-१४॥

तथा विष्णुर्हि भगवान्वेदवेद्यः सनातनः ।
यज्ञैरनेकैः सन्तुष्ट उपवासव्रतैस्तथा ।१५।
ददाति केवलं भावं येन कैवल्यमाप्नुयुः ।
नराः सर्वे मम मतं नान्यथा हि वचो मम ।१६।
ददाति तुष्टोवैभोगंतयास्वर्गादिसंपदः ।
सूर्योनमस्ययाऽऽरोग्यददातीहननान्यथा ।१७।
गणेशो हि महादेव अर्घ्यपाद्यादिचंदनैः ।
मन्त्रावृत्या तथा शम्भो निर्विघ्नंचकरिष्यति ।१८।
तथान्ये लोकपा सर्वे यथाशक्त्या फलप्रदाः ।
यज्ञाध्ययनदानाद्यैः परितुष्टाश्च शङ्कर ।१९।
महदाश्चर्यसंभूत सर्वेषां प्राणिनामिह ।
कृतं च तव पुत्रेण स्वर्गद्वारमनावृतम् ।२०।
दर्शनाच्च कुमारस्य सर्वे स्वर्गकामो नराः ।
पापिनोऽपिमहादेवजातानास्त्यत्रसंशयः ।२१।

इसी प्रकार से वेदों के द्वारा जानने के योग्य, सनातन भगवान् विष्णु अनेक प्रकार के यज्ञों के द्वारा तथा उपवास और व्रतों के द्वारा सन्तुष्ट हो जाते हैं। वह केवल भाव को प्रदान किया करते हैं जिसके द्वारा सब मनुष्य कैवल्य को प्राप्त कर लेते हैं—ऐसा मेरा मत है। मेरा वचन अन्यथा नहीं है। वह तुष्ट होकर भोग तथा स्वर्गादि की सम्पदा प्रदान किया करते हैं। सूर्य देव नमस्कारों से ही आरोग्य का प्रदान करते हैं जैसा कि अन्य कोई नहीं करता है। हे महादेव ! हे शम्भो ! गणेश देवता अर्घ्य-पाद्य आदि चन्दन जैसे पर्च नोप चारों के द्वारा तथा मन्त्र की आवृत्ति के द्वारा कार्मों में निर्विघ्नता कर दिया करते हैं इसी

भाँति अन्य लोकपाल भी सब यथा शक्ति फलों के प्रदान करने वाले हैं। हे शङ्कर! यज्ञ-अध्ययन-दान आदि के द्वारा सब परितुष्ट हो जाया करते हैं। यहाँ पर समस्त प्राणियों के लिए यह महान् आश्चर्य सम्भूत है कि आपके पुत्र ने स्वर्ग के द्वार को अपावृत कर दिया है। केवल कुमार के दर्शन कर लेने भर से ही सब मनुष्य स्वर्ग में निवास करने वाले हो जाया करते हैं। हे महादेव! जो महा पापी लोग होते हैं वे भी सीधे कुमार के दर्शन करने की महिमा से स्वर्गगामी हो जाते हैं—इसमें किञ्चितमात्र भी संशय नहीं है ॥१५-२१॥

मया किंक्रियतां देवकार्याकार्यव्यवस्थितौ।
ये सत्यशीलाः शान्ताश्च वदान्या निरवग्रहाः ।२२।
जितेंद्रिया अलुब्धाश्च कामरागविवर्जिताः।
याज्ञिका धर्मनिष्ठाश्च वेदवेदांगपारगाः ।२३।
यां गतिं यांति वै शंभो सर्वे सुकृतिनोपि हि।
तां गतिं दर्शनात्सर्वे श्वपचाधमा अपि ।२४।
कुमारस्य च देवेश महदाश्चर्यकर्मणः।
कार्त्तिक्यां कृत्तिकायोगसहितायां शिवस्य च ।२५।
शिवस्य तनयं दृष्ट्वा ते यांति स्वकुलैः सह।
कोटिभिर्बहुभिश्च वमत्स्यानं परिमुच्य वै ।२६।
कुमारदर्शनात्सर्वे श्वपचा अपि यांति वै।
सद्गतिं त्वरितेनैव किं क्रियेत मयाऽधुना ।२७।
यमस्य वचनं श्रुत्वा शङ्करो वाक्यमब्रवीत् ।२८।

हे देव! अब ऐसी दशा में कार्य और अकार्य की व्यवस्था में मैं क्या करूँ? जो प्राणी सत्य शील, परम शान्त, वदान्य (दानी), निरवग्रह, जितेन्द्रिय, अलुब्धक, काम और राग से रहित, याज्ञिक, धर्म में परम गाढ़ निष्ठा रखने वाले, वेदों तथा वेदों के अङ्ग शास्त्रों के पारगामी विद्वान् पुरुष हे शम्भो! सब सुकृती मनुष्य जिस दिव्य गति को

प्राप्त किया करते हैं उसी उत्तम गति को सभी श्वपच और अधम पुरुष भी केवल कुमार के दर्शन मात्र के करने से प्राप्त कर लिया करते हैं ।।२२।२३।२४।। यमराज ने भगवान् शङ्कर से पूछा था—हे देवेश ! कृत्ति का के योग से संयुत कार्त्तिकी मे महान् आश्चर्य से युक्त कर्म वाले कुमार का और शिव का तथा शिव के पुत्र का दर्शन प्राप्त करके वे अपने बहुत से करोड़ो कुलो के साथ मेरे स्थान का परित्याग करके कुमार के दर्शन के प्रभाव से सब श्वपच भी तुरन्त ही सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं। अब मुझे क्या करना चाहिए अर्थात् अब तो मेरे लिये कुछ भी कार्य करना शेष ही नहीं रह गया है। यमराज ने इस वचन का श्रवण करके भगवान् शङ्कर ने यह वाक्य कहा था ।२५।२६। ।२७।२८।

येषां स्वंगम पाप जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
विशुद्धभावो भो धर्म्म तेषां मनसि वर्त्तते ।२९।
सत्तीर्थगमनायैव दर्शनार्थं सतामिह ।
वाञ्छाचमहती तेषां जायते पूर्वकारिता ।३०।
वहूनां जन्मनामन्ते मयि भावोऽनुवर्त्तते ।
प्राणिनां सर्वभावेन जन्माभ्यासेनभो यम ।३१।
तस्मात्सुकृतिनः सर्वे येषां भावोऽनुवर्त्तते ।
जन्मजन्मानुवृत्तानां विस्मयनैवकारयेत् ।३२।
स्त्रीबालशूद्राः श्वपचाधमाश्च प्राग्जन्मसंस्कारवशाद्धि धर्म्म !।
योनि गताः पापिषु वर्त्तमानास्तथाऽपि शुद्धा
मनुजा भवंति ।३३।
तथा सितेन मनसा च भवन्ति सर्वे सर्वेषु चैव विषयेषु
भवन्ति तज्ज्ञाः ।
देवेन् पूर्वचरितेन भवन्ति सर्वे सुराश्चेन्द्रादयो
लोकपालाः प्राक्तनेन ।३४।

जाता ह्यमी भूतगणाश्च सर्वे ह्यमी ऋषयो देवताश्च ।३५।

भगवान् शङ्कर ने कहा—जिन परम पुण्य कर्म करने वाले मनुष्यों के मन गत पाप होता है हे धर्म ! उनके कर्म में परम विशुद्ध भाव भासा धर्म रहा करता है। यहाँ अच्छे तीर्थों के मज्जन के लिये और सत्पुरुषों के दर्शन प्राप्त करने के वास्ते उनको पूर्व कारिता वाञ्छा समुत्पन्न हुआ करती है। बहुत-सी जन्मों के अन्त में मुक्ति में उनका भाव अनुवर्तित हुआ करता है। हे धर्म ज्ञ ! ऐसा प्राणियों के सर्वतोभाव से जन्मों के अभ्यास से ही हुआ करता है। इसलिये जिनका भाव अनुवर्तित होता है वे सभी सुकृती होते हैं क्योंकि वे सब जन्म-जन्मानुवृत्त ही हुआ करते हैं अर्थात् बहुत से जन्मों के अनुवर्तन से ही ऐसा हुआ करता है। इसलिए इससे विस्मय कभी नहीं करना चाहिए। हे धर्मराज ! स्त्री, बालक, शूद्र, श्वपच और यवन लोग भी पहिले जन्मों के संस्कार के कारण ही पापियों की वर्तमान योनियों में प्राप्त हुए हैं तो भी वे मनुष्य शुद्ध होते हैं ।२६-३३। उसी भाँति वे अपने विशुद्ध मनसे सब सभी विषयों में उनके पूर्ण ज्ञाता हो जाया करते हैं। पूर्व चरित दैव से और आगत कर्म से वे सब सुर, इन्द्रादि और लोक पाल हो जाया करते हैं। ये समस्त भूत गण, ऋषि गण और देव गण समुत्पन्न हुए हैं ।।३४।३५।

विस्मयो नैव कर्त्तव्यस्त्वया वापि कुमारके ।
कुमारदर्शने चैव धर्मराज निबोध मे ।३६।
वचनं कर्मसंयुक्तं सर्वेषां फलदायकम् ।
सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च दानानि विविधानि च ।
कार्याणि मनः शुद्ध्यर्थं नात्र कार्या विचारणा ।३७।
मनसाभावितोह्यात्मा आत्मनात्मानमेवच ।
आत्माअहंचसर्वेषां प्राणिनांहृदयवस्थितः ।३८।

अहं सदा भावयुक्त आत्मसंस्थो निरंतरः।
जङ्गमाजंगमानां च सत्य प्रति वदामिते।३६।
द्वन्द्वातीतो निर्विकल्पो हि साक्षात्स्वस्थो नित्यो
नित्ययुक्तो निरीहः।
कूटस्थो वै कल्पभेदप्रवादैर्बहिष्कृति बोधबोध्यो
ह्यनन्तः।४०।
विस्मृत्यचैनस्वात्मानकेवलबोधलक्षणम् ।
संसारिणो हि दृश्यतेसमस्ताजीवराशयः।४१।
अहं ब्रह्मा च विष्णुश्चत्रयोऽमीगुणकारिणः।
सृष्टिपालनसंहारकारकानान्यथाभवेत् ।४२।
अहंकारकृतेनैव कर्मणा कारितावयम्।
यूयं च सर्वे विबुधा मनुष्याश्च खगादयः।४३।

हे धर्मराज ! आपको कुमार के विषय में बिल्कुल विस्मय नहीं चाहिए। कुमार के दर्शन में जो भी फलोदय हुआ करता है उसे तुम मुझसे भली भाँति समझ लो। कर्मों से समन्वित वचन ही' सबको फल प्रदान करने वाला हुआ करता है। सम्पूर्ण तीर्थ-यज्ञ और विविध प्रकार के किये जाने वाले दान मन की विशुद्धि प्राप्त करने के लिए अवश्य ही करने चाहिए। इसमें कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए। ।३६।३७। मन से भावित आत्मा होता है और अपनी आत्मा से ही आत्मा हुआ करता है अर्थात् अपने आपका कल्याण अपनी ही आत्मा के द्वारा हुआ करता है। समस्त प्राणियों की व्यवस्थित आत्मा मैं ही हूं। मैं सदा भाव से युक्त निरन्तर आत्मा में संस्थिति करने वाला हूं चाहे कोई जगम सृष्टि हो या जड सृष्टि हो। यह मैं आपको बिल्कुल सत्य-सत्य बतला रहा हूं। मेरा स्वरूप सुख दुःखादि द्वन्द्वों से परे है— मैं निर्विकल्पक हूं, मेरा स्वरूप साक्षात् स्वस्थ, नित्य, नित्ययुक्त, निरीह (चेष्टा रहित), कूटस्थ, कल्पो के भेद, प्रवाहो से बहिष्कृत, बोध के द्वारा

जानने के योग्य और अनन्त है। किन्तु इस प्रकार के इस बोध लक्षण वाली अपनी आत्मा को विस्मृत करके ही ये समस्त सांसारिक जीवों के समुदाय दिखलाई दिया करते हैं। मैं ही ब्रह्मा हूं और मैं ही साक्षात् विष्णु हूँ। ये तीनों स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर के गुणकारी हैं। संसार का सृजन-पालन और संहार करने वाले ये जिस प्रकार से हुआ करते हैं।३८-४२। अहङ्कार कृत कर्म से ही हम सब कराये गये हैं और आप सब देवगण तथा मनुष्य वृन्द और खग (पक्षी) प्रकृति भी उसी प्रकार के किये गये कर्म से हुए हैं।४३।

पश्वादयः पृथग्भूतास्तथान्ये बहवो ह्यमी।
पृथक्पृथक्समीचीना गुणवन्तश्च संसृतौ।४४।
पतिता मृगतृष्णायां मायया च वशीकृताः।
वयं सर्वे च विबुधाः प्राज्ञाः पंडितमानिनः।४५।
परस्परं दूषयन्तो मिथ्यावादरताः खलाः।४६।
त्रैगुण्यसंपन्ना अतत्त्वज्ञाश्च रागिणः।
कामक्रोधभयद्वेषमदमात्सर्यसंयुताः ।४७।
परस्परं दूषयन्तो ह्यतत्त्वज्ञा बहिर्मुखाः।
तस्मादेव विदित्वाथ असत्यं गुणभेदतः।४८।
गुणातीते च वस्त्वर्थे परमार्थैकदर्शनम्।४९।

पशु आदि सब पृथग्भूत हैं तथा अन्य बहुत-से हम पृथक्-पृथक् इस संसार में गुणवान् और समीचीन हैं। माया के द्वारा वशीकृत हुए हम सब मृग तृष्णा में पड़े हुए हैं। हम सब और परम प्राज्ञ अपने आपको पण्डित मानने वाले देवगण परस्पर में एक दूसरे को दूषित करते हुए मिथ्यावाद में निरत हुए खल हो रहे हैं। सत्व, रज, तम इन त्रिगुणों से संयुत, भव से सम्पन्न, तत्वों के न जानने वाले राग से परिपूर्ण—काम, क्रोध, भय, द्वेष, मद और मात्सर्य से समन्वित एक दूसरे के दतलाने वाले—अतत्वज्ञ और बहिर्मुख हैं। इसलिए गुणों

के भेद से इस प्रकार से सबको समान जान कर रहे। गुणातीत वस्तु के अर्थ में परमार्थ का एक दर्शन होता है ।४८-४६।

यस्मिन्भेदोह्यभेदंचयस्मिन्रागोविरागताम् ।
क्रोधो ह्यक्रोधतायातितद्धाम परमंश्रृणु ।५०।
न तद्भासयते शब्दः कृतकत्वाद्यथा घटः ।
शब्दो हि जायते धर्मः प्रवृत्तिपरमो यतः ।५१।
प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च तथा द्वन्द्वानि सर्वशः ।
विलययातियत्रैवतत्स्थानशाश्वत मतम् ।५२।
निरन्तरं निर्गुणं ज्ञप्तिमात्रं निरंजन निर्विकारं निरीहम् ।
सत्तामात्र ज्ञानगम्यं स्वसिद्धं स्वयप्रभ सुप्रभ बोधगम्यम् ।५३।
एतज्ज्ञान ज्ञानविदो वदन्ति सर्वात्मभावेन निरीक्षयन्ति ।
सर्वातीत ज्ञानगम्य विदित्वा येन स्वस्थाः समबुद्ध्या चरन्ति ।५४।

अतीत्य संसारमनादिमूलं मायामय मायया दुर्विचार्यम् ।
मायां त्यक्त्वा निर्ममा वीतरागा गच्छन्ति प्रेतरानिर्विकल्पम् ।५५।

संसृतिः कल्पनामूलं कल्पना ह्यमृतोपगा ।
यैः कल्पनापरित्यक्तास्तेयाति परमांगतिम् ।५६।

जिसमें भेद अभेदता को प्राप्त हो जाता है, राग विरागता की प्राप्ति कर लिया करता है, क्रोध अक्रोध भाव को प्राप्त होता है वही परम धाम है, यह श्रवण करलो। जिस तरह से कृतक होने से घट भासित नहीं होता है उसी भांति वहाँ पर शब्द भासित नहीं हुआ करता है क्योंकि यह शब्द प्रवृत्ति, परम धर्म हुआ करता है। सभी जगह प्रवृत्ति और निवृत्ति तथा द्वन्द्व विद्यमान रहा करते हैं किन्तु जहाँ पर ये सब विलीनता को प्राप्त हो जाया करते हैं वही परम शाश्वत स्थान माना गया है ॥५०॥५१॥५२॥ निरन्तर, निर्गुण,

ज्ञानिमान, निरञ्जन, निर्विकार, निरीह, सत्तात्मय, ज्ञानमय, स्वसिद्ध, सुप्रम, मोक्षमय को होता है सभी को ज्ञान के वेत्ता गण ज्ञान कहा करते हैं और सर्वात्मभाव से निरीक्षण किया करते हैं अर्थात् सभी को अपने ही समान देखा करते हैं। सबसे अतीत अर्थात् परे और ज्ञान के द्वारा जानने के योग्य समझकर जिसके द्वारा परमस्वरूप और सम बुद्धि से सञ्चरण किया करते हैं। ॥५३॥५४॥ माया से परिपूर्ण, माया से दुर्विचार्य अर्थात् परम दुःख से विचार करने के योग्य और अनादि मूल इस संसार का अति क्रमण करके हे, शैवराट्! इस माया का त्याग करके ममता से रहित, वीतराग वे पुरुष ही निर्विकल्पक को जाया करते हैं ॥५५॥ यह प्रकृति कल्पना के मूल वाली है और यह कल्पना अमृत के समान है जिन्होंने इस कल्पना का त्याग कर दिया है वे सत्पुरुष ही परम गति को प्राप्त किया करते हैं ।५६।

शुक्त्या रजतबुद्धिश्च रज्जुबुद्धिर्यथोरगे ।
मरीचौ जलबुद्धिश्च मिथ्यामिथ्यैवमन्यथा ।५७।
सिद्धिः स्वच्छन्दवृत्तिस्त्वंपारतन्त्र्यहिर्वमृषा ।
बद्धोहिपरतन्त्र्योमुक्तः स्वातन्त्र्यमाश्रितः ।५८।
एको ह्यात्मा चिदित्वाय निर्ममो निरवग्रहः ।
कुतस्तेषा बन्धनं च यथाखेपुष्पमेव च ।५९।
अविद्याप्रमेवैतज्ज्ञानं संसार एव च ।
किं कार्यं बहुनोक्तेन वचसा निष्फलेन हि ।६०।
ममता च निराकृत्यप्राप्तुकामाः परंपदम् ।
ज्ञानिनस्तेहिविद्वांसोवीतरागाजितेंद्रियाः ।६१।
येस्त्यक्तौ ममताभावौ लोभक्रोधौनिराकृतौ ।
तेयान्तिपरमं स्थानं कामक्रोधविवर्जिताः ।६२।

यथा भ्रमरिकादृष्टा भ्रम्यते च मही यम ।
तथात्मा भेदबुद्धया च प्रतिभातिह्यनेकधा ।७१।
तस्माद्विमृश्य तेनैव ज्ञातव्यं श्रवणेन च ।
मंतव्यः सुप्रयोगेण मननेन विशेषतः ।७२।
निर्द्धार्य चात्मनात्मानं सुखं बंधात्प्रमुच्यते ।
मायाजालमिदं सर्वं जगदेतच्चराचरम् ।।७३।
मायामयोऽयं संसारः ममतालक्षणो महान् ।
ममतावर्वहि कृ-वासुखबंधात्प्रमुच्यते ।७४।
कोऽहं कस्त्वं कुतश्चान्ये महामायावलंबिनः ।
अजागलस्तनस्येव प्रपञ्चोऽयंनिरर्थकः ।७५।
निष्कलोऽयं निराभासो निःसारो धूमडंबरः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन आत्मानं स्मरवैयम ।७६।

हे यम ! जिस तरह से भ्रमरिका के द्वारा देखी गई मही घूमती हुई दिखलाई दिया करती है ठीक उसी भाँति यह आत्मा भेद की बुद्धि से अनेक प्रतीत हुआ करती है। इसीलिए भली-भाँति विमर्श करके उसी के द्वारा ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । और श्रवण के द्वारा समझना चाहिए । सुन्दर रीति से प्रयोग के द्वारा तथा विशेष रूप से मनन करने के द्वारा मानना चाहिये ।७१।७२। अपनी आत्मा से ही अपनी आत्मा का निर्धारण करके सुख पूर्वक बन्ध से प्रमुक्त हो जाया करता है। यह सम्पूर्ण चराचर जगत् माया का ही एक जाल है। यह समस्त संसार भी माया से परिपूर्ण है और यह महान ममता के लक्षण वाला है। इस ममता का बहिष्कार करके अर्थात् मैं मेरे मन की भावना को दूर हटाकर प्राणी परम सुख के साथ इस संसार के बार-म्बार जन्म-मरण के द्वारा आवागमन के बन्धन से छुटकारा पा जाया करता है। मैं कौन हूँ, तू कौन है और अन्य महामाया का अवलम्बन करने वाले कौन कहाँ से आये है— बकरी के गले में समुत्पन्न होने वाले स्तन की ही भाँति यह सारा प्रपञ्च निरर्थक ही होता है। यह सभी

बुद्ध फल रहित, निराभास, सार से शून्य धूम डम्बर है अर्थात् धूँआ का सा छाया हुआ जाल है जिसमें वास्तविकता लेश मात्र को भी नहीं है। इसलिये हे यम ! सभी प्रकार के प्रयत्नों के द्वारा आत्मा का ही स्मरण करो।७३—७६।

एवंप्रचोदितस्तेन शम्भुना प्रेतराट् स्वयम् ।
बुद्धोभूत्परमः साक्षादात्मभूतोऽभवत्तदा ।७७।
कर्म्मणां हि च सर्वेषां शास्ता कर्मानुसारतः ।
बभूव ईश्वरो नृणामतीवपरमाहितः ।७८।
हत्वा तु तारकं युद्धे कुमारेण महात्मना ।
अत ऊर्ध्वं कथयतां मोकि .कृत' महदद्भुतम् ।७६।
हते तु तारके दैत्ये हिमवत्प्रमुखादयः ।
कार्तिकेयं समागत्य गीर्भी रम्याभिरैडयन् ।८०।
नमः कल्याणरूपाय नमस्ते विश्वमङ्गल ।
विश्वबंधो नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ।८१।
वरिष्ठाः श्वपचः येन कृता वै दर्शनात्त्वया ।
त्वा नमामो जगद्बंधुं सर्वदैत्यगणागतः ।८२।
नमस्ते पार्वतीपुत्र शङ्करात्मज ते नमः ।
नमस्ते कृत्तिकासूनो अग्निभूत नमोऽस्तु ते ।८३।
नमोऽस्तु ते देववरैः सुपूज्य नमोऽस्तु ते ज्ञानविदां वरिष्ठ ! ।
नमोऽस्तु ते देववर प्रसीद शरण्य सर्वार्तिविनाशदक्ष ! ।८४।

महर्षि लोमश जी ने कहा—इस तरह से भगवान शम्भु के द्वारा प्रेरणा दिये हुए प्रेतराज स्वयं ही परम बुद्ध होकर उस समय में साक्षात् आत्मभूत हो गये थे। समस्त कर्म्मों के अनुसार ही सबके कर्मों का शासन करने वाला हो गये थे और प्राणियों का तथा मनुष्यों का परम समाहित ईश्वर हो गया था।७७।७८। ऋषिगण ने कहा—महात्मा कुमार ने रणभूमि में तारकासुर का हनन करके इसके पश्चात्

उन्होंने क्या महान अद्भुत कर्म किया था उसे बतलाइये। श्री सूतजी ने कहा—तारका सुर के निहत हो जाने पर हिमवान आदि प्रमुख पर्वत वृन्द स्वामी कार्तिकेय के समीप में आकर परम रम्य वाणियों के द्वारा स्तवन करने लगे थे। गिरिगण ने कहा—हे विश्व के मङ्गल करने वाले ! कल्याण स्वरूप आपके लिए हमारा नमस्कार है। हे विश्व बन्धो ! आप तो समस्त विश्व पर दयाभाव रखने वाले हैं आपके लिए बारम्बार नमस्कार है। जिन आपने अपने सुन्दर दर्शन ही देकर के जो श्वपच थे उनको परम वरिष्ठ बना दिया है। जगत् के बन्धु आपको हम नमस्कार करते हैं और हम सब आपकी शरणागति में प्राप्त हुए हैं। ।७६—८२। यमराज ने कहा—हे पार्वती के पुत्र ! हे शङ्कर के आत्मज ! आपके लिये बारम्बार नमस्कार है। हे कृत्तिका के पुत्र ! आप तो अग्नि, भून हैं। आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है। हे देववरों के द्वारा भली-भाँति पूजा करने के योग्य ! हे ज्ञान के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ! आपकी सेवायें बारम्बार नमस्कार है। हे देवों में श्रेष्ठ ! हे शरण्य ! आप तो सबकी आर्ति के विनाश करने में परम कुशल हैं। आप प्रसन्न होइये। आपको मेरा नमस्कार है ।८३।८४।

एवं स्तुतोगिरिभिः कार्तिकेयोह्यमामुतः ।
तान्गिरीन्सुप्रसन्नात्मा वरदातुं समुत्सुकः ।८५।
भोभो गिरिवरा यूयं शृणुध्वमद्वचोऽधुना ।
कर्मिभिर्ज्ञानिभिश्चैवसेव्यमानाभविष्यथ ।८६।
भवत्स्वेवहि वर्त्तते दृषदो यत्नसेविताः ।
पुनन्तु विश्वं वचनान्मम ता नात्र संशयः ।८७।
पर्वतीयानितीर्थानिभविष्यतिनचान्यथा ।
शिवालयानिदिव्यानिदिव्यान्यायतनानिच ।८८।
अयनानि विचित्राणि शोभनानि महान्ति च ।
भविष्यंति न सन्देहः पर्वता वचनान्मम ।८९।

योऽयं मातामहो मेऽस्त्यहिमवान्पर्वतोत्तमः ।
तपस्विनांमहाभागः फलदोहि भविष्यति ।६०।
मेरुश्च गिरिराजोऽयमाश्रयो हि भविष्यति ।
लोकालोकागिरिवरउदयाद्रिर्महायशाः ।६१।

इस प्रकार से सुन्दर नारियों के द्वारा स्तवन किये गए उमा देवी के पुत्र स्वामी कार्त्तिकेय परम प्रसन्न आत्मा वाले होकर उन गिरि-वरों को वरदान प्रदान करने के लिए समुत्सुक हो गये थे। स्वामी कार्त्तिकेय ने कहा—हे गिरिवरो ! आप लोग इस समय में मेरे वचन का श्रवण करो। आप लोग सब कर्मों के करने वालों के द्वारा ज्ञानियों के द्वारा से ध्यमान हो जायेंगे। आप लोगों के अन्दर ही ऐसी शिलायें विद्यमान हैं जो यत्नों के द्वारा सेवित होती हुई मेरे वचन से इस संपूर्ण विश्व को पवित्र करेंगी, इसमें कुछ भी संशय नहीं है। अनेक पर्वतीय तीर्थ होंगे, यह अन्यथा नहीं है। दिव्य शिवालय और दिव्य आयतन एवं विचित्र भवन जो शोभन तथा महान होंगे। हे पर्वतगण ! मेरे इस वचन से इसमें बिल्कुल सन्देह नहीं है। जो यह मेरे पितामह हैं वे समस्त पर्वतों में परम श्रेष्ठ इस समय पर हैं। यह सब तपस्वियों में महान भाग वाले हैं और निश्चय ही फल देने वाले होंगे। यह मेरु नाम धारी पर्वत गिरियों का राजा है और यह सबका समाश्रय होगा। लोकालोक पर्वत गिरियों में श्रेष्ठ गिरि है और यह महान यश वाला उदय गिरि है।८५-६१।

लिंगरूपो हि भगवान्भविष्यतिन चान्यथा ।
श्रीशैलोहिमहेंद्रश्चतथाशह्यान्नलोगिरिः ।६२।
माल्यवान्मलयो विन्ध्यस्तथासो गंधमादनः ।
श्वेतकूटस्त्रिकूटो हि तथादर्दुरपर्वतः ।६३।
एते चान्ये च बहवः पर्वता लिंगरूपिणः ।
मम वाक्यद्भविष्यन्ति पापक्षयकरा ह्यमी ।६४।

एवं वरं ददौ तेभ्यः पर्वतेभ्यश्च शाङ्करिः ।
ततो नन्दी ह्युवाचाथ सर्वागमपुरस्कृतम् ।९५।
त्वया कृता हि गिरयो लिंगरूपिण एवते ।
शिवालयाः कथंनाथपूज्याः स्युः सर्वदैवतैः ।९६।
लिङ्गं शिवालयं ज्ञेय देवदेवस्य शूलिनः ।
सर्वैर्नृभिर्दैवतैश्च ब्रह्मादिभिरतन्द्रितैः ।९७।
नीलं मुक्ता प्रवालं च वैडूर्यं चन्द्रमेव च ।
गोमेदपद्मरागं च मारतं काञ्चनं तथा ।९८।

भगवान लिङ्ग रूप वाले होंगे—इसमें अन्यथा नहीं है। श्री शैल, महेन्द्र, सह्याचल, गिरि, माल्यवान, मलय, विन्ध्य, गन्ध, मादन, श्वेत कूट, त्रिकूट तथा दर्दुर पर्वत—ये सब तथा अन्य पर्वत लिङ्ग रूप वाले हैं। ये सभी मेरे वचन से पापों के क्षय करने वाले हो जायेंगे। इस प्रकार से भगवान शङ्कर के पुत्र कुमार ने उन पर्वतों के लिए वरदान प्रदान किया था। इसके पश्चात नन्दी समस्त आगमों से पुरस्कृत वचन कहा था। नन्दी ने कहा था—हे भगवन ! आपने इन समस्त पर्वतों को लिङ्ग रूपी बना दिया है। हे नाथ ! ये शिवालय समस्त देवों के द्वारा किस प्रकार से पूज्य होंगे ? कुमार ने कहा—देवों के देव भगवान शूली के लिङ्ग को ही शिवालय जानना चाहिए। यह बात सभी मनुष्यों, देवतों और अतन्द्रित ब्रह्मा आदि को भी समझ लेना चाहिये। नील (नीलम) मुक्ता (मोती), प्रवाल (मूंगा), वैडूर्य, चन्द्र, गोमेद, पद्मराग, मारकत, काञ्चन, राजत, ताम्रम्बर तथा पर नागमय—इस सब रत्न एवं धातुओं से परिपूर्ण लिङ्ग आपको हमने बतला दिये हैं।९२—९८।

राजतं ताम्रमारं च तथा नागमयं परम् ।
रत्नधातुमयान्येव लिंगानिकथितानि ते ।९९।

पवित्राण्येव पूज्यानि सर्वकामप्रदानि च।
एतेषामपि सर्वेषां काश्मीरं हि विशिष्यते ॥१००॥
ऐहिकामुष्मिकं सर्वं पूजाकर्तुः प्रयच्छति ॥१०१॥
लिंगानामपि पूज्यं स्याद्वाणलिंगं त्वया कथम्।
कथितं चोत्तमत्वेन तत्सर्वं वदसुव्रत ॥१०२॥
रेवायां तोयमध्ये च दृश्यन्ते दृषदोहिया :
शिवप्रसादात्तास्तु स्युर्लिंगरूपा नचान्यथा ॥१०३॥
श्लक्ष्णमूलाश्च कर्तव्याः पिंडिकोपरिसंस्थिताः।
पूजनीयाः प्रयत्नेन शिवदीक्षायुतेन हि ॥१०४॥
पिण्डीयुक्तं च शास्त्रेण विधिना यच्च चिह्नकम्।
वरदो हि जगन्नाथः पूजकस्य न चान्यथा ॥१०५॥
पञ्चाक्षरी यस्य मुखे स्थिता सदा
चेतोनिवृत्तिः शिवचिन्तने च।
भूतेषु साम्यं परिवादमूकता
पण्डस्त्वमेव परमोपितास्तु ॥१०६॥

ये सब परम पवित्र, पूज्य एवं समस्त प्रकार की कामनाओं को पूर्णतया प्रदान करने वाले हैं। इन समस्तों में भी काश्मीर विशेष रूप से माना जाता है। पूजा करने वाले मनुष्य को ऐहिक (इस लोक का) और आमुष्मिक (परलोक का) सभी कुछ यह प्रदान किया करता है।९९।१००।१०१। नन्दी ने कहा—हे सुव्रत ! आपने इन समस्त लिंगों में बाण लिङ्ग को परम पूज्य कैसे कहा था। आपने उसे सर्वोत्तम रूप से बतलाया था—यह सब कृपा करके बतलाइये। भगवान् कुमार ने कहा—रेवा नदी में जल के मध्य में जो शिलायें दिखलाई दिया करती हैं वे सब भगवान् शिव के प्रसाद से लिङ्ग के स्वरूप वाले हो गये हैं—इसमें तनिक भी अन्यथा नहीं है। पिण्डिका के ऊपर में संस्थित श्लक्ष्ण मूल करनी चाहिये उन शिलाओं का पूजन भगवान्

शिव की दीक्षा से संयुत मनुष्य के द्वारा ही करना चाहिये। शास्त्रोक्त विधि के द्वारा पिण्डीयुक्त भगवान शिव का यजन करना चाहिये। जो भगवान शिव का अर्चन करने वाला पुरुष होता है उसको जगत् के बाह्य शिव वरदान के प्रदाता हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी अन्यथा नहीं है। जिसके मुख मे सदा "ॐ नमः शिवाय"—यह पञ्चाक्षरी मन्त्र स्थित रहा करता है और भगवान शिव चिन्तन करने में चेत की निवृत्ति हो जाया करती है। प्राणिमात्र में समता की भावना, परिवाह मे मूकता अर्थात् किसी के भी साथ किसी भी प्रकार का विवाद न करना तथा पराई स्त्रियो के विषय मे षण्ढत्व अर्थात् दूसरों की स्त्रियों के साथ मे सङ्गम का अभाव का रहना यह कल्याण के लिये होना चाहिये।१०२–१०६।

१६–राशि नक्षत्र निरूपण

यदा सृष्टं जगत्सर्वं ब्रह्मणा परमेष्ठिना।
कालचक्रं तदा जातं पुरा राशिसमन्वितम्।
द्वादश राशयस्ता नक्षत्राणि तथैव च।१।
सप्तविंशतिसंख्यानि मुख्यानि कार्यसिद्धये।२।
एभिः सर्वं प्रचण्डं च राशिभिरुडुभिस्तथा।
कालचक्रान्वितः कालः क्रीडयन्सृजतेजगत्।३।
आब्रह्मस्तंबपर्यंतं सृजत्यवति हंति च।
निबद्धमस्ति तेनैव कालेनैकेन भो द्विजाः।४।
कालो हि बलवाँल्लोकेएकएवनचापरः।
तस्मात्कालात्मकंसर्वमिदंनास्त्यत्रसंशयः।५।
आदौकालः कालनाच्च लोकनायकनायकः।
ततोलोकाहिसंजाताः सृष्टिश्च तदनंतरम्।६।
सृष्टेर्लवो हि संजातो लवाच्च क्षणमेव च।
क्षणाच्च निमिषंजातं प्राणिनांहिनिरन्तरम्।७।

ऋषिगण ने कहा—इस ज्ञान को पहिले किसने बतलाया था—किसने सर्व प्रथम इसको किया था, इसका फल क्या है, इसका उद्देश क्या है, हे विभो! सब आप बतलाने की कृपा करें। महर्षिवर श्री लोमश ने कहा—परमेष्ठी ब्रह्माजी ने जिस समय में इस सम्पूर्ण जगत् का सृजन किया था उसी समय में पहिले राशियों से समन्वित यह काल चक्र समुत्पन्न हुआ था। उनमें बारह राशियाँ हुई थीं तथा उसी प्रकार से नक्षत्र भी हुए थे।१। ये नक्षत्र संख्या में सत्ताईस परम पुण्य कार्यों की सिद्धि के लिए हुए थे।२। इन समस्त राशियों से तथा नक्षत्रों से संयुत यह सम्पूर्ण प्रखण्ड जगत् का काल चक्र से समन्वित काल क्रीड़ा करता हुआ सृजन किया करता है।३। परमतप परन्तप है द्विजगण! यही सृजन किया करता है, परिपालन करता है और हनन किया करता है अर्थात् इसी से उत्पत्ति, रक्षण और संहार हुआ करते हैं। यह सभी कुछ उसी एक काल के द्वारा निबद्ध है।४। यह काल एक ही इस लोक में परम बलवान है। ऐसा अन्य कोई भी बलशाली नहीं है। इसलिए यह सभी कुछ कालात्मक ही है और इसमें कुछ भी संशय नहीं है।५। सबके आदि में काल न होने से काल होता है और यह लोकों के नायकों का भी नायक है। इसके अनन्तर में समस्त लोक समुत्पन्न हुये थे और इसके पश्चात् यह सृष्टि हुई है।६। सृष्टि से लव हुआ और लव से क्षण उत्पन्न हुआ है। क्षण से निमिष की उत्पत्ति हुई जो प्राणियों की निरन्तर रहा करती है।७।

निमिषाणां च षड्धा व पल इत्यभिधीयते।
पञ्चदश्या अहोरात्रैः पक्षइत्यभिधीयते।८।
पक्षाभ्यां मास एव स्यान्मासाद्वादशवत्सरः।
तत्कालं ज्ञातुकामेनकार्यंज्ञानंविचक्षणैः।९।
प्रतिपद्दिनमारभ्य पौर्णमास्यान्तमेव च।
पक्षः पूर्णो हि यस्माच्च पूर्णिमेत्यभिधीयते।१०।

पूर्णचद्रमसी या तु सा पूर्णा देवताप्रिया ।
नष्टस्तुचद्रोयस्यांवाअमासाकथितावुधैः ।११।
अग्निष्वात्तादिपितृणां प्रियातीव बभूव ह ।
त्रिंशद्दिनानि ह्येतानिपुण्यकालयुतानि च ।
तेषां मध्ये विशेषो यस्तं शृणुध्व द्विजोत्तमाः ।१२।
योगानां वा व्यतीपात ऊडूनां श्रवणस्तथा ।
अमावास्यातिथानांश्चपूर्णिमावैतथैवच ।१३।
सक्रांतयस्तथा ज्ञेया पवित्रा दानकर्मणि।
तथाष्टमी प्रिया शम्भोर्गणेशस्यचतुर्थिका ।१४।

साठ निमिषों का एक पल होता है जो 'पल'—इस नाम से ही कहा जाता है। पन्द्रह अहोरात्रों से एक पक्ष होता है। दो पक्षों का एक मास होता है और बारह मासों का एक वर्ष होता है। उस काल का ज्ञान प्राप्त करने की कामना से विचक्षण पुरुषों के द्वारा ज्ञान करना चाहिये। प्रतिपदा तिथि से प्रारम्भ करके पूर्णमासी की समाप्ति पर्यन्त पूर्ण एक पक्ष हुआ करता है इसीलिए इस तिथि का नाम पूर्णिमा कहा जाता है।८।९।१०। जो यह पूर्ण चन्द्र से युक्त हुआ करती है इसीलिये यह पूर्णा और देवगणों की परम प्रिय हुआ करती है। जिस तिथि में चन्द्र पूर्ण तथा नष्ट होता है अर्थात् बिल्कुल दिखनाई ही नहीं दिया करता है वह तिथि 'अमा' अर्थात् अमावस्या कही जाया करती है। यह अमावस्या अग्निष्वात्तादि पितृगणों को अत्यन्त प्रिय हुई थी। इस प्रकार से तीस दिन होते हैं जो पुण्य काल से युक्त हुआ करते हैं। हे द्विजोत्तमो ! उन तीस मास के दिनों में जो विशेषता से युक्त दिन होता है उसको अब आप लोग मुझसे श्रवण करिए।११।१२। योगों का व्यतीपात तथा उडुगणों में श्रवण, तिथियों में अमावस्या तथा पूर्णिमा एवं सङ्क्रान्तियाँ ये सब दान देने के कर्म्म में परम पवित्र जाननी चाहिए। विभिन्न देवों की भी परम प्रिय विभिन्न तिथियाँ हुआ करती हैं। भग-

बान शम्भु की प्रिय तिथि अष्टमी होती है और गणेश की परम प्रिय तिथि चतुर्थी हुआ करती है ।१३।१४।

पञ्चमी नागराजस्य कुमारस्य च षष्ठिका ।
भानोश्च सप्तमी ज्ञेयाऽष्टमी चण्डिकाप्रिया ।।१५।
ब्रह्मणो दशमी ज्ञेया रुद्रस्यैकादशी तथा ।
विष्णुप्रिया द्वादशी च अन्तकस्य त्रयोदशी ।।१६।
चतुर्दशी तथा शम्भोः प्रिया नास्त्यत्र संशयः ।
निशीथसंयुता या या तु कृष्णपक्षे चतुर्दशी ।
उपोष्या सा तिथिः श्रेष्ठा शिवसायुज्यकारिणी ।।१७।
शिवरात्रितिथिः ख्याता सर्वपापप्रणाशिनी ।
अत्रैवोदाहरंतीममितिहासं पुरातनम् ।।१८।
ब्राह्मणी विधवा काचित्पुराह्यासीच्चचञ्चला ।
श्वपचाभिरता सा च कामुकी कामहेतुतः ।।१९।
तस्यां तस्य सुतो जातः श्वपचस्य दुरात्मनः ।
दुःसहो दुष्टनामात्मा सर्वधर्मबहिष्कृतः ।।२०।
महापापप्रयोगाच्च पापमारमते सदा ।
कितवश्च सुरापायी स्तेयी च गुरुतल्पगः ।।२१।
मृगयुश्च दुरात्मासौ कर्मचण्डाल एव सः ।
अधर्मिष्ठोह्यसद्वृत्तः कदाचिच्चपशिवालयम् ।
शिवरात्र्यां च संप्राप्तो ह्युषितः शिवसन्निधौ ।।२२।

नागराज को परम प्रिय तिथि पञ्चमी होती है तथा कुमार स्कन्द को प्यारी तिथि षष्ठी हुआ करती है । भास्कर भगवान सूर्य को प्रिय तिथि सप्तमी होती है और नवमी तिथि भगवती चण्डिका की परम प्रिय मानी गई है । ब्रह्माजी की प्यारी तिथि दशमी हुआ करती है तथा रुद्रदेव की परम प्रिय तिथि एकादशी होती है । भगवान विष्णु की परम प्रिय तिथि द्वादशी है तथा अन्तक यमराज की प्रिय तिथि त्रयो-

दशी हुआ करती है। चतुर्दशी तिथि भगवान शम्भु की होती है—इस विषय में लेश मात्र संशय नहीं होता है। मास के कृष्ण पक्ष में अर्ध रात्रि में अयुत जो चतुर्दशी तिथि हुआ करती है उस तिथि में उपवास अवश्य ही करना चाहिए। यह तिथि परम श्रेष्ठ मानी गई है जो कि भगवान शिव के सायुज्य कराने वाली हुआ करती है ।१५।१६।१७। यही शिवरात्रि तिथि के नाम से विख्यात है जो समस्त पापों का नाश करने वाली होती है। इसी विषय मे इस परम पुरातन इतिहास का उदाहरण देते हैं ।१८। पहिले पुराने समय में कोई एक विधवा ब्राह्मणी थी जो अत्यन्त चञ्चला थी। वह काम वासना के कारण से ऐसी कामुकी थी कि एक श्वपच के साथ मे अभिरत रहा करती थी। उस ब्राह्मणी के उदर से उस दुरात्मा श्वपच का एक पुत्र समुत्पन्न हो गया था। यह बहुत ही अधिक दुःसह, दुष्टनामात्मा और सभी धर्मों से बहिष्कृत था। महान पापों के प्रयोग करने के कारण यह सदा पाप कर्म्म का ही आरम्भ किया करता था। यह कितव था, मदिरा के पान करने वाला था, स्तेय (चोरी) कर्म्म का करने वाला और गुरु पत्नी के साथ गमन करने वाला भी था। वह मृगयु, दुरात्मा और कर्मों से पूर्णतया चाण्डाल ही था। परद्रव्य में रति रखने वाला दुश्चरित्र था। यह किसी समय में शिवरात्रि के दिन में शिवरात्रि मे एक शिवालय में प्राप्त हो गया था और वहाँ पर यह भगवान शिव की सन्निधि में बैठ गया था ।१९—२२।

श्रवणं शैवाधाराश्च यदृच्छाजातमंतिके ।
शिवस्य लिंगरूपस्य स्वयम्भुवो यदा तदा ।२३।
स एकत्रोषितो दुष्टः शिवरात्र्यां तुजागरात् ।
तेनकर्मविपाकेनपुण्यां योनिमवाप्तवान् ।२४।
भुक्त्वापुण्यतमांल्लोकानुषित्वाशाश्वतीः समाः ।
चित्रांगदस्यपुत्रोऽभूद्भूपालेश्वरलक्षणः ।२५।

नाम्ना विचित्रवीर्योऽसौ सुभगः सुन्दरीप्रियः ।
राज्य महत्तरं प्राप्यानिः स्तम्भो हि महानभूत् ।२६।
शिवे भक्ति प्रकुर्वाणः शिवकर्मपरोऽभवत् ।
शैवशास्त्रं पुरस्कृत्य शिवपूजनतत्परः ।
रात्रौ जागरणं यत्नात्करोति शिवसन्निधौ ।२७।
शिवस्य गाथा गायंस्तु आनन्दाश्रु कणान्मुहुः ।
प्रमुचंश्च नेत्राभ्यां रोमांचपुलकावृतः ।२८।

शिव के समीप में रहने पर शैवशास्त्र का श्रवण स्वइच्छा से ही समुत्पन्न हो गया था। अब तक स्वयम्भू भगवान शिव के लिङ्ग रूप का भी श्रवण हुआ था। वह दुष्ट एक ही स्थान में बैठा रहा था। शिव रात्रि में जागरण हो जाने से उसी कर्म के विपाक से उसने फिर पुण्यमयी योनि की प्राप्ति की थी। परम पुण्यतम लोकों के निवास करने का सुख भोगकर जोकि बहुत ही अधिक समय तक हुआ था और सहस्रों वर्षों तक वहाँ निवास करके फिर चित्रांगद का भूपालेश्वर लक्षणों वाला पुत्र हुआ था। वह नाम से विचित्र वीर्य था और परम सुभग एवं सुन्दरी प्रिय था। इसने बहुत अधिक बड़ा राज्य प्राप्त किया था तथा यह महान निःस्तम्भ हो गया था।२३—२६। भगवान शिव की भक्ति करता हुआ भगवान शिव के ही कर्म में परायण हो गया था। शैव शास्त्र को आगे करके वह शिव के ही पूजन में तत्पर हो गया था। वह रात्रि में भगवान शिव की सन्निधि में रहकर बड़े ही यत्न से जागरण किया करता हुआ आनन्द के कारण समुद्भुत अश्रुओं के कणों को बारम्बार नेत्रों से मोचन करता हुआ रोमाञ्च पुलकों से समावृत हो जाया करता था।२५—२८।

आयुष्यं च गतं तस्य शिवध्यानपरस्य च ।
शिवोहिसुलभोलोकेपशूनां ज्ञानिनामपि ।२९।

संसेवितुं सुखप्राप्त्यै ह्येक एव सदाशिवः ।
शिवरात्र्युपवासेन प्राप्तो ज्ञानमनुत्तमम् ।३०।
ज्ञानात्सर्वमनुप्राप्तं भूतसाम्यं निरन्तरम् ।
सर्वभूतात्मकंज्ञात्वाकेवलं च सदाशिवम् ।३१।
बिना शिवेन यत्किंचिन्नास्ति वस्त्वत्र न क्वचित् ।३२।
एवं पूर्णं निष्प्रपञ्चं ज्ञानं प्राप्नोति दुर्लभम् ।
प्राप्तज्ञानस्तदा राजजातोहिशिववल्लभः ।३३।
मुक्तिं सायुज्यतां प्राप्तः शिवरात्र्युपोषणात् ।
तेन लब्धंशिवाज्जन्मपुरायत्कथितंमया ।३४।
दाक्षायणीवियोगाच्च जटाजूटेन विस्तरात् ।
यदुत्पन्नोमस्तकाच्चशिवस्यपरमात्मनः ।
वीरभद्रेति विख्यातो यक्षयज्ञविनाशनः ।३५।

इस तरह से भगवान शिव के ही ध्यान मे परायण हुए उसकी आयु समाप्त हो गई थी। इस लोक मे ज्ञानियो को और पशुओं को भी भगवान शिव सुलभ हो जाया करते हैं। परम सुख की प्राप्ति के लिए भली-भाँति सेवन करने के लिए एक ही भगवान सदाशिव हैं। शिव-रात्रि के एक दिन के ही उपवास करने से परम उत्तम ज्ञान इसने प्राप्त कर लिया था और उस ज्ञान से ही सभी कुछ प्राप्त कर लिया था। समस्त प्राणियो मे समानता का भाव निरन्तर सर्व भूतात्मकता का ज्ञान प्राप्त करके फिर केवल भगवान सदाशिव को प्राप्त कर लिया था। ।२९।३०।३१। कहीं पर भी भगवान शिव के बिना यहाँ पर कुछ भी कोई वस्तु नहीं है। इस प्रकार से पूर्ण प्रपञ्च से रहित दुर्लभ ज्ञान को प्राप्त किया करता है। उस समय मे ज्ञान प्राप्त करने वाला राजा भगवान शिव का वल्लभ हो गया था ।३२।३३। केवल शिवरात्रि के दिन का उपवास करने ही से वह सायुज्यता स्वरूप वाली मुक्ति को प्राप्त हो गया था। पहिले जो मैंने वर्णन किया था वह जन्म उसने भगवान शिव से ही प्राप्त किया था। दाक्षायणी सती प्रजा-

पति दक्ष की पुत्री के वियोग से जटाजूट के द्वारा परम विस्तार वाले परमात्मा शिव के मस्तक से जो समुत्पन्न हुआ था जो प्रजापति दक्ष के यज्ञ का विनाश करने वाला था वह 'वीरभद्र'—इस शुभ नाम से विख्यात हुआ था।३४।३५।

शिवरात्रिव्रतेनैव तारिता बहवः पुराः ।
प्राप्ताः सिद्धिं पुरा विप्राभरताद्याश्चदेहिनः ।३६।
मान्धाता धुन्धुमारिश्च हरिश्चन्द्रादयो नृपाः ।
प्राप्ताः सिद्धिमनेनैव व्रतेनपरमेणहि ।३७।
ततो गिरीशो गिरिजासमेतः
क्रीडान्वितोऽसौ गिरिराजमस्तके ।
द्यूतं तथैवाक्षयुतं परेशो युवतो
भवन्या स भृशं चकार ।३८।

हे विप्रवृन्द ! पुरातन समय में देहधारी भरत प्रभृति बहुत से लोग इस शिवरात्रि के व्रत से ही परम सिद्धि को प्राप्त हुये थे और तारित हो गये थे। मान्धाता, धुन्धुमारि और हरिश्चन्द्र आदि नृप इसी परमोत्तम व्रत से ही सिद्धि को प्राप्त हुये थे। इसके अनन्तर गिरिजा के सहित भगवान गिरीश गिरिराज कैलास की शिखर पर क्रीड़ान्वित हुये थे। भवानी के साथ संयुत होकर परेश भगवान शम्भु ने अक्षों से युक्त द्यूत अत्यधिक रूप से किया था।३६।३७।३८।

१७—दानभेद प्रशंसा वर्णन

ततस्त्वहं चिन्तयामि कथं स्थानमिदं भवेत् ।
ममयत्तं यतो राज्ञांभूमिरेषासदा वये ।१।
यत्त्वहं धर्म वर्गाणं गत्वा याचे ह मेदिनीम् ।
अर्पयत्येव सच मे याचितो न पुनः नरः ।२।
तथा हि मुनिभिः प्रोक्तं द्रव्यं त्रिविधमुत्तमम् ।
शुक्लमध्यंशबलमधमंकृष्णमुच्यते ।३।

श्रुतेः संपादनाच्छिष्यात्प्राप्तं शुक्लं चकन्यया ।
तथाकुसीदवाणिज्यकृषियाचितमेवच ।४।
शबलं प्रोच्यते सद्भिद्यूतचौर्येण साहसैः ।
व्याजेनोपार्जितं यच्च तत्कृष्णं समुदाहृतम् ।५।
शुक्लवित्तेन यो धर्मं प्रकुर्याच्छ्रद्धयान्वितः ।
तीर्थंपात्रं समासाद्य देवत्वे तत्समश्नुते ।६।
राजसेन च भावेन वित्तेन शबलेन च ।
प्रदद्याद्दानमर्थिभ्यो मानुष्यत्वे तदश्नुते ।७।

देवर्षि नारदजी ने कहा —इसके उपरान्त मैंने सोचा कि यह स्थान किस प्रकार से मेरे अधीन होवे । क्योंकि यह भूमि तो सदा राजाओं के वश में रहा करती है । यदि मैं धर्म्म वर्मा के समीप में समुपस्थित होकर इस मेदिनी की याचना करूँ तो मेरे द्वारा याचना किया हुआ वह मुझे अर्पण कर दिया करेगा । पुनः पर नहीं है ।१।२। उसी प्रकार से मुनियों ने कहा है कि तीन प्रकार का द्रव्य उत्तम होता है— शुक्ल, मध्य, शबल, । अधम द्रव्य कृष्ण हुआ करता है ।३। श्रुति के सम्पादन से शिष्य से और कन्या के द्वारा जो प्राप्त होता है वह शुक्ल द्रव्य हुआ करता है । कुसीद (ब्याज), वाणिज्य, कृषि और याचित किया हुआ जो द्रव्य होता है वह शबल द्रव्य कहा जाया करता है जिसे सत्पुरुष ऐसा ही बतलाया करते है । द्यूत के द्वारा, चौर कर्म्म से, साहस पूर्ण कर्म्म के द्वारा और ब्याज से उपार्जित द्रव्य होता है, वह कृष्ण द्रव्य कहा गया है ।४।५। श्रद्धा से समन्वित जो पुरुष शुक्ल धन से धर्म्म किया करता है और तीर्थ पात्र को प्राप्त करने जो धर्म्म किया जाता है उसको देवत्व भाव उपभोग किया करता है । राजस भाव से और शबल धन के द्वारा याचकों के लिए दान दिया करता है उसका मानुष्यत्व में उपभोग किया करता है ।६।७।

तमोवृपस्तु यो दद्यात्कृष्णवित्तं मानवः।
तिर्यक्त्वेतत्फलं प्रेत्यसमश्नातिनराधमः ।८।
तत्तु याचितद्रव्यं मे राजसं हि स्फुटं भवेत् ।
अथ ब्राह्मणभावेन नृपं याचेप्रतिग्रहम् ।९।
तदप्यो चातिकष्टं हेतुना तेन मे भवन् ।
अयं प्रतिग्रहो घोरोमध्वास्वादोविषोपमः ।१०।
प्रतिग्रहेण संयुक्तं ह्यमोवमाविशेद्द्विजम् ।
तस्मादहं निवृत्तश्चपापादस्मात्प्रतिग्रहात् ।११।
ततः केनाप्युपायेन द्वयोरन्यतरेण तु ।
स्वायत्तं स्थानकं कुर्मं एतत्सञ्चितये मुहुः ।१२।
यथा कुमार्यः पुरुषश्चिन्तान्तं न प्रपद्यते ।
तथैव विमृशंश्चाहं चिन्तान्त न लभाम्यणु ।१३।
एतस्मिन्नन्तरे पार्थं स्नातुं तत्र समागताः ।
बहवो मुनयः पुण्ये महीसागरसङ्गमे ।१४।

तमोगुण से आवृत होकर जो मानव कृष्ण द्रव्य से दान किया करता है वह नराधम तिर्यक् योनि में जाकर ही उसके फल की प्राप्ति किया करता है। वह मेरे द्वारा याचना किया हुआ द्रव्य स्फुट रूप से राजस ही होगा। इससे अनन्तर ब्राह्मण भाव से राजा से प्रतिग्रह की याचना करूँ। किन्तु उस हेतु से मेरे लिए यह भी अत्यन्त कष्टदायक है। यह प्रतिग्रह भी अत्यन्त घोर ही है जो मधु का आस्वाद विष के समान ही है जो प्रतिग्रह से संयुक्त द्विज, के अन्दर अमृत की भाँति प्रवेश कर जाया करता है। इसीलिए मैं तो इस प्रतिग्रह के पाप से निवृत्त होता हूँ। इसीलिए मैं बार-बार सोचता हूँ कि इन दोनों में से किसी भी एक उपाय के द्वारा इस स्थान को स्वायत्त अर्थात् अपने अधीन में रहने वाला बना लूँ।८-१२। जिस प्रकार से बुरी भार्या वाला पुरुष कभी भी अपने हृदय में स्थित चिन्ता का अन्त नहीं प्राप्त किया करता

है उसी प्रकार से विचार-विमर्श करता हुआ भी मैं चिन्ता को एक अणुमात्र भी अन्त नहीं प्राप्त कर रहा हूं। हे पार्थ ! इसी बीच में बहुत से मुनिगण उस पुण्यमय मही-सागर के सङ्गम पे वहाँ पर स्नान करने के लिए समागत हो गये थे।१३।१४।

अहं तानब्रवं सर्वान्कुतो यूयं समागताः।
ते मामूचुः प्रणम्याथ सौराष्ट्रविषयेमुने।१५।
धर्मवर्मेति नृपतिर्योऽस्य देशस्य भूपतिः।
स तु दानस्य तत्त्वार्थीतपेवर्षगणान्बहून्।१६।
ततस्तं प्राह खे वाणी श्लोकमेकंनृप शृणु।
द्विहेतु षडधिष्ठानं षडंगं चद्विपाकयुक्।१७।
चतुः प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते।
इत्येकं श्लोकमाभाष्यखेवाणीविररामह।१८।
श्लोकस्यार्थं नावभाषे पृच्छमानाऽपि नारद।
ततो राजाधर्मवर्मा पटहेनान्वभाषयत्।१९।
यस्तुश्लोकस्यचैवास्यलब्धस्यतपसामया।
करोतिसम्यग्व्याख्यायतस्मैचैतद्ददाम्यहम्।२०।
गवां च सप्त नियुतं सुवर्णतावदेवतु।
आजग्मुर्बहुदेशीयाब्राह्मणाः कोटिशो मुने।२१।

उन सबसे मैंने पूछा था कि आप सब लोग कहाँ से समागत हुए है ? तब उनने प्रणाम करके मुझसे कहा था—हे मुने ! सौराष्ट्र देश में धर्म वर्मा नाम वाला एक राजा है जो कि इस देश का भूपति है। वह दान के तत्व का अर्थी है और बहुत से वर्षों तक उसने तपश्चर्या की थी। इसके पश्चात् आकाश में होने वाली वाणी ने उससे कहा था—हे नृप ! एक श्लोक का श्रवण करो, दो हेतु वाला, छैः अधिष्ठानों से युक्त, छैः अङ्गों वाला, दोपाकों से युक्त, चार प्रकार का, तीन विधियों वाला तथा तीन तरह के नाशों से समन्वित दान कहा जाया करता है—

इस एक श्लोक को कहकर वह आकाश में होने वाली वाणी विरत हो गई थी ।१५—१८। हे नारद ! पूछी गई भी उसने इस श्लोक का अर्थ उसने नहीं कहा था। इसके पश्चात् नत धर्म्म धर्म. राजा ने पटह की ध्वनि के साथ यह घोषणा करदी थी कि जो कोई भी विद्वान् मेरे द्वारा तपस्या से प्राप्त इस श्लोक का अच्छी तरह से व्याख्या करेगा उसको मैं ऐसा दान दूँगा जिसमें सात नियुत गौयें होंगी और उतना ही सुवर्ण भी होगा। जो विद्वान् इस श्लोक की व्याख्या भली-भाँति कर देगा उसको मैं सात ग्राम दूँगा ।१६।२०।२१।

पटहेनेति नृपतेः श्रुत्वा राज्ञो वचो महत् ।
आजग्मुर्बहुदेशोयाब्राह्मणाः कोटिशो मुने ।२२।
पुनर्दुर्बोधविन्यासः श्लोकस्तैर्विप्रपुङ्गवैः ।
आख्यातुं शक्यते नैव गुडो मूकैर्यथा मुने ।२३।
वयं च तत्र याताः स्मो धनलाभेननारद ।
दुर्बोधत्वान्नमस्कृत्यश्लोकंचाप्रसमागताः ।२४।
दुर्व्याख्येयस्त्वयश्लोकोधनंलभ्य नचैवनः ।
तीर्थयात्राकर्तुंयामोत्यैवाचिंत्यानवागताः ।२५।
एवंफाल्गुनतेषांतुवचः श्रुत्वामहात्मनाम् ।
अतीवसंप्रहृष्टोऽहं वाग्मिसृज्येत्यचिन्तयम् ।२६।
अहोप्राप्तधर्मापायोमेस्यानप्राप्तोनसंशयः ।
श्लोकंव्याख्यायनृपतेर्लप्स्येस्थानधनं तथा ।२७।
विद्यामूल्येन नैवं च याचितः स्यात्प्रतिग्रहः ।
सत्यमाह पुराणर्षिर्वासुदेवो जगद्गुरुः ।२८।

पटह के द्वारा राजा के इस महान वचन का श्रवण करके हे मुनिवर ! बहुत से देशों के करोड़ों ब्राह्मण वहाँ पर समागत हो गये थे, किन्तु उन विप्र श्रेष्ठों के द्वारा वह श्लोक दुर्बोध विन्यास वाला हो गया था अर्थात् वह श्लोक उनके क्षुद्र ज्ञान के द्वारा व्याख्यात नहीं हो

सका था। हे मुने ! जिस तरह से कोई गूंगा पुरुष गुड़ के स्वाद का वर्णन नहीं कर सकता है उसी भाँति वे उस श्लोक की व्याख्या नहीं कर सके थे। हे नारद ! हम भी यहाँ पर उस विशाल धन के लोभ से गये थे किन्तु उस श्लोक को पाने तुच्छ ज्ञान की सीमा से बाहर होने के कारण नमस्कार करके व स्थिर यहाँ पर चले आये हैं। क्योंकि यह श्लोक बहुत ही कठिनाई से व्याख्या करने के योग्य है अतएव यह धन प्राप्त करने के योग्य ही नहीं है। अब तीर्थों की यात्रा को कैसे जावें। यही विचार करके यहाँ पर समागत हो गये हैं। इस प्रकार का उन महात्माओं का यह फाल्गुन वचन सुनकर मैं अत्यन्त ही प्रसन्न हुआ था और मैंने उनको छोड़कर यही विचार किया है कि बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि मैंने स्थान की प्राप्ति के विषय में अब उपाय प्राप्त कर लिया है—अब इसमें कुछ भी संशय नहीं है। इस श्लोक की व्याख्या करके मैं अब राजा से धन और स्थान प्राप्त कर लूँगा। यह विद्या के मूल्य के द्वारा ही सब प्राप्त हो जायगा और प्रायश्चित्त यह किसी प्रकार भी नहीं होगा। इस प्रकार यह प्रतिग्रह नहीं होगा। जगत् के गुरु पुराणों के ऋषि वासुदेव ने यह सर्वथा सत्य ही कहा है।२२-२८।

धर्मार्थं यस्य श्रद्धास्यात्र च सा नैव पूर्यते।
पापस्य यस्य श्रद्धास्यान्न च सापि न पूर्यते।२६।
एवं विचिन्त्य विद्वांसः प्रकुर्वन्त्विय पार्थिव।
सत्यमेतद्विभो शीघ्र दुर्लभोऽपि यथा हि मे।३०।
मनोरथेऽयं सफलः संभूतोऽङ्कुरितः स्फुटम्।
एनं च दुर्विदश्लोकमहं जानामि सुस्फुटम्।३१।
अमूर्तः पितृभिः पूर्वमेव ख्यातो हि मे पुरा।
एवं हर्षान्वितः पार्थ संचिन्त्याहं ततो मुहुः।३२।
प्रणम्य तीर्थं चलितो महीसागरसंगमम्।
वृद्धब्राह्मणरूपेण ततोऽहं मानवान्तरम्।३३।

इदं श्रीरातवानस्मि श्लोकव्याख्यां नृप शृणु ।
यत्ते पटहविख्यातं दानञ्च प्रगृणीकुरु ।३४।
एवमुक्ते नृपः प्राह प्रोचुरेवं हि कोटिशः ।
द्विजोत्तमाः पुनर्नास्य श्रोमत्सुमर्थो हिवक्ष्यते ।३५।

धर्म्म के विषय में जिसकी श्रद्धा होती है वह कभी पूर्ण नहीं की आशा करती है और जिसकी पाप कर्म करने की श्रद्धा हुआ करती है वह भी पूरी नहीं की जाया करती है। इस प्रकार से विशेष चिन्तन करके विद्वान पुरुष अपनी रुचि के ही अनुसार किया करते हैं—यह विभु का वाक्य पूर्णतया सत्य ही है जैसा कि मुझे यह दुर्लभ भी है। यह मेरा मनोरथ पूर्णतया सफल हो गया है और अब यह स्फुट रूप से अङ्कुरित भी हो गया है। यह श्लोक यद्यपि दुर्विद है तथापि मैं इसको स्फुट रूप से जानता हूँ। विना मूर्ति वाले पितृगणों ने पहिले पुराने समय में मुझे इसको बतलाया था। हे पार्थ ! इस प्रकार से बड़े ही हर्ष से समन्वित होते हुए मैंने सचिन्तन करके इसके अनन्तर मैंने फिर तीर्थ को प्रणाम किया था जोकि मही सागर सङ्गम था। मैं वहाँ से रवाना हो गया था। फिर मैं एक परम वृद्ध ब्राह्मण के रूप को धारण करके नृप के समीप में गया था। मैंने वहाँ पर पहुँच कर इस तरह से कहा था—हे नृप ! अब आप उस श्लोक का व्याख्या का श्रवण कीजिए। आपने जो पटह के द्वारा लोक में घोषणा करके विख्यात किया है उस दान को प्रगृहीत कीजिए। इस तरह से ऐसे कहने पर उस राजा ने कहा था—इसी तरह से करोड़ों ब्राह्मणों ने मुझसे कहा था। हे द्विजोत्तमो ! किन्तु इस श्लोक का अर्थ नहीं कहा जा सकता है।२६–३५।

के द्विहेतु षडाश्रयात त्वधिष्ठानानि कानि च ।
कानि चैव षडङ्गानि द्वौ पाकौ तथा स्मृतौ ।३६।

केच प्रकाराश्चत्वारः किंस्वित्तत्त्रिविधं द्विजः ।
अथोनाशाश्चकेप्रोक्तादानस्यैतत्स्फुटं वद ।३७।
ततो गवां सप्तनियुतं सुवर्णं तावदेवतु ।३८।
सप्तग्रामांश्चदास्यामिनोचेद्यास्यसिस्वंगृहम् ।
इत्युक्तवचनं पार्थसौराष्ट्रस्वामिनंनृपम् । ३९।
धर्मवर्माणमस्त्वेवं प्रावोचमवधारय ।
श्लोकव्याख्यां स्फुटां वक्ष्ये दानहेतूचतौशृणु ।४०।
अल्पत्वं वा बहुत्वंवादानस्याभ्युदयावहम् ।
श्रद्धाशक्तिश्चदानानांवृद्ध्यक्षयकरेहिते ।४१।
तत्र श्रद्धाविषये श्लोका भवन्ति ।
कायक्लेशैश्च बहुभिर्न चैवार्थस्य राशिभिः ।४२।
धर्म सपाप्यते सूक्ष्मः श्रद्धाः धर्मोऽद्भुतं तपः ।
श्रद्धा स्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धा सर्वमिदं जगत् ।४३।

वे दो हेतु कौन से है और छँ कहे हुए वे अधिष्ठान कौन हैं ? छँ अङ्ग कौन मे होते है तथा वे दो पाक कौन से बनाये गये हैं ? वे चार प्रकार कौन होते हैं ? हे द्विज ! क्या वह तीन प्रकार के हैं ? तीन नाश कौन से बतलाये गये हैं जो दान के हुआ करते हैं—यह सब आप मेरे सामने स्फुट रूप से बतलाइये । हे ब्राह्मण देव ! इन सात प्रश्नों को यदि आप बिल्कुल स्पष्ट रूप से कह देंगे तो फिर सात नियुत गौयें और उतना ही सुवर्ण तथा सात ग्राम मैं अवश्य ही आपको दे दूंगा । यदि ऐसा नहीं होगा तो आप अपने घर को चले जायेंगे । इस तरह से इन वचनों को कहने वाले, सौराष्ट्र के स्वामी धर्म वर्मा नृप से मैंने कहा हे पार्थ ! मैंने कहा था—ऐसा ही होगा, अच्छा अब आप अवधारण करिये मैं इस श्लोक की व्याख्या को बहुत सुस्पष्ट रूप से कहूंगा—उन दोनों दान के हेतुओं का सुनिये—दान का अल्पत्व हो या बहुत्व हो अर्थात् दान चाहे छोटा-सा हो या बहुत बड़ा हो इसके अभ्युदय वह होते हैं। श्रद्धा और शक्ति ये दोनों ही दानों की वृद्धि एवं क्षय करने

वाली हुआ करती है। यहाँ पर श्रद्धा के विषय में श्लोक है—बहुत से कार्य क्लेशों के द्वारा और धन की राशियों के द्वारा परम सूक्ष्म धर्म से प्राप्त किया जाता है। श्रद्धा ही धर्म और श्रद्धा ही अद्भुत तप है। श्रद्धा ही स्वर्ग और मोक्ष है। यह संपूर्ण जगत् श्रद्धा ही है।४३।

सर्वस्वं जीवितं चापि दद्यादश्रद्धयायदि ।
नाप्नुयात्सफलंकिञ्चिच्छ्रद्दधानस्ततोभवेत् ।४४।
श्रद्धया साध्यते धर्मो महद्भिर्नार्थराशिभिः ।
अकिञ्चना हिमुनयः श्रद्धावन्तोदिवंगताः ।४५।
त्रिविधा भवतिश्रद्धादेहिनांसास्वभावजा ।
सात्विकीराजसीचैवतामसीचेतितांशृणु ।४६।
यजन्ते सात्विकादेवान्यक्षरक्षांसिराजसाः ।
प्रेतान्भूतपिशाचांश्चयजन्तेतामसाजनाः ।४७।
तस्माच्छ्रद्धावता पात्रे दत्तं न्यायार्जितंहियत् ।
तेनैवभगवान्रुद्रः स्वल्पकेनापितुष्यति ।
अत्रापिविषये च श्लोका भवन्ति ।४८।
कुटुम्बभुक्तवसनाद्देयं यदातिरिच्यते ।
मध्वास्वादो विषं पश्चाद्दातुर्धर्मोऽन्यथा भवेत् ।४९।

भवनर सर्वस्व और जीवन भी यदि कोई अश्रद्धा से दान कर देता है तो वह कुछ भी फल प्राप्त नहीं किया करता है। अतएव यह परम आवश्यक है कि श्रद्धा वाला होवे। धर्म की साधना श्रद्धा से ही की जाया करती है। महान धन की राशियों से धर्म साध्य कभी नहीं हुआ करता है। मुनिगण अकिञ्चन हुआ करते हैं किन्तु श्रद्धावान होने के ही कारण से वे सब दिव लोक को प्राप्त हुए हैं। देह धारियों की वह श्रद्धा स्वभाव से ही समुत्पन्न तीन प्रकार की हुआ करती है। एक सात्विकी श्रद्धा होती है, दूसरी राजसी और तीसरी तामसी हुआ करती है। उसको अब श्रवण करो।४४।४५।४६। सात्विकी श्रद्धा वाले

सात्विक पुरुष देवों का यजन किया करते हैं। राजस लोग यक्ष और राक्षसों का यजन करते हैं और जो तामस जन होते हैं वे प्रेत-भूत और पिशाचों का यजन किया करते हैं। इसीलिए श्रद्धा से युक्त पुरुष के द्वारा न्याय से उपार्जित धन का पात्र में जो दान दिया गया है उससे ही चाहे वह बहुत ही स्वल्प ही क्यों न हो भगवान रुद्र परम तुष्ट हो जाया करते हैं। यहाँ तक तो श्रद्धा के विषय में बतलाया गया है अब शक्ति के विषय में भी श्लोक है—कुटुम्ब के भोजन और वस्त्र से अधिक अतिरिक्त देय हो पीछे मधु का आस्वाद करना विष के समान ही होता है अन्यथा दाता का धर्म होता है ।४७।४८।४९।

शक्ते परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि ।
मध्वापातविषास्वाद स धर्मप्रतिरूपकः ।५०।
भृत्यानामुपरोधेन यत्करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ।
तद्भवत्यसुखादर्कं जीवतोऽस्यमृतस्य च ।५१।
सामान्यं याचितन्यासमाधिर्दाराश्च दर्शनम् ।
अन्वाहितञ्च निक्षेपः सर्वस्वञ्चान्वये सति ।५२।
आपत्स्वपि न देयानि नववस्तूनि पण्डितैः ।
यो ददाति स मूढात्मा प्रायश्चित्तीयते नरः ।५३।
इति ते गदितो राजन्द्वौ हेतू श्रूयतामतः ।
अधिष्ठानानि वक्ष्यामि षडेवं शृणु तान्यपि ।५४।
धर्ममर्थं च कामं च व्रीडाहर्षभयानि च ।
अधिष्ठानानि दानानां षडेतानि प्रचक्षते ।५५।
पात्रेभ्यो दीयते नित्यमनपेक्ष्य प्रयोजनम् ।
केवलं धर्मबुद्ध्या यद्धर्मदानं तदुच्यते ।५६।

अपने जनों के दुःख से पूर्ण जीवन यापन करने पर भी जो शक्त दूसरे जनों का दाता होता है तथा मध्वापात के विष का अदन करने वाला होता है वह धर्मों का प्रति रूपक हुआ करता है ।५०।

मृत्यो के उपरान्त में जो और्ध्वदैहिक कृत्य किया करता है वह इसके जीवित रहते हुए और मृत हो जाने पर भी सुखोदर्क ही हुआ करता है अर्थात् उससे किसी भी दशा में सुख प्राप्त नहीं होता है ।५१। सामान्य, याचित, न्यास, आधि, दारा, दर्शन, अन्वाहित, निक्षेप और सर्वस्व अन्वय के होने पर पण्डितों के द्वारा नव वस्तुओं को आपत्ति काल के समयों में भी नहीं देनी चाहिये । जो दे देता है वह महान मूढ आत्मा वाला है और ऐसा मनुष्य प्रायश्चित्त करने का अधिकारी हो जाया करता है । हे राजन् ! ये दो हेतु हमने आपको बतला दिये हैं । इसके उपरान्त अब अधिष्ठानों के विषय में आप श्रवण कीजिये । वे अधिष्ठान छै ही होते हैं उनको मैं बतलाऊँगा । उन्हें भी सुनिये ।५२।५३।५४। धर्म, अर्थ, काम, क्रीडा, हर्ष और भय ये छः दानों के अधिष्ठान कहे जाया करते हैं । सुयोग्य पात्रों के लिए बिना किसी प्रयोजन की अपेक्षा किये हुए जो नित्य ही केवल धर्म बुद्धि से दान दिया जाता है वह धर्म दान नाम से पुकारा जाता है ।५५–५६।

अर्थिनं धनलोभेन लोभयित्वाऽर्थमाहरेत् ।
तदर्थं दानमित्याहुः कामदानमतः शृणु ।५७।
प्रयोजनमपेक्ष्यैव प्रसङ्गाद्यत्प्रदीयते ।
अनर्हेषु सरागेण कामदानं तदुच्यते ।५८।
संसदि व्रीडयाऽऽश्रुत्यार्थिभ्यः प्रददाति च ।
प्रतिदीयते च यद्दानं व्रीडादानमिति श्रुतम् ।५९।
दृष्ट्वा प्रियाणि श्रुत्वा वा हर्षवद्यत्प्रदीयते ।
हर्षदानमिति प्रोक्तं दानं तद्धर्मचिन्तकैः ।६०।
आक्रोशानर्थहिंसानां प्रतीकाराय यद्भवेत् ।
दीयतेऽनुपकर्तृभ्यो भयदानं तदुच्यते ।६१।
प्रोक्तानि षडधिष्ठानान्यङ्गान्यपि च तत् शृणु ।
दाता प्रतिग्रहीता च शुद्धिर्देयं च धर्मयुक् ।६२।

किसी धनी पुरुष को धन के लोभ से लालच में डालकर जो धर्य का माहरण किया जावे वह "धर्य दान"—इस नाम से कहा जाता है। इसके उपरान्त में काम धन के विषय मे श्रवण कीजियेगा। प्रयोजन की अपेक्षा करके प्रसङ्ग से जो दान किया जाता है और वह भी राग के सहित महंता से शून्य पुरुषों को दिया जावे वही दान कामदान कहा जाया करता है।५७।५८। किसी संसद मे क्रीडा से प्रतिज्ञा करके जो अर्थियो के लिए दान या धन दिया जाता है और प्रतिदान किया जाता है वही दान क्रीडा दान कहलाता है।५६। प्रिय वस्तुओं को देखकर या परम प्रिय वस्तु एवं मनुष्यों को देखकर हर्ष-वान् होकर जो प्रदान किया जाता है उस दान को धर्म चिन्तकों के द्वारा हर्षदान कहा जाता है। अक्रोश, अनर्थ और हिंसा के प्रतिकार के लिए जो अनुकारियो के लिए दान दिया जाता है वह भय दान कहा जाया करता है। ये ही छः अधिष्ठान कहे गये हैं। अब इसके छः अंगों का भी श्रवण करिये। दानदाता, दान का प्रतिग्रहीता, शुद्धि, धर्मयुक्, देय, देश और काल ये छः दानो के छः अग जान लेने चाहिये।
।६०।६१।६२।

देशकालौ च दानानामङ्गान्येतानिषड् विदुः।
अपरोगाचधर्मात्मादित्सुरव्यसनः शुचि.।६३।
अनिद्याजीवकर्मा चषड्भिर्दाताप्रशस्यते।
अनृजुश्चाश्रद्दधानोऽशान्तात्माधृष्टभीरुकः।६४।
असत्यसन्धो निद्रालुर्दाताऽधं तामसोऽधमः।
त्रिशुक्लः कृशावृत्तिश्चघृणालुः सकलेन्द्रियः।
विमुक्तो योनिदोषेभ्यो ब्राह्मण. पात्रमुच्यते।६५।
सौमुख्यादभिसंप्रीतिरर्थिनां दर्शने सदा।
सत्कृतिश्चानसूया च, तदा, शुद्धिरितिस्मृता।६६।
अपराबाधमक्लेशं स्वयत्नेनार्जितं धनम्।
स्वल्पं वा विपुलं वापिदेयमित्यभिधीयते।६७।

तेनापि किल धर्मेण उद्दिश्य किञ्चन किञ्चन ।
देयं तद्धर्मयुगिति शून्येशून्यं फलं मतम् ।६८।
न्यायेन दुर्लभं द्रव्यं देशे कालेऽपिवापुनः ।
दानार्हौदेशकालौतौस्यातांश्रेष्ठौनचान्यथा ।६९।
षडङ्गानीतिचोक्तानिद्वौ चपाकावतः शृणु ।
द्वौपाकौदानजौप्राहुः परत्रात्रचविहोच्यते ।७०।

धर्मयोगी, धर्मात्मा, दित्सु (देने की इच्छा वाला) अव्यसन (व्यसनों से रहित), शुचि, अनिन्द्य अजीविका के कर्म वाला — इन छैं बातों से दाता प्रशस्त हुआ करता है। असत्य, श्रद्धा से रहित, अशान्त आत्मा वाला, तृष्णा सहित, भीरुक, असत्य सन्ध्या (प्रतिज्ञा) वाला, निर्दयी ऐसा दाता तामस और अधम हुआ करता है। विशुक्ल, कुशवृत्ति, कृपालु, समस्त इन्द्रियों वाला, योनि से विमुक्त जो ब्राह्मण होता है वही पात्र कहा जाया करता है।६३।६४।६५। सौमुख्य होने से अभि सम्प्रीति जो अर्थियों के दर्शन में सदा ही होती है, सत्कार, अनसूया जब होती हैं तभी शुद्धि कही गई है। पराना बाधा से रहित, क्लेश से हीन, अपने ही यत्नों के द्वारा उपार्जित जो धन है वह चाहे स्वल्प हो या विपुल (अधिक) हो, वही देयम् इस नाम से कहा जाता है वह भी किसी धर्म के द्वारा उद्देश्य करके जो कुछ भी देय होता है। वही देय धर्म्म युत होता है और जो शून्य होता है उसमें फल भी शून्य ही माना गया है। न्याय से देश और काल में भी द्रव्य दुर्लभ होता है। दान के योग्य वे दोनों देश और काल परम श्रेष्ठ होते हैं वे दोनों अन्यथा नहीं होने चाहिये। ये छैं अंग बतला दिए गये हैं। अब इससे आगे दो पाकों के विषय मे श्रवण करिये। दान से समुत्पन्न होने वाले दो पाक कहे गये हैं जो परलोक में होते हैं यहाँ कहे जाते हैं। ६६—७०।

सद्भ्यो यद्दीयते किंचित्तत्परत्रोपतिष्ठति ।
असत्सु दीयते किंचित्तद्दानमिह भुज्यते ।७१।
द्वीपाकाविति निर्दिष्टौ प्रकारांश्चतुरः शृणुः ।
ध्रुवमाहुस्त्रिकं काम्यं नैमित्तिकमिति क्रमात् ।७२।
वैदिको दानमार्गोऽयं चतुर्धा वर्ण्यते द्विजैः ।
प्रपारामतडागादिसर्वकामफलं ध्रवम् ।७३।
तदाहुस्त्रिकमित्याहुर्दीयते यद्दिनेदिने ।
अपत्यविजयैश्वर्यस्त्रीवालार्थं प्रदीयते ।७४।
इच्छासंस्थं च यद्दानं काम्यमित्यभिधीयते ।
कालापेक्षंक्रियापेक्षं गुणापेक्षमितिस्मृतौ ।७५।
त्रिधानैमित्तिकंप्रोक्तं सदाहोमविवर्जितम् ।
इति प्रोक्ताः प्रकारास्तेत्रैविध्यमभिधीयते ।७६।
अष्टोत्तमानि चत्वारि मध्यमात्रिविधानतः ।
कानीयसानि शेषाणि त्रिविधत्वमिदं विदुः ।७७।

सत्पुरुषों के लिए जो कुछ भी दान किया जाता है वह परलोक में उपस्थित होता है और असत्पुरुषों में जो कुछ भी दिया जाया करता है वह दान यहीं पर ही भोग लिया जाया करता है । इस तरह से ये दो पाक निर्दिष्ट किए गये हैं । अब इसके चार जो प्रकार होते हैं उनका श्रवण कीजिए । ध्रुव, त्रिक, काम्य और नैमित्तिक—इस क्रम से चार तरह का होता है । यह वैदिक दान मार्ग द्विजों के द्वारा चार प्रकार से वर्णित किया जाता है । प्रपा (प्याऊ), आराम (उद्यान) और तड़ाग आदि यह सर्व काम फल ध्रुव होता है । जो दिन-दिन में दिया जाया करता है तथा अपत्य, विजय, ऐश्वर्य, स्त्री और बालकों के लिए दिया जाता है । अपनी इच्छा में संस्थित रहने वाला जो दान है वह काम्य कहलाता है । कालापेक्ष, क्रियापेक्ष और गुणापेक्ष ये स्मृति में तीन प्रकार का नैमित्तिक दान बताया गया है जो सदा होम से

विवर्जित होता है। इस तरह से ये प्रकार कहे गये हैं जिनके तीन प्रकार के कहे गये हैं। उसके तीन प्रकार इस तरह से हैं—आठ उत्तम हैं, मध्यविभाग से चार मध्यम हैं और शेष कनिष्ठ होते हैं।७१—७७।

गृहप्रासादविद्याभूगोकूपप्राणहाटकम् ।
एतान्युत्तमदानानि उत्तमद्रव्यदानतः ।७८।
अन्नारामं च वासांसिहयप्रभृतिवाहनम् ।
दानानि मध्यमानीति मध्यमद्रव्यदानतः ।७९।
उपानच्छत्रपात्रादिदधिमध्वासनानि च ।८०।
दीपकाष्ठोपलादीनि चरमं बहुवार्षिकम् ।
इति कानीयसान्याहुर्दाननाशत्रयं शृणु ।८१।
यद्दत्वा तप्यते पश्चादासुरं तद्वृथा मतम् ।
अश्रद्धया यद्ददाति राक्षसं तद्वृथैव तत् ।८२।
यच्चाऽऽक्रुश्य ददात्यर्थं दत्त्वा चाक्रोशति द्विजम् ।
पैशाचं तद्वृथा दानं दाननाशास्त्रयस्त्वमी ।८३।
इति सप्तपदैर्वेदं दानमाहात्म्यमुत्तमम् ।
श्रुत्वा ते कीर्तितं राजन्साधु वाऽसाधु वा वद ।८४।

गृह, प्रासाद, विद्या, भूमि, गौ, कूप, प्राण, हाटक—ये उत्तम द्रव्य के दान से उत्तम दान हुआ करते हैं। अन्न, आराम, वस्त्र, अश्व प्रभृति वाहन—ये सब दान मध्यम द्रव्य के दान होने के कारण से मध्यम दान कहे जाते हैं। उपानह् (जूता), छत्र (छाता), पात्र आदि, दधि, मधु, आसन, दीप, काष्ठ, उपल प्रभृति बहु वार्षिक चरम श्रेणी के दान हैं। इसीलिए ये सब दान कनिष्ठ कहे जाते हैं। अब तीन दानों के नाशों का श्रवण करो। जिसको दान में देकर पीछे से हृदय में ताप किया जाता है वह आसुर दान कहा गया है और वह वृथा ही माना गया है। जो अश्रद्धा से दिया जाया करता है वह राक्षस दान होता है। यह भी वृथा ही हुआ करता है। जिसको आक्रोश करके

दिया जाता है और जो देकर फिर द्विज को कोशा जाया करता है। यह पैशाच दान होता है और यह भी दान वृथा ही हुआ करता है अर्थात् फल से सर्वथा शून्य माना जाया करता है। ये तीन दानों के नाश होते हैं अर्थात् दिये हुए दानों को फलो से शून्य बना देने वाले हुआ करते हैं। हे राजन्! इस प्रकार से तुम्हारे सामने कीर्तित कर दिया गया है। यह साधु है अथवा असाधु है—यह आप बतलाइये।७८—८४।

अद्य मे सफलं जन्म अद्य मे सफलं तपः।
अद्य ते कृतकृत्योऽस्मि कृतः कृतिमतां वर।८५।
पठित्वासकलं जन्मब्रह्मचारीयथा वृथा।
बहुक्लेशात्प्राप्तभार्यः सावृथाऽप्रियवादिनी।८६।
क्लेशेनकृत्वा कूपं वा सच क्षारोदकोवृथा।
बहुक्लेशैर्जन्म नीतं विनाधर्मं तयावृथा।८७।
एवं मे यद्वृथा नाम जातं तत्सफलं त्वया।
कृतं तस्मान्नमस्तुभ्यंद्विजेभ्यश्चनमोनमः।८८।
सत्यमाह पुरा विष्णुः कुमाराग्विष्णुसद्मनि।
नाहं तथाद्मि यजमानहविर्विवितान-
श्च्योतद्घृतप्लुतमदन्हुतभुङ्मुखेन।८९।
यद्ब्राह्मणस्य मुखतश्चरतोऽनुघास
तुष्टस्य मय्यपहितैर्निजकर्मपाकैः।९०।
तन्मयाऽधर्मणा वापि यद्विप्रेष्वप्रियं कृतम्।
सर्वस्य प्रभवो विप्रास्तत्क्षमंतांप्रसादये।९१।
त्वंच कोऽसिनसामान्यः प्रणम्याहं प्रसादये।
आत्मानंस्थापयमुनेप्रोक्तश्चेत्यब्रवंतदा।९२।

धर्म वर्मा ने कहा—हे कृतिमानों में परम श्रेष्ठ! आज मेरा जन्म सफल हो गया है और आज ही मेरा किया हुआ तप भी फल युक्त हो गया है। आज आपके द्वारा मैं पूर्ण तथा कृत-कृत्य हो गया हूँ।

अमस्त पढ़कर एक ब्रह्मचारी के तुल्य जन्म वृथा ही है। अत्यधिक क्लेशों से भार्या को प्राप्त किया था सो वह भी अप्रिय बोलने वाली होने के कारण वृथा ही है। क्लेश पूर्वक कूप का निर्माण कराया सो खारा जल वाला होने के कारण वृथा ही हुआ। बहुत से क्लेशों को भोग कर यह जन्म प्राप्त किया है सो धर्म के बिना यह भी वृथा ही है। इस तरह से मेरा यह सब वृथा ही नाम हुआ था वह आपने आज मुझे पूर्ण रूप से सफल बना दिया है। इसलिये आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है और सब द्विजों के लिए भी बारम्बार नमस्कार है। विष्णु के रूप में पहिले भगवान विष्णु ने कुमारों के प्रति बिल्कुल सत्य ही कहा—जो हवि वितान में बहुते हुए घृत से लुप्त है और हुत-भुक् के मुख के द्वारा जिसको दग्ध कर दिया गया है उस यजमान के हवि को मैं उस प्रकार से नहीं खाता हूँ जो मुझमें अपहित कर्म वालों के द्वारा अनुवास चरण करके परम तुष्ट ब्राह्मण के मुख में पड़े हुए हवि से जैसा मैं ग्रहण किया करता हूँ। अकल्याणकारी मैंने विप्रो का जो कुछ भी अप्रिय किया है उसके लिए मुझे क्षमा कीजिये और उन्हें आप मेरे ऊपर प्रसन्न करा दीजिए क्योंकि विप्र सबके प्रभु होते हैं। आप कौन हैं ? आप कोई साधारण पुरुष नहीं हैं। मैं प्रणाम करके आपको प्रसन्न करता हूँ। हे मुने ! आप अपना पूर्ण परिचय प्रदान करिये। इस तरह से जब राजा के द्वारा कहा गया तो उस समय में मैंने यह कहा था।८१—९२।

नारदोऽस्मि नृपश्रेष्ठ स्थानकार्यी समागतः।
प्रोक्तं च देहि मे द्रव्यं भूमिचस्थानहेतवे ।९३।
यद्यपीयं देवतानां भूमिद्रव्यं च पार्थिव ! ।
तथापि अस्मिन्य: काले राजा साध्यो सुनिश्चितम् ।९४।
स हीश्वरस्यावतारो भर्त्ता दाताऽभयस्य सः।
तथैव त्वामहं याचे द्रव्यशुद्धि परीप्सया ।९५।

पूर्वं त्वं नारदो विप्र राज्यमस्त्वखिलं तव ।
अहं हि ब्राह्मणानांतिदास्यं कर्तानिसंशयः ।।६६।
यद्यस्माकं भवान्भक्तस्तत्तं दायं च नो वचः ।६७।
सर्वं यत्तद्दं हि मे द्रव्यमुक्तं भुवं च मे सप्तगव्यूतिमात्राम् ।
भूयात्त्वत्तोऽप्यस्य रक्षेति सोऽपि मेने त्वहं चिन्तये चार्थ-
शेषम् ।६८।

देवर्षि नारद जी ने कहा—हे नृपों में परम श्रेष्ठ ! मैं नारद हूँ । मैं स्थान का इच्छुक होकर ही यहाँ पर समागत हुआ हूँ और मैंने कह दिया है । मुझे द्रव्य दो और स्थान के लिए भूमि दो । हे पार्थिव ! यद्यपि यह भूमि देवताओं की ही है और द्रव्य भी देवों का है तो भी जिस समय में जो भी कोई राजा होता है उसी की प्रार्थना करनी चाहिये यही निश्चित है क्योंकि वह राजा एक ईश्वर का ही अवतार होता है । वह भरण करने वाला होता है तथा अभय का देने वाला हुआ करता है । इस रीति से मैं आपसे द्रव्य की शुद्धि की परीक्षा से याचना कर रहा हूँ । देवार्थ में प्रार्थना परायण होकर सबसे पूर्व मुझे आसन दो ।६२—६६। राजा ने कहा—हे विप्र ! यदि आप नारद हैं तो यह सम्पूर्ण राज्य ही आपका है । मैं तो ब्राह्मणों का ही सेवक हूँ । मैं अब आपकी दासता करने वाला रहूँगा, इसमें तनिक भी संशय नहीं है । देवर्षि नारद जी ने कहा—यदि आप हमारे परम भक्त हैं तो आपको हमारा वचन करना चाहिये ।६७। जो द्रव्य कहा गया है वह सब मुझको दो और मुझे सात गव्यूति परिमाण वाली केवल भूमि दो । तुमसे इस की भी रक्षा होवे । वह भी मान गया था और मैं अर्थ शेष का चिंतन करता हूँ ।६८।

१५—सुतनु और नारद सम्वाद

ततोऽहं धर्मवर्माणप्रोच्य तिष्ठन्तंत्वयि ।
कृत्यकालेग्रहीष्यामीत्यागमं रैवतं गिरिम् ।।१।।

आसं प्रमुदितश्चाहं पश्यंस्तं गिरिसत्तमम् ।
आह्वाययन्तं नरान्साधून्भूमेर्भुजमिवोच्छ्रितम् ॥२॥
यस्मिन्नानाविधा वृक्षाः प्रकाशंते समन्ततः ।
साधुं गृहपतिं प्राप्य पुत्रभार्यादयोयथा ॥३॥
मुदिता यत्र संतृप्ता वाशते कोकिलादयः ।
सद्गुरोर्ज्ञानसंपन्नाद्यथाशिष्यगणाभुवि ॥४॥
यत्र तप्त्वा तपो मर्त्यायथेप्सितमवाप्नुयुः ।
श्रीमहादेवमासाद्य भक्तोयद्वन्मनोरथम् ॥५॥
तस्याहं च गिरेः पार्श्वे समासाद्यमहाशिलाम् ।
शीतसौरभ्ययं देनप्रीणितोऽचिंतयं हृदि ॥६॥
तावन्मया स्थानमाप्तं यदतीव सुदुर्लभम् ।
इदानीं ब्राह्मणार्थेऽह कुर्वे तस्योपक्रमम् ॥७॥

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—इसके उपरान्त यह धन तब तक तुम्हारे पास ही रहे—यह उस धर्म वर्मा राजा से मैंने कह कर कि मैं जब मेरा ग्रहण करने का समय आवेगा तभी मैं इसे ग्रहण कर लूंगा । मैं फिर रैवत गिरि पर आगया था ॥१॥ उस परम उत्तम पर्वत को देखते हुए मैं अत्यन्त अधिक प्रमुदित हो गया था जो साधु नरों को बुलाने वाला भूमि का ऊँचा उठा हुआ एक भुज की ही भाँति था । जिस पर्वत में अनेक प्रकार के वृक्ष चारों ओर प्रकाश दे रहे थे जिस प्रकार से किसी परम साधु वृत्ति वाले ग्रह के स्वामी को प्राप्त कर पुत्र एवं भार्य्या आदि रहा करते हैं । जहाँ पर कोकिल आदि पक्षिगण परम संतृप्त और प्रसन्न होते हुए निवास कर रहे थे जिस तरह से किसी सद्गुरु से ज्ञान से सुसम्पन्न शिष्यगण भूमण्डल में निवास किया करते हैं ॥२॥३॥४॥ जहाँ पर मनुष्य तपश्चर्या करके अपने मन के अभीष्ट मनोरथों की प्राप्ति किया करते है जैसे कोई भक्त साक्षात् भगवान श्री महादेव जी को प्राप्त करके अपने मनोरथ को पूर्ण किया करता है । हे पार्थ ! उस

गिरिवर की मैंने महाशिला को प्राप्त अत्यन्त शीत, सुरभित और मन्द वायु से मैं परम प्रसन्नात्मा हो गया था। फिर मैंने अपने हृदय में विचार किया था—उस समय तक मैंने अपने लिए कोई भी स्थान प्राप्त नहीं किया था किन्तु अब यहाँ पर मैंने देखा कि यह स्थान तो अत्यन्त सुदुर्लभ स्थान है। अब मैं ब्राह्मणों के लिए ही उपक्रम करूँगा। ।५।६।७।

ब्राह्मणाश्च विलोक्या मे ये हि पात्रतमा मताः ।
तथा हि चात्र श्रूयते वचासि श्रुतिवादिनाम् ।८।
न जलोत्तरणे शक्ता यद्वन्नौः कर्णवर्जिता ।
तद्वच्छ्रेष्ठोऽप्यनाचारो विप्रो नोद्धरणक्षमः ।९।
ब्राह्मणो ह्यनधीयान स्तृणाग्निरिव शाम्यति ।
तस्मै हव्यं न दातव्यं नहि भस्मनि हूयते ।१०।
दानपात्रमतिक्रम्य यदपात्रे प्रदीयते ।
तद्दत्तं गामतिक्रम्य गर्दभस्य गवाह्निकम् ।११।
ऊषरे वापितं बीजं भिन्नभाण्डे च गोदुहम् ।
भस्मनीव हुतं हव्यं मूर्खे दानमशाश्वतम् ।१२।
विधिहीने तथाऽपात्रे यो ददाति प्रतिग्रहम् ।
न केवलं हि तद्यातिशेषंपुण्यं प्रणश्यति ।१३।
भूरापो गौस्तथा भोगा सुवर्णं देहमेव च ।
अश्वश्चक्षुस्तथा वासो घृतं तेजस्तिलाः प्रजाः ।१४।

मुझे अब वे ब्राह्मण देखने चाहिये जो परम योग्य पात्र तम होवें। यहाँ पर श्रुति वादियों के इसी भाँति के वचन श्रवण गोचर हुआ करते हैं। ये लोग जल के उत्तरण करने में भी समर्थ नहीं होते हैं जिस तरह से कर्ण धार से रहित नौका पार जाने में असमर्थ हुआ करती है। उसी तरह से परम श्रेष्ठ भी विप्र यदि आचार से हीन है तो वह उद्धरण करने में समर्थ नहीं होता है। बिना पढ़ा हुआ ब्राह्मण

तृणों की अग्नि के समान ही शीघ्र शान्त हो जाया करता है। ऐसे विप्र को कभी भी हव्य नहीं देना चाहिए क्योंकि भस्म में कभी भी हवन नहीं किया जाता है।८।६।१०। दान देने के योग्य पात्र का अतिक्रमण करके जो किसी अयोग्य अपात्र को दान दिया जाता है वह दान इसी तरह का है जैसे किसी गौ का अतिक्रमण करके वह गवाह्निक गर्दभ को दे दिया जावे।११। ऊपर भूमि में वपन किया हुआ बीज, टूटे हुए बरतन में दोहन किया हुआ दूध, भस्म में हवन किया हुआ हव्य तथा मूर्ख विप्र को दिया हुआ दान अशाश्वत अर्थात् अस्थायी एवं निष्फल ही हुआ करता है।१२। विधि जो शास्त्रकार दान की बतलाते है उससे हीन तथा अपात्र मे जो कोई प्रतिग्रह दिया करता है उसका वह दिया हुआ दान ही केवल नष्ट नहीं होता बल्कि शेष पुण्य भी नष्ट हो जाया करता है। भूमि, गौ, भोग, सुवर्ण, देह, अश्व, चन्दन, वस्त्र घृत, तेज, तिल और प्रजा नष्ट कर दिया करते हैं।१३।१४।

घ्नन्तितस्मादविद्वांस्तुबिभियाच्चप्रतिग्रहात् ।
स्वल्पकेनाप्यविद्वांस्तुपङ्के गौरिवसीदति ।१५।
तस्माद्ये गूढतपसोगूढस्वाध्यायसाधकाः ।
स्वदारनिरताः शान्तास्तेषु दत्तं सदाऽक्षयम् ।१६।
देशेकालउपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् ।
पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ।१७।
न विद्यया केवलया तपसा चाऽपि पात्रता।
यत्र वृत्तमिमे चोभे तद्धि पात्रम्प्रचक्षते ।१८।
तेषां त्रयाणां मध्येचविद्यामुख्योमहागुणः ।
विद्यांविनान्धवद्विप्राश्चक्षुष्मन्तोहितेमताः ।१९।
तस्माच्चक्षुष्मतो विद्वान्देशे देशे परीक्षयेत् ।
प्रश्नान्ये मयवक्ष्यंतितेभ्योदास्ताम्यहंततः ।२०।

इति संचिन्त्य मनसा तस्माद्देशात्समुत्थितः ।
आश्रमेषु महर्षीणां विचराम्यहमफाल्गुन ।२१।

इसलिए विद्वान् पुरुष को प्रतिग्रह लेने में भय करना चाहिये । जो विद्वान् नहीं है वह तो बहुत स्वल्प भी प्रतिग्रह से दलदल में फँसी हुई गौ के समान कष्टोडित हो जाया करता है । इसीलिए जो परम गूढ तपश्चर्या वाले हैं – गूढ स्वाध्याय की साधना करने वाले हैं, अपने ही स्त्री में रति रखने वाले हैं और परम शान्ति से पूर्ण वृत्ति वाले हैं ऐसे ही विप्रों को दिया हुआ दान सदा अक्षय हुआ करता है ।१५।१६। देश और काल के उपाय से श्रद्धा से समन्वित द्रव्य जो किसी सुयोग्य पात्र को प्रदान किया जाता है वह सम्पूर्ण धर्म का लक्षण है ।१७। केवल विद्या से और न केवल तपश्चर्या से पात्रता हुआ करती है । जहाँ पर सच्चारित्रता है और ये दोनों (विद्या और तप) भी विद्यमान हैं वह ही वस्तुतः पात्र कहा जाया करता है । इन तीनों के मध्य में विद्या गुरु और एक महान् गुरु गुण है क्योंकि विद्या के बिना चक्षुओं वाले भी अन्धे ही माने गये हैं । इसलिए विद्या रूपी चक्षुओं वाले विद्वानों का परीक्षण देश-देश में करना चाहिये । जो मेरे किये हुए प्रश्नों का उत्तर दे देंगे उन्हीं को मैं दूँगा । इस प्रकार से मन के द्वारा भली-भाँति चिन्तन करके हे फाल्गुन ! मैं फिर उस देश से उठकर चल दिया था और महर्षियों के आश्रमों में विचरण किया करता था ।१८—२१।

इमान्द्विलोकान्गाथमानः प्रश्नरूपान्द्विजस्तान् ।
मातृकां को विजानाति कतिधा कीदृशाक्षराम् ।२२।
पञ्चपञ्चाद्भुतं गेहं को विजानाति वा द्विजः ।
बहुरूपां स्त्रियं कर्तुमेकरूपां च वेत्ति कः ।२३।
को वा चित्रकथाबन्धं वेत्ति संसारगोचरः ।
कोऽर्णवमहाग्राहं वेत्ति विद्यापरायणः ।२४।

कोवाऽष्टविध ब्राह्मण्यं वेत्तिब्राह्मणसत्तमः ।
युगानांचचतुर्णान्वा कोमूलदिवसान्वदेत् ।२५।
चतुर्दशमनूनां वा मूलवासरं वेत्ति कः ।
कस्मिश्चैव दिने प्राप पूर्वं वा भास्करोरथम् ।२६।
उद्वेजयति भूतानिकृष्णाऽहिरिवः वेत्तिकः ।
को वा ऽ स्मिन्घोरसंसारे दक्षादक्षतमोभवेत् ।२७।
पन्थानावपि द्वौ कश्चिद्वेत्ति वक्ति च ब्राह्मणः ।
इतिमेद्वादशप्रश्नान्ये विदुर्ब्राह्मणोत्तमाः ।२८।

मैं प्रश्नों के स्वरूप वाले इन श्लोकों को सदा हुआ विचरण किया करता था। इन श्लोकों को तुम श्रवण कर लो। कौन ऐसा पुरुष है जो मातृका को जानता है ? वह कितने प्रकार की है और उसके प्रकार किस प्रकार के होते है ? अथवा ऐसा कौन द्विज है जो पंच पंचाद्भुत गेह को जानता है ? कौन ऐसा है जो बहु रूपों वाली और एक रूप वाली स्त्री को करना जानता है ? अथवा ऐसा कौन संसार का गोचर है जो चित्र कथा बन्ध का ज्ञान रखता है ? ऐसा कौन विचार में परम परायण है जो आर्णव ग्राह को जानता है तथा बतलाता है ? ऐसा कौन परम श्रेष्ठ ब्राह्मण है जो आठ प्रकार के ब्राह्मण्य का ज्ञान रखता है ? ऐसा कोई कौन है जो चारों युगों के मूल दिवसों का बतला देवे ? ऐसा कोई कौन है जो चौदह मनुओं के मूल वासर का ज्ञान रखता है ? कौन यह है जो यह बतला देवे कि किस दिन में सबसे प्रथम भगवान भास्कर ने रथ को प्राप्त किया था ? ऐसा कौन ज्ञाता है जो यह बतला देवे कि वह कौन है जो कृष्ण सर्प की भाँति समस्त प्राणियों को उद्विग्न किया करता है ? ऐसा कौन है जो इस महान् घोर संसार में दक्षों में भी परम दक्ष होवे ? कोई ऐसा ब्राह्मण है जो दोनों मार्गों को जानता है और बतलाता है ?—ये बारह प्रश्न हैं। इनको जो जानते हैं वे सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण हैं।२२—२८।

ते मे पूज्यतमास्तेषामहमाराधकश्चिरम् ।
इत्यहं गायमानो वै भ्रमितः सकलांमहीम् ।२९।
ते चाहुर्दुःखदाः ख्याताः प्रश्नास्तेकुर्महे नमः ।
इत्यहंसकलां पृथ्वीं विचिन्त्यालब्धब्राह्मणः ।३०।
हिमाद्रिशिखरासीनो भूयश्चिन्तामवाप्तवान् ।
सर्वेविलोकिताविप्राः किमतः कर्तुमुत्सहे ।३१।
ततो मे चिन्तयानस्य पुनर्जातामतिस्त्वियम् ।
अद्यापि न गतश्चाहंकलापग्राममुत्तमम् ।३२।
यस्मिन्विप्राः संवसन्तिमूर्वीनीवतपांसि च ।
चतुराशीतिसाहस्राः श्रुताध्ययनशालिनः ।३३।
स्थाने तस्मिन्गमिष्यामीत्युक्त्वाहंचलितस्तदा ।
खेचरोहिममाक्रम्यपरंपारं गतस्ततः ।३४।
अद्राक्षं पुण्यभूमिस्थं ग्रामरत्नमहं महत् ।
शतयोजनविस्तीर्णं नानावृक्षसमाकुलम् ।३५।

ऐसा ज्ञाता जो ब्राह्मण है वे मेरे परम पूज्य हैं और मैं उनकी चिरकाल पर्यन्त आराधना करने वाला हूँ । इस प्रकार से यही गायन करता हुआ मैं सम्पूर्ण भूमि मण्डल में भ्रमण किया करता हूँ ।२९। वे ब्राह्मण जो इन मेरे प्रश्नों को सुनते थे वे यही कह दिया करते थे कि ये प्रश्न तो बहुत ही दुःख देने वाले प्रसिद्ध हैं—यह कहकर वे नमस्कार कर दिया करते थे । इस रीति से मैं इस समस्त भूमि पर घूम चुका था किन्तु विचार करके देखा कि कोई भी ऐसा योग्य ब्राह्मण प्राप्त नहीं हुआ था । फिर मैं हिमालय पर्वत की शिखर पर समासीन हो गया था और फिर पुनः मैं इसी चिन्ता में ग्रस्त हो गया था । मैंने सभी ब्राह्मणों को देख डाला है । अतएव अब मैं क्या करूँ ? इस प्रकार से जब मैं चिन्तन कर ही रहा था कि मुझे फिर यह बुद्धि स्फुरित हुई थी कि अभी तक मैं परमोत्तम कलाप नामक ग्राम में नहीं जा पाया हूँ जिस

ग्राम में श्रुताध्ययन शील चौरासी सहस्र ब्राह्मण निवास किया करते हैं जो साक्षात् तप की मूर्ति के ही समान हैं। मैं उस स्थान में अवश्य ही जाऊँगा—इतना कहकर ही मैं कहने के उसी समय में चल दिया था। स्वल्पगामी होकर समाक्रमण किया था और मैं परले पार पर इसके पश्चात् पहुँच गया था। वहाँ पर मैंने परम पुण्य भूमि में स्थित महान ग्राम रत्न को देखा था जो सौ योजन के विस्तार से युक्त और अनेक प्रकार के वृक्षों से समाकीर्ण था।३०—३५।

यत्र पुण्यवतां सन्ति शतशः प्रवराश्रमाः।
सर्वेषामपिजीवानां यत्रान्योन्यं न दुष्टताः।३६।
यज्ञभाजां मुनिनां यदुपकारकरं सदाः।
सतां धर्मवतां यद्वदुपकारो न शाम्यति।३७।
मुनीनां यत्र परमं स्थानं चाप्यविनाशकृत्।
स्वाहास्वधावषट्कारहन्तकारैर्न नश्यति।३८।
यत्र कृतयुगस्यार्थं बीजं पार्श्वेऽविशिष्यते।
सूर्यस्य सोमवंशस्य ब्राह्मणानांतथैव च।३९।
स्थानकंतत्समासाद्यप्रविष्टोऽहं द्विजाश्रमान्।
यत्रतेविविधान्वादान्विवदन्तेद्विजोत्तमाः।४०।
परस्परं चित्तयाना वेदा मूर्तिधरा यथा।
तत्र मेधाविनः केचिदर्थमर्घ्यैः प्रपूरितम्।४१।
विचिक्षिपुर्महारम्भौ नभोगतमिवामिषम्।
तत्राहं करमुद्यम्य प्रावोचंपूर्वतोद्विजाः।४२।
काकारावैः किमेतैर्वोयद्यस्तिज्ञानशालिता।
व्याकुरुध्वं ततः प्रश्नान्ममदुर्विग्रहान्बहून्।४३।

जिस विशाल ग्राम में परम पुण्यशाली महापुरुषों के सैकड़ों ही मनिश्रेष्ठ आश्रम बने हुए थे और जिस ग्राम में सभी जीवों में परस्पर में अन्योन्य के प्रति सर्वथा दुष्टता की भावना थी ही नहीं। यज्ञों के

यजन करने वाले मुनियों का जो सदा उपकार के करने वाला था और धर्म वाले सत्पुरुषों का जो उपकार होता है वह कभी भी साम्य भाव को प्राप्त नहीं हुआ करता है ।३६—३७। जिस ग्राम में अविनाश के करने वाला परम स्थान था और जहाँ पर स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और हन्तकार कभी भी नष्ट नहीं हुआ करता है । हे पार्थ ! जिस ग्राम में कृतयुग का अर्थ और बीज अवशिष्ट रहता है और सोम तथा सूर्य के वंश का एवं ब्राह्मणों का वह अभी तक भी बीज विद्यमान था । उस स्थान को मैं पहुँच कर द्विजों के आश्रमों में प्रविष्ट हुआ था । वहाँ पर मैंने देखा था कि द्विजोत्तम वृन्द अनेक प्रकार के वादों की परस्पर में चर्चा कर रहे थे । वे ब्राह्मण ऐसे ही प्रतीत हो रहे थे मानो साक्षात् वेद ही मूर्ति धारण करके वहाँ पर उपस्थित होकर परस्पर में विविध विषयों का चिन्तन कर रहे हों । उनमें कुछ लोग परम मेधावी थे जोकि महान आत्मा वाले ग्रन्थों के द्वारा प्रभूरित अर्थ को नभोगत साविध की भाँति ही विशेष रूप से क्षिप्त कर दिया करते थे । वहाँ पर मैंने भी अपना हाथ उठाकर कहा था—हे द्विजगणो ! मेरे अर्थ को भी पूर्ति कीजिए । उन काकों की भाँति रवदि (काँव-काँव) करने से आप लोगों को क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? यदि आप लोगों में कुछ ज्ञानशीलता विद्यमान है तो मेरे किये हुए परम दुर्विषह बहुत में प्रश्नों की व्याख्या करके मुझे समझाइये ।३८—४३।

वद ब्राह्मण प्रश्नान्स्वाञ्छ्रुत्वाऽऽधास्यामहे वयम् ।
परमो ह्येष नो लाभः प्रश्नान्पृच्छति यद्भवान् ।४४।
अहं पूर्विकया ते वै व्यरोधन्त परस्परम् ।
अहं पूर्वमहं पूर्वमिति वीरा यथा रणे ।४५।
ततस्तानब्रवं प्रश्नानहं द्वादश पूर्वकान् ।
श्रुत्वा ते मामवोचन्त लीलायन्तोमुनीश्वराः ।४६।

किं ते द्विज बालप्रश्नैरमाभिः स्वल्पकैरपि ।
अस्माकं यन्निहीनं त्वं मन्यसे स ब्रवीत्वमून् ।४७।
ततोऽतिविस्मितश्चा ऽ हं मन्यमानः कृतार्थताम् ।
तेषांनिहीनंसञ्चिन्त्यप्रावोचंप्रब्रवीत्वयम् ।४८।
ततः सुतनुनामा स बालोऽबालोऽभ्युवाच माम् ।
मम मन्दायते वाणी प्रश्नैः स्वल्पैस्तव द्विज ! ।
तथापि वच्मि मां यस्मान्निहीनं मन्यते भवान् ।४९।

उन ब्राह्मणों ने कहा—हे ब्राह्मण देव ! आप अपने प्रश्नों को बोलिए। हम लोग उनको सुनकर उनके विषय में व्याख्यान करेंगे। यह तो हमारा परम लाभ का अवसर प्राप्त हो गया है कि आप हम लोगों से कतिपय प्रश्न पूछ रहे हैं।४४। उस समय में वे सब अहमहमिका की भावना से परस्पर में एक दूसरे को निषेध करने लगे थे और पहले मैं ही इसके प्रश्नों का उत्तर दूंगा—इस तरह से 'मैं पहिले-मैं पहिले' कह कर एक दूसरे से कहने लगे थे। जिस तरह वीर लोग रणस्थल में युद्ध करने के लिए स्वयं ही सर्वप्रथम जाने के लिए प्रस्तुत हुआ करते हैं। ।४५। इसके अनन्तर मैंने अपने वे ही बारह पहिले बताये हुए प्रश्नों को कहा था। उन्होंने उन बारह मेरे किये हुये प्रश्नों का श्रवण करके उन मुनियों ने लीला सी करते हुए मुझसे कहा था—हे द्विज ! इन बहुत ही छोटे २ बालकों के समान प्रश्नों के करने से आपका क्या अभिप्राय है ? क्या आपने हम सबको इतना हीन श्रेणी का मान लिया है। इन प्रश्नों का उत्तर तो यह एक बालक ही दे देगा। इसके पश्चात् मैं अत्यन्त ही विस्मित हो गया था और मैं अपने आपको परम कृतार्थ मानने लगा था। उनमें जो सबसे विहीन मैंने सोचा था उसी से मैंने कहा था—यह ही मेरे प्रश्नों का उत्तर देवे। इसके अनन्तर एक सुतनु नाम वाला बालक जो ज्ञानाविनय के कारण अबाल था मुझसे बोला था—हे द्विज ! आपके अति स्वल्प प्रश्नों से मेरी वाणी मन्द हो रही है

तो भी मैं बोलता हूं जिससे कि आप मुझको विहीन न मान लेवें। ।४६–४९।

अक्षरास्तु द्विपञ्चाशन्मातृकायां प्रकीर्तिताः ।५०।
ॐकारः प्रथमस्तत्र चतुर्दश स्वरास्तथा ।
स्पर्शाश्चैव त्रयस्त्रिंशदनुस्वारस्तथैव च ।५१।
विसर्जनीयश्च परो जिह्वामूलीय एव च ।
उपध्मानीय एवापि द्विपञ्चाशदमी स्मृताः ।५२।
इति ते कथितासंख्या अर्थं चैषां शृणु द्विज ।
अस्मिन्नर्थे चेतिहासतंवक्ष्यामियः पुरा ।५३।
मिथिलायांप्रवृत्तोऽभूद्ब्राह्मणस्यनिवेशने ।
मिथिलायांपुरापूर्वंब्राह्मणः कोथुमाभिधः ।५४।
येन विद्याः प्रपठितावर्तन्ते भुविः या द्विज ! ।
एकत्रिंशत्सहस्राणि वर्षाणां स कृतादरः ।५५।
क्षणमप्यनवच्छिन्नं पठित्वागेहवानभूत् ।
ततः केनाऽपि कालेनकोथुमस्याऽभवत्सुतः ।५६।

सुतनु ने कहा—कुल अक्षर बावन हैं जो मातृका के प्रकीर्तित किए गये हैं। उनमें ॐकार सबसे प्रथम अक्षर होता है तथा चौदह उनमें स्वर हुआ करते हैं और तेंतीस स्पर्श संज्ञा वाले वर्ण होते हैं तथा अनुस्वार, विसर्जनीय, जिह्वा मूलीय और उपध्मानीय भी होते हैं—ये सब पचास दो बावन अक्षर हैं। हे द्विज ! यह पूरी संख्या तो मैंने आपको बतलादी है अब इनके अर्थ का भी आप मुझसे श्रवण कीजिये। इस अर्थ में एक इतिहास जो पहिले का है उसे मैं पहले आपको बतलाऊँगा ।५०–५३। यह इतिहास एक ब्राह्मण के घर में मिथिला में प्रवृत्त हुआ था। पहिले मिथिला में पुरोधा एक कोथुम नाम वाला ब्राह्मण था। हे द्विज ! उसने जो भी भूमण्डल में विद्यमान थीं वे सभी विद्यायें पढ़ ली थीं। उसने इक्तीस सहस्र वर्षों तक आदर पूर्वक विद्या का

अध्ययन किया था। एक क्षण भी उसने नष्ट नहीं किया था। समस्त विद्या पढ़कर फिर वह गेह वाला हुआ था। इसके उपरान्त किसी काल में उस कौथुम विप्र के घर में पुत्र की उत्पत्ति हुई थी।५४।५५।५६।

जडवद्वर्त्तमानः स मातृकां प्रत्यपद्यत।
पठित्वा मातृकामन्यन्नाध्येति स कथञ्चन।५७।
ततः पिता खिन्नरूपी जडं तं समभाषत।
अधीष्वपुत्रकाधीष्वतवदास्यामिमोदकान्।५८।
अथाऽन्यस्मै प्रदास्यामि कर्णावुत्पाटयामि ते।५९।
तात किं मोदकार्थाय पठ्यते लोभहेतवे।
पठनं नाम यत्पुंसां परमार्थं हि तत्स्मृतम्।६०।
एवं ते वदमानस्य आयुर्भवतुब्रह्मणः।
साध्वी बुद्धिरियं तेऽस्तु कुतोनाध्येष्यतः परम्।६१।
तात सर्वं परिज्ञेयं ज्ञातमत्रैव वै यतः।
ततः परं कण्ठशोषः किमर्थं क्रियते वद।६२।
विचित्रंभाषसेबालज्ञातोऽत्रार्थश्चकस्त्वया।
ब्रूहिब्रूहिपुनर्वत्सश्रोतुमिच्छामितेगिरम्।६३।

वह पुत्र एक जड की भाँति ही रहा करता था। उसने बड़ी कठिनाई से मातृका का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। बस, केवल मातृका को पढकर वह किसी भी प्रकार से अन्य कुछ भी नहीं पढ़ता था। इसके अनन्तर उसका पिता बहुत ही खिन्न हो गया था। उस कौथुम ने उस अपने जड पुत्र से कहा था—हे पुत्र! पढो-पढो, मैं तुमको खाने के लिए मोदक दूंगा। यदि तुम नहीं पढोगे तो वे मोदक मैं किसी अन्य को दे दूंगा और तुम्हारे कान उखाड़ डालूँगा।५७।५८।५९। पुत्र ने अपने पिता से कहा—हे तात! क्या लोभ के ही कारण से मोदकों के पाने के लिये अध्ययन किया जाया करता है। यह अध्ययन तो पुरुषों का परमार्थ कहा गया है। कौथुम ने कहा—इस प्रकार से बोलने वाले तुम्हारी

आयु ब्रह्मा की आयु जैसी हो जावे । यह तो तुम्हारी बुद्धि अतीव साध्वी है फिर तुम आगे क्यों नहीं पढते हो ? । पुत्र ने उत्तर दिया था–हे तात ! इसी मे सभी कुछ परिज्ञेय अर्थात् जानने के योग्य मैंने जान लिया है । इससे आगे किस प्रयोजन के लिए व्यर्थ ही कण्ठ का शोषण किया जाता है ? आपही मुझे बतलाइये ।६०। ।६१। ।६२। पिता ने कहा–हे बालक ! तुम तो अत्यन्त ही विचित्र बात कह रहे हो । बतलाओ, तुमने इसी मे क्या जान लिया है ? हे वत्स ! बतलाओ, बोलो, मैं तुम्हारी वाणी के श्रवण करने की उत्कट इच्छा रखता हूँ ।६३।

एकत्रिंशत्सहस्राणि पठित्वापित्वयापित: ।
नानातर्कान्भ्रान्तिरेवसंधितामनसिस्वके ।६४।
अयमयं चार्थमिति धर्मो यो दर्शनोदित: ।
तेषु वातायते चेतस्तव तन्नाशयामि ते ।६५।
उपदेशं पठस्येव नैवार्थज्ञोऽसितत्त्वत: ।
पाठमात्रा हि ये विप्रा द्विपदा: पशवो हि ते ।६६।
तत्ते ब्रवीमि तद्वाक्यं मोहमार्तण्डमद्भुतम् ।६७।
अकार: कथितोब्रह्मा उकारोविष्णुरुच्यते ।
मकारश्चस्मृतोरुद्रस्त्रयश्चैते गुणा: स्मृता: ।६८।
अर्धमात्रा च या मूर्ध्नि परम: स सदाशिव: ।
एवमोंकारमाहात्म्यंश्रुतिरेषा सनातनी ।६९।
ॐकारस्य च माहात्म्यं याथात्म्येननशक्यते ।
वर्षाणामयुतेनाऽपिब्रह्मकोटिभिरेववा ।७०।

पुत्र ने कहा–हे पिताजी ! आपके इकत्तीस सहस्र वर्ष पर्यन्त अनेक तर्कों को पढ़कर भी अपने मन मे भ्रान्ति को ही संचित किया है । दर्शन शास्त्रों के द्वारा कहा गया यह-यह जो धर्म है । उन धर्मों में आपका चित्त वायु की भाँति भ्रमित हो रहा है । उसका मैं अब विनाश करता हूँ । आप उपदेश करना ही पढ़े हुए हैं । तात्त्विक रूप से आप

अर्थों के ज्ञाता नहीं हैं। जो विप्र केवल का पाठ ही का ज्ञान रखा करते हैं वे द्विपद होते हुए भी पशु ही हुआ करते हैं। इसीलिए मैं आपको अद्भुत मोह के अन्धकार के नाश करने वाले माहात्म्य रूपी वाक्य को बतलाता हूँ। यह अकार ब्रह्मा कहा गया है और उकार विष्णु कहा जाता है। मकार रुद्र कहा गया है। ये तीन गुण बतलाये गये हैं। जो यह अर्द्ध मात्रा मूर्धा में है वह परम सदाशिव है। इस प्रकार से इस ॐकार का माहात्म्य है। यही परम सनातनी श्रुति है। इस ॐकार का माहात्म्य चतुर्युगी वर्षों में करोड़ों ग्रन्थों के द्वारा भी यथार्थ रूप से वर्णन नहीं किया जा सकता है।६४—७०।

पुनर्यत्सारसर्वस्वं प्रोक्तं तच्छ्रूयतां परम्।
अकाराद्या अःकारान्ता मनवस्ते चतुर्दश।७१।
स्वायम्भुवश्च स्वारोचिरौत्तमो रैवतस्तथा।
तामसश्चाक्षुषः षष्ठस्तथा वैवस्वतोऽधुना।७२।
सावर्णिर्ब्रह्मसावर्णी रुद्रसावर्णिरेव च।
दक्षसावर्णिरेवाऽपि धर्मसावर्णिरेव च।७३।
रौच्यो भौत्यस्तथा चापि मनवोऽमी चतुर्दश।
श्वेतः पाण्डुस्तथा रक्तस्ताम्रः पीतश्च कापिलः।७४।
कृष्णः श्यामस्तथा धूम्रः सुपिशङ्गः पिशङ्गकः।
त्रिवर्णः शबलावर्णौ कर्कन्धुर इति क्रमात्।७५।
वैवस्वतः क्षकारश्च नाव कृष्णः प्रदृश्यते।
ककाराद्या हकारान्तास्त्रयस्त्रिंशच्च देवताः।७६।
ककाराद्याष्टकारान्ता आदित्या द्वादश स्मृताः।
धाताऽर्यमा मित्रश्च वरुणश्चांशुरेव च।७७।
भगो विवस्वान्पूषा च सविता दशमस्तथा।
एकादशस्तथा त्वष्टा विष्णुर्द्वादश उच्यते।७८।

फिर भी जो सार का सर्वस्व है वह मैंने बतला दिया है। इसके भी आगे आप और श्रवण कीजिए। अकार है आदि में जिनके और 'आः' यह है अन्त में जिनके ऐसे जो ये चौदह स्वर हैं वे ही चौदह मनुगण हैं। उन चौदह मनुओं के ये नाम होते हैं—स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, रैवत, तामस, चाक्षुष छठा है। इस समय में वैवस्वत मनु वर्तमान है। सावर्णी, ब्रह्म सावर्णी, रुद्र सावर्णी, दक्ष सावर्णी, धर्म सावर्णी, रौच्य और भौत्य ये ही चौदह मनुगण हुआ करते हैं। श्वेत, पाण्डु, रक्त, ताम्र पीत, कापिल, कृष्ण, श्याम, धूम्र, सुपिशङ्ग पिशङ्गक, त्रिवर्ण, वर्णों से शवल और कर्कन्धुर इस क्रम से उन चौदहों मनुओं के वर्ण होते हैं। हे तात! वैवस्वत और ककार कृष्ण दिखलाई देता है। ककार जिनके आदि में है वे सब हकारान्त पर्यन्त तैतीस देवता हैं। ककार से आदि लेकर डकार के अन्त पर्यन्त द्वादश आदित्य कहे गये हैं। उन बारहों आदित्यों के नाम ये होते हैं—धाता, मित्र, अर्यमा, शक्र, वरुण, अंशु भग, विवस्वान्, पूषा, दशवाँ सविता, एकादशवाँ त्वष्टा और बारहवाँ विष्णु नाम कहा जाता है। ७१-७८।

जघन्यजः स सर्वेषामादित्यानां गुणाधिकः।
डकाराद्यावकारान्ता रुद्राश्चैकादशैव तु ।७६।
कपाली पिङ्गलो भीमो विरूपाक्षो विलोहितः।
अजकः शासनः शास्ता शम्भुश्चण्डो भवस्तथा ।८०।
भकाराद्या धकारान्ता अष्टौ हि वसवो मताः।
ध्रुवो घोरश्च सोमश्च आपश्चैवानलोऽनिलः ।८१।
प्रत्यूषश्च प्रभासश्च अष्टौ ते वसवः स्मृताः।
सो दूश्चेत्यश्विनौ स्यातौ नयश्विनावदिमे स्मृताः ।८२।
अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च।
उपध्मानीय इत्येते जरायुजास्तथाऽण्डजाः ।८३।
स्वेदजाश्चोद्भिजाश्च विवजीवाः प्रकीर्तिताः।
भावार्थः कथितश्चार्थतत्त्वार्थं शृणु सोमतम् ।८४।

यह इन समस्त आदित्यों मे जघन्यज अर्थात् सबसे अन्त में समुत्पन्न होने वाला है किन्तु जघन्यज होते हुए भी गुणों में सबसे अधिक है। इकार से आदि लेकर बकारान्त पर्य्यन्त एकादश रुद्र होते हैं। उन एकादश रुद्रो के नाम ये होते हैं—कपाली, पिङ्गल, भीम, विरूपाक्ष, विलोहित, अजक, शासन शास्ता, शम्भु, चण्ड, भव। भकार से प्रारम्भ करके षकार के अन्त तक आठ वसुगण कहे गये हैं। दोनों अकार और हकार ये दो अश्विनी कुमार प्रसिद्ध हैं। इस रीति से ये तेंतीस देवगण बताये गये हैं। अनुस्वार, विसर्ग, जिह्वामूलीय और उपध्मानीय ये चारो जरायुज, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज ये चा प्रकार के जीव कीर्त्तित किये गये हैं। यह मैंने इसका भावार्थ का दिया है। अब इसका तत्त्वार्थ भी आप श्रवण कीजिये ।७६-८४।

ये पुमांसस्त्वमून्देवान्समाश्रित्य क्रियापराः ।
अर्धमात्रात्मकेनित्येपदेलीनास्तएवहि ।८५।
चतुर्णां जीवयोनीना तदैव परिमुच्यते ।
यदाभून्मनसा वाचा कर्मणा च यजेत्सुरान् ।८६।
यस्मिञ्छास्त्रे त्वमी देवा मानिता नैव पापिभिः ।
तच्छास्त्रं हि न मन्तव्यं यदि ब्रह्मा स्वयं वदेत् ।८७।
अमीचदेवाः सर्वत्र श्रौते मार्गे प्रतिष्ठिताः ।
पाषण्डशास्त्रे सर्वत्र निषिद्धाः पापकर्मभिः ।८८।
तदमून्ये व्यतिक्रम्य तपो दानमथो जपम् ।
प्रकुर्वन्ति दुरात्मानो वेपन्ते महतः पथि ।८९।
अहोमोहस्यमाहात्म्यंपश्यताऽविजितात्मनाम् ।
पठन्तिमातृकांपापामन्यन्तेनसुरानिह ।९०।

जो मनुष्य न देवों का समाश्रय ग्रहण करके क्रिया मे परायण रहा करते हैं वे अर्ध मात्रात्मक नित्य पद में लीन ही होते हैं। चार प्रकार की जीवो की योनियों का परिमोचन उसी समय में हुआ करता

है जबकि मन, वाणी और कर्म के द्वारा गुरु का यजन होता है। जिस शास्त्र में ये सब देवगण हैं। पापियों के द्वारा ये सब देवगण नहीं माने गये हैं। ऐसा शास्त्र भी कभी नहीं मानना चाहिए चाहे उसको साक्षात् ब्रह्मा ही क्यों न कहते हों ।८५।८६।८७। ये देवगण सर्वत्र और (वैदिक) मार्ग में प्रतिष्ठित होते हैं। पाषण्ड शास्त्र में सब जगह पाप कर्म करने वालों के द्वारा निषिद्ध किये गए हैं। सो जो लोग इन देव वृन्दों का विशेष रूप से अतिक्रमण करके तप, मन तथा जप किया करते हैं वे दुष्ट आशय वाले पुरुष वायु के मार्ग कम्पित हुआ करते हैं। बड़े ही आश्चर्य की बात है अविज्ञित आस्थाओं वाले पुरुषों के मोह के इस माहात्म्य को देखिए। ये लोग मातृका का पाठ तो किया करते हैं अर्थात् इसका अध्ययन करते हैं किन्तु पापात्मा लोग इसमें गुरु को नहीं मानते हैं ।८८-९०।

इति तस्य वचः श्रुत्वा पिताऽभूदतिविस्मितः ।
अपृच्छच्च बहून्प्रश्नान्सोऽप्यवादीत्तथा तथा ।९१।
अथापि तत्र प्रोक्तोऽस्य मातृकाप्रश्न उत्तरः ।
द्वितीयं शृणु तं प्रश्नं पञ्चपञ्चाद्भुतं गृहम् ।९२।
पञ्चभूतानि पञ्चैव कर्मज्ञानेन्द्रियाणि च ।
पञ्च पञ्चापि विषया मनोबुद्ध्यहमेव च ।९३।
प्रकृतिः पुरुषश्चैव पञ्चविंशः सदाशिवः ।
पंचपञ्चभिरेतैस्तु निष्पन्नं गृहमुच्यते ।९४।
देहमेतदिदं वेद तत्त्वतो यात्यसौ शिवम् ।
बह्वृच्याः शिखां प्राहुर्बुद्धिं वेदान्तवादिनः ।९५।
सा हि नानार्थभवनान्नानात्वं प्रपद्यते ।
धर्मस्यैकस्य संयोगाद्बहुधाप्येकिकैव सा ।९६।
इति यो वेद तत्त्वार्थं नासौ नरकमाप्नुयात् ।
मुनिभिर्यच्च न प्रोक्तं पद्यं मन्येतद्वदताम् ।९७।

वचनं तद्बुधाः प्राहुर्बन्धं चित्रकथं त्विति ।
पञ्चकामान्वितवाक्यपचमवाप्यतः शृणु ।६८।

सुतनु ने कहा---उस अपने पुत्र के इस वचन का श्रवण करके पिता अत्यन्त विस्मित हो गये थे । फिर पिता ने उससे बहुत से प्रश्नों को पूछा था सो वे भी उसने ठीक २ बतला दिए थे । मेरे द्वारा भी आपका यही उत्तम मातृका प्रश्न कहा गया है । अब आप अपना दूसरा प्रश्न सुनिये जो कि पञ्च पञ्चाद्भुत गूहम् है ।६१।६२। पाँच तो पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पाँच भूत होते हैं और पाच ही इन्द्रियां हैं जो कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रियां हैं । इनके पाच-पाँच ही विषय होते हैं । मन, बुद्धि, अहङ्कार, प्रकृति और पुरुष ये भी पाँच हैं इस प्रकार से पच्चीस तत्वों से परिपूर्ण सद शिव हैं । इन्हीं पाँच-पांचों से निगत्र गूढ कहा जाया करता है ।६३।६४। इसको वेद जानते हैं और तत्व से यह शिव को प्राप्त किया करता है । वेदान्त वादी लोग इस बुद्धि को ही बहुत से रूपों वाली स्त्री कहा करते हैं ।६५। वह अनेक प्रकार के अर्थों का सेवन करने से नाना भांति के स्वरूप को प्राप्त कर लिया करती है । केवल एक धर्म का जब इसके साथ संयोग प्राप्त हो जाया करता है तो यह बहुत प्रकार की भी एक ही हो जाती है । इस प्रकार से जो भी कोई तत्वार्थ को जान लिया करता है वह फिर कभी भी नरक की प्राप्ति नहीं किया करता है । जिसको मुनियों ने नहीं कहा है कि दैवतों को नहीं मानना चाहिये । बुध पुरुष चित्र कथा पुरुष बन्ध वचन को बोला करते हैं । जो कामान्वित वाक्य है वचन पञ्चम है । इसलिए उसका श्रवण करो ।६६।६७।६८।

एको लोभो महाग्राहोलोभात्पापं प्रवर्त्तते ।
लोभात्क्रोधः प्रभवतिलोभात्कामः प्रवर्त्तते ।६९।
लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परेप्सुता ।
अविद्याऽप्रज्ञता चैव सर्वं लोभात्प्रवर्त्तते ।१००।

हरणं परवित्तानां परदाराभिमर्शनम् ।
साहसानां च सर्वेषामकार्याणां क्रियास्तथा ॥१०१॥
स लोभः सह मोहेन विजेतव्यो जितात्मना ।
दम्भोद्रोहश्चनिन्दाचपैशुन्यंमत्सरस्तथा ॥१०२॥
भवन्त्येतानि सर्वाणि लुब्धानामकृतात्मनाम् ।
सुमहान्त्यपि शास्त्राणि धारयन्ति बहुश्रुताः ॥१०३॥
छेत्तारः संशयानांच लोभग्रस्ताव्रजन्त्यधः ।
लोभक्रोधप्रसक्ताश्च शिष्टाचारबहिष्कृता ॥१०४॥
अन्तः क्षुरावाङ्मधुराः कूपाश्छन्नास्तृणैरिव ।
कुर्वतेयेबहून्मार्गांस्तांस्तान्हेतुबलान्विताः ॥१०५॥

यह एक लोभ ही महान् ग्राह है। इस लोभ से पाप प्रवृत्त हुआ करता है। लोभ से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है। लोभ ही से काम समुत्पन्न होता है। लोभ से ही मोह, माया, मान, स्तम्भ, परेप्सुता, अविद्या, अप्रज्ञता ये सभी एक मात्र लोभ से ही प्रवर्तित हुआ करते हैं ।९९।१००। पराये धनों का हरण, पराई स्त्रियों का अभिमर्शन, सभी प्रकार के साहसों का तथा अकार्यों की क्रियायें भी लोभ के ही कारण से हुआ करते हैं अतएव जितात्मा पुरुष के द्वारा यही लोभ मोह के सहित जीत लेना चाहिये। दम्भ, द्रोह, निन्दा, पैशुन्य तथा मत्सरता ये सभी अकृतात्मा लुब्धक पुरुषों को ही हुआ करते हैं। बहु श्रुत लोग अर्थात् ऐसे पुरुष जिन्होंने बहुत कुछ सुन रखा है बड़े २ शास्त्रों को हृदय में धारण किया करते हैं। ये लोग सभी तरह के संशयों का छेदन करने वाले होते हैं किन्तु जब ये लोभ से ग्रस्त हो जाते हैं तो इनका अधः पतन हो जाया करता है। काम और क्रोध में प्रसक्त, शिष्ट पुरुषों के आचार से बहिष्कृत हुए—जिनका अन्तःकरण तो उस्तरे के समान कर्त्तन करने वाला होता है तथा वाणी बहुत मधुर हुआ करती है जिस तरह से कूप तृणों से समाच्छादित होते। ऐसे

लोग जो होते हैं वे बल से समन्वित होकर उन-उन बहुत से मार्गों को किया करते हैं।१०१—१०५।

सर्वमार्गं विलुम्पन्ति लोभाज्जातिपु निष्ठुराः ।
धर्मावतसकाः क्षुद्रा मुष्णन्ति स्वजिनो जगत् ।१०६।
एतेऽतिपापिनोज्ञेया नित्य लोभसमन्विताः ।
जनको युवनाश्वश्चवृषादर्भिः प्रसेनजित् १०७।
लोभक्षयाद्दिवप्राप्तास्तथैवान्येजनाधिपा ।
तस्मात्त्यजन्तियेलोभन्तेऽनिकामंतितसागरम् ।१०८।
संसाराख्यमताऽन्ये ये ग्राहग्रस्ता न सशयः ।
अथ ब्राह्मणभेदास्त्वमष्टौ विप्रावधारय ।१०६।
मात्रश्च ब्राह्मणश्चैव श्रोत्रियश्च ततः परम् ।
अनूचानस्तथा भ्रूण ऋषिकल्प. ऋषिमुनिः ।११०।
एते ह्यष्टौ समुद्दिष्टा ब्राह्मणा प्रथम श्रुतौ ।
तेषां परः परः श्रेष्ठो विद्यावृत्तिविशेषतः ।१११।
ब्राह्मणाना कुले जातो जातिमात्रोयदाभवेत् ।
अनुपेतः क्रियाहीनोमात्र इत्यभिधीयते ।११२।

लोभ से जातियों में महान् निष्ठुर सभी मार्गों को विलुप्त कर दिया करते हैं। ये धर्मावतंसक, क्षुद्र स्वजी लोग इस जगत् को ठगा करते हैं अर्थात् धोखे में डाल दिया करते हैं। इन लोगों को अत्यन्त अधिक पापी समझना चाहिए क्योंकि ये लोग नित्य ही लोभ से समन्वित रहा करते हैं। जनक, युवनाश्व, वृषादर्भि और प्रसेनजित् ने लोग लोभ के क्षय होने से ही दिव लोक को प्राप्त हो गए थे। इसी भाँति अन्य भी बहुत से जनाधियों ने एकमात्र लोभ का परित्याग करके स्वर्गलोक की प्राप्ति की है। इसलिए जो लोग इस लोभ का परित्याग कर दिया करते हैं वे इस संसार रूपी सागर को पार करके तैर जाया करते हैं। यह संसार नाम वाला सागर है। जो अन्य पुरुष होते हैं वे इसमें ग्राह से

ग्रस्त ही रहा करते हैं—इसमे लेशमात्र भी संशय नहीं है। इसके अनन्तर हे विप्रदेव ! आप अब आठ प्रकार के जो ब्राह्मणों के भेद होते हैं उनका अवधारण कर लो। मात्र, ब्राह्मण, श्रोत्रिय, इसके आगे अनुचान, भ्रूण, ऋषिकल्प, ऋषि और मुनि ये आठ ब्राह्मणों के भेद होते हैं जोकि ब्राह्मण समुद्दिष्ट किए गए हैं। श्रुति में प्रथम ही इनको बतलाया गया है। इन आठ प्रकार के भेदो मे जो आगे आगे बतलाया गया है वह ही अधिक श्रेष्ठ होता है और विद्या तथा चरित्र से युक्त होने वाला विशेष रूप से श्रेष्ठ माना गया है। जो ब्राह्मणों के कुल मे समुत्पन्न हुआ है और केवल जाति मे ही जन्म ग्रहण करने वाला होता है तथा सब प्रकार से अनुपेत एवं क्रिया से हीन हुआ करता है वह ब्राह्मण 'मात्र' इस नाम से कहा जाया करता है।१०६—११२।

एकोद्देश्यमतिक्रम्य वेदस्याऽऽचारवानृजुः ।
स ब्राह्मणइतिप्रोक्तोनिभृतः सत्यवाग्घृणी ।११३।
एकां शाखां सकल्पांचषड्भिरङ्गैरधीत्यच ।
षट्कर्मनिरतो विप्रः श्रोत्रियोनामधर्मवित् ।११४।
वेदवेदांगतत्त्वज्ञः शुद्धात्मा पापवर्जितः ।
श्रेष्ठः श्रोत्रियवान्प्राज्ञः सोऽनूचानइतिस्मृतः ।११५।
अनूचानगुणोपेतोयज्ञस्वाध्यायान्वितः ।
भ्रूण इत्युच्यते शिष्टैः शेषभोजीजितेन्द्रियः ।११६।
वैदिकंलौकिकं चैव सर्वज्ञानमवाप्य यः ।
आश्रमस्थो वशीनित्यमृषिकल्प इतिस्मृतः ।११७।
ऊर्ध्वरेता भवत्यग्र्यो नियताशी न संशयी ।
शापानुग्रहयोः शक्तः सत्यसंधो भवेदृषिः ।११८।
निवृत्तः सर्वतत्त्वज्ञः कामक्रोधविवर्जितः ।
ध्यानस्थो निष्क्रियो दान्तस्तुल्यमृत्काञ्चनो मुनिः ।११९।

एकोद्दिष्ट का अतिक्रमण करके जो वेद के आचार वाला होता है और परम सरल हुआ करता है वह 'ब्राह्मण' इस नाम से कहा गया है। जो परम निभृत, सत्य वचन बोलने वाला, घृणी तथा वेद की किसी एक शाखा को कल्प के सहित एवं छैं अङ्गों से संयुत अध्ययन करके षट् कर्मों में जो धर्म्म का वेत्ता सदा निरत रहा करता है हे विप्र! उसको 'श्रोत्रिय' कहा जाता है।११३।११४। जो वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों के तत्वों का पूर्ण ज्ञाता होता है, शुद्ध आत्मा वाला, पापों से रहित, परम श्रेष्ठ, श्रोत्रियवान्, प्राज्ञ होता है वह 'अनूचान' कहा गया है। जो अनूचान में रहने वाले समस्त गुणों से सुसम्पन्न तथा यज्ञ और स्वाध्याय में यन्त्रित रहने वाला होता है उसको 'भ्रूण' इस नाम से शिष्टों के द्वारा कहा जाया करता है। जो शेष भोजी इन्द्रियों को अपने वश में रखकर जीत लेने वाला, वैदिक और लौकिक सभी प्रकार के ज्ञान को प्राप्त कर लेने वाला, आश्रम में संस्थित, नित्य वशी अर्थात् सदा अपने आप पर पूर्ण नियन्त्रण रखने वाला होता है वह 'ऋषिकल्प' इस नाम से कहा गया है। जो ऊर्ध्वरेता, परम, नियत अशन करने वाला, संयम से रहित तथा शाप देने में एवं अनुग्रह करने में पूर्ण शक्ति रखने वाला, सत्य प्रतिज्ञा करने वाला होता है वह 'ऋषि' इस नाम से कहा जाया करता है। जो सभी प्रकार की प्रवृत्तियों से निवृत्त रहने वाला, सब प्रकार के तत्वों का पूर्ण ज्ञाता है, काम और क्रोध से रहित है, ध्यान में स्थित रहने वाला, निष्क्रिय, परम दमन शील तथा मिट्टी और सुवर्ण दोनों में समान भावना रखने वाला होता है वह 'मुनि'— इस नाम से कहा जाया करता है।११५—११६।

एवमन्वयविद्याभ्यां वृत्तेन च समुच्छ्रिताः ।
त्रिशुक्लानामविप्रेन्द्राः पूज्यन्ते सवनादिषु ।१२०।
इत्येवंविधविप्रत्वमुक्तं श्रृणु युगादयः ।
नवमी कार्तिके शुक्ला कृतादिः परिकीर्तिता ।१२१।

वैशाखस्य तृतीया या शुक्ला त्रेतादिरुच्यते ।
माघे पञ्चदशीनाम द्वापरादिः स्मृताबुधैः ।१२२।
त्रयोदशी नभस्येच कृष्णासाहिकलेः स्मृतः।।
युगादयः स्मृताह्येतादत्तस्याक्षयकारकाः ।१२३।
एताश्चतस्त्रस्तिथयो युगाद्या दत्तं हुतं चाऽक्षयमाशु विद्यात् ।
युगे युगे वर्षशतेन दान युगादिकाले दिवसेन तत्फलम् ।१२४।
युगाद्या कथिता ह्येता मन्वाद्याः श्रृणु साम्प्रतम् ।
अश्वयुक्छुक्लनवमी द्वादशी कार्तिके तथा ।१२५।
तृतीया चैत्रमासस्य तथाभाद्रपदस्य च ।
फाल्गुनस्यत्वमावास्यापौषस्यैकादशीतथा ।१२६।

इस रीति से वत्त और विद्या तथा चरित्र से जो समुज्ज्वल होते हैं वे ही त्रिशुक्ल अर्थात् तीनों प्रकार से शुक्ल पितृगण सबन प्रभृति में पूजा करने के योग्य हुआ करते हैं। इस तरह से विप्रों की किस्में मैंने आपको बतला दी हैं। अब युगादि के विषय में आप श्रवण करिये। कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की जो नवमी तिथि होती है जिसको अक्षय नवमी कहते हैं वही कृतयुग के आदि का दिन कीर्तित किया गया है अर्थात् नवमी से ही कृतयुग का आरम्भ होता है। वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की जो तृतीया तिथि है जिसको अक्षय तृतीया कहते हैं उसी दिन से त्रेता युग का आरम्भ होता है अर्थात् वही त्रेता का आदि दिन है। माघ मास की पञ्चदशी तिथि अर्थात् पूर्णिमा द्वापर युग का आदि दिवस है जिसको बुधों के द्वारा कहा गया है। नभस्य मास की कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी तिथि कलियुग का आदि दिवस है। इस तरह से युगों के आदि दिवस बतला दिए गये हैं जो कि दिये हुए दानों के अक्षय करने वाले होते हैं। ये चार तिथि। युगों के आदि दिन हैं। इन तिथियों में दिया हुआ दान, हवन शीघ्र ही अक्षयता को प्राप्त हो जाया करता है—ऐसा जान लो। युग-युग में सौ वर्ष तक जो दान का फल

होता है वह युगों के आदि दिवस में दिए हुए दान का फल हुआ करता है। ये युगों के आदि दिवस तो कह दिए गये हैं। अब मनुओं के भी आदि दिवस सुन लीजिए। आश्विन मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तथा कार्त्तिक मास की द्वादशी, चैत्र मास की तृतीया तथा भाद्रपद मास की तृतीया, फाल्गुन मास की अमावस्या और पौष मास की एकादशी। ।१२०—२२६।

आषाढस्यापि दशमी माघमासस्य सप्तमी।
श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढी च पूर्णिमा ।१२७।
कार्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्येष्ठे पञ्चदशी सिता।
मन्वन्तरादयश्चैता दत्तस्याक्षयकारकाः ।१२८।
यस्यां तिथौ रथं पूर्वं प्राप देवो दिवाकरः।
सा तिथिः कथिता विप्रै र्माघे या रथसप्तमी ।१२९।
तस्यां दत्तं हुतं चेष्टं सर्वमेवाक्षयं मतम्।
सर्वदारिद्र्यशमनं भास्करप्रीतये मतम् ।१३०।
नित्यो द्वेजकमाहुर्यं बुधास्तं शृणुत त्वतः।
यश्चयाचनिको नित्यं न स स्वर्गस्य भाजनम् ।१३१।
उद्वेजयति भूतानि यथा चौरास्तथैव सः।
नरकं याति पापात्मा नित्योद्वेगकरस्त्वसौ ।१३२।
दुहोपपातमं न केन कर्मणा यत्र च प्रयातव्यमितो मयेति।
विचार्य चैवं प्रतिकारकारी बुधै. स चोक्तो द्विज ! दक्षदक्ष.
।१३३।

आषाढ मास की दशमी, माघ मास की सप्तमी, श्रावण मास की अष्टमी, आषाढी पूर्णिमा, कार्त्तिकी, फाल्गुनी, चैत्री और ज्येष्ठ मास की सिता पञ्चदशी ये सब तिथियाँ मन्वन्तरों की आदि तिथियाँ हैं। इन तिथियों में दिया हुआ दान अक्षय करने वाला होता है। जिस तिथि में सबसे पूर्व दिवाकर ने रथ की प्राप्ति की थी वह विप्रों के द्वारा माघ

मास में जो रथ सप्तमी होती हैं वही कही गयी है । उस तिथि का भी बड़ा अधिक महत्व होता है । उस रथ सप्तमी के दिन में दिया हुआ दान, हवन तथा अन्य भी इष्ट आदि की उपासना सभी कुछ अक्षय हो जाया करता है । यह समस्त प्रकार की दरिद्रता के शमन करने वाला होता है क्योंकि इसमें कुछ भी पुण्य कर्म करने भगवान भास्कर देव परम प्रसन्न हुआ करते हैं । जिसको बुध पुरुष नित्य ही उद्वेग उत्पन्न करने वाला कहा करते हैं उसके विषय में भी अब आप तात्विक रूप से श्रवण करिए । जो नित्य ही याचना करने वाला होता है वह कभी भी स्वर्ग प्राप्त करने का अधिकारी नहीं हुआ करता है । यह समस्त भूतों को उद्विग्न किया करता है जिस तरह से चोर उद्वेजक होते हैं वैसे ही यह भी हुआ करता है । ऐसा व्यक्ति अत्यन्त पापात्मा होता है और नरक में गमन किया करता है क्योंकि यह नित्य ही उद्वेग के करने वाला होता है । यहाँ संसार में मेरी किस कर्म के द्वारा उत्पत्ति होगी और मुझे यहाँ से कहाँ पर प्रयाण करना चाहिये इस तरह से जो विचार करके प्रतिकार करने वाला पुरुष होता है बुधों के द्वारा वही पुरुष हे द्विज ! दक्षों में भी परम दक्ष कहा गया है ।१२७—१३३।

मासैरष्टभिरह्ना च पूर्वेण वयसाऽऽयुषा ।
तत्कर्म पुरुषः कुर्याद्येनान्तेसुखमेधते ।१३४।
अग्निधूमश्च मार्गौ द्वावाहुर्वेदान्तवादिनः ।
अर्चिषा याति मोक्षञ्च धूमेनाऽऽवर्ततेपुनः ।१३५।
यज्ञैरासाद्यते धूमो नैष्कर्म्येणार्चिराप्यते ।
एतयोरपरो मार्गः पाखण्ड इति कीर्त्यते ।१३६।
यो देवान्मन्यतेनैवधर्मांश्चमनुसूचितान् ।
नैतौ सयातिपन्थानौतस्वार्थोऽय निरूपितः ।१३७।
इतितेकीर्तिताः प्रश्नाः दावस्याब्राह्मणसत्तम ।
साधुवाऽसाधुवाब्रूहिस्यापयाऽऽत्मनमेवच ।१३८।

पुरुष को आठ मास पूर्व, दिन, वय और अपनी आयु के द्वारा वही कर्म करना चाहिए जिससे अन्त में सुख का लाभ होता है ।१३४। वेदान्त वादी विद्वान अर्चि और धूम ये दो मार्ग बतलाया करते हैं । अर्चि नामक मार्ग के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति किया करता है और धूम मार्ग से पुनः आवर्त्तन किया करता है । यज्ञों के द्वारा धूम प्राप्त किया जाता है और निष्कर्म्मता अर्चि का सम्पादन किया जाता है । इन दोनों मार्गों के अतिरिक्त दूसरा मार्ग पाखण्ड कहा जाता है । जो पुरुष देवों को नहीं मानता है और अनुसूचित धर्म्मों को भी नहीं मानता है । वह इन दोनों मार्गों में नहीं जाया करता है—यही इसका तात्पर्य निरूपित कर दिया गया है । इस रीति से ये सब आपके किये गए प्रश्नों का उत्तर दे दिया गया है । यह उत्तर साधु असाधु है—यह हमको बतलावें और अपने आपका भी परिचय प्रदान करो ।१३५-१३८।

१६—शिवपूजनमाहात्म्यवर्णन

अथ ते ददृशुः पार्श्वे संयमस्थं महामुनिम् ।
क्रियायोगसमायुक्तं तपोमूर्त्तिधरं यथा ।१।
जटाक्षिप्तवणस्नानकपिलाः शिरसा तदा ।
धारयन्तं लोमशाख्यमाज्यसिक्तमिवाऽनलम् ।२।
सव्यहस्ते तृणौघं च च्छायार्थं विप्रसत्तमम् ।
दक्षिणे चाक्षमाला च बिभ्रतं मैत्रमार्गगम् ।३।
अहिंसयन्तु च तत्राद्यैः प्राणिनो भूमिचारिणः ।
यः सिद्धि मेति ध्यानसमैर्योमुनिरुच्यते ।४।
बकभूपद्विजोलूकगृध्रकूर्मा विलोक्य च ।
नेमुः कलापग्रामे तं चिरन्तनतपोनिधिम् ।५।
स्वागतासनसत्कारेणामुनातेऽतिसत्कृताः ।
यथोचितप्रतीतास्तमाहुः कार्यं हृदि स्थितम् ।६।

देवर्षि श्री नारद जी ने कहा—हे पार्थ ! इसके अनन्तर उन्होंने सप्तम में स्थित और क्रिया योग से सुमन्वित तपोमूर्ति को धारण करने वाले महा मुनि का दर्शन किया था। उस समय में लोमश नाम वाले वे मुनिवर तीनों कालों में सन्ध्या के निमित्त किये जाने वाले स्नान से कपिल वर्ण वाली जटाओं को शिर में धारण करने वाले थे जो घृत से सिक्त अग्नि के ही तुल्य दिखलाई दे रहे थे। सव्य हस्त में छाया के लिए तृण का समूह था, दक्षिण कर में अक्षों की माला धारण किए हुये थे तथा मंत्र मार्ग में गमन करने वाले विप्र श्रेष्ठ को देखा था।१।२।३। दुष्ट उक्तियों के द्वारा भूमि पर सञ्चरण करने वाले प्राणियों को हिंसित न करते हुए जो जप के द्वारा सिद्धि की प्राप्ति किया करता है वह मंत्र मुनि कहलाता है। बक, भूप, द्विज, उलूक, गृध्र और कूर्म सब उन चिरन्तन तपोनिधि को देखकर कलाप ग्राम में प्रणाम किया करते थे। स्वागत, आसन और सत्कार के द्वारा इन मुनि से वे सब अत्यधिक सत्कृत हुआ करते थे। यथोचित रूप से समाश्वस्त होते हुए वे सब अपने हृदय में स्थित कार्य उस महा मुनीन्द्र से कहा करते थे।४।५।६।

इन्द्रद्युम्नोऽयमवनीपतिः सप्तिजनाग्रणी ।
कीर्तिलोपाभिरस्तोऽयं वेधसानाकपृष्ठतः ।७।
मार्कण्डेयादिभिः प्राप्यकीर्त्युद्धारं न सत्तम ।
नायंकामयतेस्वर्गंपुन पातादिभीपणम् ।८।
भवताऽनुगृहीतोऽसमिहेच्छति महोदयम् ।
प्रणीयत्तदयं भूपः शिष्यस्ते भगवन्मया ।९।
त्वत्सकाशमिहाऽऽनीतो ब्रूहि साध्वस्य वाञ्छितम्।
परोपकारणं नाम साधूनां व्रतमाहितम् ।
विशेषतः प्रणीयानां शिष्यवृत्तिमुपेयुषाम् ।१०।

अप्रणोद्येषु पापेषु साधु प्रोक्तमसंशयम् ।
विद्वेषं मरणं चाऽपि कुरुतेऽन्यतरस्य च ॥११॥
अप्रमत्तः प्रणोद्येषु मुनिरेष प्रयच्छति ।
तदेवेति भवानेवं धर्मं, वेत्ति कुतो वयम् ॥१२॥

कूर्म्म ने कहा—यह अवनी का स्वामी इन्द्रद्युम्न सभी जनों में प्रधानी है किन्तु कीर्ति के लोप हो जाने से वेधा के द्वारा यह नाक (स्वर्ग) के पृष्ठ भाग से निरस्त कर दिया गया है। हे सत्तम! मार्कण्डेय आदि महर्षियों के द्वारा अपनी कीर्ति का उद्धार प्राप्त करके यह फिर पुनः पात आदि के होने के कारण अतीव भीषण स्वर्ग के पाने की कामना ही नहीं करता है। आपके द्वारा यह अनुगृहीत होना चाहिये कि यह यहाँ पर इस महान् उदय की इच्छा कर लेवे। इस राजा को ऐसी प्रेरणा देनी ही चाहिए। यह राजा आपका ही शिष्य है और मेरे द्वारा आपके समीप में लाया गया है। आप कृपा करके इसको साधु वाञ्छित बोलिए। दूसरों का उपकार कर देना ही साधु पुरुषों का व्रत हुआ करता है और विशेष रूप से शिष्य वृत्ति को प्राप्त हुए प्रणोद्यों का उपकार करना उनका आह्निक व्रत है। जो प्रेरणा करने के योग्य नहीं हैं ऐसे पापियों के विषय में बिना संशय के साधु कहा है। अन्य नर का विद्वेष और मरण भी किया करते हैं। जो प्रणोद्य हैं उनके विषय में अप्रमत्त यह मुनि वह ही प्रदान किया करते हैं—आप ही इस प्रकार के पुण्य धर्म्म को जानते हैं हम लोग इस विषय में अधिक क्या जानकारी रख सकते हैं ॥७—१२॥

कूर्म ! युक्तमिदं सर्वं त्वयाऽभिहितमद्य नः ।
धर्मशास्त्रोपनतंतत्स्मारिताः स्मपुरातनम् ॥१३॥
ब्रूहि राजन्मुविश्रब्धं सन्देहं हृदयस्थितम् ।
कस्ते किमब्रवीच्छेषं वक्ष्याम्यहंनसंशयः ॥१४॥
भगवन्प्रथमः प्रश्नस्तावदेव ममोच्यताम् ।
ग्रीष्मकालेऽपि मध्यस्येरवौकिंनतवाश्रमः ॥१५॥

कुटीमात्रोऽसि यच्छाया तृणैः शिरसि पाणिगैः ।१६।
मर्तव्यमस्त्यवश्यं च काय एष पतिष्यति ।
कस्यार्थे क्रियते गेहमनित्यं भवमध्यगैः ।१७।
यस्य मृत्युर्भवेन्मित्रं पीतं वाऽमृतमुत्तमम् ।
तस्यैतदुचितं वक्तुमिदं मे श्वो भविष्यति ।१८।
इदं युगसहस्रेषु भविष्यमभवद्दिनम् ।
तदप्ययं स्वमापन्नं का कथा मरणावधेः ।१९।
कारणानुगतं कार्यमिदं शुक्रादभूद्वपुः ।
कथं विशुद्धिमायाति क्षालिताङ्गारवद्ध्रुवम् ।२०।
तदस्यार्थेऽपि कृते पापं शत्रुषड्वर्गनिर्जिताः ।
कथङ्कारं न लज्जन्ते कुर्वाणा नृपसत्तम ! ।२१।

महा महर्षि लोमश जी ने कहा—हे नृप ! आज आपने जो यह हमसे कहा है वह बहुत युक्त एवं समुचित है । आपने यह पुरातन धर्म शास्त्र के उत्तम भाव का हमको स्मरण दिला दिया गया है । हे राजन् ! अब अपने हृदय में स्थित सन्देह को पूर्ण विश्वस्त रूप से बोलिये । आपको किसने भेजा दिया है ? शेष में आपको बतला दूँगा—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१३ १४। राजा इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे भगवान ! मेरा सबसे प्रथम प्रश्न तो यही है उसे आप बतलाइये कि इस महान घोर ग्रीष्म काल में भी सब विप्र रवि ताप में स्थित हैं इस आपके आश्रम में वह क्यों नहीं है ? आपके मस्तक हाथ में रहने वाले तृणों से जो शिर पर हैं आपकी इस कुटी मात्र पर यह छाया कैसे है ? महर्षि लोमश जी ने कहा—मरना तो अवश्य ही है और यह काया अवश्य ही गिर जायेगी । इस अनित्य संसार के मध्य में गमन करने वालों के द्वारा किसके लिए घर किया जावे ? जिसका मृत्यु मित्र है चाहे उसने उत्तम अमृत ही क्यों न पीया हो उसको यही कहना उचित है कि यह मुझे कल ही हो जायगी । सहस्रों युगों में होने वाला यह

दिन हुआ है वह भी अदर्शन को प्राप्त हो गया है। इस मरण की अवधि के विषय में तो कहना ही क्या है।१५-१६। प्रत्येक कार्य कारण से ही अनुगत हुआ करता है। यह शरीर शुक्र (वीर्य) से समुत्पन्न हुआ है। आप ही बतलाइए, यह क्षालित अङ्गार की भाँति किस प्रकार से विशुद्धि को प्राप्त हो सकता है। सो ऐसे इस अनित्य एवं अविशुद्ध शरीर के ही लिए छः शत्रुओं के द्वारा निर्जित हुए मनुष्य पाप किया करते हैं। हे नृपश्रेष्ठ ! इस तरह पाप कर्मों को करते हुए भी वे मनुष्य क्यों नहीं लज्जित हुआ करते हैं।२०—२१।

तद्ब्रह्मण इहोत्पन्नः सिकताद्वयसम्भवः ।
निगमोक्तं पठञ्छृण्वन्निदं जीविष्यतेकथम् ।२२।
तथापि वैष्णवी माया मोहयत्यविवेकिनम् ।
हृदयस्थं वेदं न जानन्तिह्यग्निमृत्यु शतायुषः ।२३।
दन्ताश्चलाश्चला लक्ष्मीर्यौवनं जीवितं नृप ।
चलाचलमतो वेद दानमेवं गृहं नृणाम् ।२४।
इति विज्ञाय संसारमसारं च चलाचलम् ।
कस्यार्थे क्रियते राजन्कुटजादिपरिग्रहः ।२५।
चिरायुर्भगवानेव श्रूयते भुवनत्रये ।
तदर्थमहमायातस्तत्त्विमेव वचस्तव ।२६।
प्रतिकल्पं मच्छरीरादेकरोमपरिक्षयः ।
जायते सर्वनाशे च मम भावि प्रमापणम् ।२७।
पश्य जानुप्रदेशं मे द्व्यङ्गुलं रोमवर्जितम् ।
जातं वपुस्तद्विभेमिमतं व्येसति किं गृहैः ।२८।

यहाँ पर उस ब्रह्मा से सिकता द्वय से सम्भव उत्पन्न हुआ है—निगम के द्वारा कथित इसको पढते एवं श्रवण करते हुए कैसे जीवित रहेगा। तो भी यह वैष्णवी माया ऐसी अद्भुत है कि विवेकहीन पुरुष को मोहित कर दिया करती है। मनुष्य सौ वर्ष की आयु वाले भी

अपने हृदय में स्थित भी मृत्यु का ज्ञान नहीं रखा करते हैं। ये शरीर में रहने वाले दीप चलायमान अर्थात् अस्थिर होते हैं—यह लक्ष्मी भी चलायमान अर्थात् कभी भी एक के पास स्थिर रहने वाली नहीं है—यह यौवन और यह जीवन भी चल है अर्थात् स्थिरता से रहित ही होते हैं हे नृप! यह संसार में रहने वाले सभी कुछ चलाचल है अतएव मनुष्यों का दान ही गृह होता है। यही ज्ञान प्राप्त करके इस संसार को चलाचल एवं असार समझकर हे राजन्! कुटुम्ब आदि का परिग्रह किसके लिए किया जावे।२४।२५। इन्द्रद्युम्न ने कहा—इस भुवन त्रय में एक आप ही चिरायु हैं—ऐसा ही सुना जाता है। इसलिए मैं यहाँ पर समागत हुआ हूँ सो आपका यह वचन क्यों है? ।२६। महर्षि लोमश जी ने कहा—एक-एक कल्प में इस मेरे शरीर में एक रोम का परिक्षय होता है। सर्वनाश होने पर मेरा यह मरण होने वाला अवश्य होता है। आप मेरे इन जानुओं के भाग को देखो—यह दो अङ्गुल तक रोमों से रहित है। मेरा यह शरीर जब ऐसा हो गया है तो मैं डरता हूँ कि मरना ही है तो फिर गृहों से अपना क्या प्रयोजन है।२७-२८।

इत्थं निशम्य तद्वाक्यमप्रहृष्यार्जितविस्मितः।
भूपालस्तस्य पप्रच्छ कारणं तादृशायुषः ।२९।
पृच्छामि त्वामहं ब्रह्मन्दायुरिदमीदृशम् ।
तव कीदृक्प्रभावोऽभूद्दानस्य तपसोऽथवा ।३०।
शृणु नृप! प्रवक्ष्यामि पूर्वजन्मसमुद्भवाम् ।
शिवधर्मयुतां पुण्यां कथां पापप्रणाशिनीम् ।३१।
अहमासं पुरा शूद्रो दरिद्रोऽतीव भूतले ।
भ्रमामि वसुधापृष्ठे क्षुधयापीडितो भृशम् ।३२।
दृष्टो मया महल्लिङ्गं जालमध्यगतं तदा ।
मध्याह्नेऽथ जलाधारो दृष्टं नातिदूरतः ।३३।

ततः प्रविश्य तद्वारि पीत्वा स्नात्वा च शाम्भवम् :
तल्लिङ्गं स्नापितं पूजा विहिता कमलैः शुभैः ।३४।
अथ क्षुत्क्षामकण्ठोऽहं श्रीकण्ठं तं नमस्य च ।
पुनः प्रचलितो मार्गे प्रमोतोनृपसत्तम।३५।

देवर्षि नारद जी ने कहा—इस रीति से लोमश महर्षि के उस वचन का श्रवण करके वह राजा हँसकर अत्यन्त ही विस्मय से युक्त हो गया था। फिर उस राजा ने उनसे उस तरह की आयु का कारण पूछा था। इन्द्रद्युम्न ने कहा—हे महान्! मैं आपसे यह पूछता हू कि आपकी यह ऐसी आयु कैसे है? क्या आपके परम विशाल दान अथवा तप का यह महान प्रभाव है? महर्षि लोमश जी ने कहा—हे राजन्! अब मैं आप से पापों के प्रणाश करने वाली, शिव धर्म से युक्त, पूर्व जन्म में होने वाली परम पुण्य कथा का वर्णन करूँगा उसे आप अब श्रवण कीजिये। मैं पहिले शूद्र था और इस भूतल में अत्यन्त ही दरिद्र था। मैं इस भूमि के पृष्ठ पर भोजन के लिए भी अत्यन्त पीड़ित होकर भ्रमण किया करता है। इसके उपरान्त उस समय में मैंने जालि के मध्य में स्थित एक महान शिव लिङ्ग का दर्शन प्राप्त किया था। मध्याह्न के समय में इसका जलाधार समीप में ही मैंने देखा था। इसके पश्चात् उसके द्वार में मैंने प्रवेश किया था। वहाँ पर मैंने उस शम्भु भगवान के परम पवित्र जल का पान किया था तथा स्नान किया था। फिर उस शिव लिंग का भी स्नान कराया और परम शुभ कमल के पुष्पों से शिव लिंग की अर्चना की थी। हे नृपश्रेष्ठ! इसके अनन्तर क्षुधा से क्षाम कण्ठ वाला मैं भगवान श्री कण्ठ को नमस्कार कर फिर प्रमोद होता हुआ मार्ग में चल दिया था।२६—३५।

ततोऽहं ब्राह्मणगृहे जातो जातिस्मरः सुतः ।
स्नापनाच्छिवलिङ्गस्यसकृत्कमलपूजनात् ।३६।

स्मरन्विलसितं मिथ्या सत्याभासमिदं जगत् ।
अविद्यामयमित्येवं ज्ञात्वा मूकत्वमास्थितः ।३७।
तेन विप्रेण वार्धक्ये समाराध्य महेश्वरम् ।
प्राप्तोऽहमिति मे नामईशानइतिकल्पितम् ।३८।
ततः स विप्रो वात्सल्यादगदान्सुबहून्मम ।
चकार व्यपनेध्यापि मूकत्वमितिनिश्चयः ।३९।
मन्त्रवादान्बहून्वैद्यानुपायानपरानपि ।
पित्रोस्तथा महामायासम्बद्धमनसोस्तथा ।४०।
निरीक्ष्य मूढता हास्यमासीन्मनसिमेतदा ।
तथा यौवनमासाद्यनिशिहित्वानिजंगृहम् ।४१।
सम्पूज्य कमलैः शम्भुं ततः शयनमभ्यगाम् ।
ततः प्रभाते पितरि मूढइत्यहमुज्झितः ।४२।

इसके पश्चात् भगवान शिव के स्नापन कराने से तथा केवल एक ही बार कमल को पुष्पो के द्वारा पूजन करने से मैं एक ब्राह्मण के घर मे जातिस्मर का पुत्र होकर समुत्पन्न हुआ था । मैंने इस सांसारिक विलास को पूर्णतया मिथ्या स्मरण करते हुए तथा इस असत्य जगत् को सत्य का आभास मात्र जानकर और यह सब अविद्यामय ही है—ऐसा ज्ञान प्राप्त करके मूकत्व मे समास्थित हो गया था अर्थात् मैं किसी से भी न बोलकर एकदम गूंगा बन गया था। उस ब्राह्मण ने वृद्धावस्था मे भगवान महेश्वर की समाराधना करके ही मुझे प्राप्त किया था । इस-लिए मेरा नाम "ईशान"—यह कल्पित किया गया था । इसके अनन्तर उस विप्र ने वात्सल्य भाव होने के कारण से मेरी बहुत सी औषधियाँ की थीं और उनका ऐसा निश्चय हो गया था कि इस बालक की इस मूकता को मैं दूर कर दूँगा ।३६-३९। महामाया से सम्बद्ध मन वाले उन माता-पिता के मन्त्र वादों, बहुत से वैद्यों और दूसरे उपायों को देख-कर जोकि एक महा मूढ़ता से परिपूर्ण थे उस समय में मेरे मन में

हास्य हो रहा था इसके उपरान्त मैं अपनी यौवन की अवस्था पर पहुँच गया था और उस समय मैं रात्रि में अपने गृह का त्याग करके बाहिर चला गया तथा कमल पुष्पों से शम्भुदेव का पूजन करके पुनः शयन पर प्राप्त हो गया था। इसके उपरान्त पिता के प्रतीत होने पर मुझे 'मूढ' यह कहकर त्याग दिया था ।४०—४२।

सम्बन्धिभिः प्रतीतोऽस्मि फलाहारमवस्थितः ।
प्रतीतः पूजयामीशमब्जैर्बहुविधैस्तथा ॥४३॥
अथ वर्षशतस्यान्ते वरदः शशिशेखरः ।
प्रत्यक्षो याचितो देहि जरामरणसंक्षयम् ॥४४॥
अजरामरता नास्ति नामरूपभृतो यतः ।
ममाऽपि देहपातः स्यादवधिं कुरु जीविते ॥४५॥
इति शम्भोर्वचः श्रुत्वा मया वृतमिदं तदा ।
कल्पान्ते रोमपातोऽस्तु मरणं सर्वसंक्षये ॥४६॥
ततस्तव गणो भूयासमिति मेऽभीप्सितो वरः ।
तथेत्युक्त्वा स भगवान्हरश्चादर्शनं गतः ॥४७॥
अहं तपसि निष्ठश्च ततः प्रभृति चाऽभवम् ।
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते शिवपूजनात् ॥४८॥
पद्माब्जैरितरैश्चापि कमलैर्नाऽर्चयस्व च ।
एवं कुरु महाराज त्वमप्याप्स्यसि वाञ्छितम् ॥४९॥

समस्त सम्बन्धियों के द्वारा मेरी मूढ़ता की प्रतीति हो गई थी और मेरा परित्याग भी कर दिया गया था। इसके पश्चात् मैं फलों के आहार पर ही अवस्थित हो गया था। मैं पूर्णतया प्रतीत होकर बहुत तरह के कमलों से ईश की पूजा किया करता था। इसके अनन्तर जब सौ वर्ष पूरे हो गये तो भगवान शशि शेखर वरदान देने वाले मेरे सामने प्रत्यक्ष हो गये थे। मैंने भी उनसे जरा-मरण का भली-भाँति क्षय प्रदान करो— ऐसी ही याचना की थी। भगवान ईश्वर ने कहा —

नाम और रूप को धारण करने वाले को अजरता और अमरता नहीं हुआ करती है क्योंकि मेरे देह का पात होगा इसलिए जीवित मे कोई अवधि करो। इस प्रकार के इस भगवान शम्भु के वचन का श्रवण करके उस समय में मैंने यही वरदान मांगा था कि कल्प के अन्त मे मेरे एक रोम का पात होवे और जब सब का सक्षय हो जावे तो मरण होवे। इसके अनन्तर मैं फिर आपका गण हो जाऊँ—यही मेरा अभीप्सित वरदान है। तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर वह भगवान हर अदर्शन को प्राप्त हो गये थे।४३-४७। तभी से लेकर मैं तपश्चर्या मे निष्ठा वाला हो गया था। भगवान शिव के पूजन से ब्रह्म हत्या आदि महापापों से मनुष्य छुटकारा पा जाया करता है। कल्पाकर्जो के द्वारा अथवा इतर कमलो के द्वारा हे महाराज ! इस प्रकार से आप भी शिव का पूजन करें। आप मनसा अभिवाञ्छित अवश्य ही प्राप्त कर लेंगे—इसमे कुछ भी संशय नहीं है।४८—४९।

हरभक्तस्य लोकस्य त्रिलोक्यां नास्ति दुर्लभम् ।
बहिः प्रवृत्ति स गृह्य ज्ञानकर्मेन्द्रियाणि च ।५०।
लयः सदाशिवे नित्यमन्तर्योगोऽयमुच्यते ।
दुष्करत्वाद्बहिर्योगः शिव एव स्वयंजगौ ।५१।
पञ्चभिश्चाऽध्वनं भूतैर्विशिष्टफलदं ध्रुवम् ।
क्लेशकर्मविपाकाद्यै राशयैश्चाऽप्यसंयुतम् ।५२।
ईशानमाराध्य जपन्प्रणवं मुक्तिमाप्नुयात् ।
सर्वपापक्षये जाते शिवे भवति भावना ।५३।
पापोपहतबुद्धीनां शिवे वार्ताऽपि दुर्लभा ।
दुर्लभं भारते जन्म दुर्लभं शिवपूजनम् ।५४।
दुर्लभं जाह्नवीस्नानं शिवे भक्तिः सुदुर्लभा ।
दुर्लभं ब्राह्मणे दानं दुर्लभं वह्निपूजनम् ।५५।
अल्पपुण्यैश्च दुष्प्रापं पुरुषोत्तमपूजनम् ।५६।

भगवान् हर के भक्त लोक के लिए इस त्रिलोकी में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। वह बहिः प्रवृत्ति का तथा ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों का प्रहरण करके नित्य ही भगवान सदाशिव में लय को प्राप्त हो जाता यह अन्तर्योग कहा जाता है। यह भगवान शिव ने ही स्वयं गान किया था क्योंकि बहिर्योग अत्यन्त दुष्कर होता है। पाँचों भूतों के द्वारा जो अर्चन किया जाता है वह निश्चय ही विशिष्ट फल प्रदान करने वाला होता है। क्लेश कर्म विपाकादि आशयों से असंयुत ईशान का समाराधन करके तथा प्रणव का जाप करता हुआ मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति कर लिया करता है। समस्त प्रकार के पापों के क्षय हो जाने पर भगवान शिव में भावना उत्पन्न करती है। जिनकी बुद्धि पापों के कारण उपहत होती है उन मनुष्यों को तो शिव के विषय में वार्ता करना भी परम दुर्लभ होती है। इस महा पुण्य मय भारत देश की भूमि में जन्म ग्रहण करना ही अत्यन्त दुर्लभ होता है उसमें भी भगवान शिव का पूजन करने का अवसर प्राप्त करना परम दुर्लभ होता है। अघमयी पापों के प्रणाश करने वाली जाह्नवी में स्नान दुर्लभ है और भगवान शिव में भक्ति करना भी महान दुर्लभ हुआ करता है ब्राह्मण को दान देना तथा वह्निदेव का पूजन करना इस संसार में दुर्लभ है। अल्प पुण्यों के द्वारा पुरुषोत्तम प्रभु का अर्चन करना महान दुष्कर होता है। ।५०—५६।

लक्षेण धनुषां योगस्तद्दर्शेन हुताशनः।
पात्रं शतसहस्रेण रेवा रुद्रश्च पष्टिभिः ।५७।
इतीदमुक्तमखिलं मया तव महीपते ! ।
यथायुरभवद्दीर्घं समाराध्य महेश्वरम् ।५८।
न दुर्लभं न दुष्प्राप्यं न चाऽसाध्यंमाहात्मनाम् ।
शिवभक्तिकृतांपुंसां त्रिलोक्यामितिनिश्चितम् ।५९।

नन्दीश्वरस्य तेनैव वपुषा शिवपूजनात् ।
सिद्धिमालक्ष्य को राजञ्छङ्करं न नमस्यति ।६०।
श्वेतस्य च महीपस्य श्रीकण्ठं च नमस्यतः ।
कालोऽपि प्रलयं यातः कस्तमीशं न पूजयेत् ।६१।
यदिच्छया विश्वमिदं जायते व्यवतिष्ठते ।
तथा गच्छति चान्ते कस्तं न शरणं व्रजेत् ।६२।
एतद्रहस्यमिदमेव नृणां प्रधानं
यत्कर्तव्यं शिवपूजनमेव भूप ! ।६३।
यस्यान्तरायपदवीमनुयान्ति लोकाः
सद्यो नरः शिवनतः शिवमेति सत्यम् ।६४।

जब जहां मनुष्यों से योग होता है उसके अर्ध भाग से ईशान तथा ... पांच और आठ से रेखा और रुद्र हुआ करता है। हे महीपते! मैंने आपके आगे यह सब कहकर बतला दिया है। जिस प्रकार से आयु दीर्घ हुई है वह महेश्वर भगवान के समाराधन के करने से ही हो गई है।५७।५८। भगवान शिव की भक्ति करने वाले महात्मा पुरुषों के लिये इस संसार में तथा त्रिलोकी में भी कुछ भी दुर्लभ दुष्प्राप्य और असाध्य नहीं है यह परम निश्चित ही है।५८। नन्दीश्वर की उसी शरीर से भगवान शिव के पूजन करने से 'सिद्धि' को देखकर हे राजन्! ऐसा कौन सा पुरुष है जो शङ्कर को नमन नहीं करेगा? भगवान श्री कण्ठ को नमस्कार करने वाले श्वेत महीप का काल भी प्रलय को प्राप्त हो गया था तब उस ईश का कौन पूजन नहीं करेगा? जिसकी इच्छा से ही यह सम्पूर्ण विश्व समुत्पन्न होता है स्थिर रूप से अवस्थित रहा करता है तथा अन्तलय को प्राप्त हुआ करता है ऐसे उस ईश्वर की शरणागति में कौन जाकर प्राप्त नहीं होगा? हे भूप! यह एक परम रहस्य है और मनुष्यों के लिए परम प्रधान है। यहाँ पर भगवान शिव का पूजन ही करना चाहिये जिनकी अन्तराय पदवी को लोग

प्राप्त हुआ करते हैं। मनुष्य शिव को नमन करने वाला तुरन्त ही भगवान शिव की सन्निधि को प्राप्त कर लिया करता है—यह सत्य है ।६०-६४।

।। विविध शिव क्षेत्रों का शक्ति सहित वर्णन ।।

स्थानं त्वया मुने पृष्टमस्ति माहेश्वराग्रणि ।
चराचराणां सर्वेषां भूतानामपिशर्मणे ।१।
प्रकल्पितं हि देवेन तत्तत्कर्मानुगुण्यतः ।
शरीरभाजां जननं तासुतास्वपि योनिषु ।२।
त्वया शुश्रूषित तेषां हिताय महते ह्यलम् ।
अन्यथा संसृतेर्हानिः कल्पकोटिशतैर्नहि ।३।
स्वल्पैर्हि कर्मभिर्ज्ञानैरपि प्राप्ता पुनः पुनः ।
घटीयन्त्रनयाज्जन्ममरणे नैव शाम्यतः ।४।
कथं तु विरतो देही गर्भमोकसमागमात् ।
विश्रान्तये प्रकल्पेत विशुद्धज्ञानतो विना ।५।
प्रदेशाः कथिताः पूर्वं प्रसङ्गवशतो मया ।
ऋषिभेदादिक तेषु निवासः कृत्तिवाससः ।६।
केचित्तीरेषु गङ्गायाः केचित्सारस्वतेतटे ।
कालिन्दीतीरयोरन्येकतिचिच्छोणरोधसि ।७।

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे मुने! आप तो महेश्वर भगवान के भक्तों में अग्रणी हैं। इन समस्त चराचर भूतों के कल्याण के लिए जो आपने स्थान पूछा है। देव ने उन सब कर्मों के आनुगुण्य से शरीर धारियों का जन्म उन-उन योनियों में प्रकल्पित किया है।१।२। आपने उनके महान हित के लिए पर्याप्त शुश्रूषा की है अन्यथा इस संसृति का हानि हो जाती जो सैंकड़ों करोड़ कल्पों से भी पूर्ण नहीं होती।३। स्वल्प कर्मों से तथा स्वल्प ज्ञानों से भी पुनः-पुन प्राप्त ये घटी यन्त्र के न्याय से ये जन्म तथा मरण कभी भी शम को प्राप्त नहीं होते हैं।४।

गर्भ के मोक्ष के समागत मे विरत हुआ यह देहधारी विशुद्ध ज्ञान के बिना कैसे विश्रान्ति के लिए प्रकल्पित हो सकता है ? पहिले मैंने प्रसङ्ग वश होने के कारण से प्रदेश कथित कर दिए गये हैं। ऋषि भेदादिक और उनमे कृत्तिवास (शिव) का निवास होता है। उनमे कुछ तो भागीरथी गङ्गा के तीरों मे निवास किया करते हैं—कुछ सरस्वती नदी के तटों पर रहते हैं—अन्य कालिन्दी (यमुना) के तीरों पर और कुछ शोण के तट पर निवास किया करते हैं। ६—७।

अपरे नर्मदातीरे परे गोदावरीतटे ।
केचिद्गोमतीतीरेऽन्ये हैमवतीतटे ।८।
समुद्रपार्श्वेष्वितरे द्वीपेष्वन्ये सरस्वताम् ।
गुहासु केचित्सिन्धूनां सम्भेदेष्वपि केचन ।९।
कृष्णावेणीतटे केचित्तुङ्गभद्रान्तिके परे ।
उत्तरवेण्यां केचिदन्ये परे चापगान्तिके ।१०।
कावेरीतीर इतरे केचिद्वेगवतीतटे ।
अन्ये तु ताम्रपर्ण्याश्च केचिन्मुरलातटे ।११।
केचिदमरावतीतीरे इतरे मातुकाङ्क्षिके ।१२।
कन्यातटेषु केचित्केचित्कुमारीतीरे
परे च तमसावरुणान्तिकेऽन्ये ।
मन्दाकिनीसन्निधयोरितरे परेऽपि
शिप्रातटे सरितरेषु परे सरय्वाः ।१३।
विपाशायाश्च इतरे शतद्रुतटे परे ।
चर्मण्वत्युपकण्ठेऽन्ये केचिद्भीमरथीतटे ।१४।

दूसरे नर्मदा के तट पर, कुछ गोदावरी के तीर पर, कुछ गोमती नदी के तट पर और अन्य हैमवती नदी के तट पर निवास करते हैं।८। इतर समुद्र के पार्श्व में और अन्य सारस्वतों के द्वीपों में रहते हैं। कुछ सिन्धुओं के गुहाओं में तथा कुछ सम्भेदों में भी निवास

करते हैं। कुछ कृष्णा वेणी के तट पर, दूसरे कुछ भद्रा के समीप में रहा करते हैं। कतिपय उपवेणी में और दूसरे चर्मण्वती के समीप में निवास करते हैं। इतर कावेरी के तट पर, कुछ वेगवती के तीर पर, अन्य ताम्रपर्णी के तट पर और कुछ मुरला नदी के तीर पर रहा करते ।९।१०।११। कुछ ऐरावती के तीर पर, इतर मातृका के समीप में, कतिचित् कन्या के तट पर, कुछ कुमारी के तीर पर अन्य तमसा और वरुणा के तटों पर ही रहा करते हैं। इतर मन्दाकिनी के समीप वाले स्थलों में, दूसरे शिप्रा के तट पर एवं सरयू के परिसरों में निवास किया करते हैं।१२।१३। इतर विपाशा के समीप में रहते हैं। और दूसरे शतद्रुति नदी के तट पर निवास किया करते हैं। कुछ धर्मवर्ती के उपकण्ठ में और अन्य भीमरथी नदी के तीर पर रहते हैं।१४।

केचिद्विष्णुसरोऽभ्यर्णोपरेपम्पासरस्तटे ।
अन्यर्णोकऽपिमे रथ्याः कनिचित्कौशिकीतटे ।१५।
अपरे मालिनीतीरे परे गन्धवतीतटे ।
कतिचिन्मानसोपान्ते केचिदच्छोदरोधसि ।१६।
इन्द्रद्युम्नसरस्यन्य एके तु मणिकर्णिके ।
परे तु वरदातीरे ताप्यां कांचनाऽपरे ।
पातालगंगासविधे सरस्वत्यन्तिके परे ।१७।
लौहित्याकूलयोः केचित्कतिचित्कालमातटे ।
वितस्तोपान्तिके त्वन्ये चन्द्रभागान्तिके परे ।१८।
सुरलोपान्तिके केचित्पयोष्णीतीरयोः परे ।
केचिन्मधुमतीतीरेकेचनाऽनुपितात्रिनीम् ।१९।
उक्तं वाराणसीक्षेत्रं क्रोशपञ्चकपावनम् ।
देवस्तत्राविमुक्ताख्योविशालाक्षासमन्वितः ।२०।
कपालमोचनं यत्रयत्राऽऽस्तेकालभैरवः ।
मृतानांयत्र खट्वं काशीविद्धि हि तां मुने ।२१।

कुछ बिन्दुसर के समीप में, दूसरे पम्पा सरोवर के तट पर, कतिपय भैरवी के निकट में और कतिचित् कौशिकी नदी के तट पर रहते हैं। दूसरे मालिनी नदी के तीर पर, कुछ गन्धवती के तट पर, कुछ मानस के उपान्त में और कतिपय शोण के तीर पर रहा करते हैं। कुछ अन्य इन्द्रद्युम्न के नाम वाले सर पर और अन्य मणिकर्णिका पर, दूसरे वरदा के तीर पर तथा दूसरे कुछ तापी नदी पर रहा करते हैं। कुछ पाताल गङ्गा के समीप में, दूसरे कुछ द्वारावती के समीप में, कुछ लौहिती के कूलों पर, कुछ कालगा के तट पर, अन्य वितस्ता के उपान्तिक में तथा दूसरे चन्द्रभागा नदी के समीप में निवास किया करते हैं ।१५–१८। कुछ सुरन्ता के समीप में, दूसरे पयोष्णी नदी के तटों पर रहते हैं। कतिपय मधुमती नदी के तीर पर और कुछ पिनाकिनी नदी के साथ २ रहते हैं। इस प्रकार से वाराणसी का क्षेत्र पाँच कोस का परम पावन क्षेत्र कह दिया है। वहाँ पर विशालाक्षी के द्वारा समर्चित अविमुक्त नामधारी देव विराजमान रहते हैं। कपाल मोचन जहाँ पर हैं और जिस क्षेत्र में काल भैरव रहा करते हैं। हे मुने ! जहाँ पर मृत हुए प्राणियों को रुद्रत्व की प्राप्ति हुआ करती है उसको काशी समझना चाहिए ।१६।२०।२१।

गयाप्रयागावपि ते कथितौ सर्वसिद्धिदौ ।
यत्र पिण्डप्रदानेन तुष्यन्ति पितरः किल ।२२।
आकर्णितं च केदारं यस्मिन्महिषरूपधृक् ।
देवोऽपि च हतोदेव्या सर्वश्रेयस्करो नृणाम् ।२३।
सर्वसिद्धकरं पुंसां क्षेत्रं बदरिकाश्रमम् ।
यत्राऽऽस्ते स्वयमेवाऽसौ देवो नरनारायणाभिधः ।२४।
श्रुतं हि नैमिषं क्षेत्रं त्वया यत्र महेश्वरः ।
देवदेवाभिधः पुण्यो देवो सारङ्गधारिणी ।२५।

अमरेशमिति स्थानं प्रोक्तंसर्वार्थ साधकम् ।
ॐकारनामातत्रेशश्चण्डिकाख्यामहेश्वरी ।२६।
पुष्कराख्यं महास्थानं श्रुतं ते कथितं मया ।
यत्र देवो रजोगन्धिः पुरुहूता महेश्वरी ।२७।
आषाढीनाम ते स्थानं पावनं कथितं मया ।
आषाढेशो हरस्तत्र रतीशा परमेश्वरी ।२८।

सब प्रकार की सिद्धियों को प्रदान करने वाले वे गया और प्रयाग भी वर्णित कर दिए गये हैं जहाँ पर पिण्डों के प्रदान करने से पितृगण परम तुष्ट हुआ करते हैं। केदार का भी समाकर्णन किया है जिसमें महिष के स्वरूप को धारण करने वाले देव भी देवी के द्वारा निहत हुए हैं जो मनुष्यों के सब तरह के श्रेय को करने वाले हैं।२२।२३। बदरिकाश्रम क्षेत्र पुरुषों को सभी सिद्धियों का करने वाला है जहाँ पर नर-नारायण के द्वारा समर्चित देवी का त्र्यम्बक प्रभु विराजमान है। आपने नैमिष क्षेत्र का श्रवण किया ही होगा जहाँ पर देवदेव नामधारी पुण्य रूप भगवान महेश्वर हैं और शारङ्ग धारिणी देवी विराजमाना हैं।२४।२५। अमरेश—इस नाम वाला एक स्थान है जो सभी अर्थों का साधक कहा गया है वहाँ पर ॐकार नाम वाले ईश विराजमान हैं और चण्डिका नामधारिणी महेश्वरी हैं।२६। पुष्कर नाम वाला एक परम महान स्थान है जिसे मेरे द्वारा आपने कहा हुआ श्रवण किया ही होगा जहाँ पर रजोगन्धि देव हैं और पुरुहूता नाम वाली देवी महेश्वरी हैं। आषाढी नाम वाला एक पावन स्थान है जो आपको मैंने कहा है वहाँ पर आषाढेश देव विराजमान रहते हैं और रतीशा नाम वाली परमेश्वरी हैं।२७—२८।

दण्डिमुण्डीसमाख्यां च स्थानं ते कथितं मया ।
यत्र मुण्डी महादेवो दण्डिका परमेश्वरी ।२९।
लाकुलंनाम ते स्थानं संशुद्धं कथितंमया ।
लाकुलीशो हरोयस्मिन्नङ्गा सर्वमङ्गला ।३०।

भारभूतिरितिस्थानं भवतोऽभिहितंमया ।
यत्रभाराभिधः शम्भुर्भूत्याख्याभूधरात्मजा ।३१।
अरालकेश्वरंनाम स्थान ते कथितंमया ।
यत्र सूक्ष्माभिधः शूलीसूक्ष्माख्याशैलनन्दिनी ।३२।
गयानाम महाक्षेत्रं तच प्रस्तावितं मया ।
मंगलाख्या शिवा यत्र शङ्करः प्रपितामहः ।३३।
कुरुक्षेत्रमिति स्थान भवते विनिवेदितम् ।
यत्र स्थाणुप्रियादेवोदेवः स्थाणुसमाह्वयः ।३४।
उक्तं कनखलं नाम मया ते स्थानमुत्तमम् ।
उग्रो यत्र पुराराति रुग्रा गिरिवरात्मजा ।३५।

मैंने आपको दण्डी-मुण्डी नाम वाला एक स्थान बतलाया था जहाँ पर मुण्डी नाम वाले श्री महादेव हैं और दण्डिका नाम वाली देवी परमेश्वरी विराजमान रहा करती हैं ।२६। मैंने आपको एकलाकुल नाम वाला परम सशुद्ध स्थान बतलाया था जिस स्थान में लाकुलीना श्री हर हैं और सर्वमंगला मनज्ञा देवी हैं ।३०। भारभूति—इस नाम वाला एक स्थान है जो मैंने आपको बतलाया है जहाँ पर भार नाम वाले शम्भु हैं और भूति नाम वाली भूधरात्मजा देवी है ।३१। एक अराल-केश्वर—इस नाम वाला स्थान है जिसको मैंने आपको पहिले ही बतला दिया है जहाँ पर सूक्ष्म नाम वाले भगवान शूली हैं तथा सूक्ष्मा नाम धारिणी देवी शैल नन्दिनी विराजमान रहती हैं। गया नाम वाला एक महा क्षेत्र है मैंने जिसके विषय में प्रस्ताव किया है जिस क्षेत्र में मंगला नाम वाली देवी शिवा हैं और प्रपिता मह भगवान शङ्कर विराजमान हैं। एक कुरुक्षेत्र नाम वाला स्थान है जिसके बावत मैंने आपसे पहिले निवेदन किया था जहाँ पर स्थाणु प्रिया नाम वाली भग-वती देवी हैं और स्थाणु नामधारी भगवान देव विराजमान रहते हैं। मैंने आपसे एक कनखल नाम वाले परमोत्तम स्थान के विषय में भी

कहा था जिस स्थान में उग्र नाम वाले भगवान पुरारांति विद्यमान रहा करते हैं और उमा नामधारिणी साक्षात् गिरिवरात्मजा देवी विराजमाना है ।३२–३५।

तालकाख्यं महाक्षेत्रं मार्कण्डेयमयोदितम् ।
देवी स्वायम्भुवी यत्र स्वयम्भूः परमेश्वरः ।३६।
अट्टहासमिति प्रोक्तं महास्थानं मया तव ।
यत्राऽर्कः पूजयित्वेशमासीत्पूर्णमनोरथः ।३७।
कृत्तिवासाभिधं क्षेत्रमुक्तं तेवेदवित्तम ! ।
यः कैलासादपिश्लाघ्योनिवासः कृत्तिवाससः ।३८।
भ्रमराम्बिकया देव्या महेशो मल्लिकार्जुनः ।
श्रीशैले सृष्टिसिद्ध्यर्थंपूजितः परमेष्ठिना ।३९।
सुवर्णमुखरीतीरे कालहस्तीति शङ्करः ।
व्यासेनाराधितोभृङ्गकुन्तलकयाऽम्बया ।४०।
काञ्च्यामेकाम्रमूलस्थः कामाक्ष्या कामशासनः ।
तपस्यन्त्याऽभिसंश्लिष्टो वलयेनाऽङ्कितोऽभवत् ।४१।

तालक नाम वाला एक महाक्षेत्र है । हे मार्कण्डेय ! मैंने इसको भी आपको बतलाया है जिस क्षेत्र में स्वायम्भुवी देवी हैं और स्वयम्भू परमेश्वर हैं । मैंने एक अट्टहास नाम वाला महान स्थान आपको कहा था जहाँ पर भगवान भास्कर ने ईश का पूजन करके अपना मनोरथ पूर्ण किया था ।३६।३७। हे वेदों के वेत्ताओं में परम श्रेष्ठ ! मैंने आपकी सेवा में एक कृत्तिवास नाम वाले क्षेत्र की चर्चा की थी जो कैलासगिरि से भी अधिक प्रशंसनीय है और कृत्तिवासा प्रभु का निवास स्थान है । वहाँ पर भ्रमराम्बिका नाम वाली देवी के सहित मल्लिकार्जुन महेश्वर की श्री शैल में सृष्टि की सिद्धि के लिए परमेष्ठी ब्रह्माजी के द्वारा पूजा की गयी थी । सुवर्ण मुखरी के तीर पर कालहस्ती—इस नाम वाले भगवान शङ्कर हैं जिनकी भृङ्ग कुन्तलका देवी के सहित श्री व्यास देव

ने आराधना की थी ।३८।३९।४०। काञ्ची में कामाक्षी के साथ एकाम्रमूलस्थ काम शासन प्रभु विराजमान रहते हैं जो तप करती हुई के द्वारा भक्ति सन्निकृष्ट होते हुए वलय से चिह्नित हो गये थे ।४१।

अस्ति व्याघ्रपुरं नाम तिल्लिकाननमध्यगम् ।
यत्र नृत्यन्तमीशानं पर्युपास्ते पतञ्जलिः ।४२।
श्वेतारण्यमिति स्थानमुक्तं तव मया पुरा ।
भग्नमैरावतोदन्तं भेजे यत्र शिवार्चनात् ।४३।
सेतुबन्धमिति स्थानमवोचं तत्र राघवः ।
रामनाथाख्यया देवमंहोघ्नं प्रत्यतिष्ठिपत् ।४४।
गतप्रत्याह्वयस्थानं विद्यते वृषभध्वजः ।
यत्र जम्बूतरोर्मूले जगद्रक्षार्थमाश्रितः ।४५।
मणिमुक्तानदीमन्वक्षेत्रे वृद्धाचलाह्वये ।
नित्यं सन्निहितो देव इत्याकर्णित एव ते ।४६।
श्रीमन्मध्यार्जुनं नाम श्रुतं स्थानमनुत्तमम् ।
यस्मिन्वरप्रदो नित्यं गौरीसहचरो हरः ।४७।
प्रास्थितं सोमनाथेन सोमतीर्थं त्वया श्रुतम् ।
यत्र त्यजनवतो देहं न भूयो भवबन्धनम् ।४८।

तिल्लि नामक जंगल के मध्य में रहने वाला व्याघ्रपुर नाम वाला स्थान है जहाँ पर नृत्य करते हुए ईशान की पतञ्जलि ने पर्युपासना की थी ।४२। एक श्वेतारण्य नाम वाला स्थान है जिसके विषय में मैंने पहिले ही आपको बतलाया था जिसमें भगवान शिव के अर्चन के करने से ऐरावत ने अपना भग्न हुआ दन्त प्राप्त कर लिया था ।४३। एक सेतुबन्ध नामक स्थान है जिसको मैंने आपको बोला था वहाँ पर श्री राघवेन्द्र प्रभु ने रामनाथ—इस नाम से पापों के नाशक देव की प्रतिष्ठा की थी जो रामेश्वर नाम से परम विख्यात है। एक गत प्रत्याह्वय नामक स्थान विद्यमान है जहाँ पर वृषभ ध्वज प्रभु जम्बु (जामुन) तरु के मूल में इस जगत् की रक्षा करने के लिए आश्रय ग्रहण करके विराजमान

रहते हैं ।४४।४५। वृन्दावन नाम वाले क्षेत्र में मणि-मुण्ठा नदी के साथ देव नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं—यह तो आपने सुना ही है । श्री मन्मथ्यार्जुन नाम वाला अतीव उत्तम स्थान आपने श्रवण किया ही होगा जहाँ पर नित्य ही भगवती गौरी के साथ सञ्चरण करने वाले भगवान हर वरों के प्रदान करने वाले होते हैं । भगवान सोमनाथ के द्वारा समन्वित सोम तीर्थ आपने सुना ही है जिसकी ऐसी महिमा है कि जो प्राणी इस स्थान पर अपने देह का त्याग किया करते हैं उनको फिर इस संसार का बन्धन रहता ही नहीं है ।४६—४९।

आकर्णितोहि भवताक्षेत्र सिद्धवटाह्वयम् ।
यत्र सिद्धाः समर्चन्ति ज्योतिर्लिङ्गमनुत्तमम् ।४९।
अश्रावि खलु ते क्षेत्रं कमलालयसञ्ज्ञकम् ।
वल्मीकेश्वरार्चनाल्लेभे श्रीर्जीवितं हरेः ।५०।
श्रुतवानसि तच्चापि यत्र सन्निहितो हरः ।
इदानीमप्युपासीनं मोक्षाय ब्रह्मकेशवौ ।५१।
श्रीमद्द्रोणपुरं वेत्सि यस्मिन्कलियुगक्षये ।
नौकामारुह्य नानन्दोऽक्षुभिते पार्वतीपतिः ।५२।
श्रुतं त्वया स्वयम्भूर्नाम क्षेत्रं यत्रेन्द्रजित्पुरा ।
आर्धनुत्करिणीतीरे स्थापयामास धूर्जटिम् ।५३।
श्रीकोटिकाख्यं जानासि क्षेत्रं यत्रेन्दुशेखरः ।
समाराधयतां पुंसां पापकोटीर्व्यपोहति ।५४।
आकर्णितं च गोकर्णं शिवं यत्सन्निधानतः ।
आरिराधयिषुः स्वर्गं जामदग्न्यो न काङ्क्षति ।५५।

आपने सिद्ध वट नामक क्षेत्र के विषय में श्रवण किया ही होगा वहाँ पर सिद्ध पुरुष सर्वोत्तम भगवान ज्योति लिङ्ग का समार्चन किया करते हैं । आपने कमलालय संज्ञा वाले क्षेत्र के विषय में भी श्रवण किया ही होगा जिसमें भगवान वल्मीकेश की अर्चना से श्री ने हरि की

जीविता का लाभ प्राप्त किया था ।४६।५०। आपने कङ्कादि को सुना होगा जहाँ पर सन्निहित भगवान हर की ब्रह्मा और केशव आज भी मोक्ष की प्राप्ति के लिए उपासना किया करते हैं। आज श्रीमान द्रोणपुर को जानते ही है जिसमें कलियुग के क्षय होने पर समुद्र के क्षोभ से युक्त होने पर पार्वती के पति भगवान शम्भु नौका पर समधि रूढ हुए थे। ब्रह्मपुर नामक क्षेत्र के विषय में आपने श्रवण किया ही होगा वहाँ पर पहिले इन्द्रजित् ने माण्य पुष्करिणी के तट पर भगवान धूर्जटि की स्थापना की थी।५१।५३। श्री कोटिक नाम वाला स्थान को अभिज्ञेय है जहाँ पर भगवान् इन्द्र शेखर समाराधन करने वाले पुरुषों के पापों की कोटि का विदारण कर दिया करते है।५४। आपने गोकण्ठ नामक स्थान को सुना ही होगा जहाँ पर आराधना करने वाले जामदग्न्य ऋषि शिव के सन्निधान मे रहते हुए वहाँ से स्वर्ग जैसे परमोत्तम स्थान में जाने की भी आकांक्षा नहीं किया करते है।५५।

त्रिपुरान्तकमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र त्रियम्बकः ।
निराकरोति निरातङ्भयं द्दष्टनतां नृणाम् ।५६।

उक्त कायाङ्गन क्षेत्रं यद्वामोकसतकन्धरः ।
निर्वापयन्ति भक्तानां घोरसंसारसंज्वरम् ।५७।

प्रियालवणमाख्यातं क्षेत्रं यत्राऽम्बिकापतिः ।
पयोऽधिनेपयः सिन्धुं वितताशेषमायये ।५८।

क्षेत्रं प्रभासमुक्तं ते यत्र खण्डेन्दुशेखरः ।
पूजितः शौरिसौरिभ्यां दत्तवानक्षयं फलम् ।५६।

केदारण्यं विजानीयेयस्मिन्प्रमथनायकः ।
कम्यर्थितोऽभून्मोक्षार्थं दक्षेणप्रावृत्तागसा ।६०।

हेमकूटं त्वमश्रौषीः स्थानं विषमचक्षुषः ।
पुंसां तपस्यतां यत्र पुनर्जननतो न भीः ।६१।

क्षेत्रं वेणुवनंनाम विद्यते पापनाशनम् ।
यत्र वंशलतागर्भाज्जातो मुक्तामणिः शिवः ।६२।
जालन्धरमिति स्थानमन्धकारेस्त्वयाश्रुतम् ।
लेभे गणपतां तत्र तपस्याभिर्जलन्धरः ।६३।

मैंने त्रिपुरान्तक क्षेत्र के विषय में आपसे कहा था जहाँ पर त्रियम्बक भगवान दर्शन प्राप्त करने वाले मनुष्यों का नरक के भय का निराकरण कर दिया करते हैं। मैंने आपसे कालाञ्जन नाम वाले क्षेत्र के विषय में भी आपको बतलाया था जिस क्षेत्र में काल कन्धर प्रभु निवास किया करते हैं और अपने भक्तों के घोर संसार के संज्वर को निवारित कर दिया करते हैं। मैंने त्रिपथ नवल नामक क्षेत्र के विषय में आपको कहा था जहाँ पर अम्बिका पति प्रभु ने पय के अर्थी उपमन्यु के लिए पयः सिन्धु वि...र कर दिया था।५६।५७।५८। प्रभास नामक क्षेत्र के बाबत मैंने आपको बतलाया था जिस क्षेत्र में खण्डे-दुरीश्वर भगवान शिव शौरि और भौरि इन दोनों भाइयों के द्वारा पूजित होकर इनको उन्होंने अक्षय फल प्रदान किया था। वेदारण्य नामक स्थल को आप भली-भाँति जानते ही हैं जिसमें प्रमथ नामक प्रभु को पहिले किए हुये अपराध वाले प्रजापति दक्ष ने अपने मोक्ष की प्राप्ति के लिये अभ्यर्थना की थी।५९।६०। आपने हेमकूट के विषय में श्रवण किया ही होगा जो स्थान अघघ्न का विष है और जहाँ पर तपश्चर्या करने वाले पुरुषों का पुनर्जन्म धारण करने का भय सर्वथा रहता ही नहीं है।६१। एक वेणु वन नाम वाला उत्तम क्षेत्र है जो समस्त पापों का नाश करने वाला है जहाँ पर वंशलता के गर्भ से मुक्तामणि शिव समुत्पन्न हुआ था।।६२। एक जालन्धर नामक स्थान है जो अन्धकार में है आपने इसके विषय में सुना ही होगा। वहाँ पर जलन्धर ने घोर तपश्चर्या के द्वारा गणों के पति का पद प्राप्त कर लिया था।६३।

ज्वालामुखमिति स्थानमज्ञासीः कथितं मया ।
यत्र ज्वालामुखी देवी कालरुद्रमपूजयत् ।६४।
अस्ति भद्रवटीनाम क्षेत्रमुक्तं श्रुतं त्वया ।
त्र्यम्बकं यत्र हेरम्बः सम्पदे पर्यपूजयत् ।६५।
न्यग्रोधारण्यमुक्तं ते यत्रोग्रोनिर्ममे किल ।
उच्चण्डताण्डवकाल्यासाकंसङ्घर्षमेयिवान् ।६६।
गन्धमादनसञ्ज्ञं तत्क्षेत्रमाकर्णितं त्वया ।
आञ्जनेयेन रचितं यत्र मृत्युञ्जयार्चनम् ।६७।
गोवर्द्धनमिति स्थानं शम्भोः प्रख्यापितमया ।
यत्रपाणिनिनालेभेवैयाकरणकामयता ।६८।
वीरकोष्ठमिति क्षेत्रस्थानं त्वन्ववधारितम् ।
यत्र प्रचेतसा लेभे तपसा कविमुख्यता ।६९।
महानीशगिरि प्रोक्तं जानीचेयत्र शम्भुना ।
अध्यापितास्समुपर्वाणः सर्वेऽपिद्रुहिणादयः ।७०।

एक ज्वालामुखी नाम वाला स्थान है। मैंने इसके बाद तभी कहा था। आप इसका ज्ञान रखते ही होंगे। जिस क्षेत्र में ज्वालामुखी देवी ने कालरुद्र का पूजन किया था ।६४। एक भद्र वट नाम वाला क्षेत्र है। मेरे द्वारा कहा हुआ आपने इसके बारे में आप ही श्रवण किया होगा। जहाँ पर हेरम्ब ने भगवान त्र्यम्बक की सम्पदा की प्राप्ति के लिए अर्चना की थी ।६५। एक न्यग्रोधारण्य नामक उत्तम क्षेत्र है जिसे मैंने आपको बतला दिया है जहाँ पर उग्र ने ही निर्माण किया है। यहाँ प्रभु काली के साथ उच्चण्ड ताण्डव करते हुए परम सङ्घर्ष को प्राप्त हो गये थे ।६६। एक गन्धमादन संज्ञा वाला क्षेत्र है जिसको आपने सुन रक्खा है जहाँ पर आञ्जनेय ने भगवान मृत्युञ्जय का अर्चन किया था ।६७। एक गोवर्द्धन स्थान भगवान शम्भु का है जिसको मैंने प्रख्यापित किया था जिस पर महान विद्वान पाणिनि महर्षि ने व्याकरण शास्त्र के

विद्वानों में प्रमुखता प्राप्त की थी। एक और कोण नामक क्षेत्र स्थान है इसको आपने अवधारण किया ही होगा। जिस पर अपेला ने तपश्चर्या के द्वारा कवियों में प्रधानता प्राप्त की थी। महातीर्थ यह कहा गया है। इसे आप जानते ही हैं जहाँ पर भगवान शम्भु ने सुपर्वाओं को और समस्त द्रुहिणादि को कम्पायित किया था।६८।६९७०।

मयूरपुरमुक्तं ते क्षेत्रं माहेश्वरं मया।
लेभे यत्र व्रतस्थेन ह्लादिनी वज्रपाणिना।७१।
श्रीसुन्दरमिति प्रोक्तं वेगवतीतटे।
कलावपि युगे यस्मिन्देवदेवेन दीप्यते।७२।
कुम्भकोणमिति स्थानं शम्भोर्विदितं हि यत्र मा।
गङ्गाऽपि माघे सान्निध्यं कुरुते स्वाघशान्तये।७३।
अनुगोदावरीतीरं त्र्यम्बकनाम ते श्रुतम्।
शक्ति यत्र गुहो लेभे तारकासुरघातिनीम्।७४।
श्रीपाटलं ब्रह्मपुरमास्पातं वेदवित्तम।
नशाङ्कुना जातिशुद्ध्यै यत्र गङ्गावरोऽर्चितः।७५।
क्षेत्रं कदम्बयुग्माख्यमवता चाऽवधारितम्।
स्वकृतेधनशूलेन कृतान्तशम्भुरक्षिणोत्।७६।
अविनाशाख्यमुक्तं ते क्षेत्रं यत्र वृषध्वजः।
सान्निध्यं रङ्कभ्रष्टाश्वविनताऽप्रसादिवान्।७७।

मैंने स्वयं माहेश्वर मयूरपुर क्षेत्र के विषय में आपसे कह है जहाँ पर व्रत में अवस्थित होने वाले वज्रपाणि इन्द्रदेव ने ह्लादिनी के प्राप्त करने का लाभ लिया था।७१। श्री सुन्दर इस नाम वाला क्षेत्र वेगवती के तट पर बताया जा चुका है जिसमें इस महा घोर कलियुग में भी देवों के देव दीप्यमान हुआ करते हैं।७२। कुम्भ कोण नामक एक शम्भु का स्थान है जिसे आप जानते ही हैं जहाँ पर वह गङ्गाजी माघ मास में अपने पापों की शान्ति के लिये सान्निध्य किया करती है

।७३। गोदावरी नदी के तट के साथ ही त्र्यम्बक नाम का स्थान है जो आपने सुना ही होगा जहाँ पर भगवान गुह ने तारकासुर के घात करने वाली शक्ति का लाभ किया था। हे वेद विशारद! श्री पाटल व्याघ्रपुर आख्यात किया गया है जहाँ पर त्रिशङ्कु ने अपनी-अपनी जाति की शुद्धि के लिए भगवान गङ्गाधर का समार्चन किया था। एक कदम्बपुरी नामक क्षेत्र है जिसका अवधारण किया ही होगा जहाँ पर आप ही के लिये शूल के द्वारा भगवान शम्भु ने कृतान्त को क्षीण किया था। आपको मैंने एक अविनाश नाम वाला क्षेत्र बतलाया था जहाँ पर भगवान वृषध्वज ने प्रमोदवान् होकर दक्षिकल्प के लिए सान्निध्य को स्थापित किया था।७४—७७।

रक्तकाननमाख्यातं मया क्षेत्रं तवाऽनघ !।
मित्रावरुणयोर्यत्र रुद्रोऽजनि वरप्रदः ।७८।
श्रीहाटकेश्वर क्षेत्रं पातालस्थं त्वया श्रुतम् ।
यत्र वैरोचनिर्देवं स्वपदप्राप्तयेऽर्चति ।७९।
वेत्सि शम्भोः प्रियावासं कैलासं नित्यसेवकः ।
यत्र यक्षेश्वरस्त्र्यक्षमभ्यर्चयति भक्तिमान् ।८०।
स्थानानि खण्डपरशोरित्युक्तानि मया पुरा ।
त्वयाप्यवधृतान्येव किम्भूयः श्रोतुमिच्छसि ।८१।
इत्यूचिवानेष शिलादनन्दनो
मुनेर्मृकण्डोस्तनयं मुनीश्वरम् ।
भक्त्यानमन्तं पदयोः करेण
पस्पर्श मौलौ करुणारसार्द्रः ।८२।

हे अनघ! मैंने आपको एक रक्त कानन नामक क्षेत्र बतलाया था जहाँ पर भगवान रुद्र मित्रा वरुण दोनों के लिये वरदान करने वाले हो गये थे।७८। श्री हाटकेश्वर नाम वाला एक क्षेत्र है जो पाताल लोक में स्थित है। आपने उसके विषय में श्रवण किया ही है जिस क्षेत्र

से वैरोचनि अपने पद की प्राप्ति के लिए देव की अर्चना किया करता है। आप भगवान शम्भु के परम प्रिय आवास स्थान कैलाश भली-भाँति जानते ही हैं जहाँ पर नित्य ही सेवा करने वाला महेश्वर भक्ति की भावना से भगवान त्र्यक्ष की अभ्यर्चना किया करता है। मैंने पहिले खंड पर शुभगवान के ये स्थान बतला दिये थे और आपने भी अच्छी तरह से इनका अवधारण भी कर ही लिया था। अब पुनः इनके श्रवण करने की क्यों इच्छा कर रहे हो? । इस प्रकार से शिलादनंदन ने मृकण्डु मुनि के पुत्र मुनीश्वर से कहा था जोकि मुनि भाव से चरणों में नमन कर रहे थे। इसके अनन्तर करुणा से न आर्द्र होकर इसने अपने कर से शिर में स्पर्श किया था ।७६—८२।

१८—अरुणाचलस्थरहस्यस्थानवर्णन

भगवन्नश्वेनाऽन्‍ रवदेकस्रवणेमयि ।
किमाहत्वोऽस्मिते शिवयस्तकुर्न वाऽन्नमासिणी ।१।
स्थानेषु प्राक्तवदुक्तेषु फलानिचपृथक्पृथक् ।
यत्र सर्वफलप्राप्तिः स्थानवद्वदमेविभो ।२।
चराचराणां भूतानां आनतामप्यजानताम् ।
यस्य स्मरणमात्रेण मुनिरम्नद्वर देशिक ।३।
पश्यतेन सर्वकेन भगवाशानुराभ्यसे ।
सर्वैरप्येतदर्थं हि मुनिभिः परिवार्यसे ।४।
पुलहेन पुलस्त्येन वशिष्ठेन मरीचिना ।
अगस्त्येन दधीचेन नकुलेन भृगुणाऽङ्गिरणा ।५।
जाबालिना जैमिनिना धौम्येन जमदग्निना ।
उपमोद्येन गार्ग्येन भरतेनार्बरोवता ।६।
पिप्पलादेन कण्वेन कुमुदेनोपमन्युना ।
कुमुदाक्षेण कुत्सेन वत्सेन वरतन्तुना ।७।

महा महर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे भगवान् आपके चरणों में ही एक मात्र प्रवण होने वाले मेरे विषय में वञ्चन न कीजिये। यह आपका शिष्य किस प्रकार का है उसकी तो एक मात्र साक्षिणी यहाँ पर उनकी कृपा ही है।१। आपके द्वारा पहिले कहे हुए स्थानों में पृथक् २ फल होते हैं। हे विभो! जिस स्थान पर सभी प्रकार के फलों की प्राप्ति होती है वही स्थान अब आप कृपया बतलाइये।२। हे देशिक! चर और अचर प्राणियों को जो जानते हैं और जो सर्वथा ज्ञान ही नहीं रखते हैं उनको जिसके केवल स्मरण से ही मुक्ति हो जाया करती है उसे ही अब बतलाइये।३। आप देखिए, यह मेरे एक के ही द्वारा भगवान की आराधना नहीं की जा रही है। इस समाराधना करने के लिए सभी मुनियों के द्वारा ऐसा अनुरोध किया जा रहा था।४। उन सब मुनियों के नामों का परिगणन करके बतलाता हूँ—पुलह के द्वारा-पुलस्त्य, वशिष्ठ मरीचि, अगस्त्य के द्वारा, दधीच, नकु, भृगु, अत्रि, जाबालि, जैमिनि, धौम्य के द्वारा तथा जमदग्नि के द्वारा, उपयाज, याज, भरत अर्वभीवान, पिप्पलाद, कण्व, कुमुद, उपमन्यु, कुमुदाक्ष, कृत्स, वत्स और वरतन्तु के द्वारा भी इस समाराधना के विषय में ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा है।५।६।७।

विभाण्डकेन व्यासेन पराशरेण कण्डुना।
माण्डव्येन मतङ्गेन ऋष्यशृङ्गेण माण्डकर्णिना ॥८॥
चण्डकौशिकशाण्डिल्यशाकटायनकौशिकैः।
गालवत्समधुच्छन्दोगर्गसोभरिरोमशैः ॥९॥
आपस्तम्बपृथुस्तम्बभार्गवीतहव्यदर्भकैः।
भारद्वाजेन दाल्भ्येन दान्तेन दर्भधेनुना ॥१०॥
कौण्डिन्यपुण्डरीकाभ्यां रैभ्येण तृणबिन्दुना।
वाल्मीकिना नारदेन वह्निना दृढमन्युना ॥११॥

बोधायनसुबोधाभ्यां हारीतेन मृकण्डुना ।
दुर्वाससाऽतितीक्ष्णेन जलपादेन शक्तिना ॥१२॥
कावषार्येण भदन्तेन देवदत्तेन न्यङ्कुना ।
सुधृता चाऽग्निवेश्येन गालवेन महस्वता ॥१३॥
नाकाक्षिणा विश्वरमा सैन्धवेन सुमन्तुना ।
शिशुपायनमौद्गल्यपथ्यचायनमाथुरैः ॥१४॥

विभाण्डक, व्यास, कण्वरोध, कण्ड, माण्डव्य, मतङ्ग, कुणि, माण्डकर्णि, चण्ड, कौशिक, शाण्डिल्य, शाकटायन, कौत्स, आतातप, मुचुकुन्द, गर्ग, सौभरि, रोमश, आपस्तम्ब, पृथुलाम्ब, भार्गव, उदङ्क, पर्वत, भारद्वाज, दाल्भ्य, दाल्भ, श्वेत केतु के द्वारा भी ऐसा ही अनुरोध किया जा रहा है ॥८।९।१०॥ कौण्डिन्य, पुण्डरीक, रैभ्य, तृणबिन्दु, वाल्मीकि, नारद, वह्नि, दक्ष, मनु, बौधायन, सुबोध, हारीत, मृकण्डु, दुर्वासा मुनि तीक्ष्ण, जलपाद, शक्ति, कावषार्य, भदन्त, देवदत्त न्यङ्कु, सुधृत अग्निवेश्य, गालव, महस्वान, नाकाक्षि, विश्वरमा, सैन्धव, सुमन्तु, शिशुपायन, मौद्गल्य, पथ्य, चायन और माथुर इन सबके द्वारा इसी के ज्ञान प्राप्त करने का अनुरोध किया जा रहा है ॥११—१४॥

ऋष्यशृङ्गकपालकौत्सद्रोणपुलदेवनैः ।
अङ्गिरोवामदेवौर्वपतञ्जलिकपिञ्जलैः ॥१५॥
सनत्कुमारसनकसनन्दनसनातनैः ।
हिरण्यनाभरथ्याश्ववाश्वायनमुहोतृभिः ॥१६॥
मैत्रेयपुष्पजित्सत्यव्रतः गार्ग्यशैशिरैः ।
निदाघोतथ्यसम्वर्तशौल्कायनिपराशरैः ॥१७॥
वैशम्पायनकौशल्यशारद्वतकपिञ्जलैः ।
कुथस्वाचिककैवल्ययाज्ञवल्क्याश्वलायनैः ॥१८॥
कृष्णात्रेयसमानन्तकणामलकप्रियैः ।
चरकेण पवित्रेण कपिलेन कणाशिना ॥१९॥

नरनारायणाख्यौ च दिव्यैश्चान्यैर्महर्षिभिः ।
मत्प्रश्नोत्तरशुश्रूषापरैः प्रत्यवेक्ष्यसे ॥२०॥
माहेश्वराणामग्रण्यस्त्वं समस्तागमपारगः ।
व्याप्तश्च सर्वलोकेषु यस्मात्तदनुमर्हसि नः ॥२१॥

स्वयं भृगु, एकपाद्, कौत्स, दक्ष, गोभिल, देवल, अंगिरा, वामदेव, दधीचि, वसिष्ठ, सनत्कुमार, सनक सनन्दन, सनातन, हिरण्यनाभ, सद्योजात, बालखिल्य, सुहोत्र, मैत्रेय, पुनर्वसु, सत्य, तपः शालीन, आंगिरस, निदाघ, उतथ्य, गार्ग्य, कौलकायनि, पराशर, वैशम्पायन, कौशल्य, शाण्डिल्य, कपिष्ठल, कुत्स, स्वाध्याय, कैवल्य, याज्ञवल्क्य, आश्वलायन, कृष्णात्रेय, शुनक, वरुणात्मक भृगु, चरक, पवित्र, कपिल, वसिष्ठ, नर, नारायण और अन्य दिव्य महर्षियों के द्वारा ऐसा ही अनुरोध किया जा रहा है। ये सभी मेरे प्रश्नोत्तर को सुनने में तत्पर होकर प्रत्यवेक्षण कर रहे हैं। आप तो महेश्वर के परम भक्तों में अग्रगण्य हैं और समस्त आगमों के पारगामी विद्वान महापुरुष हैं। आप समस्त लोकों में भी व्याप्त हैं इसी कारण से आप हम सबको अनुगृहीत कीजियेगा ॥१६—२१॥

त्वन्मुखादेव भगवन्वयमेते मुनिरक्षिताः ।
पूर्वमेव त्वया देव किं वाङ्मयमुपपद्यते ॥२२॥
शिवज्ञानपुराणानि श्रुत्वाः परमेश्वरः ।
कात्यायनीशांकरीवाभगवान्व्यासवामवान् ॥२३॥
त्वयि यद्यस्ति नो भक्तिर्या चास्मासु ते यदि ।
तत्सर्वमिदमुद्दिश्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥२४॥
इत्थं मृगपट्टनयनः स नन्दिनाथो ।
विज्ञापितः सविनयं भगवाननमयम् ॥२५॥
तं प्राह पाशुपतवरं शिवभक्तिमत्तम् ।
प्रारब्धवित्तविधिशास्त्रविचारितोऽयम् ॥२६॥

हे भगवन् ! हम सब लोग आपके ही मुख से निकले हुए वचनामृत के द्वारा सुशिक्षित होंगे । हे देव ! आपने पहिले ही हमको शिक्षा प्रदान की है अथवा कुछ अन्य उपरत होता है । दिव्य आगम, पुराण, परमेश्वर, कात्यायनी अथवा स्कन्द या भगवान किम्वा आप कौन देखने के योग्य हैं ? आपके चरणों में यदि हम सबकी भक्ति है और यदि हम सबके ऊपर आपका दयाभाव है तो इस परम गोपनीय रहस्य का उद्घाटन करके हम सबके ऊपर आप प्रसन्नता करने के योग्य होते हैं । इस प्रकार से महर्षि मृकण्डु के पुत्र मार्कण्डेय के द्वारा जब विनय पूर्वक विज्ञापित किए गये थे तो विनीत भाव से समन्वित स्मयमान मुख वाले तथा शिव की भक्ति वालों में परम उन्नत और प्रथम भक्ति के द्वारा सन्तुष्ट किये हुए भगवान शिव से सम्प्राप्त शरीर की सिद्धि वाले मार्कण्डेय ऋषि नन्दीश्वर ने कहा था ।२२—२६।

१६—अरुणाचलस्थानमाहात्म्यवर्णन

मुनेर्मनः परीक्षार्थं तथा त्वं भार्षितोमया ।
तवचेन्नाभिधास्यामिकस्यवान्यस्यकथ्यते ।१।
त्वादृशान्योऽस्तिकिंलोकेशिवधर्मपरायणः ।
येनस्वल्पायुषाप्येवंनित्येनाभाविभक्तितः ।२।
कस्याऽपरस्यकृतेदेव स्वस्यैवात्माकरस्यमम् ।
क्रुद्धो नियन्त्रयामास चरणाङ्गुष्ठपीडितम् ।३।
त्वमेवदशाङ्कुरान्धमान्सर्वाञ्चिद्धिरहस्यतः ।
योऽग्रेऽसकालवद्भ्रान्तः परिपक्वोऽसिचेतसा ।४।
त्वयैवाऽन्येनकेनाऽहमेवगुश्रूषितश्चिरम् ।
त्वयीयकस्मिन्नन्यस्मिन्ममापिप्रीतिरीदृशी ।५।
उपदेक्ष्यामिते क्षेत्रं गुप्तं तद्धर्मशासने ।
भक्त्याऽवधारणीयं यद्भक्तिकैवल्यकाङ्क्षिभिः ।६।

आदरादनुयुञ्जानं शिष्यं यो देशिकः स्वयम् ।
उपदेशेन सन्तुष्टं न करोति स किंगुरुः ।७।

नन्दिकेश्वर ने कहा—हे मुने ! मैंने आपके मन की परीक्षा करने के ही लिए इस प्रकार से आपसे बातचीत की थी। यदि ऐसा रहस्य मैं आपको ही नहीं बतलाऊँगा तो फिर अन्य ऐसा कौन है जिससे यह कहा जा सकता है ।१। इस लोक में आपके तुल्य शिव के धर्म्म में परायण अन्य कौन है जो अपनी स्वल्प आयु वाला होकर भी इस नित्य धर्म से भक्ति-भाव पूर्वक युक्त हो गया था। जिस अन्य के लिए देव ने क्रुद्ध होकर चरण के अङ्गुष्ठ से पीडित अपनी ही आज्ञा को करने वाले यम को नियन्त्रित किया था ।२।३। आप ही एक रहस्यपूर्वक सम्पूर्ण शाङ्कर धर्मों का ज्ञान रखते हैं। जो आगे काल के समान भान्त है वह चित्त से परिपक्व हो ।४। अन्य किसी ने भी नहीं, केवल आपने ही इस प्रकार से चिरकाल पर्यन्त मेरी शुश्रूषा की है। आपके समान अन्य किस में मेरी भी ऐसी प्रीति होगी अर्थात् आपके अतिरिक्त ऐसी प्रीति अन्य किसी में भी नहीं हो सकती है। मैं आपको उस दर्शन का उपदेश दूँगा जो उस धर्म के शासनों के द्वारा भी गुप्त है। भक्ति से ही कैवल्य की इच्छा रखने वालों को भक्ति की भावना ही से उसका अवधारण करना चाहिये ।५।६। आदर से अनुयुञ्जान शिष्य को जो आचार्य स्वयं उपदेश के द्वारा सन्तुष्ट नहीं किया करता है वह कुत्सित ही गुरु होता है ।७।

समाहितमना भूत्वा विश्वासं कुरु शाश्वतम् ।
मयोपदिश्यमानेऽस्मिन्रहस्ये पारमेश्वरे ।८।
स्मर स्मरान्तकं देवं वाग्स्वाध्याय शाङ्करीम् ।
उपांशूच्चारयोङ्कारं श्रेयस्ते महदागतम् ।९।
अस्ति दक्षिणदिग्भागे द्राविडेषु तपोधन ।
अरुणाख्य महाशैलं तदरोम्बुशिलामयैः ।१०।

योजनत्रयविस्तीर्णमुपास्यं शिवयोगिभिः ।
तद्भूमेर्हृदयं विद्धि शिवस्य हृदयङ्गमम् ।११।
तत्र देवः स्वयं शम्भुः पर्वताकारतां गतः ।
अरुणाचलसञ्ज्ञावांस्त्रिलोकहितावहः ।१२।
आवासः सर्वसिद्धानां महर्षीणां सुपर्वणाम् ।
विद्याधराणां यक्षाणां गन्धर्वाप्सरसामपि ।१३।
सुमेरोरपि कैलासादप्यसौ मन्दरादपि ।
माननीयो महर्षीणां यः स्वयं परमेश्वरः ।१४।

समाहित मन वाला होकर शाश्वत विश्वास करो। जो मेरे द्वारा यह पारमेश्वर रहस्य उपदिश्यमान किया जा रहा है इसमें पूर्ण विश्वास करना चाहिये ।८। कामदेव को भस्मीभूत करने वाले देवेश्वर का स्मरण करो और अव्याज शाङ्करी की वन्दना करो। श्रद्धालु होकर ओङ्कार का उच्चारण करो, आपको महान् श्रेय समागत ही है ।९। हे तपोधन ! दक्षिण दिशा के भाग में द्राविड़ देशों में एक अरुण नाम वाला महान् क्षेत्र है जो तरुणेन्दु शिखा मणिका का ही क्षेत्र है ।१०। यह क्षेत्र तीन योजन के विस्तार से युक्त है और शिव के योगियों के द्वारा उपासना करने के योग्य है। यह इस भूमि का हृदय ही जान लो तथा भगवान् शिव के हृदयङ्गम है। वहाँ पर देव शम्भु स्वयं ही एक पर्वत के आकार को प्राप्त हुए हैं। यह 'अरुणाचल'—इस संज्ञा वाला है और लोकों के हित का आह्वान करने वाला है। यह सब सिद्धों का निवास स्थान है और इसमें सर्वसुपर्वा तथा महर्षिगण का आवास होता है। यह विद्याधरों, यक्षों, गन्धर्वों और अप्सराओं का भी स्थल है। यह सुमेरु से भी, कैलास से भी और मन्दराचल से अधिक माननीय है तथा महर्षियों का भी माननीय है क्योंकि यह तो स्वयं ही साक्षात् परमेश्वर है। ।११—१४।

स्पृहयन्तियदीयेभ्योजन्तुभ्योऽपिदिवौकसः ।
अयत्नलभ्यमुक्तिभ्योदिवावासप्रवञ्चिता ॥१५॥
न कल्पवृक्षाः सदृशा. यत्रत्यानाम्महीरुहाम् ।
पत्रपुष्पफलैर्नित्यं येऽचयन्तिगिरीशहरम् ॥१६॥
हिंसैकरुचयो व्याधा अपि रूपानुसारतः ।
अनन्ता यत्र देवस्य प्रादक्षिण्यफलास्पदम् ॥१७॥
यदुद्देशचरामेघाः शिखराण्यभिवन्दकाः ।
गङ्गावतो हिमवतोऽप्यधिकत्वं विजानते ॥१८॥
कलारावाः खगा यत्र क्वणन्ते कीचका अपि ।
यक्षकिन्नरगन्धर्वैर्लभ्यते दुर्लभं पदम् ॥१९॥
स्फुरन्तो यत्र खद्योताः कृष्णपक्षेनिशागमे ।
आरात्रिकप्रदातृणां देवस्याऽनुवते पदम् ॥२०॥
निष्प्रत्यूहकृताश्लेषा नित्यं यत्तटिनीरुहाः ।
सौभाग्यगर्वतो देवीमपर्णामप्यमन्वते ॥२१॥

इसमें निवास करने वाले क्षुद्र जन्तुओं से भी स्वर्ग के निवास करने वाले देवगण भी स्पृहा करते हैं क्योंकि यहाँ के सभी निवासी बिना ही किसी यत्न के मुक्ति का लाभ प्राप्त करने वाले हैं। देवगण तो यहाँ पर दिवा आवास से भी वञ्चित रहा करते हैं ॥१५॥ यहाँ पर रहने वाले वृक्षों के सदृश साक्षात् कल्प वृक्ष भी नहीं है क्योंकि जो वृक्ष नित्य ही अपने पत्र-पुष्प और फलों के द्वारा इस पवन में भगवान् हर का अर्चन किया करते हैं। एकमात्र हिंसा करने की रुचि रखने वाले व्याध भी रूपों के अनुसार अनन्त हैं जहाँ पर देव के प्रादक्षिण्य फल के आस्पद (स्थान) होते हैं। जिसके उद्देश में सञ्चरण करने वाले मेघ जो शिखरों के अभिवन्दक हैं वे गङ्गा वाले और हिमवान् से भी अधिक अपने आपको समझा करते हैं? जहाँ पर कीचक भी (बाँस भी) कल ध्वनि वाले खगों जैसी ध्वनि वाले होकर क्वणन किया करते हैं। यक्ष,

किन्नर गन्धर्वों के द्वारा दुर्लभ पद का लाभ प्राप्त किया जाता है। जहाँ पर कृष्ण पक्ष में निशा के आगम होने पर स्मरण करते हुए खद्योत देव को आरती देने वाले लोगों के पद का भञ्जन किया करते हैं। वहाँ के तटिनी तट बिना किसी विघ्न तथा अञ्जन आलेप कर, वाले होते हैं। ये अपने सौभाग्य के गर्व से देवों अप्सराओं का भी अव-मानन किया करते हैं ॥१९—२१॥

यस्योत्तुङ्गस्य शृङ्गाग्रसङ्गमाअपितारकाः ।
आत्मनोलब्धसामान्याश्चन्द्रेण बहुमन्वते ॥२२॥
मृगाः सर्वेऽपि सततं चरन्तो यत्र सानुषु ।
पाणिप्रणयिनं शम्भोरेणमप्यवजानते ॥२३॥
यस्य पादान्तिकचरैः प्रायेण शबरैरपि ।
निकुम्भकुम्भसादृश्यमयत्नादुपलभ्यते ॥२४॥
किं बहुत्याभ्यसूयन्ते द्वैमातुरकुमारयोः ।
यदङ्करूढास्तरवस्तिर्यञ्चः शबरा अपि ॥२५॥
सिद्ध्यन्त्यद्रिपायस्मिन्कालेत्यक्तकलेवराः ।
वासभदत्वान्माध्यन्तेऽप्युक्षोऽणाद्रिशम्भुना ॥२६॥
अस्य भास्करनामाद्रिः पूर्वस्या दिशि दृश्यते ।
यत्रस्थितः सदा बध्नोसेवते शोणपर्वतम् ॥२७॥
प्रतीच्यां दिशि दण्डाद्रिरिति कश्चिन्महीधरः ।
प्राचेतसस्तदग्रगः सेवतेऽरुणपर्वतम् ॥२८॥

जिस उन्नत गिरि के शृङ्ग (चोटी) के अग्र भाग के साथ में सङ्गम प्राप्त करने वाले भी तारे सामान्य रूप से इसको प्राप्त करते हुए अपने आपको चन्द्रमा से भी अधिक मानते थे। जिस गिरि पर चोटियों में निरन्तर चरण करने वाले मृग भी शम्भु के पाणि का प्रणयी जो मृग था उसको भी अवमानित किया करते थे अर्थात् अपने आपको उससे किसी भी दशा में कम नहीं समझा करते थे। जिस गिरि के पाद

के समीप में सञ्चरण करने वाले शबरी ने भी बिना ही किसी प्रयत्न के त्रिकुम्भ-कुम्भ की सदृशता प्राप्त कर लिया था। अधिक कथन से क्या लाभ है इस गिरि के अङ्क में समारूढ होने वाले तरुवृन्द, तिर्यक् योनि वाले प्राणि वर्ग और शबर भी भगवान शिव के साक्षात् पुत्र गणेश और स्वामी कार्त्तिकेय को भी कुछ नहीं समझा करते हैं। जिस गिरि में काल के प्राप्त होने पर अपने कलेवरों के त्याग करने वाले सिंह व्याघ्र और हाथी उस गिरि में वास के प्रदान होने के कारण से शोणाद्रि शम्भु के द्वारा ध्रुव माने जाया करते हैं।२२—२६। भास्कर नाम वाला पर्वत इस गिरि की पूर्व दिशा में दिखलाई दिया करता है जहाँ पर सदा अवस्थित हुआ वज्री (इन्द्र) शोण पर्वत का सेवन किया करते हैं। इसकी पश्चिम दिशा में कोई दण्डाद्रि नाम वाला पर्वत स्थित है। उसकी शिखर पर समवस्थित होकर प्राचेतस अरुण पर्वत की सेवा किया करते हैं।२७—२८।

दक्षिणस्यां च शोणाद्रेरद्रिरस्त्यमराचलः ।
कालः शोणाद्रिसेवार्थमध्यास्ते तदधित्यकाम् ।२९।
उत्तरेऽस्मिन्महिद्भागे सिद्धाध्यासितकन्दरः ।
विराजतेत्रिशूलाद्रिः श्रीदेनपरिपालितः ।३०।
तत्पर्यन्तप्रभूतानामन्येषामपि भूभृताम् ।
तटकेऽन्तपरे चैव दिक्पालाः पर्युपासते ।३१।
धारिता येन सततं सर्वेऽपि धरणीरुहाः ।
आराधनादभ्यधिकमधिगच्छति वैभवम् ।३२।
यस्मिन्गिरीशेसंदृष्टे मेनातुहिनभूभृतोः ।
समानसम्बन्ध तया प्रमोदो वर्द्धतेतराम् ।३३।
तरुपल्लवलक्षेण लक्ष्यमाणजटाधरः ।
स्थावरोऽयं स्वयं शम्भुरिहेशः इव जङ्गमः ।३४।

ज्योतिष्मत्तोयशृङ्गस्य द्विपार्श्वस्थेन्दुभास्करः ।
व्यनक्ति स्वस्य लोकेभ्यस्तेजस्त्रिनयनेत्रताम् ।३५।
वर्षासु शिखराधस्तादभितोलवलाहकः ।
विराजते यः कण्ठेन कालकूटमिवोद्वहन् ।३६।

शोणाद्रि की दक्षिण दिशा में एक अमराचल नाम वाला अद्रि है । काम इसकी अधित्यका में शोणाद्रि का सेवन करने के विराजमान रहा करता है ।२९। इसके उत्तर दिशा के भाग में सिद्धों के द्वारा अध्या-सित कन्दराओं वाला श्रीद के द्वारा परिपालित त्रिशूलाद्रि विराजमान है । इसके पर्यन्त भाग में होने वाले अन्य भी पर्वतों के तत्प्रदेशों में दूसरे दिक्पाल उपासना किया करते हैं । जिसने निरन्तर सभी धरणी रुहों को धारण किये हैं वे माराधना से भी अधिक वैभव को प्राप्त किया करते हैं । भगवान गिरीश के द्वारा जिसके देखे जाने पर समान सम्बन्ध होने के कारण मेना और हिमवान् पर्वत का प्रमोद और अधिक बढ जाया करता है । तरुओं के पल्लवों के लता से नदयमान जटाधर स्था-वर यह शम्भु स्वयं यहाँ पर जङ्गम ईश की भाँति विराजमान हैं। ज्योति से युक्त तोय शृ ग के दोनों पार्श्व भागों में स्थित चन्द्र और भास्कर वाला उसका अपना तेज लोकों के लिए तीन नेत्रों का होना व्यक्त किया करता है ।३० — ३६।

सहस्रपादः साहस्रशीर्षो यः पर्वतेश्वरः ।
उक्तो न केवलं श्रुत्या साक्षादप्युपलक्ष्यते ।३७।
शिरोलीनामरसरित्स्रोताः प्राशिति नाद्भुतम् ।
गिरीशोऽप्यसावपि य. श्रृङ्गलीनानेकसरिद्गणः ।३८।
आसादितापकटकः शारदैर्यैः पयोधरैः ।
विडम्बयति गोश्रेष्ठमाल्द्धवृषपुङ्गवम् ।३९।
यत्र शृङ्गाग्रसंल्लग्नसंल्लग्नीललोहितः ।

सुदुर्गमत्वादुग्रत्वमपि धत्ते न नामतः ।
क्षुद्रा सरीसृपा यत्र कटकेषु कृतास्पदाः ॥४१॥
तक्षकानन्तसर्पाद्यैः स्पर्द्धन्ते भुजगेश्वरैः ।
अष्टाभिर्योऽभितः कोणैराविर्भूतो विभूतिभिः ॥४२॥

वर्षा काल के अवसरों में इसके शिखर के नीचे के भाग में अभिनील वलाहक विराजमान रहा करता है जो कंठ के द्वारा कालकूट विष को ही उद्वहन करने वाला प्रतीत हुआ करता है । सहस्र पादों वाला और सहस्र शीर्षों वाला जो यह पर्वतेश्वर है वह केवल श्रुति के द्वारा ही नहीं कहा गया है यहाँ पर यह साक्षात् उपलक्षित हुआ करता है । अमरों की सरिता भागीरथी गंगा भगवान शिव के शिर में लीन है और पहिले स्त्रोत भी थे—यह बात कुछ भी अद्भुत नहीं है । आज भी गिरीश जो हैं उनके शृंगों में अनेक सरिताओं के समुदाय लीन हैं । ।३६।३७।३८। शरत्काल के मेघों से जो आच्छादित उपकारक वाला होता है वह समारूढ़ धूर्यों में वरिष्ठ गोश्रेष्ठ को ही विडम्बना किया करता है ।३९। जिसके शृंगों के अग्रभाग में नील लोहित संलग्न रहते हैं उस समय में रुप वरता होने से स्थाणुत्व और गहनता होने से भीमता और सुदुर्गम होने के कारण उग्रता को यह धारण किया करता है । केवल नाम से ही नहीं प्रत्युत वस्तुतः इसका स्वरूप उग्र हो जाया करता है । जहाँ पर क्षुद्र सरीसृप (सर्प) कटकों में आस्पद बनाने वाले हैं जो कि भुजगेश्वर तक्षक एवं अनन्त सर्प आदि के साथ स्पर्धा किया करते हैं । जो कोनों और आठ कोणों से और विभूतियों से आविर्भूत रहा करता है ।४०।४१।४२।

सुस्पष्टं विदिशन्तीव स्वकीयामष्टमूर्तिताम् ।
येष्वर्का (आद्या) शक्तिरग्निश्चयोरिडापिङ्गलयोः स्वयम् ॥४३॥
शिवस्यशृङ्गतो मध्येमुपस्नाकमलापगा ।
ज्योतिः स्तम्भस्वरूपस्यमूलाग्रेयस्यचोद्यमुम् ॥४४॥

कोलहंसाकृतीनाले ब्रह्मविष्णू बभूवतु: ।
ताभ्यां च प्रार्थित: शम्भुस्तस्मिन्सांनिध्यवानभूत् ।४५।
अरुणाचलनाथस्य श्रमन: प्रमदै: समम् ।
गौतमस्तत्र योगीन्द्र: सहस्रं परिवत्सरान् ।४६।

तप्त्वा तपांसि तीव्राणि साक्षात्चक्रे सदाशिवम् ।
शैलेन्द्रशैलकन्यापि तत्र कृत्वा तप: पुरा ।४७।
अलब्धवामदेहार्द्धं मन्मथारे: प्रसेदुष: ।
गौर्या प्रतिष्ठितं तत्र प्रवालाद्रीश्वराभिधम् ।४८।

लिङ्गं भोगप्रदं पुंसां कैवल्याय प्रकल्पते ।
तत्र गौरीनिदेशेन दुर्गा महिषमर्दिनी ।४९।

बहुत ही स्पष्ट रूप से यह अपनी मष्ट मूर्तियों द्वारा होना मानों प्रकट किया करता है । माया शक्ति तरङ्गिणी ये दोनों स्वय इडा और पिंगला है । शिव के शृंग से मध्य मे कमला आपगा (नदी) सुषुम्ना है । जिस ज्योति: स्तम्भ स्वरूप के मूलाग्र मे देखने के लिए है ।४३।४४। वहाँ पर कोल और हंस की आकृति वाले ब्रह्मा तथा विष्णु हुए थे । उनके द्वारा प्रार्थना किए हुये भगवान शम्भु ने उसमे सान्निध्य किया था ।४५। वहाँ पर योगीन्द्र गौतम ऋषि श्रमदों के साथ अरुणाचल नाथ धाम'वाले प्रभु के शरण में सहस्र परिवत्सर तक तपश्च हुआ था । इसने अति तीव्र तपश्चर्या करके भगवान सदाशिव प्रभु का साक्षात्कार प्राप्त किया था । वहाँ पर पहिले शालेय शैल की अर्थात् हिमवान् पर्वत की कन्या ने तप करके समवस्थित काम के नाशक शिव के वामदेह के अर्ध भाग को प्राप्त किया था । वहाँ पर प्रवाल से ईश्वर नामधारी की गौरी ने प्रतिष्ठा की थी । वह भगवान शिव का लिंग पुरुषों को भोगों का प्रदान करने वाला था और कैवल्य (मोक्ष) की प्राप्ति के लिए भी प्रकल्पित होता है । वहाँ पर गौरी के निदेश से दुर्गा महिषासुर के मर्दन करने वाली हुई थी ।४६-४९।

साक्षाद्भूय सतां दत्ते मन्त्रसिद्धिमविघ्नतः ।
खङ्गतीर्थमितिख्यातं तत्र गौर्याश्रमेनवम् ।५०।
सकृन्निमज्जनान्नृणां पञ्चपातकनाशनम् ।
दुर्गया चार्चितं लिङ्गं पापनाशननामकम् ।५१।
सकृत्प्रणाममात्रेण सर्वपापप्रणाशनम् ।
तत्र वज्राङ्गदो राजा वित्तसारो व्यतिक्रमात् ।५२।
पुनस्तद्भक्तिमाहात्म्याच्छिवसायुज्यमाप्तवान् ।
तस्यप्रदक्षिणेनैवकान्तिशालिकलाधरौ ।५३।
विद्याधरेश्वरौ मुक्तौ दुर्वासः शापबन्धनात् ।
नास्ति शोणाद्रितः क्षेत्रं नास्ति पञ्चाक्षरान्मनुः ।५४।
नास्ति माहेश्वराद्धर्मो नास्ति देवो महेश्वरात् ।
नास्ति ज्ञानं शिवज्ञानान्नास्ति श्रीरुद्रतः श्रुतिः ।५५।
नास्ति शैवाग्रणीविप्राणांनास्ति रक्षा विभूतितः ।
नास्ति भक्तेः सदाचारो नास्ति रक्षाकराद्गुरः ।५६।

यह देवी साक्षात् होकर सत्पुरुषों को बिना किसी विघ्न बाधा के मन्त्रों की सिद्धि प्रदान किया करती है। वहाँ पर उस गौरी के आश्रम में नूतन खग तीर्थ इस नाम से विख्यात हुआ था।५०। वहाँ पर एक ही बार निमज्जन करने से मनुष्यों के पाँच पातकों का विनाश हो जाया करता है। दुर्गादेवी के द्वारा अर्चना किया हुआ वह लिंग पाप नाशन नाम वाला होता है। एक ही बार प्रणाम कर देने मात्र से यह सब प्रकार के पापों का नाश करने वाला होता है। वहाँ पर वज्राङ्गद राजा वित्तसार व्यतिक्रम से फिर उसकी भक्ति के माहात्म्य से भगवान शिव की सायुज्यता को प्राप्त करने वाला हो गया था। उसकी प्रदक्षिणा से ही कान्तिशाली और कलाधर ये दोनों विद्या धरेश्वर दुर्वासा के शाप के बन्धन से मुक्त हो गए थे। शोणाद्रि से अधिक उत्तम कोई भी क्षेत्र नहीं है और पञ्चाक्षरी (ओं नमः शिवाय, मन्त्र से अधिक कोई

भी अन्य मन्त्र नहीं है ।५१—५४। माहेश्वर से अधिक उत्तम अन्य कोई भी धर्म नहीं है। और देव महेश्वर से बड़ा अन्य कोई भी देव नहीं है। शिव के ज्ञान से बड़ा अन्य कोई भी ज्ञान नहीं है और श्री रुद्र से बड़ी अन्य कोई भी श्रुति नहीं है ।५५। विष्णु से बड़ा अन्य कोई अग्रणी शैव नहीं है और विभूति से अधिक कोई भी रक्षा नहीं है। भक्ति से बड़ा कोई अन्य सदाचार नहीं है और रक्षा करने वाले से बड़ा कोई अन्य गुरु नहीं ।५५—५६।

नास्ति रुद्राक्षतो भूषा नास्ति शास्त्रं शिवागमात् ।
नास्ति बिल्वदलात्पत्रं नास्ति पुण्यं सुवर्णकात् ।५७।
नास्ति वैराग्यतः सौख्यं नास्ति मुक्तेः परं पदम् ।
नारुणाद्रेः समो मेरुर्न कैलासो न मन्दरः ।५८।
ते निवासा गिरिशस्य सोऽयन्तु गिरीशः स्वयम् ।५९।
इति वदति शिलादनन्दने मुदितमनाः स मृकण्डुनन्दनः ।
पुनरपि बहुशः प्रणम्य तं नाकतमनाः भवता व्यजिज्ञपत् ।६०
किं किं नृणां कर्म भवाय जायते ।
कथं नु तत्संस्कार श्रूयते ।
तेषां च तेषां च कथं प्रमितिक्रिया
कथं न तत्त्वमम कथ्यतामिति ।६१।

रुद्राक्ष के समान अन्य कोई भी भूषा (आभूषण) नहीं है और शिव के आगम से अधिक बड़ा कोई भी शास्त्र नहीं है। बिल्व दल से अधिक महिमा वाला कोई भी पत्र नहीं है और सुवर्णक से अधिक कोई महान पुण्य नहीं है ।५७। इस जगत् के वैराग्य से अधिक अन्य कोई भी सुख नहीं है और जन्म-मरण के बारम्बार आवागमन से छुटकारा दिलाने वाली मुक्ति से बड़ा अन्य कोई भी परम पद नहीं है। इस अरुण पर्वत के समान न मेरु है, न कैलास है और न मन्दराचल ही है ।५८। वे सभी पर्वत भगवान गिरीश के निवास स्थान होने के

कारण इतने अधिक महत्ववाले हुए है और यह अरुणाचल तो स्वय ही साक्षात् गिरीश है ।५६। इस तरह से शिलाद नन्दन के यह कहने पर वह मृकण्डु के पुत्र अत्यन्त ही प्रसन्न मन वाले हो गये थे और फिर भी उनको बहुत बार प्रणाम करके चकित मन वाले होते हुए उनसे मार्कण्डेय मुनि ने जिज्ञासा की थी ।६०। हे भगवन् ! कौन-कौन से कर्म ऐसे हैं जो मनुष्यों को ससार के बन्धन मे डाल देने वाले होते हैं और कौन से कर्म ऐसे होते हैं जो मनुष्यों को उन-उन नरको में डाल दिया करते हैं । उन कर्मों की क्या-क्या प्रतिक्रियायें होती हैं जिनके करने से उन समस्त घोर कष्टों से मनुष्यो का छुटकारा हुआ करता है—यह सभी आप महती कृपा करके मुझे बतलाइये ।६१।

॥ माहेश्वर खण्ड समाप्त ॥

स्कन्द पुराण

वैष्णव खण्ड

२०—वेङ्कटाचल माहात्म्य

पावनेनैमिषारण्ये शौनकाद्या महर्षयः ।
चक्रिरे लोकरक्षार्थं सत्र द्वादशवार्षिकम् ।१।
तानभ्यगच्छत्कथको व्यासशिष्यो महामतिः ।
मुनिप्रख्यातनामा रोमहर्षणसम्भवः ।२।
सम्यगभ्यर्चितस्तैरुपाभूतः पौराणिकोत्तमः ।
कथयामास तद्दिव्यंपुराणंस्कन्दनामकम् ।३।
सृष्टिसंहारवंशानांवंशानुचरितस्य च ।
कथांमन्वन्तराणां च विस्तरात्स न्यवेदयत् ।४।
कथास्तीर्थप्रभावाणां श्रुत्वा ते मुनिपुङ्गवाः ।
ऊचरे वचिनसूतंकथाश्रवणकाङ्क्षया ।५।
रोमहर्षण सर्वज्ञ पुराणार्थविशारद ! ।
माहात्म्यंश्रोतुमिच्छामोगिरीन्द्राणां महीतले ।६।
ब्रूहि त्वं नो महाभाग ! के प्रधाना महीधराः ।
एतमेव पुरा प्रश्नपृच्छं जाह्नवीतटे ।
व्यास मुनिवरश्रेष्ठं सोऽब्रवीन्मे गुरूत्तमः ।७।

लोकों की रक्षा के लिए बारह वर्ष में पूर्ण होने वाला ए
यज्ञ किया था ।१। उनके समीप में श्री व्यास देव का शिष्य महा

मतिमान् कथायें कहने वाले, रोमहर्षण से समुत्पन्न उग्रश्रवा मुनि समागत हुए थे।२। पौराणिकों में परम श्रेष्ठ सूतजी उनके बहुत अधिक अभ्यर्चित हुए थे। फिर उन श्री सूतजी ने अत्यन्त दिव्य स्कन्द नामक पुराण को कहा था।३। सृष्टि, संहार, वंशों का वर्णन तथा वंशों के अनुचरित का वर्णन और मन्वन्तरों का विस्तार पूर्वक वर्णन उनने निवेदित किया था।४। उन मुनि पुङ्गवों ने तीर्थों के प्रभावों की कथा का श्रवण करके उन वशी श्री सूतजी से विशेष रूप से श्रवण करने की इच्छा से यह कहा था।५। ऋषि वृन्द ने कहा—हे रोमहर्षण, आप तो सर्वज्ञ हैं और पुराणों के अर्थ के ज्ञान के महान मनीषी हैं। हम लोग सब इस महीतल में गिरीन्द्रों के माहात्म्य को श्रवण करने की इच्छा करते हैं। हे महाभाग ! आप हमको यह बतलाइए कि कौन से महीधर प्रधान है ? श्री सूतजी ने कहा पहिले जाह्नवी नदी के तट पर यह ही प्रश्न मुनिवरों में परम श्रेष्ठ श्री व्यास देव जी से पूछा था। उन गुरुदेव ने मुझसे कहा था।६।७।

पुरा देवयुगे सूत नारदो मुनिसत्तमः ।
सुमेरुशिखरं गत्वा नानारत्नसुशोभितम् ।८।
तन्मध्येविपुलं दीप्तं ब्रह्मणो दिव्यमालयम् ।
दृष्ट्वा तस्योत्तरे देशे पिप्पलद्रुममुत्तमम् ।९।
सहस्रयोजनायाम विस्तीर्णं द्विगुणं तथा ।
तन्मूलेमण्डपंदिव्यंनानारत्नसमन्वितम् ।१०।
पद्मरागमणिस्तम्भै. मङ्गलैः समलङ्कृतम् ।
वैडूर्यमुक्तामणिभिः कृतस्वस्तिकमालितम् ।११।
नवरत्नमयाकीर्णं दिव्यतोरणशोभितम् ।
मृगपक्षिभिराकीर्णं नवरत्नमयैः शुभैः ।१२।
पुष्परागमहाद्वारं मत्नभूमितगोपुरम् ।
इन्द्रनीलवज्रमुक्तालवाटद्वयशोभितम् ।१३।

प्रविश्याऽसौ ददर्शान्तिदिव्यमौक्तिकमण्डपम् ।
वैडूर्यवेदिकं तुङ्गमारुरोह महामुनिः ॥१४॥

श्री महर्षि व्यास जी कहा था—हे सूत ! पहिले पुरातन समय मे मुनिगण मे परम श्रेष्ठ देवर्षि नारद जी उस देव युग में नाना भाँति सुन्दर रत्नो से सुशोभित सुमेरु पर्वत की शिखर पर जाकर उसके मध्य में विशाल एवं दीप्तिमान ब्रह्माजी का एक दिव्य आलय उन्होंने देखा था उसके उत्तर दिग्भाग में एक उत्तम पीपल का द्रुम था। उस पीपल के वृक्ष की ऊँचाई एक सहस्र योजन की तथा इससे दुगुना उसका विस्तार था। उस वृक्ष के मूल भाग मे एक परम दिव्य मण्डप था जो अनेक प्रकार के रत्नो से युक्त था वह मडप सहस्रों ही पद्मराग मणियो से भली-भाँति अलङ्कृत था और वैडूर्य मणि और मुक्ता मोती। ओ से उसकी स्वस्तिक मालिका की हुई थी।८—११। नो प्रकार के रत्नो से वह समाकीर्ण था और दिव्य तोरणो से परम शोभा युक्त था। नवरत्नों से परिपूर्ण मति शुभ मृग और पक्षियो से भी वह संकुल था।१२। पुष्पराग मणियों से उसका महाद्वार निर्मित हो रहा था और उसका गोपुर मरकत मणिमय था। भली-भाँति दीप्ति से युक्त वज्र (हीरा) अच्छे सुरचित दो किवाड़ों से वह भी शोभा वाला था।१३। उनने उसमें अन्दर प्रवेश करके उस परम दिव्य मौलिक मडप को देखा था जिसमे वैडूर्य मणियो से एक वेदिका बनी हुई थी। उस उच्च स्थान पर वह महामुनि चढ गये थे।१४।

तन्मध्ये तुङ्गमतुलं वामुपादविराजितम् ।
ददर्श मुक्तासङ्कीर्णं सिंहासनं महाद्युति ।१५।
तन्मध्ये पुष्करंदिव्यंसहस्रदलशोभितम् ।
श्वेतंचन्द्रसहस्राभंकर्णिकाकेसरोज्ज्वलम् ।१६।
तस्य मध्ये समासीनं पूर्णचन्द्रायुतप्रभम् ।
कैलासपर्वताकारं सुन्दरं पुरुषाकृतिम् ।१७।

चतुर्बाहुमुदाराङ्गं वराहवदनं शुभम् ।
शङ्खचक्राभयवरान्बिभ्राणं पुरुषोत्तमम् ।१८।
पीताम्बरधरं देवं पुण्डरीकायतेक्षणम् ।
पूर्णेन्दुसौम्यवदनं धूपगन्धिमुखाम्बुजम् ।१९।
सामध्वनिं यज्ञमूर्तिं स्रुवतुण्डं स्रुवनासिकम् ।
क्षीरसागरसङ्काशं किरीटोज्ज्वलिताननम् ।२०।
श्रीवत्सवक्षसं शुभ्रयज्ञसूत्रविराजितम् ।
कौस्तुभश्रीसमुद्द्योतं समुन्नतमहोरसम् ।२१।

उसके मध्य भाग में अत्युच्च, अतुल, मुक्ताओं से संकीर्ण, महान् द्युति से सुसम्पन्न आठ पादों से विराजित एक सिंहासन देखा था। उसके मध्य में एक सहस्र दलों से शोभा वाला परम दिव्य पुष्कर था जो सहस्र श्वेत चन्द्रों की माला के सदृश आभा वाला था और कर्णिका की केसरों से अतीव समुज्ज्वल था। उसके मध्य में अयुत पूर्ण चन्द्रों की प्रभा से युक्त, कैलास पर्वत के सदृश आकार वाले, परम सुन्दर पुरुष के तुल्य आकृति वाले को समासीन देखा था। उनके चार बाहुयें थीं—परम उदार अङ्ग था और परम शुभ वराह के जैसा मुख था। शङ्ख, चक्र और अभय दान के वर को धारण करने वाले परम उत्तम पुरुष थे।१५-१८। वह महापुरुष पीताम्बर धारी थे और वह देव पुण्डरीक (कमल) के समान विशाल नेत्रों वाले थे। पूर्ण चन्द्र और तुल्य सौम्य मुख से युक्त तथा धूप की गन्ध से समन्वित मुख कमल वाले थे।१९। साम वेद की ध्वनि से युक्त, यज्ञ मूर्ति, स्रुक् तुण्ड वाले और स्रुवा के समान नासिका वाले थे। क्षीर सागर के समान तथा किरीट से समुज्ज्वलित आनन (मुख) वाले थे। उनके वक्षःस्थल पर श्री वत्स का शुभ चिह्न था और अतीव शुभ्र यज्ञ सूत्र से शोभायमान थे। कौस्तुभ मणि की श्री की समुद्योति से सम्पन्न थे तथा समुन्नत एवं महान् उरःस्थल वाले थे।२०-२१।

जाम्बूनदमयैर्दिव्यैः सुरत्नाभरणैर्युतम् ।
विद्युन्मालापरिक्षिप्तशरन्मेघमिवोज्ज्वलम् ।२२।
वामपादतलाक्रान्तपादपीठविराजितम् ।
कटकांगदकेयूरकुण्डलोज्ज्वलितं सदा ।२३।
चतुर्मुखवसिष्ठात्रिमार्कण्डेयैर्मुनीश्वरैः ।
भृग्वादिभिरनेकैश्च सेव्यमानमहर्निशम् ।२४।
इन्द्रादिलोकपालैश्च गन्धर्वाप्सरसां गणैः ।
सेवितं देवदेवेशं प्रणिपत्याभिगम्य च ।२५।
दिव्यैरुपनिषद्भागैरभिष्टूय धराधरम् ।
नारदः परमप्रीतः स्थितो देवस्य सन्निधौ ।२६।
एतस्मिन्नन्तरेचाभूद्दिव्यदुन्दुभिनिःस्वनः ।२७।

जाम्बुनद (सुवर्ण) से पूर्ण, परम दिव्य और सुन्दर रत्नों वाले आभरणों से शोभा वाले थे उस समय उनकी शोभा ऐसी ही हो रही थी जैसे विद्युन्मालाओं से परिक्षिप्त शरत्काल का उज्ज्वल मेघ ही विराजमान हो । वामपाद से समाक्रान्त पादपीठ पर विराजमान थे और सर्वदा सुवर्ण रचित कटक, अङ्गद, केयूर और कुण्डलों से समुज्ज्वलित थे । ब्रह्मा, वसिष्ठ, अत्रि और मार्कण्डेय मुनीश्वरों से तथा भृगु आदि अनेक महापुरुषों के द्वारा अहर्निश सेव्यमान थे । इन्द्र प्रभृति लोकपालों के द्वारा तथा गन्धर्व और अप्सराओं के गणों के द्वारा वे देवों के भी देवेश्वर सेवित थे जो उनको बारम्बार अभिगमन करके प्रणाम कर रहे थे । उन धराधर देव की देवर्षि नारद जी ने दिव्य उपनिषद्भागों से स्तवन किया था । वह परम प्रसन्न होते हुए उन देव की सन्निधि में ही स्थित हो गये थे । इस बीच में परम दिव्य दुन्दुभियों की ध्वनि वहाँ पर हुई थी ।२२—२७।

ततस्समागता देवी धरणी सखिसंयुता ।
सरत्नसागराकारदिव्याम्बरसमुज्ज्वला ।२८।

सुमेरुमन्दराकारस्तनभारावनामिता ।
नवदूर्वादलश्यामा सर्वाभरणभूषिता ।२९।
इलया वै पिंगलया सखीभ्यां च समन्विता ।
ततस्ताभ्यां समानीतं पुष्पाणां निचयं मही ।३०।
श्रीमद्वराहदेवस्य पादमूले विकीर्य च ।
प्रणम्य देवदेवेशं कृताञ्जलिपुटा स्थिता ।३१।
तां देवीं श्रीवराहोऽपि ह्यालिङ्ग्याङ्के निधाय च ।३२।
पप्रच्छ कुशलं पृथ्वीं प्रीतिप्रवणमानसः ।३३।
त्वां निवेश्य महादेवि ! शेषशीर्षे सुखावहे ।
लोके त्वयि निवेश्यैवं त्वत्सहायान्धराधरान् ।
इहाऽऽगतोऽस्म्यहं देवि ! किमर्थं त्वमिहाऽऽगता ।३४।

इसके अनन्तर वहाँ पर सखियों से समन्वित धरणी देवी समागत हो गई थी जो रत्नों के सहित सागर के समान आकार वाली तथा दिव्य अम्बरों से समुज्ज्वल वेष वाली थी। सुमेरु और मन्दर पर्वतों के आकार वाले स्तनों के भार से वह धरणी देवी अवनमित हो रही थी। नवीन दूर्वा दल के समान वर्ण वाली श्यामा और सब प्रकार के आभूषणों से विभूषित थी ।२८—२९। इला और पिंगला नामधारिणी दो सखियों के साथ थी। इसके अनन्तर वह मही उन दोनों सखियों के द्वारा पुष्पों के निचय से समीप में प्राप्त की गई थी अर्थात् सखियों के द्वारा पुष्पों का समूह उस धरणी देवी के समीप में उपस्थित किया गया था। उन पुष्पों के समूह को धरणी देवी ने श्रीमान् वराह देव के चरणों के मूल में विकीर्ण कर दिया था और उन देवों के देवेश्वर प्रभु को वह प्रणाम करके दोनों हाथों को जोड़कर वहीं पर स्थित हो गई थी। श्री वराह देव ने भी उस देवी का समालिंगन करके उसको अपनी गोद में बिठा लिया था। फिर परम प्रीति से प्रवण मन वाले देवेश्वर ने उस धरणी से कुशल पूछा था। श्री वराह देव ने कहा—हे देवि ! परम

सुखावह शेष के मस्तक पर निवेशित करके और तेरे ऊपर लोक को निवेशित करके तथा तेरे सहायक धराधरों को निवेशित करके हे देवि ! मैं यहाँ पर समागत हो गया हूं। अब आप यहाँ पर किस प्रयोजन से आई हैं।३०—३४।

मां समुद्धृत्य पातालात्सहस्रफणशोभिते ।
रत्नपीठ इवोत्तुङ्गे सरत्नेऽनन्तमूर्धनि ।
कृत्वा मां सुस्थिरां देव ! भूधरांश्च निवेश्य च।३५।
मद्धारणक्षमान्पुण्यांस्त्वम्मयान्पुरुषोत्तम ।
तेषु मुख्यान्महाबाहो मदाधारान्वदस्व मे।३६।
सुमेरुर्हिमवान्विन्ध्यो मन्दरो गन्धमादनः ।
सालग्रामश्चित्रकूटो माल्यवान्पारियात्रकः।३७।
महेन्द्रो मलयः सह्यः सिंहाद्रिरपि रैवतः ।
मेरुपुत्रोऽञ्जनो नाम शैलः स्वर्णमयो महान्।३८।
एते शैलवराः सर्वे त्वदाधारा वसुन्धरे ।
ये मया देवसङ्घैश्च ऋषिसङ्घैश्च सेविताः।३९।
एतेषु प्रवरान्वक्ष्ये तत्त्वतः शृणु मामके ! ।
सालग्रामश्च सिंहाद्रिश्शैलेन्द्रो गन्धमादनः ।४०।
एते शैलवरा देवि दिशि हैमवती स्थिताः ।
दक्षिणस्यां प्रतीतांस्तु वदये शैलान्वसुन्धरे ।४१।
अरुणाद्रिर्हस्तिशैलो गृध्राद्रिर्घटिकाचलः ।
एते शैलवराः सर्वे क्षीरनद्यास्तिमांपगाः ।४२।

पृथिवी ने कहा—आपने मुझको पाताल से समुद्धृत करके सहस्रों फनों से शोभा वाले रत्न निर्मित पीठ की भाँति अति उत्तुङ्ग (उन्नत) रत्न सहित अनन्त के मस्तक पर हे देव ! आप मुझको सुस्थिर करके तथा भूधरों को मेरे ऊपर निवेशित कर चुके हैं। हे पुरुषोत्तम ! ये भूधर परम पुण्यमय हैं—मेरे धारण करने के क्षम हैं और आपसे

परिपूर्ण हैं। हे महाबाहो ? उनमें सब प्रार मेरे आधार भूत मुख्य जो भी हों उनको मुझे बतलाने का कृपा कीजिए।२५।२६। श्री वराह देव ने कहा—हे वसुन्धरे ! सुमेरु, हिमवान्, विन्ध्य, मन्दर, गन्धमादन, सालग्राम, चित्रकूट, माल्यवान्, पारियात्रिक, महेन्द्र, मलय, मह्य, सिंहाद्रि, रैवत, मेरुपुत्र, अञ्जन नाम वाला शैल जो स्वर्ण मय और महान् है। ये सब परम वरिष्ठ शैल हैं जो कि आपके आधार हैं। ये वे शैल हैं जिनका सेवन मैंने स्वयं तथा देवों के समुदायों ने एवं ऋषियों के समूह ने किया है। हे माधवि ! इनमें भी जो परम प्रवर हैं उनको मैं तात्त्विक रूप से बतलाऊँगा, उनका आप सब श्रवण करो। साल-ग्राम, सिंहाद्रि और गन्धमादन शैलेन्द्र हैं। हे देवि ! ये वरिष्ठ शैल हैं जो हैमवती दिशा में समाश्रित हैं। हे वसुन्धरे ! दक्षिण दिशा में जो प्रतीत होता है उन शैलों को भी बतलाता हूँ—अरुणाद्रि, हस्ति शैल, गृध्राद्रि, घटिकाचल ये सब श्रेष्ठ शैल हैं जो क्षीर नदी के समीप में गमन करने वाले हैं।३७—४२।

हस्तिशैलाद् त्तरतः पञ्चयोजनमात्रतः ।
सुवर्णमुखरीनाम नदीनाम्प्रवरा नदी ।४३।
तस्या एवोत्तरे तीरे कमलाख्य सरोवरम् ।
तत्तीरे भगवानास्ते शुक्रस्य वरदो हरिः ।४४।
बलभद्रेण संयुक्तः कृष्णोभक्तार्तिनाशन- ।
वैखानसैर्मुनिगणैर्नित्यमाराधिताऽमलैः ।४५।
कमलाह्वयस्य सरस उत्तरे काननोत्तमे ।
क्रोशद्वयार्धमात्रे तु हरिचन्दनशोभित ।
श्रीवेङ्कटाचलो नाम वासुदेवालयो महान् ।४६।
सप्तयोजनविस्तीर्णः शैलेन्द्रायोजनोच्छ्रितः ।
अस्तिस्वर्णमयोदिव्यरत्नसानुसमन्वितः ।४७।
इन्द्राद्या दैवतगणा वसिष्ठाद्यामुनीश्वराः ।

सिद्धाः साध्यास्मरुतो दानवा दैत्यराक्षसाः ।
रम्भाद्या अप्सरः सङ्घा वसन्ति नियतं धरे ! ।४८।

हस्ति शैल से उत्तर दिशा में पाँच योजन परिमाण वाली सुवर्ण मुखरी नाम वाली नदियों में वरिष्ठा एक नदी है। उसी नदी के उत्तर तट पर एक कमल नाम वाला सरोवर है। उसके तीर पर शुक को वरदान प्रदान करने वाले हरि भगवान हैं। बलभद्र से संयुक्त भक्तों की भ्रान्ति का नाश करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण हैं। वे वहाँ पर नित्य ही वैखानस (सन्यासी) और परम विमल मुनिगणों के द्वारा समाराधित होते हैं। उस कमलाख्य सरोवर के उत्तर दिभाग वाले उत्तम वन में केवल ढाई कोस की दूरी पर हरि चन्दन के वृक्षों से सुशोभित वन में श्री वेङ्कटाचल शुभ नाम वाला एक महान् भगवान वासुदेव का आलय है है ।४३-४६। वहाँ पर सात योजन विस्तार वाला और एक योजन ऊँचा एक शैलेन्द्र है। हे देवि ! यह परम पावन रत्नों की शिखरों से समन्वित वह स्वर्णमय है। हे धरे ! वहाँ पर इन्द्र आदि देवगण, वसिष्ठ प्रभृति, मुनिगण, सिद्ध, साध्य, मरुद्गण, दानव, दैत्य, राक्षस, रम्भा आदि अप्सराओं के समुदाय में सब नियत रूप से वहाँ पर निवास किया करते हैं।४५-४८।

तपश्चरन्ति नागाश्च गरुडा. किन्नरास्तथा ।४९।
एतं राघपिताास्तत्र सरितः पुण्यदर्शनाः ।
सरांसि विविधान्यत्र सन्ति दिव्यानि माधवि ।
तीर्थानाञ्चैव सर्वेषां शृणुष्व प्रवराणि वै ।५०।
चक्रतीर्थन्दैवतीर्थ वियद्गङ्गा तथैव च ।
कुमारधारिका तीर्थम्पापनाशनमेव च ।
पाण्डवं नामतीर्थञ्च स्वामिपुष्करिणी तथा ।५१।
सर्वंशानि वराण्याहुर्नारायणगिरौ शुभे ।
एतेषु प्रवरा देवि स्वामिपुष्करिणी शुभा ।५२।

अस्यास्तु पश्चिमे तीरे निवसामि त्वया सहः ।
आस्तेऽस्या दक्षिणे तीरे श्रीनिवासो जगत्पतिः ।५३।
गंगाद्यैः सकलैस्तीर्थैः समासासागराम्बरे ।
त्रैलोक्येयानितीर्थानिसरांसिसरितस्तथा ।
तेषां स्वामित्वमापन्नं धरे ! स्वामिसरोवरे ।५४।
स्वामिपुष्करिणीपुण्यांसेवितुं दिव्यभूधरे ।
वसन्तिसर्वतीर्थानितपासह्यावदामिते ।५५।
षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्येऽस्मिन्भूधरोत्तमे ।
तेषु चात्यन्तमुख्यानि षट् तीर्थानि वसुन्धरे ।५६।
पञ्चाना तीर्थराजाना तुम्बोगर्भं समामहान् ।
गर्भवासभय वसौ स्नातानाम्भूधरोत्तमे ।५७।

वहाँ पर नाग, गरुड़ तथा किन्नर गण तपश्चर्या किया करते हैं। इनसे सेविष्ठित वहाँ पर परम पुण्य दर्शन वाली सरितायें है। हे माधवि ! वहाँ पर अनेक दिव्य सरोवर है। हे देवि ! अब समस्त तीर्थों में जो परम श्रेष्ठ हैं उनका भी श्रवण कर ना ।४६ ५०। चक्र तीर्थ, देव तीर्थ, वियद् गङ्गा, कुमार धारिका, ये तीर्थ पापों के नाश करने वाले हैं। पाण्डव नाम वाला तीर्थ तथा स्वामि पुष्करिणी—ये सात सम शुभ नारायण गिरि में अति श्रेष्ठ तीर्थ हैं। हे देवि ! इन सबमें भी परम शुभा एवं प्रवर स्वामि पुष्करिणी तीर्थ है। इसके पश्चिम तट पर मैं तुम्हारे साथ में निवास किया करता हूँ। इसके दक्षिण तीर पर जगत् के पति श्रीनिवास निवास किया करता है ।५१—५३। वह गंगा आदि समस्त तीर्थों के समान सागराम्बर में है। इस त्रिलोकी में जो भी तीर्थ हैं, सरोवर हैं और सरितायें हैं हे धरे ! स्वामी सरोवर में उन सबका स्वामित्व प्राप्त हो गया है अर्थात् इसने सम्पूर्ण तीर्थों के स्वामी होने का पद प्राप्त कर लिया है। हे दिव्य भूधरे ! परम पुण्य स्वरूपिणी स्वामि पुष्करिणी की सेवा करने के लिए सभी तीर्थ वहाँ

पर निवास किया करते हैं। अब मैं उनकी संख्या भी आपको बतलाता हूँ। इस परम पुण्यमय भूधरोत्तम में छयासठ करोड़ तीर्थ हैं। उनमे भी जो अत्यन्त मुख्य हैं वे हे वसुन्धरे! केवल छै ही तीर्थ हैं।५४-५५। हे भूधरोत्तमे! इन पाँच तीर्थ राजों में तुम्ब महान् गर्भ के समान है। इसमें जो स्नान करने वाले मनुष्य हैं उनके गर्भवास के भय को ध्वंस करने वाले हैं।५७।

षट् तीर्थानिमहाबाहो ! त्वयोक्तानि महीधरे ।
माहात्म्यंवदतेषांमे यथाकालंयथाविधि ।
फलानि तेषु स्नातानां नराणाम्वद भूधर ! ।५८।
नारायणाद्रिमाहात्म्य वदामि शृणु माधवि ।
देवाश्चऋषयश्चैव योगिनः सनकादयः ।५९।
कृतेऽञ्जनाद्रि त्रेतायां नारायणगिरं तथा ।६०।
द्वापरे सिंहशैलञ्च कलौ श्रीवेङ्कटाचलम् ।
प्रवदन्तीह विद्वांसः परमात्मालयंगिरिम् ।६१।
योजनानां सहस्रान्ते द्वीपान्तरगतोऽपि वा ।
यो नमेद्भूधरेन्द्र तद्दिशमुद्दिश्यभक्तितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं स गच्छति ।६२।
तांस्तस्मद्तीर्थमाहात्म्य यथाकालम्वदामि ते ।६३।

धरणी ने कहा—हे महाबाहो! महीधर पर आपने छै तीर्थ बतलाये हैं। काल और विधि के अनुसार उन छै तीर्थों का मुझे माहात्म्य बतलाने की कृपा कीजिए।५८। हे भूधर! उन सों प्रमुख तीर्थों में जो मनुष्य स्नान किया करते हैं उनको क्या फल प्राप्त होते हैं यह भी आप कृपा करके मुझे बतलाइये।५९। श्री वराह भगवान ने कहा—हे माधवि! मैं अब नारायणाद्रि का माहात्म्य तुमको बतलाता हूँ उसका श्रवण करो। समस्त देवगण, सब ऋषि वृन्द, सम्पूर्ण योगीजन और सनक आदि कृतयुग में अञ्जनाद्रि को, त्रेता में नारायण गिरि को,

द्वापर में सिंह शैल को और कलियुग में श्री वेङ्कटाचल को बतलाया करते हैं। यहाँ पर विद्वान् लोग गिरि को परमात्मा आलय करते हैं। एक सहस्र योजनों के भी अन्त में तथा अन्य द्वीप में भी रहते हुए जो कोई इस भूधरेन्द्र को उसकी दिशा मात्र का उद्देश्य ग्रहण करके भक्ति भाव से नमस्कार किया करता है वह समस्त पापों से विनिर्मुक्त होकर सीधे विष्णु लोक को चले जाया करते हैं। उसमें छः तीर्थों का माहात्म्य भी मैं यथाकाल आपको बतलाऊँगा। ६०—६३।

शृणुष्वावहिताभद्रे सर्वपापप्रणाशनम् ।
कुम्भसंस्थेरवौमाघे पौर्णमास्यांमहातिथौ ।६४।
मघानक्षत्रयुक्तायां भूधरेन्द्रे वसुन्धरे ।
कुमारधारिकानाम सरसी लोकपावनी ।६५।
यत्रास्तेपार्वतीसूनुः कार्तिकेयोऽग्निसम्भवः ।
देवसेनासमायुक्त श्रीनिवासार्चकोऽमले ।६६।
तस्यां यः स्नातिमध्याह्ने तस्यपुण्यफलं शृणु ।
गङ्गादिसर्वतीर्थेषु यः स्नातिनियमाद्वरे ।६७।
द्वादशाब्दं जगद्धात्रि ! तत्फलं समवाप्नुयात् ।
योऽन्नं ददाति तत्तीर्थे शक्त्या दक्षिणयान्वितम् ।
स तावत्फलमाप्नोति स्नाने तूक्तं फलं यथा ।६८।
मीनसंस्थे सवितरि पौर्णमासीतिथौ धरे ।
उत्तराफाल्गुनी युक्ते चतुर्थं कालउत्तमे ।६९।
पञ्चानामपि तीर्थानां तुम्बोऽथ गिरिगह्वरे ।
यः स्नाति मनुजो देवि पुनर्गर्भे न जायते ।७०।

हे भद्र ! अब आप बहुत ही सावधान होकर श्रवण करो जो सब प्रकार के पापों का विनाश कर देने वाला है। हे वसुन्धरे ! भूधरेन्द्र में कुम्भ राशि पर रवि के संस्थित होकर, माघ मास में, पूर्णिमा महातिथि में जोकि मघा नक्षत्र से समन्वित हो ऐसे सुयोगों

के प्राप्त होने पर कुमार धारिका नाम वाली सरसी परम लोक पावनी है।६४-६५। जहाँ पर पार्वती के पुत्र, अग्नि से सम्भूत होने वाले कार्तिकेय विराजमान रहा करते हैं। देव सेना से समायुक्त होकर हे कमले! वह भगवान श्रीनिवास की अर्चना करने वाले हैं। इसमें जो भी मध्याह्न के समय में स्नान किया करता है उसके पुण्य-फल का आप अब श्रवण करो। हे धरे! गङ्गा आदि समस्त तीर्थों में जो नियम पूर्वक स्नान किया करता है हे जगद्धात्रि! जो बारह वर्ष तक स्न न करता है उसी फल को वह प्राप्त कर लेता है जो कोई उस तीर्थ में दक्षिणा से युक्त अन्न का दान किया करता है और अपनी शक्ति के अनुसार करता है वह भी उतना ही फल प्राप्त किया करता है जो फल हमने स्नान करने का बतलाया है।६६।६७।६८। हे धरे! सूर्य के मीन राशि पर संस्थित हो जाने पर पौर्णमासी तिथि में जोकि उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त हो चतुर्थ उत्तम काल में पाँचों तीर्थों में प्रमुख गिरि गह्वर तुम्ब तीर्थ में जो स्नान किया करता है हे देवि! वह मनुष्य पुनः गर्भ से नहीं जाया करता है।६९-७०।

अग्निवाहस्थितो भानौ चित्रानक्षत्रसंयुते ।
पूर्णिमास्येतिथौपुण्ये प्रातःकालेतथैवच ।७१।
आकाशगङ्गासरितिस्नातो मोक्षवाप्नुयात् ।७२।
वृषभस्थे रवौ राधे द्वादश्यारविवासरे ।
शुक्लेवाप्यऽथवा कृष्णे पक्षेभौमसमन्विते ।७३।
शुक्ले वाप्यथवा कृष्णे भानुवारेण संयुते ।
पुष्यनक्षत्रसंयुक्ते हस्तर्क्षेण युतेऽपिवा ।७४।
तीर्थे पाण्डवनाम्न्यत्र सन्द्रुवे स्नाति यो नरः ।
नेहदुःखमवाप्नोति परम सुखमश्नुते ।७५।
शुक्ले पक्षेऽथवा कृष्णे याऽर्कवारेण सप्तमी ।
पुष्यनक्षत्रसंयुक्ताहस्तर्क्षेणयुतापिवा ।७६।

तस्यां तिथौ महाभागे पापनाशनसंज्ञके ।
तीर्थेयः स्नाति नियमाद्भूधरेन्द्रस्य मस्तके ।
कोटिजन्मार्जितैः पापैर्मुच्यते स नरोत्तम. ।७७।

अग्नि वाह (मेष) राशि पर सूर्य के आ जाने पर हे धरे ! चित्रा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा परम पुण्य तिथि में प्रात.काल के समय में जो आकाश गगा सरिता में स्नान किया करता है वह मनुष्य निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति कर लेता है ।७१।७२। वृषभ राशि पर सूर्य के संस्थित होने पर अनुराधा नक्षत्र मे रविवार से युक्त द्वादशी तिथि में, शुक्ल पक्ष हो अथवा कृष्ण पक्ष हो भौम वार से युक्त, शुक्ल अथवा कृष्ण पक्ष में रविवार से युक्त में, अथवा पुष्य या हस्त नक्षत्र से युक्त मे पाण्डव नाम वाले तीर्थ मे सङ्कुव में जो मनुष्य स्नान किया करता है वह यहाँ लोक मे किसी भी तरह का कोई दुःख नहीं प्राप्त किया करता है और मृत्यु के पीछे परलोक में भी वह सुखो का ही उपभोग करता है। शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो जो रविवार से युक्त सप्तमी तिथि हो और वह पुष्य या हस्त नक्षत्र से समन्वित हो तो उस तिथि मे हे महाभागे ! इस पापों के विनाश करने वाले तीर्थ मे जो भी स्नान कर लेता है और भूधरेन्द्र के मस्तक में नियम से स्नान किया करता है वह नरों मे परम श्रेष्ठ करोडो जन्मों मे अर्जित किए हुए पापों से विमुक्त हो जाया करता है ।७३-७७।

शृणु देवि परन्त्वन्यमनन्ताख्ये महागिरौ ।
महाव्यालपवापब्ये शिखरे गिरिगह्वरे ।
देवतीर्थमितिख्यातं तटाकमतिशोभनम् ।७८।
तस्मिन्पुण्यतमे देवि ! स्नानकालम्वदामि ते ।७९।
गुरुपुष्ये व्यतीपाते सोमश्रवणके तथा ।
दिनेष्वेतेषु यः स्नाति तस्यपुण्यफलं शृणु ।८०।

यानि कानीह पापानि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ।
तानि सर्वाणि नश्यन्ति देवतीर्थेऽतिपावने ।८१।
पुण्यान्यपि च वर्धन्ते देवतीर्थ निमज्जनात् ।
दीर्घमायुरवाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
अन्ते स्वर्गं समासाद्य चन्द्रलोके महीयते ।८२।
तद्दिनेष्वन्नदो देवि यावज्जीवान्नदो भवेत् ।
अतिगुह्यतमं देवी प्रोक्तवान्तुभ्य वसुन्धरे ।८३।
श्रुत्वाऽथ पृथिवी देवी प्रीतिप्रफुल्लमानसा ।
इष्टाभिर्वाग्भिरतुल तुष्टाव धरणीधरम् ।८४।

हे देवि ! अब आप परम गोपनीय विषय का श्रवण करो । इस अनन्त नाग वाले महान गिरि में मेरे इस दिव्य प्रासाद के वायव्य कोण वाले शिखर में विरि मण्डल में एक देवतीर्थ विख्यात है । वहाँ पर एक अति शोभा से युक्त तड़ाग है । हे देवि ! उस परम पुण्यतम तीर्थ में जो स्नान करने का काल है उसे मैं आपको बतलाता हूँ ।७८।७९। गुरुवार युक्त पुष्य क्षेत्र में, व्यतीपात में, सोमवार से समन्वित श्रवण नक्षत्र में, इन दिनों में जो भी कोई मनुष्य इस तीर्थ में स्नान किया करता है उसके पुण्य-फल का अब श्रवण करो —जो भी कोई पाप होते हैं चाहे वे ज्ञान पूर्वक किए गये हों या अज्ञान में किए गये हों वे सभी पाप इस अति पावन देव तीर्थ में नष्ट हो जाया करते हैं । इस देव तीर्थ में निमज्जन करने से केवल पापों का ही विनाश नहीं होता परन्तु पुण्यों की भी वृद्धि हुआ करती है मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करने से पुत्र-पौत्रों से समन्वित होकर दीर्घ आयु की भी प्राप्ति किया करता है । इस संसार को छोड़कर मृत्यु होने पर अन्त में स्वर्गलोक में पहुँचकर फिर चन्द्र-लोक में प्रतिष्ठित हो जाया करता है ।८०।८१।८२। हे देवि ! उपर्युक्त दिनों में जो अन्न का दान करने वाला है वह यावज्जीवन अन्न का दाता होता है । हे देवि ! मैंने यह अत्यन्त गुह्यतम आपको हे वसुन्धरे !

बतला दिया है ।८३। श्री व्यास देव जी ने कहा—इसके अनन्तर इसका श्रवण करके पृथिवी देवी प्रीति से परम प्रसन्न मन वाली हो गई थी । फिर धरणी ने उन अतुल धरणीधर देव इष्ट वाणियों के द्वारा स्तवन किया था ।८४।

नमस्ते देवदेवेश ! वराहवदनाऽच्युत ।
क्षीरसागरसङ्काश वज्रश्रृङ्ग ! महाभुज ! ।८५।
उद्धृताऽस्मि त्वया देव ! कल्पादौ सागराम्भसः ।
सहस्रबाहुना विष्णो ! धारयामि जगन्त्यहम् ।८६।
अनेकदिव्याभरणयज्ञसूत्रविराजित ! ।
अरुणारुणाम्बरधर दिव्यरत्नविभूषित ।८७।
उद्यद्भानुप्रतीकाश पादपद्म नमोनमः ।
बालचन्द्राभ दंष्ट्राग्रमहाबल पराक्रम ! ।८८।
दिव्यचन्दनलिप्ताग ! तप्तकाञ्चनकुण्डल ! ।
इन्द्रनीलमणिद्योति हेमागदविभूषित ! ।८९।
वज्रदंष्ट्राग्रनिर्भिन्न हिरण्याक्ष महाबल ।
पुण्डरीकाभिरामाक्ष ! भामस्वनमनोहर ।९०।
श्रुतिसीमन्त भूषात्मन्सर्वात्मंश्चारुविक्रम ! ।
चतुराननशम्भुभ्यां वन्दिताऽऽयतलोचन ।९१।

धरणी देवी ने कहा—हे देवों के भी देवेश्वर ! आपको नमस्कार है । आप वराह के समान मुख वाले हैं । हे अच्युत ! आप क्षीरसागर के तुल्य वर्ण वाले हैं । हे वज्रश्रृङ्ग ! आप महान भुजाओं वाले हैं । हे देव ! आपने ही मेरा उद्धार किया था जबकि कल्प के आदि काल में मैं सागर के जल में निमग्न थी । हे विष्णो ! आप तो सहस्र बाहुओं वाले हैं । मैं अब इन जगतों धारण करती हूँ ।८५।८६। आप अनेक दिव्य आभरणों तथा यज्ञ सूत्र से शोभा सम्पन्न होकर विराजमान हैं आप अरुण वर्ण वाले वस्त्रों के धारण करने वाले हैं और परम

दिव्य रत्नों से विभूषित है। आप दीप्यमान सूर्य के सदृश तेज से युक्त हैं आपके चरण कमलों में बारम्बार नमस्कार है। आप बाल चन्द्रमा की आभा के तुल्य आभा वाले हैं और आप अपनी दाढ़ के अग्र भाग में महान् बल और पराक्रम से युक्त हैं। आपके अङ्ग, परम दिव्य चन्दन से लिप्त हैं तथा आप रत्न सुवर्ण के निर्मित कुण्डलों को धारण करने वाले हैं। आपके अंग की दीप्ति इन्द्र नील मणि के तुल्य है। हे देव ! आप सुवर्ण रचित पगड़ी की शोभा वाले हैं। आपने वज्र के तुल्य दाढ़ के अग्रभाग से हिरण्याक्ष को निर्भिन्न कर दिया था। हे महाबल ! आपके नेत्र पुण्डरीक (कमल) के समान परम सुन्दर हैं और आप साम वेद की ध्वनि से परम मनोहर हो रहे हैं। हे श्रुति सीमन्त भूषात्मन् ! आप सभी की आत्मा हैं और आपका विक्रम अतीव सुन्दर है। ब्रह्मा और शम्भु इन दोनों के द्वारा आपकी वन्दना की गई है। आपके परम विशाल नेत्र हैं।८७—९१।

सर्वविद्यामयाकार शब्दातीत नमो नमः।
आनन्दविग्रहाऽनन्त कालकाल नमोनमः।९२।
इति स्तुत्वाऽचला देवी ववन्दे पादयोर्विभुम्।
वन्दमानां समुद्वीक्ष्य देवः फुल्लविलोचनः।९३।
उद्धृत्य धरणीं देवीमालिलिङ्गेऽथबाहुभिः।
आघ्रायधरणीवक्त्रवामाङ्के सन्निवेश्यच।९४।
आरुह्य गरुडंदाल जगाम वृषभाचलम्।
मुनीन्द्रैर्नारदाद्यैश्च स्तूयमानो महीपतिः।९५।
स्वामिपुष्करिणी तीरे पश्चिमे लोकपूजिते।
आस्ते वराहवदनोमुनीन्द्रैस्तत्रपूजितः।
वैखानसमहाभागैर्ह्यतुल्यमहात्मभिः।९६।
स दृष्ट्वा नारदः सूत ! मुनीनामुक्तवान्पुरा।
यदेतदहमश्रौषं तत्र वै मुनिसत्तमाः।९७।

यत्पृष्टोऽहं त्वया सूत माहात्म्यं धरणीभृताम् ।
मया तूक्तं यथाबुद्धि नारदाच्च पुराश्रुतम् ।९८।

हे भगवन ! आप समस्त विद्याओं से परिपूर्ण आकार वाले हैं और शब्दों से परे की वस्तु हैं अर्थात् शब्दों के द्वारा आपका वर्णन नहीं किया जा सकता है। आपके चरणों में बारम्बार नमस्कार है। आपका कोई भी अन्त नहीं है और आपका यह विग्रह पूर्ण आनन्दमय है। आप इस महान् काल के भी काल हैं। आपको पुनः-पुनः मेरा प्रणाम है।९२। इस प्रकार से उस अचला देवी देवेश्वर वराह भगवान की स्तुति करके फिर उसने विभु के चरणों में वन्दना की थी। उस वन्दना करती हुई धरणी देवी को देखकर भगवान वराह देव के लोचन प्रफुल्लित हो गए थे।९३। फिर वराह भगवान उस देवी को अपनी बाहुओं से उठाकर उसका समालिंगन किया था। वराहेश्वर ने धरणी के मुख का आघ्राण करके उसे अपने ही वाम भाग की गोद में बिठा लिया था। इसके अनन्तर वह गरुडेशान पर समारूढ होकर वृषभाचल को चले गए थे। नारद आदि महा मुनीन्द्रों के द्वारा स्तवन किये गए तथा मुनिगणों के द्वारा पूजित होते हुए वराह के समान मुख वाले मही के स्वामी लोकों के द्वारा पूजित उस पश्चिम दिग्भाग वाले स्वामि पुष्करिणी के तट पर विराजमान हैं। वहाँ पर बड़े २ वैखानस, महाभाग ब्रह्मा के तुल्य महात्माओं के द्वारा वे पूजित होते हैं।९४।९५।९६। श्री व्यास देव जी ने कहा—हे सूत ! देवर्षि नारद जी ने पहिले मुनियों से यह कहा था। वहीं पर मुनियों की सभा में यह मैंने भी श्रवण किया था।९७। हे सूत ! तुमने जो मुझसे धरणी धारण करने वाले पर्वतों का माहात्म्य पूछा था वह मैंने जो पहिले नारद जी से श्रवण किया था यथावत् सब तुमको बतला दिया है।९८।

य इदं धर्मसम्वादमावयोः सूत ! पावनम् ।
पठेद्वा देवपुरतो ब्राह्मणानां पुरस्तथा ।९९।

सर्वेषामपिवर्णानांशृण्वतांभक्तिपूर्वकम् ।
स प्रतिष्ठामवाप्नोति पुत्रपौत्रैः समन्वितः ॥१००॥
शृण्वतामपि सर्वेषां यदिष्टं तद्भविष्यति ॥१०१॥
इति मे भगवान्व्यासः प्रोवाच मुनिसेवितः ।
यथाश्रुतं मया पूर्वं कृष्णद्वैपायनाद्गुरोः ॥१०२॥
ततथासर्वमेवाऽत्र मयाप्युक्तं मुनीश्वराः ।
श्रुत्वासूतवचस्त्वित्थंते प्रीतमनसोऽभवन् ॥१०३॥
सूत ! त्वयोक्तं भुवि पर्वतेषु
पुण्येषु पुण्यस्य महीधरस्य ।
माहात्म्यमस्माकमहीन्द्रनाम्नः
पापापहं मोक्षफलप्रदायकम् ॥१०४॥
ततो वृषाद्रिं सम्प्राप्य वराहोधरणीमुनेः ।
किमुक्तवान्वरस्थं स तन्नो ब्रूहि महामते ॥१०५॥

हे सूत ! हमारे आपके दोनों के इस धर्म के सम्वाद को जो कि परम पावन है जो कोई देश अथवा ब्राह्मणों के आगे पढ़ेगा या सभी वर्णों के द्वारा भक्ति भाव के साथ श्रवण करेगा वह पुत्र-पौत्रों से समन्वित होकर परम प्रतिष्ठा को प्राप्त किया करता है। जो इसको सुना करते हैं उन सबको भी उनके अभीष्ट की प्राप्ति हो जाया करती ॥६६॥१००॥१०१॥ श्री सूतजी ने कहा—यह सब मुनियों के द्वारा सेवित भगवान व्यासदेव ने कहा था। मैंने जैसा भी श्रवण किया है पहिले अपने गुरुदेव कृष्ण द्वैपायन व्यास जी से वह सभी उसी प्रकार से हे मुनीश्वरो ! मैंने कहकर आपको बतला दिया है। इस भाँति सूतजी के वचन को सुनकर समस्त मुनीश्वर परम प्रसन्न मन वाले हो गये थे। ऋषिगण ने कहा—हे सूतजी ! आपने इस भूमण्डल में परम पुण्यमय पर्वतों में भी अत्यधिक पुण्यशाली महीधर का जिसका महीन्द्र नाम है, माहात्म्य कहा है। यह माहात्म्य पापों को दूर कर देने वाला और मोक्ष

के फल को प्रदान करने वाला है ।१०२।१०३।१०४। हे महामते ! इसके अनन्तर फिर व भगवान वराह देव धरणी से युक्त होकर वृष पर्वत पर पहुंच कर उन्होंने धरणी देवी से क्या कहा था वह सब आप हमको बतलाने की कृपा करें ।१०५।

२१–श्री वाराह मन्त्राराधन विधि वर्णन

शृणुध्व मुनय सर्वे कथाम्पुण्यां पुरातनीम् ।
वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं कृते पुण्यतमे युगे ।१।
नारायणाद्रौ देवेश निवसन्त क्षमापतिम् ।
वाराहरूपिण देवं धरणी सखिभिर्वृता ।२।
प्रणम्य परिपप्रच्छ रक्तपद्मायतेक्षणम् ।३।
आराध्य.केन मन्त्रेणभवान्प्रीतोभविष्यति ।
त मे वद त्व देवेश यःप्रियो भवतःसदा।४।
जपता सर्वसम्पत्तिकारकं पुत्रपौत्रदम् ।
सार्वभौमत्वदश्चैव कामिना कामदं सदा ।५।
अन्ते यस्त्वत्पदप्राप्ति ददाति नियमात्मनाम् ।
एवम्भूत वद प्रीत्यामयिवाराहमानद ।६।
इ त पृष्टस्तया भूम्या प्राह प्रीतिस्मिताननः ।७।

श्री सूत जी ने कहा—हे मुनिगणो ! अब आप सब लोग परम पुरातनी पुण्यमयी कथा का श्रवण कीजिए । पहिले परम पुण्यतम कृत युग मे वैवस्वत मन्वन्तर मे नारायण नामक पर्वत मे निवास करने वाले भूमि के स्वामी वराह रूपधारी देवेश्वर से जिनके नेत्र रक्त-प्रापत और पद्म के तुल्य थे सखियो से परिवृत धरणी देवी ने विनय पूर्वक प्रमाण करके पूछा था ।१।२।३। धरणी ने कहा हे भगवन् ! किस मन्त्र के द्वारा आराधित होकर आप परम होगे ? हे देवेश्वर ! जो आपको सदा परम प्रिय हो उसी मन्त्र को आप मुझे बतला

दीजिए। वह ऐसा मन्त्र होना चाहिए जिसके जाप करने वाले मनुष्यों को वह सम्पत्ति कर देने वाला हो, पुत्र, पौत्रों को देने वाला हो, सार्वभौमत्व के पद को प्रदान करने वाला हो और जो कामी हों उनकी सदा कामना के देने वाला हो। नियत आत्मा वाले पुरुषों को मन्त्र समय सम्प्राप्त होने पर आपके ही परस्त्री के पद की प्राप्ति प्रदान करने वाला हो। हे मान के प्रदान करने वाले! हे वाराह देव! मुझ पर परम प्रीति करके इस प्रकार के मन्त्र को बतलाइये ।४।५।६। श्री सूत जी ने कहा—इस रीति से धरणी देवी के द्वारा पूछे गये भगवान् वराह देव ने प्रीति से स्मितयुक्त मुख वाले होते हुए कहा था ।७।

शृणु देवि परं गुह्यं सद्यः सम्पत्तिकारकम् ।
भूमिदं पुत्रदं गोप्यमप्रकाश्यकदाचन ।८।
किं च शुश्रूषवे वाच्यं भक्ताय नियतात्मने ।९।
ॐ नमः श्रीवराहाय धरण्युद्धरणाय च ।
वह्निजायासमायुक्तः सदाजप्योमुमुक्षुभिः ।१०।
अयं मन्त्रो धरादेवि सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
ऋषिः सङ्कर्षणः प्रोक्तोदेवता त्वहमेव हि ।११।
छन्दः पङ्क्तिः समाख्याता श्रीबीजं समुदाहृतम् ।
चतुर्लक्षं जपेन्मन्त्रं सद्गुरोर्लब्धवान्मनुः ।१२।
जुहुयात्पायसाज्यम्बंक्षौद्रसर्पिः समन्वितम् ।
अथध्यानम्प्रवक्ष्यामिमनः शुद्धिप्रदायकम् ।१३।

श्री वराह भगवान् ने कहा—हे देवि! परम गोपनीय, तुरन्त ही सम्पत्ति के कर देने वाले, भूमि प्रदान करने वाले, पुत्र देने वाले मन्त्र का श्रवण करो। किन्तु यह अत्यन्त ही गुप्त रखने के योग्य है और किसी भी समय में प्रकाशित करने के योग्य नहीं है। जो परम श्रद्धा से श्रवण करने वाला, नियत आत्मा वाला और भक्त हो उसी को बतलाना चाहिए ।८।९। जो मुक्ति की प्राप्ति करने के इच्छुक हों उन्हें

परम समायुक्त होकर सदा—"ॐ नमो श्री वराहाय धरण्युद्धरणाय वह्नि जाय"—इस मन्त्र का जाप करना चाहिए। हे धरादेवि ! यह मन्त्र सब तरह की सिद्धियों का प्रदान करने वाला इस मन्त्र के ऋषि सङ्कर्षण कहे गये हैं और इसका देवता मैं ही हूँ। इसका छन्द पंक्ति है और श्री इसका बीज है। इस मन्त्र का चार लाख जाप करना चाहिए और किसी सद्गुरु से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करे।१०।११।।१२। शहद और घृत से युक्त पायसान्न (खीर) का हवन करे। इसके उपरान्त मैं इसका ध्यान बतलाता हूँ जो मन की शुद्धि का प्रदा-यक होता है।१३।

शुद्धस्फटिकसंकाशं रक्तपद्मदलेक्षणम्।
वराहवदनं सौम्यं चतुर्बाहुं किरीटिनम्।१४।
श्रीवत्सवक्षसं चक्रशङ्खाभयकराम्बुजम्।
वामाङ्कस्थितया युक्तं त्वया मां सागराम्बरे।१५।
रक्तपीताम्बरधरं रक्ताभरणभूषितम्!
श्रीकूर्मपृष्ठमध्यस्थशेषमूर्त्यब्जसंस्थितम् ।१६।
एवं ध्यात्वा जपेन्मन्त्रं सदा चाष्टोत्तरं शतम्।
सर्वान्कामानवाप्नोति मोक्षञ्चान्ते व्रजेद् ध्रुवम्।१७।
प्रोक्तमन्त्रो ते धरणि यत्पृष्टोऽहं त्वयाऽमले।
अतः किन्ते व्यवसितम्ब्रूहि तद्विमलानने।१८।
एतच्छ्रुत्वा ततो भूमिः पप्रच्छ पुनरेव तम्।
केनवाऽनुष्ठितन्देव पुराप्राप्तम्फलञ्च किम्।१९।
इति पृष्टः पुनर्देवः श्रीवराहोऽब्रवीदिदम्।
पुरा कृतयुगे देवि धर्मोनाम मनुर्महान्।२०।
ब्रह्मणोऽमुं मनुं लब्ध्वा जप्त्वाऽस्मिन्धरणीधरे।
माञ्च दृष्ट्वा वरं लब्ध्वा प्राप्तोऽमुन्नामकल्पदम्।२१।

विशुद्ध स्फटिक के शैल की आभा के सदृश आभा से युक्त, रक्त कमल के दल के तुल्य नेत्रों वाले, वराह के मुख के समान मुख वाले, चार बाहुओं से सम्पन्न, किरीट धारी, परम सौम्य वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिन्ह धारण करने वाले, चारों हाथों में शङ्ख, चक्र, अभय और अम्बुज ग्रहण किये हुए, वाम ऊरु पर स्थित तुम से युक्त सागराम्बर में विराजमान, पीताम्बरधारी, रक्त वर्ण के आभरणों से भूषित, श्री कूर्म के पृष्ठ के मध्य में स्थित, शेष की मूर्ति एवं अब्ज पर समवस्थित मेरा इस प्रकार से ध्यान करके सदा ही एक माला अष्टोत्तर शत का जप करना चाहिए। ऐसा करने वाला मनुष्य सम्पूर्ण कामनाओं को प्राप्त कर लेता है और अन्त समय में मोक्ष को प्राप्त हो जाया करता है। यह निश्चित ही है। हे अमले! धरणि! आपने जो मुझसे यह पूछा है वह मैंने तुम को बतला दिया है। हे विमलानने! इसलिए अब तुमने क्या निश्चय किया है यह मुझे बतला दो ।१४।१५। ।१६।१७।१८। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके इसके पश्चात् उस भूमि ने फिर भी उनसे पूछा था—हे देव! इसका अनुष्ठान किसने किया था और पहिले इसका क्या फल प्राप्त किया था? इस भाँति पुनः पूछे गये देव वर श्री वराह ने यह कहा था—हे देवि! पहिले कृतयुग में धर्म नाम वाला एक महान् मनु था। उसने ब्रह्माजी से इस मन्त्र की दीक्षा प्राप्त करके इस धरणी धर पर उसका जाप किया था। इसका फल उसे यह मिला था कि उसने मेरा दर्शन प्राप्त किया, वरदान प्राप्त किया और अन्त में वह मेरे ही स्थान को प्राप्त हो गया था। ।१९।२०।२१।

इन्द्रोदुर्वाससः शापात्पुराभ्रष्टस्त्रिविष्टपात् ।
अनेनेष्ट्वाऽत्र मां देवि पुनःप्राप्तस्त्रिविष्टपम् ।२२।
अन्येऽपि मुनयो भूमे! जप्त्वा प्रापाः पराङ्गतिम् ।
अनन्तः पन्नगाधीशो ह्यमुं लब्ध्वाऽथ कश्यपात् ।२३।

श्वेतद्वीपे जपित्वैव बभूव धरणीधरः ।
तस्माज्जप्यः सदा चेह मनुष्यैश्च वरार्थिभिः ।२४
एतच्छ्रुत्वाऽथ सुप्रीता पुनः प्राह धराधरम् ।२५।
वेङ्कटाख्ये महाशैले श्रीनिवासो जगत्पतिः ।
कदारभ्याथ निवसेत श्रीभूमिसहितोऽमलः ।२६।
कथं कल्पान्तरस्थायी भविष्यति जनार्दनः ।
एतद्ब्रूहि वराहास्य महत्कौतूहलं मम ।२७

पुरातन समय में एक बार इन्द्र दुर्वासा ऋषि के शाप से त्रिविष्टप (स्वर्गासन) से भ्रष्ट हो गया था। हे देवि ! इस इन्द्र ने यहीं पर मेरा भजन करके पुनः अपने स्वर्गासन को प्राप्त कर लिया था। हे भूमे ! अन्य भी मुनिगणों ने इस मेरे मन्त्र का जाप करके परम गति को प्राप्त किया है। यह पन्नगों का सर्वेश्वर अनन्त ने भी इस मन्त्र की दीक्षा कश्यप ऋषि से ग्रहण की थी और श्वेतद्वीप में उसने इसका जप किया था और धरणीधर हो गया था। इसलिए इस मन्त्र का सदा ही जाप करना चाहिए। जो मनुष्य वर की चाहना करने वाले हैं उनको यहाँ अवश्य अपने अभीष्ट की पूर्ति के लिए इस मन्त्र का जप करना चाहिए। श्री सूत जी ने कहा—यह श्रवण करके वह धरणी परम अधिक प्रसन्न हुई थी और वह फिर धरा के धारण करने वाले प्रभु से बोली—धरणी ने कहा—हे देवेश ! जगत् के स्वामी श्री निवास श्रीभूमि के सहित अमल स्वरूप वाला वेङ्कट नाम वाले शैल पर कब आया करते हैं और कैसे वहाँ पर कल्पान्तर पर्यन्त स्थायी भगवान् जनार्दन होंगे ? हे वराह स्वरूपधारी प्रभो ! आप मुझे यह बतलाइये मेरे हृदय में इसको जानने के लिए महान् कौतूहल है ।२२।२३।२४।२५।२६।२७।

२२—रामानुजाख्यद्विजवृत्तान्तवर्णन

भोभोस्तपोधनाः सर्वेनैमिषारण्यवासिनः ।
आकाशगङ्गातीर्थस्यमाहात्म्यंप्रवदाम्यहम् ।१।
आकाशगङ्गानिकटे सर्वशास्त्रार्थपारगः ।
रामानुज इतिख्यातोविष्णुभक्तो जितेन्द्रियः ।२।
तपश्चकार धर्मात्मावैखानसमतेस्थितः ।
ग्रीष्मेपञ्चाग्निमध्येस्थोविष्णुध्यानपरायणः ।३।
जपन्नष्टाक्षरं मन्त्रं ध्यायन्हृदि जनार्दनम् ।
वर्षास्वाकाशगो नित्यं हेमन्तेषु जलेशयः ।४।
सर्वभूतहितोदान्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ।
वर्षाणिकतिचित्सोऽयंजीर्णपर्णाशनोभवत् ।५।
कञ्चित्कालं जलाहारो वायुभक्षः कियत्समाः ।६।
अथ तत्तपसा तुष्टोभगवान्भक्तवत्सलः ।
प्रत्यक्षतामगात्तस्य शङ्खचक्रगदाधरः ।७।

महामहिम श्री सूत जी ने कहा—हे सब नैमिषारण्य के निवास करने वाले तपोधन तपस्वियो ! अब मैं आकाश गङ्गा नाम वाले तीर्थ का माहात्म्य आप लोगों को बतलाता हूँ ।१। आकाश की गंगा के निकट में सम्पूर्ण शास्त्रों के अर्थों का पारगामी महान् विद्वान् रामानुज इस नाम से विख्यात द्विज ने तप किया था । वह विप्र परम विष्णु का भक्त था और जितेन्द्रिय था । वह धर्मात्मा वैखानस मत में स्थित रहा करता था । ग्रीष्म ऋतु में भी पाँच अग्नियों के मध्य में समवस्थित होकर वह भगवान् विष्णु के ध्यान में परायण रहा करता था । "श्री कृष्णः शरणं मम"—इस आठ अक्षरों वाले मन्त्र का जप करता हुआ हुआ अपने हृदय में जनार्दन प्रभु का ध्यान किया करता था । वर्षा के काल में नित्य ही आकाश में गमन करने वाला रहता

अब रामानुज तपस्वी के समक्ष प्रकट होकर दर्शन देने वाले प्रभु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है—विकसित कमल के दल के समान उनके परम सुन्दर एवं विशाल नेत्र थे, करोड़ों सूर्यों की प्रभा के तुल्य उनकी प्रभा थी, विनता के पुत्र गरुड पर वे समारूढ़ थे और छत्र एवं चमरों से सुशोभित थे। हार केयूर और मुकुट धारण किये हुए थे। उनके करों मे सुन्दर कटक विराजमान थे। उनके साथ में विष्वक्सेन और सुनन्द आदि पार्षद विद्यमान थे। वीणा, वेणु, मृदङ्ग प्रभृति वाद्यों के बजाने वाले नारद आदि के द्वारा उनके गुण-गणों का गान किया जा रहा था। सुन्दर विभव से सम्पन्न, पीताम्बर धारण करने वाले थे। जिनके उर: स्थल मे लक्ष्मी देवी विराजमान थी। नीलमेघ के तुल्य छवि से युक्त थे। उनके दोनों पार्श्व भागों में सनक प्रभृति महान् योगीजन सेवा कर रहे थे।८।९।१०।११। भगवान् मुख पर ऐसी मन्द मुस्कराहट थी जिससे तीनों भुवनों को मोहित कर रहे थे। अपने अङ्ग की दिव्य कान्ति से सभी दिशाओं को प्रकाशयुक्त करते हुए ऐसे प्रतीत हो रहे थे कि मानो सर्वत्र विराजमान हो रहे हो। दया की खान भगवान् वेङ्कटेश देव सुन्दर भक्तों को ही सुलभ होने वाले हैं। इस के अनन्तर वे रामानुज महामुनि के सन्निकट में प्राप्त हुए थे।१२।१३। उस महामुनि रामानुज ने उस समय मे प्रत्यक्ष प्रकट हुए कृपा के निधि, पीताम्बरधारी श्री निवास देव का दर्शन प्राप्त किया तो उसको अत्यधिक तुष्टि हुई थी और परम भक्ति से युक्त होकर उसने जगदीश्वर प्रभु की स्तुति की थी।१४।१५।

नमो देवाधिदेवाय शङ्खचक्रगदाभृते।
नमो नित्याय शुद्धाय वेङ्कटेशाय ते नमः।१६।
नमो भक्तार्तिहन्त्रेते हव्यकव्यस्वरूपिणे।
नमस्त्रिमूर्तयेतुभ्यं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे।१७।

धारी, वेङ्कट गिरि पर निवास करने वाले भगवान् वासुदेव आपके लिए मेरा बारम्बार नमस्कार है ।२०।२१।

इतिस्तुत्वावेङ्कटेशंश्रीनिवासजगद्गुरुम् ।
रामानुजोमुनिस्तूष्णीमास्तेविप्रवरोत्तमः ।२२।
श्रुत्वा स्तुतिं श्रुतिसुखां स्तुतस्तस्य महात्मनः ।
अवापपरमंतोषं वेङ्कटाचलनायकः ।२३।
अथालिङ्ग्य मुनिं शौरिश्चतुर्भिर्बाहुभिस्तदा ।
बभाषे प्रीतिसंयुक्तोवरंवैव्रियतामिति ।२४।
तुष्टोऽस्मि तपसा तेऽद्यस्तोत्रेणापिमहामुने ।
नमस्कारेणचप्रीतोवरदोऽहन्तवागतः ।२५।
नारायण रमानाथ श्रीनिवास जगन्मय ।
जनार्दन जगद्धाम गोविन्द नरकान्तक ।२६।
त्वद्दर्शनात्कृतार्थोऽस्मिवेङ्कटाद्रिशिरोमणे ! ।
त्वां नमस्यन्ति धर्मिष्ठा यतस्त्वं धर्मपालकः ।२७।
यं न वेत्ति भवोब्रह्मायनवेंसिनयोतथा ।
त्वावेद्मिपरमात्मानं किमस्मादधिकं परम् ।२८।

वह विप्रवरों में परम वरिष्ठ रामानुज मुनि इस प्रकार से जगत् के गुरु श्रीनिवास भगवान वेङ्कटेश की स्तुति करके चुप हो गया था। उस महान् आत्मा वाले के द्वारा की गई कानों को परम सुख प्रदान करने वाली स्तुति का श्रवण करके भगवान वेङ्कटाचल के नायक को परम तोष प्राप्त हुआ था। उस समय में भगवान शौरि ने अपनी चारों बाहुओं से मुनि का आलिङ्गन करके परम प्रीति से समन्वित होकर 'वरदान माँग लो'—यह बोले थे। आज मैं तुम्हारे इस परमोग्र तप-श्चर्या से बहुत अधिक सन्तुष्ट हो गया हूँ। हे महामुने ! आपके इस स्तवन के स्तोत्र से भी मुझे परम तोष प्राप्त हुआ है। मैं आपको नमस्कार से भी अत्यधिक प्रसन्न हो गया हूँ। इस समय में तुमको वरदान प्रदान करने के

मे साक्षात् आपके दर्शन प्राप्त कर रहा हूं—इससे अधिक और क्या वर-दान होगा। हे जगत् के स्वामिन्! हे वेङ्कटेश देव! इतने ही से मैं तो परम कृतार्थ हो गया हूँ। जिनके शुभ नाम के स्मृति मात्र से ही महान् पातक करने वाले लोग भी मुक्ति को प्राप्त हो जाया करते हैं उन प्रभु को मैं इस समय में साक्षात् देख रहा हूं। मैं तो आपकी सेवा में यही प्रार्थना करूंगा कि आपके चरण कमलों में मेरी निश्चल भक्ति हो जावे।२९।३०।३१। श्री भगवान ने कहा—हे महामति वाले रामानुज! मुझमें तेरी परम दृढ भक्ति होगी। हे द्विज! तुम श्रवण करो। मैं एक दूसरा वाक्य भी तुमसे कहता हूं—जो मनुष्य भानु के मेष राशि पर सङ्क्रमण करने पर जबकि पूर्णमासी तिथि के दिन चित्रा नक्षत्र विद्य-मान हो गंगा में हे द्विज! स्नान किया करते हैं वे लोग उस परम धाम को प्राप्त हो जाया करते हैं जहाँ पहुँच कर इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है। हे रामानुज द्विज! अब तुम वियद्गगा के समीप में ही निवास करो।३२—३५।

एतत्प्रारब्धदेहान्ते यत्स्वरूपमवाप्स्यसि।
बहुना किमिहोक्तेन वियद्गङ्गाजले शुभे।३६।
स्नान्तिये वै जनाः सर्वेते वै भागवतोत्तमाः।
भवन्तिमुनिशार्दूल! नात्रकार्याविचारणा।३७।
किलक्षणा भागवता जायन्ते केन कर्मणा।
एतदिच्छाम्यहं श्रोतुं कौतूहलपरो यतः।
लक्षम भागवतानां तु शृणुष्व मुनिसत्तम!।३८।
वक्तुं तेषां प्रभाव तु शक्यते नाऽब्दकोटिभिः।३९।
येहिताः सर्वजन्तूनागतासूयाविमत्सराः।
ज्ञानिनोनिःस्पृहाः शान्तास्तेवैभागवतोत्तमाः।४०।
कर्मणा मनसा वाचा परपीडां न कुर्वते।
अपरिग्रहशीलाश्च ते वै भागवतोत्तमाः।४१।

सत्कथाश्रवणे येषां वर्तते सात्त्विकी मतिः ।
मत्पादाम्बुजभक्तायेतेवैभागवतोत्तमाः ।४२।

इस प्रारब्ध देह के अन्त हो जाने पर जिस स्वरूप को तुम प्राप्त करोगे—इस विषय में बहुत अधिक कथन करना व्यर्थ ही है। इस परम शुभ वियद्‌गंगा के जल में जो जन स्नान किया करते है वे सभी भागवतो मे परम उत्तम होते हैं। हे मुनिशार्दूल ! इस विषय मे तनिक भी विचार करने की आवश्यकता नही है।३६।३७। रामानुज ने कहा—भागवतो के क्या लक्षण हुआ करते हैं और वे किस कर्म के द्वारा जाने जाया करते हैं—यह मैं आपके ही श्री मुख से श्रवण करने की इच्छा रखता हू और मुझे इसमें बडा भारी कौतूहल होता है। भगवान श्री वेङ्कटेश ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब आप भागवतो के लक्षण का श्रवण करो। वैसे भागवतो का जो प्रभाव होता है वह तो करोडो वर्षो मे भी वर्णन नही किया जा सकता है।३८।३९। जो समस्त जीवधारियो की भलाई करने वाले तथा चाहने वाले होते हैं—जिनके हृदय में असूया की भावना लेशमात्र भी नही रहा करती है—जो मात्सर्य्य दोष से पूर्ण तया रहित हुआ करते हैं, जो बिल्कुल निःस्पृह होते हैं, जो ज्ञान वाले हैं, जो परम शान्त होते हैं वे ही उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं। भागवत जन मन, कर्म और वचन से किसी भी प्रकार से दूसरो को पीडा नही दिया करते हैं। भागवत जन परिग्रह करने के स्वभाव वाले नही होते है, ऐसे जो पुरुष होते हैं वही उत्तम श्रेणी के भागवत जन हुआ करते हैं। जिनकी सत्पुरुषो की कथा के श्रवण करने में सात्त्विकी मति होती है और मेरे चरण कमल में जिनकी सुदृढ़ भक्ति होती है वे ही उत्तम भागवत जन होते हैं।४०—४२।

मातापित्रोश्च शुश्रूषां कुर्वते ये नरोत्तमाः ।
ये तु देवार्चनरता ये तु तत्साधका नराः ।
पूजां दृष्ट्वा तु मोदन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ।४३।

वर्णिनां च यतीनां च परिचर्यापराश्च ये ।
परनिन्दामकुर्वाणास्ते वै भागवतोत्तमाः ।४४।
सर्वेषां हितवाक्यानि ये वदन्ति नरोत्तमाः ।
येगुणग्राहिणो लोकेतेवैभागवतोत्तमाः ।४५।
आत्मवत्सर्वभूतानि ये पश्यन्ति नरोत्तमाः ।
तुल्याः शत्रुषु मित्रेषु तेवैभागवताः स्मृताः ।४६।
धर्मशास्त्रप्रवक्तारः सत्यवाक्यरताश्च ये ।
तेषां शुश्रूषवो ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।४७।
व्याकुर्वन्ति पुराणानि तानि शृण्वन्ति ये तथा ।
तद्वक्तरि चभक्ताये तेवैभागवतोत्तमाः ।४८।
ये गोब्राह्मणशुश्रूषां कुर्वन्ति सततं नराः ।
तीर्थयात्रापरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।४९।

जो पुरुषों से परम श्रेष्ठ अपने माता-पिता की सेवा किया करते हैं और जो सर्वदा देवों के अर्चन में रति रखते हैं जो मनुष्य उनकी भावना करने वालों में होते हैं और जो पूजा को देखकर प्रसन्न होते हैं वे भागवतोत्तम हुआ करते हैं ।४३। वर्णी पुरुषों की तथा यतियों की परिचर्या करने में जिनकी रति हुआ करती है और सर्वदा तत्पर रहा करते हैं जो पराई निन्दा नहीं किया करते हैं वे भागवतोत्तम हुआ करते हैं । जो उत्तम नर सभी के हित करने वाले वाक्य बोला करते हैं और जो इस लोक में गुणों के करने वाले होते हैं वे ही पुरुष उत्तम कोटि के भागवत हुआ करते हैं । जो नरोत्तम सदा सभी प्राणियों को अपने ही समान देखा करते हैं और जो शत्रुता रखने वाले तथा मित्रों में तुल्य भावना रखते हैं वे ही भागवत कहे गये हैं । जो धर्मशास्त्र के प्रवक्ता होते हैं और जो सत्य वचनों में रति रखते हैं तथा जो उनकी शुश्रूषा करने वाले हुआ करते हैं वे ही भागवतोत्तम हुआ करते हैं । जो पुराणों की व्याख्या किया करते हैं अथवा जो पुराणों का श्रवण किया करते

है तथा जो पुराणों के वक्ता पुरुष में भक्ति-भाव रखते हैं वे ही उत्तम भागवत होते हैं। जो गौ और ब्राह्मणों की शुश्रूषा सदा किया करते हैं और तीर्थाटन करने में तत्पर रहते हैं वे ही भागवतोत्तम होते हैं। ।४४-४६।

अन्येषामुदयं दृष्ट्वा येऽभिनन्दन्ति मानवाः ।
हरिनामपरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।५०।
आरामारोपणरतास्तटाकपरिरक्षकाः ।
कासारकूपकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ।५१।
ये वै तटाककर्तारो देवसद्मानि कुर्वते ।
गायत्रीनिरता ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।५२।
येऽभिनन्दन्ति नामानि हरेः श्रुत्वाऽतिहर्षिताः ।
रोमाञ्चितशरीराश्चतेवैभागवतोत्तमाः ।५३।
तुलसीकाननं दृष्ट्वा ये नमस्कुर्वते नराः ।
तत्काष्ठाङ्कितकर्णा ये ते वै भागवतोत्तमाः ।५४।
तुलसीगन्धमाघ्राय सन्तोषं कुर्वते तु ये ।
तन्मूलमृद्धरा ये च ते वै भागवतोत्तमाः ।५५।
स्वाश्रमाचारनिरतास्तथैवाऽतिथिपूजकाः ।
ये च वेदार्थवक्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ।५६।

जो दूसरों का अभ्युदय देखकर उसका हार्दिक अभिनन्दन किया करते हैं तथा जो केवल श्रीहरि के ही नाम में परायण होते हैं वे उत्तम भागवत जन कहे जाते हैं। जो उद्यानों के समारोपण करने की रति रखते हैं तथा तटाकों के जो परिरक्षक हुते हैं एवं कासार और कुओं के जो बनवाने वाले होते हैं वे भागवतोत्तम हुआ करते हैं। ।५०।५१। जो तटाकों के निर्माण कराने वाले एवं देवालयों को बनवाने वाले होते हैं और गायत्री मन्त्र में जो निरत रहा करते हैं वे ही भाग-

त्तोत्तम होते हैं। जो श्री हरि के शुभ नामों का अभिनन्दन किया करते हैं और भगवन्नाम का श्रवण कर जो अत्यन्त हर्षित होते हैं एवं श्रवण करके और उच्चारण करके जिनके अङ्ग पुलकित हो जाया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुआ करते हैं। जो तुलसी के वन को देखकर नमस्कार किया करते हैं और तुलसी के काष्ठ से जिनके कर्ण अङ्कित रहते हैं वे भागवतोत्तम होते हैं। जो तुलसी की गन्ध का घ्राण करके परम सन्तोष प्राप्त किया करते हैं जो तुलसी के मूल की मृत्तिका को मस्तक पर धारण किया करते हैं वे ही उत्तम भागवत हुआ करते हैं जो अपने आश्रम और आचार में निरत रहते हैं तथा सर्वदा अतिथियों की पूजा एवं सत्कृति किया करते हैं और जो वेदों के अर्थों को बोला करते हैं वे ही उत्तम श्रेणी के भागवत हुआ करते हैं।५२–५६।

विदितानि च शास्त्राणि परार्थप्रवदन्तिये ।
सर्वत्र गुणभाजो ये ते वै भागवतोत्तमाः ।५७।
पानीयदाननिरता ह्यन्नदानरताश्च ये ।
एकादशीव्रतपरास्ते वै भागवतोत्तमाः ।५८।
गोदाननिरता ये च कन्यादानरताश्च ये ।
मदर्थं कर्मकर्तारस्ते वै भागवतोत्तमाः ।५९।
मन्मानसाश्च मद्भक्ता ये मद्भजनलोलुपाः ।
मन्नामस्मरणासक्तास्ते वै भागवतोत्तमाः ।६०।
बहुनाऽत्र किमुक्तेन संक्षेपात्ते ब्रवीम्यहम् ।
सद्गुणायप्रवर्तन्ते ते वै भागवतोत्तमाः ।६१।
एते भागवता विप्राः केचिदत्र प्रकीर्तिताः ।
ममाऽपि गदितुं शक्या नाऽब्दकोटिशतैरपि ।६२।
रामानुज ! महाभाग ! मद्भक्तानां च लक्षणम् ।
मयिभक्तेस्त्वयिप्रीत्यायुक्तंकिलमहामते ।६३।

२३-श्रीवेङ्कटाचल सर्वपुण्यतीर्थाधारत्ववर्णन

वेङ्कटाद्रौ महापुण्ये सर्वसङ्कटनाशने ।
सन्ति वै कति तीर्थानि सूतपौराणिकोत्तम ! ।१।
तेषां संख्यां च मे ब्रूहि कति मुख्यानितत्रवै ।
तत्राप्यत्यन्तमुख्यानि वदमे मुनिसत्तम ।२।
सद्धर्मरतिदान्यत्र कति मुख्यानि तानि च ।
कानि ज्ञानप्रदान्यत्र भक्तिवैराग्यदानि च ।३।
मुक्तिप्रदानि कान्यत्र तानि मे वद सुव्रत ! ।४।
षट्षष्टिकोटितीर्थानि पुण्यान्यत्र नगोत्तमे ।
अष्टोत्तरसहस्राणितेषु मुख्यानि सुव्रत ! ।५।
सद्धर्मरतिदान्यत्र सन्ति चाऽष्टोत्तरं शतम् ।
सहस्रेभ्यश्च मुख्यानि पृथक्तेभ्यश्च तानि च ।६।
भक्तिवैराग्यदान्यत्र षष्टिरष्टोत्तरे शते ।७।

ऋषिगण ने कहा—हे पौराणिकों मे सर्वोत्तम ! हे सूत जी ! समस्त सङ्कटो के नाश करने वाले, महान् पुण्य मय उस वेङ्कट पर्वत में कितने तीर्थ है ? उन तीर्थों की संख्या आप हमको बतलाइये । उन समस्त तीर्थों में भी कितने तीर्थ प्रमुख कहे जाते हैं और उन प्रमुखों मे भी अत्यन्त मुख्य कौन से हैं ? हे मुनिश्रेष्ठ ! उनको आप कृपया हमको बतलाइये ।१।२। सद्धर्म में रति प्रदान कराने वाले इनमे कौन से परम प्रमुख तीर्थ हैं और कौन-से ऐसे परम प्रमुख हैं जो केवल ज्ञान के ही प्रदान करने वाले हैं तथा वैराग्य को भावना को उत्पन्न करा देने वाले हैं ? ऐसे कितने प्रधान तीर्थ हैं जो मानवो के हृदय में भक्ति को भावना पैदा करा देते हैं ? हे सुव्रत ! कौन से ऐसे तीर्थ हैं जो मुक्ति के प्रदान करने वाले हैं ? आप हमको सब यह बतलाइये ।३।४। श्री सूतजी ने कहा—हे सुव्रत ! इस उत्तम अचल मे छियासठ करोड़ परम पुण्यमय

तीर्थ हैं। उन सब मे एक सहस्र आठ परम मुख्य तीर्थ हैं। इस पर्वत में एक सौ आठ तो ऐसे तीर्थ हैं जो सद्धर्म में रति उत्पन्न कर देने वाले हैं। ये उन एक सहस्रों से भी पृथक् परम मुख्य हैं। जो भक्ति और वैराग्य के प्रदान करने वाले हैं वे एक सौ साठ तीर्थ हैं ।५।६।७।

मुक्तिदान्यत्र षट् चैववेङ्कटाचलमूर्धनि ।
स्वामिपुष्करिणी चैव वियद्गङ्गा ततः परम् ।८।
पश्चात्पापविनाशं च पाण्डुतीर्थमतः परम् ।
कुमारधारिकातीर्थंतुम्बोस्तीर्थमतः परम् ।९।
कुम्भमासे पौर्णमास्या मघायोगो यदा भवेत ।
कुमारधारिका यान्ति सर्वतीर्थानि हे द्विजाः ! ।१०।
तत्र यः स्नाति विप्रेन्द्रा राजसूयफल लभेत् ।
मुक्तिश्चभवितातत्रनात्रकार्याविचारणा ।११।
अन्नदानविधिस्तत्र सार्धं दक्षिणया द्विजाः ।
उत्तराफल्गुनीयुक्तशुक्लपक्षीयपर्वणि ।१२।
तुम्बोस्तीर्थं मीनसस्थ रवौ तीर्थानि सर्वशः ।
अपराह्ने समायान्तितत्रस्नातोन जायते ।१३।
मौञ्जीबन्ध विवाह च कारयेद्द्रव्यदानतः ।
मेषसङ्क्रमणे भानौ चित्रानक्षत्रसयुते ।१४।

इस वेङ्कटा चल की शिखर पर छैः ऐसे तीर्थ हैं जो केवल मुक्ति के प्रदान करा देने वाले हैं। वे छै तीर्थ ये हैं—एक उनमें स्वामी पुष्करिणी तीर्थ है। इसके पश्चात् वियद्गङ्गा तीर्थ है। फिर पाप विनाश नामक एक तीर्थ है। इसके आगे एक पाण्डु तीर्थ है। फिर कुमार धारिका नाम वाला तीर्थ है और उनके बाद है तुम्बो तीर्थ है। कुम्भ मास मे पौर्णमासी तिथि मे जिस मे मघा नक्षत्र का योग आकर पड़े उस अवसर पर सभी तीर्थ हे द्विज गण ! कुमारधारिका तीर्थ मे जाया करते है ।८।९।१०। हे विप्रेन्द्रो ! उस अवसर पर

जो भी कोई वहाँ पर स्नान किया करता वह राजसूय यज्ञ करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है। वहाँ पर मुक्ति तो अवश्य ही हो जाया करती है— इसमें कुछ भी विचारणा करने की आवश्यकता नहीं है ।११। हे द्विज वृन्द ! उत्तर फाल्गुनी नक्षत्र से युक्त शुक्ल के पर्व दिन में वहाँ पर दक्षिणा के साथ मध के दान कर देने की विधि है। तुम्बो नामक तीर्थ में मीन राशि पर जब सूर्य संस्थित होते हैं तब समस्त तीर्थ सभी ओर से अपराह्न के समय में वहाँ पर समायात होते हैं। वहाँ पर उस समय में जो स्नान करता है वह फिर जन्म नहीं लिया करता है। मोञ्जी बन्ध और विवाह द्रव्य के दान को देकर जो कहीं कराता है। जब कि मेष राशि पर सूर्य का संक्रमण हो और चित्र नक्षत्र से संयुत हो, इससे भी पुनर्जन्म नहीं होता है ।१२।१३।१४।

पौर्णमास्यां समायान्ति वियद्गङ्गां तथैव च ।
तत्र स्नात्वा नरः सद्यः शतक्रतुफलं लभेत् ।१५।
सुवर्णं तत्र दातव्यं कन्यादानं विशेषतः ।
वृषसंस्थे रवौ विप्रा द्वादश्यां हरिवासरे ।१६।
शुक्ले वाऽप्यथ कृष्णे वा भौमेनाऽपि समन्विते ।
पाण्डुतीर्थं समायान्ति गङ्गादीनि जगत्त्रये ।१७।
तत्र स्नात्वा च गां दत्त्वा मुच्यते प्रतिबन्धकात् ।
आश्वयुक्छुक्लपक्षे च सप्तम्यां भानुवासरे ।१८।
उत्तराषाढयुक्तायां तथा पापविनाशनम् ।
उत्तराभाद्रयुक्तायां द्वादश्यां वा समागतः ।१९।
शालग्रामशिलां दत्त्वा स्नात्वा चविधिपूर्वकम् ।
मुच्यते सर्वपापैश्च जन्मकोटिशतोद्भवैः ।२०।
धनुर्मासि सिते पक्षे द्वादश्यामरुणोदये ।
आयान्ति सर्वतीर्थानि स्वामिपुष्करिणीजले ।२१।

पौर्णमासी तिथि के दिन समस्त तीर्थ वियद्गङ्गा में आया करते हैं। उस अवसर पर वहाँ स्नान करने वाला मनुष्य तुरन्त ही सौ क्रतुओं के करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। वहाँ पर सुवर्ण का दान और विशेष कर कन्या का दान करना चाहिए। वृष राशि पर सूर्य के समायात होने पर हे विप्रो ! द्वादशी तिथि मे हरिवासर मे चाहे वह शुक्ल पक्ष हो या कृष्ण पक्ष हो किन्तु भौम वार से समन्वित होना चाहिए। उस अवसर जगत्त्रय में गङ्गा आदि समस्त तीर्थ पाण्डु तीर्थ में आया करते हैं। उस पर वहाँ स्नान करके और गौ का दान करके मानव प्रति बन्धक से मुक्त हो जाया करता है। आश्वयुक् शुक्ल पक्ष मे सप्तमी तिथि तथा रविवार मे जबकि उत्तराषाढा नक्षत्र से युक्त हो पाप विनाशन को भी उसी प्रकार से सब तीर्थ आया करते हैं। अथवा उत्तरा भाद्रपदा नक्षत्र से युक्त द्वादशी मे समागत होवे। वहाँ पर शालग्राम शिला का दान करके तथा विधिपूर्वक स्नान करके मनुष्य सैकडो करोड जन्मो मे किये हुए सब प्रकार के पापो से छुटकारा पा जाता है। धनुर्मास में, शुक्ल पक्ष मे, द्वादशी तिथि मे, अरुणोदय के समय मे वहाँ पर सम्पूर्ण तीर्थ आते हैं और उस स्वामि पुष्करिणी के जल मे आकर एकत्रित हुआ करते हैं।१५-२१।

तत्र स्नात्वा नरः सद्योमुक्तिमेति न संशयः।
यस्य जन्मसहस्रेषु पुण्यमेवार्जितं पुरा।२२।
तस्य स्नानं भवेद्विप्रा नान्यस्य त्वकृतात्मनः।
विभवानुगुणं दानं कार्यंतत्रयथाविधि।२३।
शालिग्रामशिलादानं गां दद्याच्च विशेषतः।२४।
ये शृण्वन्ति कथां विष्णोः सदा भुवनपावनीम्।
ते वै मनुष्यलोकेऽस्मिन्विष्णुभक्ता भवन्ति हि।२५।
यद्यशक्तः सदा श्रोतुं कथां भुवनपावनीम्।
मुहूर्तं वातदर्धं वाक्षणंवाविष्णुसत्कथाम्।

यः शृणोति नरो भक्त्या दुर्गतिर्नास्ति तस्य हि ।२६।
यत्फलं सर्वयज्ञेषु सर्वदानेषु यत्फलम् ।
सकृत्पुराणश्रवणात्तत्फलं विन्दते नरः ।२७।
कलौ युगे विशेषेण पुराणश्रवणादृते ।
नाऽस्ति धर्मः परः पुंसां नाऽस्तिमुक्तिप्रदंपरम् ।२८।

उस अवसर पर उस तीर्थ में स्नान करके तुरन्त ही मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जिसके पहिले सहस्रों जन्मों में पुण्य ही अर्जित किया हुआ हो। हे विप्रो ! उसी का वहाँ पर स्नान हुआ करता है और अन्य अकृतात्मा का स्नान कभी नहीं हो सकता है। वहाँ पर अपने वैभव के अनुसार यथाविधि दान करना चाहिए।२२।२३। शालग्राम की शिला का दान और विशेष रूप से गौ का दान वहाँ देवे।२४। जो लोग भगवान् विष्णु की परम-पावनी कथा का श्रवण किया करते हैं। एक मुहूर्त मात्र, इससे भी आधे समय तक अथवा सम मात्र भी जो श्री विष्णु की सत्कथा को सुनता है और सदा इस भुवन पावनी कथा के श्रवण करने में असमर्थ रहता है तथा भक्ति से एक क्षण भी सुन लेता है तो उस मनुष्य की कभी दुर्गति नहीं हुआ करती है।२५। जो विष्णु भगवान् की सदा ही भुवन पावनी कथा को सुनते हैं वे इस मनुष्य लोक में विष्णु के सवत हुआ करते हैं।२६। जो फल सभी यज्ञों के करने में होता है और जो पुण्य-फल सभी प्रकार के दानों के देने में होता है वही पुण्य-फल मनुष्य एक ही बार पुराणों के श्रवण करने पर प्राप्त कर लिया करता है। विशेष करके इस कलियुग में पुराण श्रवण के बिना पुरुषों का परम धर्म है ही नहीं जो कि मुक्ति के जैसे परम पद का प्रदान करने वाला होता है।२७।२८।

पुराणश्रवणं विष्णोर्नामसङ्कीर्तनं परम् ।
उभे एव मनुष्याणां पुण्यद्रुमहाफले ।२९।

पिबन्नेवाऽमृतं यत्नादेकः स्यादजराऽमरः ।
विष्णोः कथामृतंकुर्यादकुलमेवाजरामरम् ।३०।
बालो युवाऽथवृद्धोवादरिद्रोदुर्भगोऽपिवा ।
पुराणज्ञः सदावन्द्यः सपूज्यः सुकृतात्मभिः ।३१।
नीचबुद्धि न कुर्वीतपुराणज्ञे कदाचन ।
यस्य वक्त्रोद्गतावाणी कामधेनुः शरीरिणाम् ।३२।
भवकोटिसहस्रेषुभूत्वाभूत्वावसीदताम् ।
योददात्यपुनर्वृ त्तिकोऽन्यस्तस्मात्परोगुरुः ।३३।
व्यासासनसमाऽऽरूढो यदा पौराणिको द्विजः ।
आसमाप्तेः प्रसङ्गस्य नमस्कुर्यान्न कस्यचित् ।३४।
न दुर्जनसमाकीर्णे न शूद्रश्वापदावृते ।
देशे न द्यूतसदने वदेत्पुण्यकथां सुधीः ।३५।

पुराणों का श्रवण और विष्णु भगवान् का परं नाम सङ्कीर्तन ये दोनों ही मनुष्यों के महान् फलों वाले पुण्य द्रुम हैं ।२६। एक इस यत्न से अमृत को पीता हुआ ही अजर और अमर हो जाया करता है । जो भगवान् विष्णु की कथा रूपी अमृत को ग्रहण किया करता है उसका तो पूर्ण कुल ही अजरामर हो जाता है । बालक हो, युवा हो वृद्ध हो, दरिद्र हो अथवा दुर्भग भी क्यों न हो जो पुराणों का ज्ञाता है वह सुकृतात्मा पुरुषों के द्वारा सर्वदा पूज्य एवं वन्दना करने के योग्य होता है । जो पुराणों का ज्ञाता है उसमें कभी भी नीच बुद्धि नहीं करनी चाहिए जिसके मुख से उद्गत हुई वाणी शरीर धारियों के लिए कामधेनु के ही सब मनोरथों को पूर्ण करने वाली हुआ करती है । सहस्रों करोड़ सांसारिक जन्मों में जन्म ले-लेकर उत्पीड़ित होते हुए पुरुषों को जो अपुनरावृत्ति अर्थात् मोक्ष प्रदान किया करता है बतलाइये, उससे अधिक कौन गुरु है ? व्यास की गद्दी पर जब पौराणिक द्विज समारूढ़ होता है उस समय में प्रस्तुत वर्णन किये जाने वाले प्रसङ्ग की

समाप्ति पर्यन्त उसे किसी को भी नमस्कार नहीं करना चाहिए चाहे
भले ही वहाँ गुरुदेव ही क्यों न उपस्थित हो गये होवें।३०।३१।३२।
।३३।३४। सुधी पुरुष का कर्त्तव्य है कि जो स्थल दुर्जनों से समाकीर्ण
हो तथा शूद्रों और श्वापदों से समावृत हो एवं जो द्यूत क्रीड़ा का घर
हो वहाँ पर कभी भी भूल कर पुराणों की परम पुण्यमयी कथा को न
न कहे।३५।

सुग्रामे सुजनाकीर्णे सुक्षेत्रे देवतालये।
पुण्ये वाऽथ नदीतीरे वदेत्पुण्यकथांसुधीः।३६।
श्रद्धाभक्तिसमायुक्ता नाऽन्यकार्येषु लालसाः।
वाग्यताः शुचयोऽव्यग्राः श्रोतारः पुण्यभागिनः।३७।
अभक्त्या ये कथां पुण्यां शृण्वन्ति मनुजाधमाः।
तेषां पुण्यफलं नाऽस्ति दुःखं जन्मनि जन्मनि।३८।
पुराणं ये तु सम्पूज्यताम्बूलाद्यैरुपायनैः।
शृण्वन्ति च कथां भक्त्यानदरिद्राभ्यवन्तिनः।३९।
कथायां कथ्यमानायांयेगच्छन्त्यन्यतोनराः।
भोगान्तरेप्रणश्यन्तितेषांदाराश्चसम्पदः।४०।
सोष्णीषमस्तका ये च कथां शृण्वन्ति पावनीम्।
ते बालकाः प्रजायन्ते पापिनो मनुजाधमाः।४१।
ताम्बूलं भक्षयन्तो ये कथांशृण्वन्तिपावनीम्।
श्वविष्ठांभक्षयन्त्येतेनरकेचपतन्तिहि।४२।

जो अति सुन्दर ग्राम हो और जो स्थल सुजन पुरुषों से
समाकीर्ण हो, सुन्दर क्षेत्र या देवालय हो अथवा कोई परम पुण्य नदी
का तट हो वहीं पुराणों की पुण्य कथा को कहना चाहिए। जो श्रवण
करने वाले श्रोता गण श्रद्धा एवं भक्ति से समायुक्त हों और जिनकी
लालसा अन्य सांसारिक कार्यों में नहीं होवे, वाग्यत (मौन या कम बोलने
वाले), शुचिता से पूर्ण, व्यग्रता से रहित होते हैं वे परम पुण्य के

भागी हुआ करते हैं ।३६।३७। जो अधम मनुष्य बिना ही भक्ति की भावना के पुण्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको कोई भी पुण्य फल नहीं हुआ करता है और जन्म-जन्म में दुःख ही होता है ।३८। जो ताम्बूल आदि उचित अर्चना के उपचारों के द्वारा पुराण को भली भाँति पूजा किया करते हैं और फिर भक्ति पूर्वक उनकी कथा का श्रवण करते हैं वे कभी दरिद्र एवं पापी नहीं होते हैं। कथा के कथ्यमान होने पर अर्थात् आरम्भ हो जाने पर जो मनुष्य कहीं उसे छोड़ कर अन्यत्र चले जाया करते हैं उनके भोगान्तर में दाराएँ और सम्पत्तियाँ विनष्ट हो जाया करती है। जो मस्तक पर उष्णीष (पगड़ी आदि) धारण किये हुए पावनी कथा का श्रवण करते हैं वे महामूढ़ बालक महान् पापी और मनुष्यों में परम अधम हुआ करते हैं ।३९-४१। ताम्बूल का भक्षण करते हुए जो पावनी कथा को सुनते हैं वे कुत्तों की विष्ठा का भक्षण करते हैं और नरक में जाकर गिरा करते हैं ।४२।

ये च तुङ्गासनारूढाः कथां शृण्वन्ति दाम्भिकाः ।
अक्षय्यान्नरकान्भुक्त्वा ते भवन्त्येव वायसाः ।४३।
ये च वीरासनारूढा ये च सिंहासनस्थिताः ।
शृण्वन्तिसत्कथांतेवैभवन्त्यर्जुनपादपः ।४४।
असम्प्रणम्य शृण्वन्तोविषवृक्षाभवन्तिहि ।
तथाशयानाः शृण्वन्तोभवन्त्यजगराहिते ।४५।
यः शृणोति कथां वक्तुः समानासनसंस्थितः ।
गुरुतल्पसमंपापं सम्प्राप्यनरकंव्रजेत् ।४६।
ये निन्दन्ति पुराणज्ञं सत्कथांपापहारिणीम् ।
तेवैजन्मशतंमर्त्याः शुनकाश्चभवन्तिहि ।४७।
कथायां कीर्त्यमानायां ये वदन्ति दुरुत्तरम् ।
तेगर्दभाः प्रजायन्तेकृकलासास्ततः परम् ।४८।

कदाचिदपि ये पुण्यां नशृण्वन्तिकथांनराः ।
ते भुक्त्वानरकान्घोरान्भवन्तिवनसूकराः ।४९।

जो मानी पुरुष ऊँचे किसी आसन पर विराजमान होकर परम धार्मिक कथा का श्रवण किया करते हैं वे असंख्य नरकों को भोगकर अन्त में वायस (कौआ) की योनि प्राप्त किया करते हैं।४३। जो वीरासन पर समारूढ़ है या सिंहासन पर बैठकर सत्कथा का श्रवण किया करते हैं वे अर्जुन पादप होते हैं। जो कथा को प्रणाम न करके ही श्रवण करते है वे दूसरे जन्म में किसी विष के वृक्ष होकर उत्पन्न होते हैं। जो शयन करते हुए ही कथा को सुनते रहा करते हैं वे अजगर की योनि प्राप्त करते हैं। जो वक्ता के समान आसन पर ही संस्थित होकर कथा सुना करते हैं उनको गुरुतुल्य के गमन करने के समान ही पाप होता है और वे नरकगामी हुआ करते हैं जो पुराणों के ज्ञाता पुरुष की निन्दा किया करते हैं तथा पापों के हरण करने वाली सत्कथा की निन्दा किया करते हैं वे मनुष्य सौ जन्मों तक शुनक हुआ करते हैं। कथा के कीर्त्यमान होने पर अर्थात् कथा के कहे जाने पर दुरुत्तर कहा करते हैं वे पहिले तो गधे की योनि प्राप्त करते हैं और फिर कुकलास होते हैं। जो नर कभी भी पुण्य कथा का श्रवण नहीं किया करते हैं वे घोर नरकों को भोग कर अन्त में वन के (जङ्गली) सूअर हुआ करते हैं।४४—४९।

कथायां कीर्त्यमानायां विघ्न कुर्वन्ति ये नराः।
कोट्यब्द नरकान्भुक्त्वा भवन्ति ग्रामसूकराः ।५०।
येकथामनुमोदन्तेकीर्त्यमानानरोत्तमाः ।
अशृण्वन्तोऽपि तेयान्तिशाश्वतपदमव्ययम् ।५१।
ये श्रावयन्तिमनुजाः पुण्यांपौराणिकींकथाम् ।
कल्पकोटिशतंसाग्रं तिष्ठन्तिब्रह्मणः पदे ।५२।
आसनार्थं प्रयच्छन्ति पुराणज्ञस्य ये नराः ।
कम्बलाजिनवासांसि तथामञ्चकमेवचा ।५३।

स्वर्गलोकं समासाद्य भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ।
स्थित्वा ब्रह्मादिलोकेषु पदं यान्ति निरामयम् ।५४।
पुराणस्य प्रयच्छन्ति ये च सूत्रं नवं वरम् ।
भोगिनो ज्ञानसम्पन्नास्तेभवन्तिभवेभवे ।५५।
ये महापातकैर्युक्ता ह्युपपातकिनश्च ये ।
पुराणश्रवणादेव ते यान्ति परमम्पदम् ।५६।
वेङ्कटाद्रेस्तु माहात्म्यं श्रुत्वातेऽथ पयस्ततः ।
व्यासप्रसादसम्पन्नं सूतंपौराणिकोत्तमम् ।
पूजयित्वा यथान्यायं महर्षमतुलं गताः ।५७।

पौराणिक कथा के कीर्त्यमान होने पर जो मनुष्य उसमे विघ्न उत्पन्न किया करते हैं वे एक करोड वर्षों तक नरकों की यातनाओं को भोगकर अन्त में ग्राम सूकर की योनि में जन्म लिया करते हैं। जो उत्तम कर कीर्त्यमान कथा का अनुमोदन किया करते हैं वे कथा का श्रवण न करते हुए भी अव्यय शाश्वत पद को प्राप्त किया करते हैं। जो मनुष्य परम पुण्यमयी पौराणिकी कथा का श्रवण कराया करते हैं वे ब्रह्मा के पद पर जो श्रेष्ठ एवं परमोत्तम है शतकोटि कल्पों तक स्थित रहा करते हैं। जो मनुष्य पुराणों के ज्ञाता विद्वान के लिए आसन के वास्ते कम्बल, अजिन और वस्त्र समर्पित किया करते हैं तथा मउक हो दान मे देते हैं वे स्वर्गलोक को प्राप्त कर यथेप्सित भोगों के सुख का उपभोग करके तथा ब्रह्मादि लोकों में स्थित होकर फिर निरामय पद को प्राप्त किया करते हैं। ।५०—५४। जो पुराण ग्रंथ के लिए नूतन एवं परमोत्तम सूत्र प्रदान किया करते हैं वे जन्म-जन्म मे भोगों और ज्ञान से सुसम्पन्न हुआ करते हैं। जो महा पातकों से युक्त होते हैं तथा जो उपपातकी हुआ करते हैं वे केवल पुराणों के श्रवण करने ही से परम पद को प्राप्त कर लिया करते हैं।५५—५६। इसके अनन्तर वे समस्त ऋषिगण वेङ्कटाद्रि के माहात्म्य का श्रवण करके फिर श्री व्यासो देव जी के प्रसाद से सम्पन्न

श्री पौराणिकों में परम श्रेष्ठ सूतजी का उन सबने पूजन किया था जैसा कि शास्त्रोक्त विधान है फिर वे सब परम हर्ष को प्राप्त हो गये थे ।५७।

२४—ब्रह्मा की प्रार्थना पर विष्णु का प्रकट होना

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ।१।
भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ ! सर्वतीर्थमहत्त्ववित् ।
कथितं भवता पूर्वं प्रस्तुते तीर्थकीर्तने ।
पुरुषोत्तमाख्यं सुमहत्क्षेत्रं परमपावनम् ।२।
यत्राऽऽस्ते दारुतनुः श्रीशो मानुषलीलया ।
दर्शनान्मुक्तिदः साक्षात्सर्वतीर्थफलप्रदः ।३।
तन्नो विस्तरतो ब्रूहि तत्क्षेत्रं केननिर्मितम् ।
ज्योतिः प्रकाशो भगवान्साक्षान्नारायणः प्रभुः ।४।
कथं दारुमयस्तस्मिन्नास्ते परमपूरुषः ।
वद त्वं वदतां श्रेष्ठ ! सर्वलोकगुरो मुने ! ।५।
श्रोतुमिच्छामहे ब्रह्मन्परं कौतूहलं हि नः ।
शृणुध्वं मुनयः सर्वे रहस्यं परमं हि तत् ।६।
अवैष्णवानां श्रवणे भक्तिस्तत्र न जायते ।
यस्य सङ्कीर्तनादेव सकलं लीयते तमः ।७।
यथाऽन्वेष जगन्नाथः सर्वगः सर्वभावनः ।
स्कन्देनकथितं पूर्वं श्रुत्वाशम्भोर्मुखाम्बुजात् ।
सन्ति क्षेत्राणि चाऽन्यानि सर्वपापहराणि वै ।८।

भगवान नारायण को प्रणाम करके फिर नरोत्तम नर को नमस्कार करे। देवी सरस्वती को प्रणाम करके श्री व्यास देव जी को नमन करे। इसके अनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये।

मुनि वृन्द ने कहा—हे भगवन् ! आप तो समस्त शास्त्रों के ज्ञाता हैं और सम्पूर्ण तीर्थों के महत्व के भी वेत्ता हैं। तीर्थों के कीर्तन करने के प्रस्ताव के प्रस्तुत होने पर पहिले आपने पुरुषोत्तम नाम वाले परम पावन सुमहान् क्षेत्र के विषय मे कहा था ।१।२। जिस क्षेत्र मे भगवान श्रीश मानव लीला से काष्ठ मयी मूर्त्ति धारण करके विराजमान हैं। उनके दर्शन मात्र से ही वे मुक्ति का प्रदान कर देने वाले हैं और साक्षात् समस्त तीर्थों के पुण्य-फल को देने वाले हैं ।३। हे भगवन् ! कृपा करके उसे अब थोड़ा सा विस्तार के साथ हमको बतला दीजिये कि उस क्षेत्र का निर्माण किसने किया था ? साक्षात् भगवान् नारायण प्रभु जो दिव्य ज्योति के प्रकाश स्वरूप हैं वह परम पुरुष वहाँ पर क्यो और किस रीति से दारुमय होकर विराजमान हो रहे हैं ? आप तो इसके बतलाने वालो मे परम श्रेष्ठ एव वरिष्ठ हैं और हे मुने ! आप सब लोकों के गुरु भी हैं अतः आप हमको यह बतलाइये। हे ब्रह्मन् ! हम सब सुनने की उत्कट इच्छा रखते हैं और हमारे हृदय में इसके श्रवण करने को बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ।३।४।५। महर्षि प्रवर जैमिनी ने कहा—हे मुनिगण ! आप सब सुनिये, यह एक बड़ा भारी रहस्य है ।६। जो लोग वैष्णव नहीं है उनकी इसके श्रवण करने मे भक्ति नहीं होती है। जिसके सङ्कीर्तन करने मात्र से ही सब तम लीन हो जाया करता है। यद्यपि यह जगत् के नाथ हैं—सर्वत्र गमन करने वाले और सब पर दया भाव रखने वाले हैं। पहिले भगवान शम्भु कमल से श्रवण करके स्वामी स्कन्द ने कहा था। और भी समस्त पापो के हरण करने वाले क्षेत्र विद्यमान हैं ।७—८।

एतत्क्षेत्रं परस्याऽस्यवपुर्भूतंमहात्मनः ।
स्वयंवपुष्मांस्तत्रास्तेस्वनाम्नाख्यापितंहितत् ।९।
तत्र ये स्थातुमिच्छन्ति तेपिसर्वेहतांहसः ।
किंपुनस्तत्रतिष्ठन्तोयेपश्यन्तिगदाधरम् ।१०।

अहोतत्परमंक्षेत्रं विस्तृतं दशयोजनम् ।
तीर्थराजस्य सलिलादुत्थितं वालुकाचितम् ।११।
नीलाचलेनमहतामध्यस्थेनविराजितम् ।
एकस्तनमिव पृथ्व्याः सुदूरात्परिभाविमम् ।१२।
वाराहरूपिणापूर्वंसमुद्धृत्यवसुन्धराम् ।
सर्वतः सुसमां कृत्वापर्वतैः सुस्थिरीकृताम् ।१३।
सृष्ट्वा चराचरं सर्वं तीर्थानि सरिदब्धिकान् ।
क्षेत्राणि च यथास्थानं संनिवेश्य यथा पुरा ।१४।

यह क्षेत्र इन महान पुरुष का वपुभूत अर्थात् शरीरधारी सर्वश्रेष्ठ है और वहाँ पर स्वयं वपुष्मान् विराजमान रहा करते हैं और अपने ही नाम से इस क्षेत्र को लोक मे स्थापित भी किया है। वहाँ पर जो भी स्थित होने की इच्छा किया करते हैं वे भी निष्पाप ही होते हैं और उनके विषय मे तो कहा ही क्या जावे जो वहाँ पर अपनी स्थिति रखते हैं और भगवान् गदाधर का नित्य दर्शन प्राप्त किया करते हैं। अहो ! यह सर्वोत्तम क्षेत्र है जो दश योजन के विस्तार से युक्त है। तीर्थराज के जल से यह उत्थित हुआ है जो वालुका से चित है। मध्य में स्थित महान नीलाचल से यह क्षेत्र विराजित है। बहुत दूर से ही पृथ्वी देवी के एक स्तन के समान परिभावित होता है। पहिले वाराह के स्वरूप को धारण करने वाले भगवान ने इस वसुन्धरा देवी उद्धार करके इसे सभी ओर से सुसमान किया था और पर्वतों से इसको सुस्थिर बनाया था। सभी चर और अचर सृष्टि का सृजन करके समस्त तीर्थ, नदियाँ, समुद्र और क्षेत्रों को पहिले यथोचित स्थान पर संनिवेशित किया था।९—१४।

ब्रह्मा विचिन्तयामाससृष्टिभारनिपीडितः ।
पुनरेतां क्रियां गुर्वीं नारभेयकथन्त्विति ।१५।

तापत्रयाभिभूताहि मुच्यन्ते जन्तवः कथम् ।
एव चिन्तयमानस्यमतिरासीत्प्रजापतेः ।१६।
मुक्त्येककारणं विष्णुं स्तोष्येऽहं परमेश्वरम् ।
नमस्ते जगदाधार ! शङ्खचक्रगदाधर ।१७।
यन्नाभिपङ्कजादेव जातोऽहं विश्वसृष्टिकृत् ।
परमार्थं स्वरूप ते त्वं वै वेत्सिजगन्मय ।१८।
यन्मायया जगत्सर्वं निर्मितं महदादिकम् ।
यन्निःश्वाससमुद्भूत शब्दब्रह्म त्रिधाऽभवत् ।१९।
उपजीव्यतदेवाऽहमसृजम्भुवनानि वै ।
त्वत्तोनाऽन्यः स्थूलसूक्ष्मदार्घंह्रस्वादिकिञ्चन ।२०।
विकारभेदैर्भगवस्त्वमेवेद चराचरम् ।
कटकादि यथा स्वर्णं गुणत्रयविभागशः ।२१।

सृष्टि के भार से अत्यन्त अधिक पीड़ित ब्रह्माजी ने विचार किया था कि इस बड़ी भारी क्रिया को पुनः कैसे प्रारम्भ करूँ। तीन प्रकार के तापों से अभिभूत ये जन्तुगण बिचारे किस तरह से छुटकारा पायेंगे। इस तरह वे चिन्ता में मग्न हो रहे थे कि अचानक प्रजापति के हृदय ऐसी मति समुत्पन्न हो गई थी कि मुक्ति का एक कारण तो भगवान विष्णु ही है अतएव मैं उसी परमेश्वर प्रभु का स्तवन करूँगा। ब्रह्माजी ने कहा—हे इस जगत् के आधार ! हे शङ्ख, चक्र और गदा के धारण करने वाले ! आपकी सेवा मे मेरा नमस्कार समर्पित है। जिसके नाभि मे स्थित कमल से ही मेरी उत्पत्ति हुई है जो इस विश्व की सृष्टि को करने वाला है। हे जगन्मय ! आपके परमार्थ स्वरूप को आप ही जानते हैं। जिसकी माया से यह सम्पूर्ण जगत तथा महत् आदिक निर्मित हुए हैं। जिसके निःश्वास से समुत्पन्न यह शब्द ब्रह्म तीन स्वरूपों वाला हो गया है। हे देव ! मैंने तो इन भुवनों की सृष्टि करदी है आप इनको उपजीव्य करिये। आपसे अतिरिक्त अन्य कोई भी स्थूल,

सूक्ष्म, दीर्घ और, ह्रस्व आदि नहीं है। विकारों के भेदों के द्वारा हे भगवन्! यह सब चराचर आप ही स्वयं हैं। तीन गुणों के (सत्त्व, रज, तम) विभाग से यह सभी कुछ आपका ही स्वरूप है जैसे स्वर्ण कटक आदि के विभिन्न रूपों मे रहता है।१५—२१।

स्रष्टासृज्यंत्वमेवाऽत्रपोष्टापोष्यञ्जगत्प्रभो ।
आधारो ध्रियमाणश्चच धर्त्ता त्वंपरमेश्वर ।२२।
त्वत्प्रेरितमतिः सर्वञ्चरते च शुभाऽशुभम्
ततः प्राप्नोति सदृशीं त्वयैव विहितां गतिम् ।२३।
जगतोऽस्य गतिर्भर्त्ता साक्षी त्वं परमेश्वर ! ।
चराचरगुरो ! सर्वजीवभूतकृपामय ! ।
प्रसीदाऽद्यजगन्नाथ ! नित्य त्वच्छरण्यस्य मे ।२४।
एवं संस्तूयमानश्च ब्रह्मणा गरुडध्वजः ।
नीलजीमूतसङ्काशः शङ्खचक्रादिचिह्नितः ।२५।
पतगेन्द्रसमारूढः स्फुरद्वदनपङ्कजः ।
आविरासीद् द्विजश्रेष्ठा विवक्षुः स्फुरिताधरः ।२६।
यदर्थं मां स्तुषे ब्रह्मन्नशक्यः प्रतिभाति सः ।२७।
अनाद्यविद्यामुद्दृढा दुरच्छेद्याकर्मबन्धनैः ।
प्रभवन्त्यां कथं तस्या हीयेतेमृतिजन्मनी ।२८।

हे प्रभो ! यहाँ पर आप ही तो इस जगत् के सृजन करने वाले हैं और आप ही सृज्य अर्थात् करने के योग्य वस्तु जात हैं। इस जगत् पोषण करने वाले तथा पोषण के योग्य भी आप ही हैं। इस जगत् के आधार और आधेय दोनों हो आप स्वयं ही हैं। हे परमेश्वर ! इसको धारण करने वाले भी आप ही है। आपके द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके ही जो मति होती है उसी से सब शुभ और अशुभ कर्म्म किया करते हैं। इसके अनन्तर आपके द्वारा ही की हुई सदृश गति को प्राप्त किया करता है।२२—२३। हे परमेश्वर ! इस जगत् की आप ही गति हैं, आप ही

इसके भरण करने वाले हैं और आप ही इसके साक्षी हैं। हे चराचर के गुरुदेव! आप तो समस्त जीवभूत कृपामय हैं। हे जगन्नाथ! अब आप प्रसन्न होइये। मैं नित्य ही अनन्य आपकी ही शरणागति में रहने वाला हूँ।२४। महर्षि जैमिनी ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठो! इस रीति से ब्रह्मा के द्वारा संस्तवन किये गये भगवान् गरुड़ध्वज, नीलमेघ के समान कान्ति वाले, शंख, चक्र आदि के चिन्हों से युक्त, खगेन्द्र (गरुड़) पर समारूढ़, स्फुरमाण मुख कमल वाले, स्फुरित अधरों से युक्त बोलने की इच्छा वाले वहाँ पर आविर्भूत हो गये थे। श्री भगवान् ने कहा—हे ब्रह्मन्! जिसके लिए आप मेरा स्तवन कर रहे हैं वह अनवद्य ही प्रतीत होता है। यह मनोविद्या परम सुदृढ़ है और कर्म बन्धनों के द्वारा यह छेदन करने के योग्य नहीं है। उसके होते हुए यह मृत्यु और जन्म कैसे क्षीण हो सकते हैं?।२५—२८।

तथाऽपि चेद कृतेव्यवसायस्तवाऽनघ।
क्रमेण येन हि भवेत्तत्ते वक्ष्यामि कारणम्।२९।
अहं एव त्वमहं ब्रह्मन्मयस्याखिलञ्जगत्।
रुचिस्ते यत्र मे तत्र नान्यथेतिविचारय।३०।
सागरस्योत्तरेतीरे महानद्यास्तु दक्षिणे।
स प्रदेशः पृथिव्या हि सर्वतीर्थफलप्रदः।३१।
तत्र ये मनुजा ब्रह्मन्निवसन्ति सुबुद्धयः।
जन्मान्तरकृतानाञ्च पुण्यानां फलभागिनः।३२।
नाऽल्पपुण्याः प्रजायन्ते नाऽभक्ता मयिपद्मज।
एकाम्रकाननाद्यावद्दक्षिणोदधितीरभूः।३३।
पदात्पदाच्छ्रेष्ठतमः क्रमात्परमपावनः।
सिन्धुतीरे तु यो ब्रह्मन्राजते नीलपर्वतः।३४।
पृथिव्यां गोपितं स्थानं तव चाऽपि सुदुर्लभम्।
सुरासुराणां दुर्ज्ञेयं मायायाऽऽच्छादितं मम।३५।

हे मनद ! तो भी इसके लिए आपका यदि व्यवसाय है तो जिसके द्वारा क्रम से यह हो जावे उस कारण को मैं आपको बतलाता हूं। मैं जो हूं वही तुम हो और जो तुम हो वही मैं हूं। यह पूर्ण जगत् मन्मय ही है। जहाँ आपकी रुचि है वहीं मेरी भी रुचि अवश्य ही है। इसमें अन्यथा कुछ भी नहीं है—इसे विचार लो। इस सागर के उत्तर तीर पर महा नदी के दक्षिण भाग में इस पृथिवी में ही वह प्रदेश विद्यमान है जो समस्त तीर्थों के पुण्य-फल का प्रदान करने वाला है। हे महान् ! वहाँ पर जो मनुष्य सुन्दर बुद्धि वाले निवास किया करते हैं वे दूसरे जन्मों में किए हुए पुण्यों के फल भागी हुआ करते हैं। हे पद्मज ! वहाँ पर अल्प पुण्यों वाले उत्पन्न नहीं हुआ करते हैं और जो मुझमें भक्ति रखने वाले नहीं है वे भी वहाँ उत्पन्न नहीं होते हैं। एकाम्र कानन से से लेकर जहाँ तक दक्षिण सागर के तट की भूमि है पद से पद परम श्रेष्ठतम और इसी क्रम से वह परम पावन है। हे महान् ! सिन्धु के तट पर जो नील पर्वत शोभा देता है वह पृथिवी में परम गोपित स्थान है और वह आपको परम दुर्लभ ही है। वह मेरी माया से समाच्छादित है अतएव सुर तथा असुर सबके द्वारा दुर्ज्ञेय अर्थात् न जानने के योग्य ही है।२६—३२।

सर्वसङ्गपरित्यक्तस्तत्र तिष्ठामि देहभृत् ।
क्षराक्षरावतिक्रम्य वर्तोऽहं पुरुषोत्तमे ।३६।
सृष्टयालयेननाक्रान्तं क्षेत्रम्मेपुरुषोत्तमम् ।
यथामां पश्यसिब्रह्मन् रूपं चक्रादिचिह्नितम् ।३७।
ईदृश तत्र गत्वैव द्रक्ष्यसे मां पितामह ! ।
नीलाद्रेरन्तरभुवि कल्पन्यग्रोधमूलतः ।३८।
वारुण्यां दिशि यत्कुण्डं रौहिणं नाम विश्रुतम् ।
तत्तीरे निवसन्तं पश्यन्ताश्रमंचक्षुषा ।३६।

तदम्भसाक्षीणपापा मम सायुज्यमाप्नुयुः ।
तत्र व्रज महाभाग दृष्ट्वा मां ध्यायतस्तव ।४०।
प्रकाश यास्यते तस्य क्षेत्रस्य महिमाऽपरः ।
आश्चर्यभूतः परमस्तवाऽपिचभविष्यति ।४१।
श्रुतिस्मृतीहासपुराणगोपितं
मन्मायया तन्न हि कस्य गोचरम् ।
प्रसादतो मे स्तुवतस्तवाऽधुना।
प्रकाशमायास्यति सर्वगोचरम् ।४२।
अहर्निवासाल्लभतेऽत्र सर्वं निःश्वासवासात्खलु
चाऽऽश्वमेधिकम् ।४३।
इत्यादिश्य विधि विप्रास्तदाऽसौ पुरुषोत्तमः ।
पश्यतस्तस्य तत्रैव प्रभुरन्तरधीयत ।४४।

सब प्रकार के सङ्ग से परित्यक्त होकर मैं वहाँ पर देहधारी होकर स्थित रहा करता हूँ। क्षर और अक्षर को अतिक्रमण करके मैं पुरुषोत्तम मे वर्त्तमान रहता हूँ। सृष्टि और लय से मेरा वह आक्रान्त पुरुषोत्तम क्षेत्र है। हे ब्रह्मन्! जिस प्रकार से मुझको इस समय मे चक्रादि से चिह्नित रूप आप देख रहे हैं। हे पितामह! वहाँ पर जाकर भी आप ऐसा ही मुझको देखेंगे। नीलाद्रि के अन्तर भूमि मे बला न्यग्रोध के मूल से वारुणी दिशा में जो एक रोहिण इस नाम से विख्यात है ऐसा एक कुण्ड है। उसके तट पर निवास करने वाले मुझको चर्म्म चक्षु से देखने वाले हैं उसके जल से क्षीण पापो वाले पुरुष मेरे सायुज्य को प्राप्त किया करते हैं। हे महाभाग! आप भी वहाँ पर चले जाइये वहाँ पर मेरा दर्शन प्राप्त करके मेरा ध्यान करते हुए आप प्रकाश को प्राप्त करेंगे। यह उस क्षेत्र की एक अपर महिमा है। वह परम आश्चर्यभूत यहाँ पर आपको भी होगा। समस्त श्रुति, स्मृति, इतिहास और पुराणों मे भी परम गोपित है और वह मेरी माया से किसी को भी गोचर नहीं

होता है। मेरे प्रसाद से आपके इस स्तवन करने पर अब आपको वह प्रकाश सर्वगोचर हो जायगा।३६—४२। व्रतों से, तीर्थों में, यज्ञ और दानों में जो विमल आत्मा वालों का पुण्य बताया गया है वह एक दिन निवास करने से यहाँ पर सब प्राप्त होता है। निःश्वास की वायु से निश्चय ही अश्वमेध यज्ञ के करने का फल होता है। हे विप्रो! उस समय में पुरुषोत्तम प्रभु ने इस तरह से ब्रह्माजी को इसका आदेश प्रदान किया था और फिर ब्रह्माजी के देखते २ ही वे प्रभु वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे।४३—४४।

२५–रथनिर्माणवर्णन

इत्युक्ते नारदः सोऽथ यथाशास्त्रविचार्यवै।
आलेख्यक्रमशः पत्रं राजेतस्मै न्यवेदयत् ।१।
राजाऽपि पत्रं तच्छ्रुत्वासोऽवधार्य पुनः पुनः।
प्रददौपद्मनिधयेलिखितान्यत्रयानिवै ।२।
सम्पादय पद्मनिधेशालां स्वर्णमयीं कुरु।
ब्रह्मणः सदनं दिव्यं ब्रह्मर्षेणाञ्चनिर्मलम् ।३।
इन्द्रादीनां सुराणां च सिद्धानां मर्त्यवासिनाम्।
मुनीन्द्राणां निवासाय राज्ञां पातालवासिनाम् ।४।
तथा च नागराजानां निधे! त्रैलोक्यवासिनाम्।
यथायोग्यासनैयुक्तं गृहंगृहमतन्द्रितः ।५।
कारयाऽऽशु निधे! द्रव्यसम्भारंयावदेवतु।
विश्वकर्माऽपिचत्तवसाहाय्यरचयिष्यति ।६।
इत्यादिशन्तं स मुनिरिन्द्रद्युम्नमुवाच वै।
सम्भाराग्रृपगेलाद्य कर्तव्य व्यवधानतः ।७।

महर्षि जैमिनि से कहा—इतना कहने पर वह देवर्षि नारद ने शास्त्र के अनुसार इसके अनन्तर विचार करके आलेख्य के क्रम से पत्र

मे उस राजा से निवेदन किया था उस राजा ने भी पत्र को सुनकर और पुनः-पुनः अवधारण करके उसने इसमें जो लिखे हुए थे उनको पद्म निधि के लिए दे दिया था। हे पद्मनिधे ! शाला का सम्पादन करो और उसको स्वर्णमयी कर दो। ब्रह्माजी का परम दिव्य सदन बना दो ब्रह्मर्षियों के लिए अति निर्मल सदन का निर्माण कर दो। इन्द्रादि देवों का, सिद्धों का, मर्त्यलोक मे निवास करने वाले मुनीन्द्रों का निवास स्थान निर्मित करो तथा पाताल लोक मे वास करने वाले राजाओं के निवास करने के लिए सदन बना दो।१—४। हे निधे ! उसी भाँति त्रैलोक्य मे निवास करने वाले नागराजों के लिए सदन का निर्माण करो तुम अतन्द्रित होकर यथा योग्य यत्नों से युक्त गृह-गृह निर्मित करो। हे निधे ! द्रव्य का सम्भार जितना भी लगे इन सबका निर्माण अति शीघ्र कर दो। आपके इस कार्य्य के सम्पादन करने मे विश्वकर्मा भी सहायता करेंगे। वह मुनि इस प्रकार से आदेश प्रदान करने वाले इन्द्रद्युम्न से बोले—सम्भारों को अवधान से यह पृथक् ही करना चाहिये।५—७।

स्वर्णैः सुघटित साधुरथत्रयमलङ्कृतम्।
दुकूलरत्नमालाद्यैर्बहुमूल्यैर्दृढं महत् ।८।
श्रीवासुदेवस्य रथो गरुडध्वजचिह्नितः।
पद्मध्वजः सुभद्राया रथमूर्द्धनि धार्यताम् ।९।
रथः षोडशचक्रस्तु विष्णोः कार्यः प्रयत्नतः।
चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश ।१०।
हस्तषोडशविस्तारो रथश्चक्रधरस्य तु।
चतुर्दश बलस्यैव सुभद्रायास्तु द्वादश ।११।
आसनं जगतां भूयः स्वयं स्वासनविग्रहः।
यद्याने जगतां नाशस्ततो यानं न विद्यते ।१२।

पश्येच्चराचरं विश्वं ज्ञानादथ सुनिर्मले ।
स्थितो हस्ततले नित्यं निर्मलस्तस्यदर्पणः ॥१३॥
तलस्थत्वादसौ तालः सदा तेनाङ्कितः प्रभुः ।
ततः स एव शेषस्य बलभद्रावतारिणः ॥१४॥

सुवर्णों से सुघटित अति सुन्दर समलङ्कृत तीन रथ बनाओ जो दुकूल (वस्त्र) और रत्नों की माला आदि से जो कि बेश कीमती हो उन्हें महान और परम सुदृढ बनाइये ।८। श्री वासुदेव भगवान का रथ गरुडध्वज के चिह्न से युक्त करो । सुभद्रा के रथ के मस्तक पर पद्म ध्वज बनाओ अर्थात् धारण करो । भगवान विष्णु का रथ सोलह पहिये वाला प्रयत्न पूर्वक बनाना चाहिए । बलराम जी का रथ चौदह पहियों वाला और सुभद्रा के रथ के बारह पहिले बनाने चाहिए । चक्र-धर का रथ सोलह हाथों के विस्तार वाला होना चाहिये । बल के रथ का विस्तार चौदह हाथों का और सुभद्रा के रथ का विस्तार बारह हाथो का होना चाहिये । अपने आसन के विरह वाले स्वयं जगतों के पुनः आसन है । उनके यान से जगतो का नाश होता है अतएव यान नहीं है ।९—१२। इस चराचर विश्व को ज्ञान से देखो । सुनिर्मल हस्त-तल मे उसका निर्मल दर्पण नित्य ही स्थित रहता है । तलस्थ होने से यह ताल है उससे सदा प्रभु अङ्कित है । इसी से वही बलभद्रावतारी शेष का है ।१३—१४।

अथवासौरिणः कार्यसीरमेवध्वजोत्तमम् ।
ध्वजः सुनिर्मलः कार्यस्तस्मात्तालध्वजोमतः ॥१५॥
न वासितव्यो देवोऽसावप्रतिष्ठे रथे नृप ! ।
प्रासादेमण्डपे वापिपुरेतन्निष्फलंभवेत् ॥१६॥
तस्मात्प्रतिष्ठा प्रथमं हरेः कार्यारथस्य वै ।
सम्भारः क्रियतांतस्य ह्यनुष्ठेयामयाधुना ॥१७॥

इत्याज्ञामलितुर्नक्त्वा शीघ्रमायाम्यहं नृप ! ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा घटितस्यन्दनत्रयम् ॥१८॥
निर्मितम्मादितैर्द्रुमैरेकाह्नाद्विश्वकर्मणा ।
स्वक्षं सुचक्रं सुस्तम्भं सुविस्तीर्णं सुतोरणम् ॥१९॥
सुध्वजं सुपताकं च नानाचित्रमनोहरम् ।
विचित्रवर्णमिथुनपुत्तलीवलयान्वितम् २०।
बद्धं हाटकनिर्व्यूढं साक्षाद्रविरथोपमम् ।
मेघगम्भीरनिर्घोषं दृष्ट्वा वर्णगुणैर्युतम् ।
वातरंहोहयैर्युक्तं शतचन्द्रैः सितप्रभैः ॥२१॥

अथवा खैरि (कत्थई) का तोर ही उत्तम ध्वज करना चाहिये। मुनिर्मन ध्वज करना चाहिए। इसलिए ताल ध्वज माने गये हैं। हे नृप ! वह देव अप्रतिष्ठ रथ में कभी भी निवास इनका नहीं करना चाहिए। प्रासाद मण्डप में अथवा पुर में भी नहीं करे क्योंकि वह निष्फल हो जायगा। १५।१६। इस कारण से सर्वप्रथम खैरि के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। उसका सम्भार सब तैयार करो। वह प्रतिष्ठा मेरे द्वारा ही करनी चाहिये यह आज्ञा मेरे पिता की मैंने प्राप्त की है। हे नृप ! मैं शीघ्र ही आया हूँ। उसके इस वचन का श्रवण करके तीन स्यन्दन (रथ) घटित किए गये हैं। १७—१८। विश्वकर्मा के द्वारा एक ही दिन में निर्मित से सम्पादित द्रुमों से सुन्दर अक्षों वाला, मनोहर पहियों से समन्वित, अच्छे स्तम्भों से युक्त, सुन्दर विस्तार वाला, सुतोरण, सुध्वज, सुपताक और अनेक प्रकार के चित्रों से मनोहर, विचित्र वर्ण वाली पुत्तलियों के जोड़ों और वलयों के सहित, बद्ध हाटक (सुवर्ण) से निर्व्यूढ साक्षात् सूर्य के रथ के तुल्य मेघ के गम्भीर निर्घोष वाले और वर्ण गुणों से युक्त देखकर जो वायु के समान वेग वाले, सित प्रभा से युक्त सौ चन्द्र वाले अश्वों से युक्त था। १९-२१।

यथाशास्त्रविधानेन नारदेन प्रतिष्ठितम् ।
सुलग्ने सुमुहूर्त्ते च सुतिथौ ज्योतिषोदिते ।२२।
भगवञ्जैमिने ! ब्रूहि सर्वज्ञोऽसि मतो हि नः ।२३।
विधिना केन हि रथः प्रतिष्ठाप्योहरेरयम् ।
यथावद्वद नोयेनजानीमोविधिविस्तरम् ।२४।
यथाप्रतिष्ठितं तेन नारदेन महात्मना ।
तद्वो वदिष्यामि विधिं यथा दृष्टं पुरा मया ।२५।
रथस्येशानदिग्भागेशालांकृत्वासुशोभनाम् ।
तन्मध्येमण्डपंकृत्वावेदिनश्रसुनिर्मलाम् ।२६।
चतुरस्रां चतुर्हस्तमितां हस्तोच्छ्रितां द्विजाः ।
प्रतिष्ठापूर्वदिवसेरात्रावुत्तरतः शुभे ।२७।
मुहूर्त्ते स्वस्तिवाच्याऽथ कारयेदङ्कुरार्पणम् ।
द्वात्रिंशद्देवताभ्यश्चबलिंदत्वायथाविधि ।२८।

शास्त्र के विधान के अनुसार सुलग्न में, ज्योतिष में कहे हुए सुमुहूर्त्त में और सुतिथि में नारद ने प्रतिष्ठा की थी। मुनिगण ने कहा—हे भगवन् ! हे जैमिने ! अब आप हमको बतलाइये क्योंकि हम लोग तो आपको सर्वज्ञ ही मानते हैं। यह हरि का रथ किस विधि से प्रतिष्ठित करना चाहिये। आप इसको यथाविधि बतलाइये जिससे हम लोग इसकी विधि के विस्तार को जान लेवें।२२।२३।२४। महर्षि जैमिनि ने कहा—जिस रीति से उन महात्मा नारद जी ने उसकी प्रतिष्ठा की थी उस विधान को मैं आपको बतलाता हूँ जैसा कि मैंने पहिले देखा था। रथ के ईशान दिशा के भाग में एक परम शोभन शाला का निर्माण करके उसके मध्य भाग में मण्डप की रचना की गई थी जिसमें सुनिर्मल वेदी थी। वह वेदी चौकोर थी और चार हाथ विस्तार से युक्त एवं हे द्विजगण ! एक हाथ ऊँची थी। प्रतिष्ठा होने के एक दिन पूर्व रात्रि में उत्तर की ओर शुभ मुहूर्त में स्वस्ति वाचन करके अङ्कुरों

का समर्पण कराना चाहिए। फिर बत्तीस देवों को यथाविधि बलि देनी चाहिए।२५—२८।

प्रातस्ततो वेदिकायां मध्ये मण्डलमालिखेत् ।
पद्मं वा स्वस्तिकं वाऽपि कुम्भं तत्र निधापयेत् ।२९।
पञ्चद्रुमकषायं च तन्मध्ये पूरयेत्सुधीः ।
गङ्गादिपुण्यतोयानि पल्लवान्स समृत्तिकाः ।३०।
सर्वगन्धान्पञ्चरत्नवौषधिगणं तथा ।
पूरयित्वा विधानेन आचार्यः प्राङ्मुखः शुचिः ।३१।
विष्णुं स्मरन्पञ्चगव्यं पश्चादपि प्रपूरयेत् ।
दुकूलवेष्टितकण्ठे माल्यैर्गन्धैः सुशोभनैः ।३२।
फलपल्लवसंयुक्तं कृतकौतुकमङ्गलम् ।
पूरयेत्तत्र देवेश नरसिंहमनामयम् ।३३।
मन्त्रराजेन विधिवदुपचारैस्तथान्तरैः ।
प्रार्थयित्वाप्रसादाय तस्मिन्नावाह्य तं हरिम् ।३४।
बाह्योपचारैर्विविधैः पूजयेद्विधिवद्द्विजः ।
वायव्यांतस्यकुम्भस्यसमिदाज्यचरुं तथा ।३५।

इसके उपरान्त प्रातःकाल के समय में उस वेदिका में मध्य भाग में मण्डल का आलिखन करे, पद्म, स्वस्तिक अथवा वहाँ पर कुम्भ निधापित करना चाहिए।२९। सुधी पुरुष को चाहिये कि पाँच द्रुमों का कषाय ग्रहण करके उसके मध्य में पूरित कर देवे। गङ्गा आदि के परम पवित्र जल, पल्लव, मृत्तिका, सर्वगन्ध, पञ्चरत्न और सर्वोषधि गण को विधि-विधान से पूरित करके आचार्य को प्राङ्मुख अर्थात् पूर्व दिशा में मुख वाला तथा शुचि होकर वहाँ पर स्थित होना चाहिये। भगवान श्री विष्णु का स्मरण करते हुए पीछे पञ्चगव्य को पूरित करे। वस्त्र से वेष्टित करे। सुन्दर गन्ध वाले परम शोभन माल्यों से कण्ठ में वेष्टन करे। फल एवं पल्लवों से संयुत, कृत कौतुक मङ्गल वाले देवेश

धनामय नरसिंह को वहाँ पर पूरित करे। विधि पूर्वक मन्त्र राज के द्वारा तथा अन्तर उपचारो से प्रसाद के लिए प्रार्थना करके उन श्रीहरि का उसमे आवाहन करना चाहिए। हे द्विजगण! विधि के सहित विविध बाह्य उपचारों के द्वारा उनका अर्चन करे। उस कुम्भ के वायव्य दिशा मे समिधा, घृत और चरु स्थापित करे।३०—३५।

अष्टोत्तरसहस्रं च जुहुयाद्विधिवद्गुरुः।
सम्पातान्प्रापयेत्तत्र कुम्भमध्ये तदन्ततः।३६।
रथं सुशोभनं कृत्वा पताकागन्धमाल्यकैः।
सर्वाङ्गसेचयेत्तस्यगन्धचन्दनवारिभिः।३७।
धूपयेत्कालागुरुणा शङ्खकाहानिस्वनैः।
ध्वजे तस्य नृसिंहस्य प्रतिष्ठाप्य समीरणम्।३८।
पूजयित्वा विधानेन रक्तस्रग्गन्धमाल्यकैः।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य सुपर्णम्प्रार्थयेत्ततः।३९।
यो विश्वप्राणहेतुस्तनुरपि च हरेर्यानकेतुस्वरूपो,
यं सञ्चिन्त्यैव सद्यः स्वयमुरगवधूवर्गगर्भाः पतन्ति।
चञ्चच्चण्डोरुतुण्डत्रुटितफणिवसारक्तपङ्काङ्कितास्यं,
वन्दे छन्दोमयं तं खगपतिममलं स्वर्णवर्णं सुपर्णम्।४०।
ब्रह्मघोषैः शङ्खनादैर्नानावाद्यसुविस्तरैः।
रथमूर्ध्नि स्थापयेत्तु चारुसूक्तं समुच्चरन्।४१।
तस्योपरिष्टात्तं कुम्भं समन्तात्प्लावयन्नयम्।
त्रिरुच्चरन्मन्त्रराजं सेचयेद्ब्रह्मणा सह।४२।

गुरु का वहाँ पर कर्तव्य है कि एक सौ आठ बार विधि के सहित हवन करे। वहाँ पर उसके अन्त में कुम्भ के मध्य भाग में सम्पातों को प्राप्त करावे। परम शोभा से सुसम्पन्न पताका सुगन्धित माल्यों से रथ को सुसज्जित करके उसके सम्पूर्ण अङ्गों को गन्ध वाले चन्दन के जल से सेचन करना चाहिये। फिर शङ्ख का हान ध्वनियो के

सहित कालागुरु निर्मित धूप देवें उन भगवान नृसिंह के ध्वज में वायु को प्रतिष्ठापित करके रक्त, स्रक् और गन्ध माल्यों से विधिपूर्वक पूजन करके इस निम्नांकित मन्त्र का उच्चारण करके सुपर्ण देव की प्रार्थना करे।३६–३६। जो विश्व के प्राणों का कारण मूल है और तनु होते हुए भी श्री हरि के यान का केतु स्वरूप वाला है—जिस अचिन्तन करके ही तुरन्त ही स्वयं उरग वधुओं के समुदाय के गर्भ गिर जाया करते हैं, जो चञ्चल् चण्ड और क्रूर त्रुटित फणियों के वसा एवं रक्त के पङ्क से अंकित मुख वाले हैं उन छन्दोमय, स्वर्ण के समान वर्ण वाले, पवन खगों के स्वामी सुपर्ण को मैं वन्दना करता हूँ।४०। ब्रह्म घोषों से, शङ्खों की ध्वनियों से और अनेक भाँति के सुविस्तर वाद्यों से उनको सुन्दर सूक्तों का समुच्चारण करते हुए रथ के मूर्धा पर स्थापित करे। उसके ऊपर उस कुम्भ को चारों ओर से रथ को सम्प्लावित करते हुए वेदों के नीर और मन्त्रराज का उच्चारण करते हुए सेवन करना चाहिये।४१–४२।

ततः पूर्णाहुतिं दत्वा ब्रह्मणेदक्षिणां ददेत्।
आचार्यंदक्षिणांदद्यायेन तुष्यतितद्गुरुः।४३।
ब्राह्मणान्भोजयेदन्ते पायसं मधुसर्पिषा।
द्वादशाक्षरमन्त्रेणबलभद्रस्य कारयेत्।४४।
लांगलं च पवित्रवन्मन्त्रः स्याल्लाङ्गलध्वजे।
अथवाद्विपड्वर्णोपिमूलमन्त्रः प्रकीर्तितः।४५।
लक्ष्मीसूक्तेनभद्रायाः प्रतिष्ठाप्योरथस्तथा।
नाभिहृदाम्मुरारेस्त्वंब्रह्माण्डावलिरूपधृक्।४६।
आसनं चतुरास्यस्य श्रियो वास ! स्थिरो भव।
इमं मन्त्रं समुच्चार्य ध्वजपद्मं समुच्छ्रयेत्।४७।
इत्यान्विशेषो हविषा त्रयाणां च पृथक्पृथक्।
पञ्चपञ्चभिर्होतव्यमेकैकं तु विभागशः।४८।

इत्थं रथप्रतिष्ठाप्यमुवर्णं गांचवस्त्रकम् ।
धान्यंचदक्षिणांदद्यात्सम्यग्देवस्यभक्तितः ॥४६॥

इसके अनन्तर पूर्णाहुति समर्पित करके ब्राह्मण को दक्षिणा देवे। आचार्य को दक्षिणा देनी चाहिए जिससे वह सद्गुरु पूर्णतया सन्तुष्ट हो जावे। इस सब विधान के अन्त में मधु और घृत से संयुत पायसान्न के ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। द्वादश अक्षरों वाले मन्त्र से बलभद्र का कराना चाहिए।४३।४४। लाङ्गल ध्वज में लाङ्गल परिरवन् मन्त्र होता है अथवा द्विपद वर्ण वाला भी मूलमन्त्र कीर्तित किया गया है। लक्ष्मी सूक्त के द्वारा भद्रा के रथ की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। मुरारि के शान्ति स्वरूप हृद के साथ इस ब्राह्मण के मथनि रूप को धारण करने वाले हैं। हे श्री के वास ! यह चतुरानन का आसन है इस पर आप स्थिर होवें—इस मन्त्र समुच्चारण करके ध्वज पद्म को समुच्छ्रित करे।४५—४७। इन दोनों के हवि में पृथक्-पृथक् यह इतना ही विशेष है। एक-एक को विभाग से पाँच-पाँच के द्वारा हवन करना चाहिए। इस रीति से रथों की प्रतिष्ठा करके फिर सुवर्ण, वस्त्र, गौ, धान्य और दक्षिणा। भली-भाँति देव की भक्ति-भावना से देने चाहिये। ४८—४६।

एवं प्रतिष्ठिते तत्र स्यन्दनेऽथ सुभूषिते।
आरोप्य देवं विधिवद्ब्रह्मघोषपुरः सरम् ॥५०॥
जयमङ्गलशब्दैश्च नानावाद्यपुरः सरैः।
चामरान्दोलनैर्धूपैः पुष्पवृष्टिभिरेव च ॥५१॥
ब्राह्मणैः क्षत्रियैर्वैश्यैर्नीयते स्म रथं प्रति।
हयैः सुलक्षणैर्दान्तैर्बलीवर्दैरथापि वा ॥५२॥
पुरुषैर्विष्णुभक्तैर्वा नेतव्या ह्यप्रमादतः।
प्रीणयित्वा जनं सर्वं भक्ष्यभोज्यादिलेपनैः ॥५३॥

रथस्योपरि देवेभ्यो बलिमन्त्रेणभोद्विजाः ।
बलिगृह्णन्तुभोदेवाआदित्यावसवस्तथा ।५४।
मरुतश्चाश्विनौ रुद्राः सुपर्णाः पन्नगा ग्रहाः ।
असुरायातुधानाश्च रथस्थाश्चैव देवताः ५५।
दिक्पाला लोकपालाश्चयेचविघ्नविनायकाः ।
जगतः स्वस्तिकुर्वन्तुदिव्यामहर्षयस्तथा ।५६।

इस भांति वहाँ पर सुप्रतिष्ठित रथ मे जो अच्छी तरह से भूषित किया गया हो देव को विधि पूर्वक ब्रह्म घोष के (वेद ध्वनि के) उसमे समारोपित करना चाहिए जय मङ्गल घोषो से, अनेक भांति के वाद्यो से, चमरो के आन्दोलनो से, धूप दानो से और पुष्पो की वृष्टियों से वह रथ ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यो के द्वारा ले जाया जाता है अच्छे लक्षणों वाले अश्वो, दमनशील बलो वर्दों के द्वारा भी उस रथ का वहन किया जाता है। या विष्णु के परमभक्त जनों के द्वारा बिना प्रमाद के वे रथ वहन कर ले जाने चाहिए। भक्ष्य भोजन और लेपन आदि के द्वारा सब जनो को प्रसन्न करके रथ के ऊपर हे द्विजगण ! बलि के मन्त्र के द्वारा देवों को बलि देवे। हे देवगणो ! आदित्यो ! वसुगणो ! हे मरुद्गणो ! हे अश्विनीकुमारो ! रुद्रगणो ! सुपर्णो ! पन्नग गणो ! ग्रह गणो ! असुरो ! यातुधानो ! और रथ मे स्थित देवताओ ! दिक्पालो ! लोकपालो ! विघ्न विनायको ! दिव्य महर्षि गणो ! आप सब लोग इस जगत् का स्वस्ति (कल्याण) करिये। ॥५०-५६॥

अविघ्नमाचरन्त्वेतेमा सन्तु परिपन्थिनः ।
सौम्या भवन्तुतृप्ताश्चदैत्याभूतगणास्तथा ।५७।
ततस्तु नीयते देवः समभूमौ समुच्चरन् ।
मन्त्रंवैष्णवगायत्री विष्णोः सूक्तंपवित्रकम् ।५८।

वामदेव्यैः पवित्रैश्च मानस्तोमयं रथान्तरैः ।
ततः पुण्याहघोषेण कृतवादित्रनिः स्वनम् ।५९।
शनैः शनैरथो नेयो रथःस्नेहात्तचक्रिणः ।
तत्रोत्पातान्प्रवक्ष्यामिरथेऽत्र द्विजसत्तमाः ।६०।
ईषाभङ्गे द्विजभयं भग्नेऽक्षे क्षत्रियक्षयः ।
तुलाभंगे वैश्यनाशः शम्या शूद्रभयं भवेत् ।६१।
धुराभंगे त्वनावृष्टिः पीठभंगे प्रजाभयम् ।
परचक्रागमं विद्याच्चक्रभंगे रथस्य तु ।६२।
ध्वजस्य पतने विप्रा नृपोऽन्यो जायतेध्रुवम् ।
प्रतिमाभङ्गनायांतुराज्ञोमरणमादिशेत् ।६३।

हे विप्रो ! पर्य्यस्त रथ में ये परिपन्थी गण सब अविघ्नों को करें और सौम्य हो जावें । समस्त दैत्यगण और भूतगण तृप्त हो जावें । इसके उपरान्त समतल भूमि में देव को लाया जाता है । मन्त्र, वैष्णव गायत्री, पवित्र वैष्णव सूक्त, पवित्र वाम देव्यों, मानस्तोमों, रथन्तरों से और इसके उपरान्त पुण्याह घोष के द्वारा वादित्रों के निःस्वन पूर्वक भगवान् चक्री के रथ को स्नेह से धीरे-धीरे ले जाना चाहिए । हे द्विज सत्तमो ! यहाँ रथ पर जो उत्पात होते हैं उनको मैं बतलाता हूँ । ईषा के भङ्ग हो जाने पर द्विजों को भय होता है, अक्ष के भङ्ग होने पर क्षत्रियों को भय होता है । तुला के भग्न होने पर वैश्यों का नाश होता है, शमी के भङ्ग होने पर शूद्रों को भय होता है । रथ के धुरा के भङ्ग हो जाने पर अनावृष्टि होती है । पीठ के भग होने पर प्रजा को भय होता है । रथ के भंग होने पर परचक्रागम जानना चाहिए । हे विप्रो ! ध्वज के चक्र के पतन होने पर निश्चय ही अन्य नृप हुआ करता है । प्रतिमा के भग होने पर राजा का मरण हुआ करता है ।।५७-६३।।

पर्यस्ते तु रथे विप्राः सर्वजानपदक्षयः ।
उत्पन्नेष्वेवमाद्येषु उत्पातेष्वशुभेषु च ।६४।
बलिकर्म पुनः कुर्याच्छान्तिहोमं तथैवच ।
ब्राह्मणान्भोजयेद्भूयो दद्याद्दानानिचैवहि ।६५।
पूर्वोत्तरे च दिग्भागे रथस्याऽग्नि प्रकल्पयेत् ।
समिद्भिर्घृतमध्वाज्यमूलाग्राभिश्च होमयेत् ।६६।
पालाशाभिर्द्विजश्रेष्ठ मन्त्रराजेन दीक्षितः ।
सोमायाऽग्नयेप्रजाभ्य प्रजानां पतये तथा ।६७।
ग्रहेभ्यश्च ब्रह्मणे च दिक्पालेभ्यस्तदन्ततः ।
यत्र यत्र रथे दोषास्तत्र तत्र चदीक्षितः ।६८।
जुहुयात्प्रतिष्ठामन्त्रेण विशेषः सर्वतो भवेत् ।
ब्राह्मणैः सहितः कुर्याद्धोमान्ते शान्तिवाचनम् ।६९।
स्वस्ति भवतु विप्रेभ्यः स्वस्ति राज्ञेऽस्तु नित्यशः ।
गोभ्यः स्वस्ति प्रजाभ्यस्तु भगतः शान्तिरस्तु वै ।७०।
स्वस्त्यस्तु द्विपदे नित्य शान्तिरस्तु चतुष्पदे ।
श प्रजाभ्यस्तथैवाऽस्तु श तथाऽऽत्मनि चास्तु नः ।७१।
शान्तिरस्तु च देवस्य भूर्भुवः स्वः शिवं तथा ।
शान्तिरस्तु शिव चाऽस्तु सर्वतः स्वस्तिरस्तु नः ।७२।
त्वं देव ! जगतः स्रष्टापोष्टाचैव त्वमेव हि ।
प्रजाः पालय देवेश ! शांतिकुरु जगत्पते ।७३।
यात्राकारणभूतस्य पुरुषस्य च भूपते ! ।
दुष्टान्ग्रहांस्तु विज्ञायग्रहशान्ति समाचरेत् ।७४।

हे विप्रगणो ! अशुभो के उत्पन्न होने पर तथा इस तरह के उत्पातो के होने पर दर्यस्त रथ मे सम्पूर्ण जनपदों का क्षय हुआ करता है । अतएव पुनः बलि कर्म करना चाहिए तथा उसी भाँति शान्ति होम करे । फिर ब्राह्मणों का भोजन कराना चाहिये तथा

मन्त्रों का दान करना चाहिए। रथ के पूर्वोत्तर दिग्भाग में अग्नि की प्रकल्पना करे। घृत, मधु और समिधाओं से होम करना चाहिए। ।६४।६५।६६। हे द्विज श्रेष्ठो! मन्त्र राज की दीक्षा से संयुत होकर पलाश की समिधाओं से होम के लिए—अग्नि, प्रजाजन, प्रजाओं के पति, ग्रहगण, ब्रह्मा और दिक्पालों के लिए उसके अन्त में जहाँ-जहाँ पर रथ में दोष हों वहीं पर दीक्षित होकर प्रतिष्ठा मन्त्र से हवन करना चाहिए। सभी ओर विशेष होता है। ब्राह्मणों के सहित होकर होम के अन्त में शान्ति वाचन करना चाहिये ।६७।६८।६९। विप्रों का कल्याण होवे और नित्य ही राजा का मंगल होवे, गौओं का तथा प्रजा का कल्याण हो एवं सम्पूर्ण जगत् को शान्ति प्राप्त होवे ।७०। द्विपदों में निश्य ही शान्ति होवे तथा चतुष्पदों में शान्ति हो उसी भाँति प्रजाओं को मंगल होवे और हमारी आत्मा में शान्ति होवे। देव को शान्ति होवे तथा भूर्भुवः स्व. शिव हो। शान्ति हो और शिव हो। हमारा सभी ओर मंगल होवे ।७१।७२। हे देवेश्वर! आप ही इस जगत् के स्रष्टा-पोष्टा हैं! हे देव! आप इस प्रजा का पालन करें। हे जगत्पते! आप शान्ति करें। हे भूपते! जहाँ पर अकारण भूत पुरुष के दुष्ग्रह हों उन्हें जानकर ग्रहशान्ति का समाचरण करें ।७३।७४।

२,—रथयात्रामहोत्सवविधिकथन

अतऊर्ध्वंप्रवक्ष्यामिमहावेदीमहोत्सवम् ।
अज्ञानतिमिरान्धोऽपि येनभास्वत्पदव्रजेत् ।१।
वैशाखस्याऽमले पक्षे तृतीयापापनाशिनी।
स्वयमाविष्कृतावैषाप्राजापत्यर्क्षसंयुता ।२।
तस्यां संकल्प्य नृपतिरानार्यंवरयेच्छुचिः ।
एकं त्रीनथ तक्षाणं दृढकर्माणमादरात् ।३।
वृणुयाद्धनधान्यवस्त्रालङ्करणादिभिः ।
तक्षणासार्द्धं वनं गत्वा साधुवृक्षगणाकुलम् ।४।

तन्मध्ये वह्निमाधायमन्त्रराजेनमन्त्रवित् ।
अष्टोत्तरशतंहुत्वासम्पाताज्यविमिश्रितम् ।५।
आज्यं तरूणां मूलेतुप्रत्येकमभिधारयेत् ।
दिक्पालेभ्योबलिंदत्वाक्षेत्रपालपशूंस्तथा ।६।
वनस्पतये जुहुयात्क्षीरोदनशताहुतिम् ।
ततः परशुमादाय वृक्षमूलेषु दिक्षु वै ।७।

श्री जैमिनि महर्षि ने कहा—इसके आगे मैं महावेदी के महोत्सव का वर्णन करता हूँ जिससे अज्ञान के तिमिर से अन्धा भी पुरुष भास्कर के पद को प्राप्त कर लिया करता है। वैशाख मास के अमल (शुक्ल) पक्ष में तृतीया तिथि पापों के नाश करने वाली हुआ करती है। यह प्राजापत्य नक्षत्र से संयुत स्वयं ही आविष्कृत हुई है। उसमें सङ्कल्प करके राजा आचार्य का वरण करे और परम शुचि होकर एक तीन तक्षाओं का भी वरण करे जिनका कि काम पहिले देख लिया गया हो। बहुत ही आदर के साथ वनयाग के लिए वस्त्र तथा अलङ्कार आदि से इनका वरण करना चाहिए। बहुत अच्छे वृक्षों के गण से संकुल वन में तक्षा के साथ गमन करे। उनके मध्य में मन्त्रवेत्ता को मन्त्रराज के द्वारा वह्नि का आधान करना चाहिए। वहाँ पर सम्पाताज्य से विमिश्रित आज्य की एक सौ आठ बार आहुतियाँ देवे। तरुओं के मूल में प्रत्येक को अभि धारण करे। दिक्पालों को बलि समर्पित करके तथा क्षेत्र पाल पशुओं को बलि देकर एक सौ आहुतियाँ क्षीरोदन की वनस्पति के लिये देवे। इसके अनन्तर वृक्षमूलों की दिशाओं में परशु ग्रहण करके गमन करना चाहिए ।१-७।

आज्यसंस्कृतिदेशेषु आचार्यो मन्त्रमुच्चरन् ।
किञ्चित्किञ्चिच्छेदयेद्वै चिन्तयन्गरुडध्वजम् ।८।
नदत्सु तूर्यघोषेषु गीतमङ्गलवादिषु ।
नियोज्य वर्द्धकिं तत्र आचार्यः स्वगृहं व्रजेत् ।९।

अथवारथानलब्धानिदारूणिरथकर्मणि ।
उक्तसंस्कारविधिनासंस्कुर्यात्कल्पितेऽनले ॥१०॥

आरभेत रथं कृत्वा विघ्नराजमहोत्सवम् ।
षोडशारैः षोडशभिश्चक्रैर्लोहमयैर्दृढैः ॥११॥

युक्तं विष्णो रथं कुर्याद्दृढाक्षं दृढकूवरम् ।
विचित्रघटनाकक्षपुत्तलीपरिवेष्टितम् ॥१२॥

नानाविचित्रबहुलमिक्षुखण्डविराजितम् ।
चतुस्तोरणसंयुक्तं चतुर्द्वारं सुशोभनम् ॥१३॥

नानाविचित्रबहुल हेमपट्टविराजितम् ।
द्वाविंशतिकरोच्छ्रायं पताकाभिरलङ्कृतम् ॥१४॥

आचार्य्य वर को आज्य से संस्कृति सम्पन्न देशों में मन्त्र का उच्चारण करते हुए भगवान् गरुड़ध्वज की चिन्ता करते हुए कुछ-कुछ छेदन करना चाहिए ।८। तूर्यों की ध्वनियों के बजने पर गीत मङ्गलों के होने पर वहाँ पर वर्द्धकि को नियुक्त करके आचार्य्य वर को अपने घर पर चले जाना चाहिए ।९। अथवा रथ के कर्म्म में स्थान में प्राप्त काष्ठों का उक्त संस्कार विधि से कल्पित अनल में संस्कार करे । रथ को बना कर विघ्न राज के महोत्सव का समारम्भ करना चाहिए । सोलह अराओं वाले लोहमय अत्यन्त सुदृढ सोलह चक्रों (पहिए) वाले दृढाक्ष और सुदृढ कूबर रथ भगवान् का बनवावे । वह रथ विचित्र घटना कक्ष और पुत्तलिकाओं से परिवेष्टित होना चाहिए । वह अनेक प्रकार की विचित्र बाहुल्यों से समन्वित तथा इक्षु दण्ड से शोभित होवे । चार तरंगों वाला, चार द्वारों से युक्त, अत्यन्त शोभन, नाना अद्भुत वस्तुओं की बहुलता से समुत, हम पहने विराजित बनवाने यह रथ बत्तीस हाथ ऊँचाई वाला और पताकाओं से समलङ्कृत होना चाहिए १०–१४॥

गारुडं च ध्वजं कुर्याद्रक्तचन्दननिर्मितम् ।
दीर्घनासस्थूलदेहंकुण्डलाभ्याविभूषितम् ॥१५॥
भञ्चवप्रदष्टभुजगसर्वालङ्कारभूषितम् ।
विवृत्य पक्षतीव्योम्नि उड्डीयन्तमिवोदितम् ॥१६॥
दैत्यदानवसङ्घस्य बलदर्पविनाशनम् ।
सर्वाङ्गं तस्य कनकैराच्छाद्य परिशोभयेत् ॥१७॥
रथमेव हरेः कुर्यात्स्वासनं सुपरिष्कृतम् ।
चतुर्दशरथाङ्गैस्त रथं कुर्याच्च सीरिणः ॥१८॥
चक्रैर्द्वादशभिः कुर्यात्सुभद्रायारथोत्तमम् ।
सप्तच्छदमयं कुर्यात्सोरिणोलाङ्गलध्वजम् ॥१९॥
देव्याः पद्मध्वज कुर्यात्पद्मकाष्ठविनिर्मितम् ।
विरचय्य रथान्राजाप्रतिष्ठां पूर्ववच्चरेत् ॥२०॥
यथामन्त्र यथाशास्त्रविश्वसेद्ब्राह्मणेषु च ।
ब्राह्मणाजगदीशस्यजङ्गमास्तनव. स्मृताः ॥२१॥

रक्त चन्दन से निर्मित गारुड ध्वज करे, दीर्घ नासा वाले, स्थूल देह वाला और कुण्डलो से विभूषित होना चाहिए ।१५। यह गरुड़ ऐसा बनावे जो अपने पक्षो को फैला कर आकाश में उडान भरता हुआ सा प्रतीत होता हो । दैत्यो और दानवो के सङ्घ के बल के दर्प को विनष्ट कर देने वाले उसके सर्वांग को सुवर्ण से समाच्छादित करके परिशोभित करे । जिसका अपना आसन सुपरिष्कृत हो ऐसा ही श्री हरि के रथ का निर्माण करावे । बलभद्र जी के रथ को चौदह रथांगो से युक्त निर्मित कराना चाहिए । सुभद्रा देवी के रथ को बारह चक्रो (पहियो) से युक्त बनवाना चाहिए । सीरी के लाङ्गल ध्वज को सप्त छदमय बनवावे । देवी सुभद्रा के पद्म ध्वज को पद्म के काष्ठ से निर्मित कराना चाहिए । इस तरह से इन तीनो रथो की विशेष रूप से रचना कराकर राजा का कर्त्तव्य है कि पूर्व की ही भाँति इनकी प्रतिष्ठा करावें । मन्त्रों और

शास्त्रों के ही अनुसार ब्राह्मणों में विश्वास करे। ये ब्राह्मण भगवान् जगदीश्वर के साक्षात् जंगम शरीर ही बतलाये गये हैं ॥१६।१७।१८।।१९।२०।२१।

इत्थं सुघटितं चक्रित्रयं देवत्रयस्य वै।
आषाढस्य सिते पक्षे दिने विष्णोः शुभप्रदे।२२।
प्रतिष्ठाप्य समृद्धेनविधिनापूर्ववद्द्विजाः।
रक्षणीयंतथातत्र नाऽऽरोहेत्कश्चनाऽशुभः।२३।
पक्षी वा मानुषो वाऽपि मार्जारनकुलादयः।
ततो दिनत्रयादर्वाग्रथानामुत्तरे कृते।२४।
मण्डपे उत्सवाङ्गे वाप्रकुर्यादङ्कुरार्पणम्।
अद्भुतेष्वथ जातेषु शान्तिं कुर्यात्पुरोदिताम्।२५।
रथ्यामुसंस्कृताकार्यामहावेदीतथाव्रजेत् ।
पार्श्वयोर्मण्डलंकुर्यात्पथिगुल्मादिभिः फलैः।२६।
सुमनः स्तवकैर्माल्यैर्दुकूलैश्चामरैस्तथा।
यथा सुपुष्पिताऽरण्यराजी तत्र विराजते।२७।
भूमिः समा च कार्या वै निष्पङ्का सुखचारणा।
निर्मला च सुगन्धा च सुदूराद्वर्जितोत्करा।२८।

इस रीति से भली भाँति निर्मित कराये गए तीन देवों के तीन रथ जब तयार हो जावें तो आषाढ़ मास के सित पक्ष में भगवान् विष्णु के शुभ प्रद दिन में हे द्विजो ! पूर्व की ही भाँति समृद्ध विधि से प्रतिष्ठा करके वहाँ पर पूरी सावधानी से रक्षा करनी चाहिए उन पर कोई अशुभ समारोहण न करे। चाहे वह कोई पक्षी हो, मनुष्य हो, मार्जार हो अथवा नकुल प्रभृति कोई भी हो। इसके पश्चात् तीन दिन पहिले ही रथों के उत्तर मे किए हुए मण्डप में अथवा उत्सवांग में अङ्कुरार्पण करें। इसके अनन्तर अद्भुत होने पर पहिले वर्णित शान्ति करनी चाहिए। रथ्या को सुन्दर संस्कार से युक्त करे फिर महावेदी पर गमन

करे। दोनों पार्श्व भागों में मण्डल की रचना करे। मार्ग में गुल्मादि से, फलों से, पुष्पों के गुच्छों से, मालाओं से, वस्त्रों से तथा चामरों से ऐसा बना देवे जैसे कोई सुन्दर पुष्पों से युक्त वन की राजि ही वहाँ विराजमान होवे। वहाँ की भूमि समतल, पङ्क से रहित और सुख पूर्वक सञ्चरण करने वाली बना देनी चाहिए जो एकदम निर्मल, सुन्दर गन्ध से युक्त और दूर तक कूड़े-कर्कट से पूर्णतया रहित होवे ।२२।।२३।२४।२५।२६।२७।२८।

धूपपात्राण्यनुपदं दिशामोदकराणि च।
चन्दनाम्भः परिक्षेपो यन्त्रपातोत्करस्तथा ।२९।
बहूनि ऋतुपुष्पाणि पुष्पवृष्ट्यर्थमेव हि।
नटनर्त्तकमुख्याश्च गायना बहवस्तथा ।३०।
बहवो बहुधा तत्र पताकाश्चित्रितान्तराः।
ध्वजाश्च बहवस्तत्र स्वर्णराजतनिर्मिताः ।३१।
वैजयन्त्यो बहुविधाभूमिगावाहनास्तथा।
हस्तिनश्चहयाश्चैवसुसन्नद्धाः स्वलङ्कृताः ।३२।
एवं सम्भूतसम्भारः क्षितिपालः शुचिव्रतः।
मुदा भक्त्या च परया युक्तः कुर्यान्महोत्सवम् ।३३।
आषाढस्य सिते पक्षे द्वितीयापुष्यसंयुता।
अरुणोदयवेलायां तस्यां देवं प्रपूजयेत् ।३३।
ब्राह्मणैर्वैष्णवैः सार्द्धं यतिभिश्च तपस्विभिः।
विज्ञापयेद्देवदेवंयात्रार्थंसत्कृताञ्जलिः ।३५।

दिशाओं में आमोद देने वाले धूप पात्र अनुपद रहें चन्दन के जल का परिक्षेप हो और यन्त्रपात का उत्कर भी होवे। पुष्पों की वर्षा करने के लिए बहुत अधिक मात्रा में ऋतु पुष्प रहने चाहिए। नट तथा नृत्य करने वाले प्रमुख सज्जन और बहुत से गायन करने वाले जन भी वहाँ पर रहें। रूप लावण्य तथा अलङ्कारों से विभूषित एवं

यौवन के गर्व से समन्वित वेश्याएँ भी उस उत्सव में रहें। अनेक प्रकार के वाद्य जैसे मृदंग, पणव, भेरी और ढक्का आदि वहाँ होवें। जिनके अन्तर विभिन्न होवें ऐसी बहुत प्रकार की बहुत सी पताकाऐं होनी चाहिए। सुवर्ण और रजत (चाँदी) से निर्मित की हुई, वहाँ पर अविरत संख्या में ध्वजाऐं होवें, वैजयन्ती हो और अनेक तरह के भूमि में गमन करने वाले वाहन भी वहाँ पर रहने चाहिए। हाथी और अश्व सुसन्नद्ध एवं भली भाँति अलङ्कृत होवें। इस प्रकार से सम्भृत सम्भार वाले तथा शुचि व्रत से संयुत राजा को बड़ी ही प्रसन्नता और परा भक्ति साथ इस महोत्सव को करना चाहिए। आषाढ मास के शुक्ल-पक्ष में जब द्वितीया तिथि पुष्य नक्षत्र से युक्त हो तो उस दिन अरुणोदय की वेला मे उसमे देव की प्रकृष्ट रूप से पूजा करे। ब्राह्मण, वैष्णवजन, यति वर्ग और तपस्वियों के साथ संस्क्राञ्जलि होकर यात्रा के लिए देवों के भी देव प्रभु की सेवा में विज्ञापित करे।२६। ।३०।३१।३२।३३।३४।३५।

२७—भगवतः शयनोत्सवविधिवर्णन

अतः परम्प्रवक्ष्यामिशयनोत्सवमुत्तमम् ।
अषाढोमवधिं कृत्वा हरेः स्वापस्तुकर्कटे ।१।
वार्षिकांश्चतुरो मासान्यावत्स्यात्कार्त्तिकी द्विजाः ।
अथ पुण्यतमः कालो हरेराराधनम्प्रति ।२।
काश्यां बहुयुगं वासान्नियमव्रतसंस्थितेः ।
फलं यदुक्तं तद्विद्यात्क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।३।
चातुर्मास्यदिनैकेन, वसतः सन्निधौ हरेः ।
वापिकाणांचतुर्णां तु यान्यह्नानिवसन्नयेत् ।४।
पुण्यक्षेत्रे, जगन्नाथसन्निधौ, निर्मलान्तरे ।
प्रत्यक्षं वाजिमेधस्य, सहस्रस्यलभेत्फलम् ।५।

स्नात्वा सिन्धुजले पुण्ये दृष्ट्वा श्रीपुरुषोत्तमम् ।
चातुर्मास्यव्रतेतिष्ठन्नशोचतिकुतश्चन ।६।
चातुर्मास्ते निवसति क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।
साक्षाद्दृष्टिर्भगवतस्तद्द्वयं मुक्तिसाधनम् ।७।

महर्षि जैमिनि ने कहा—इससे आगे मैं भगवान का अत्युत्तम शयनोत्सव का वर्णन करूँगा । आषाढ़ी अवधि को करके कर्कट मे श्रीहरि का स्वाप होता है। हे द्विजगण ! ये वर्ष में चार मास होते हैं और जब तक कार्त्तिकी होती है तब तक ये मास हुआ करते हैं । यह भगवान श्रीहरि की आराधना करने का परम पुण्यत काल हुआ करता है ।१।२। नियमो और व्रतों की संस्थिति वाले पुरुष को काशी पुरी में बहुत युग पर्य्यन्त निवास से जो पुण्य फल होता है और बताया गया है वह इस श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र के निवास करने जानना चाहिये । चातुर्मास्य के एक ही दिन तक श्रीहरि की सन्निधि में निवास करने वाले को वार्षिक चार मासों के जितने दिन होते हैं उनमे वास करते हुए बिताते चाहिए । इस निर्मल अन्तर वाले परम पुण्य क्षेत्र मे श्री जगन्नाथजी की सन्निधि मे निवास करने वाले पुरुष को प्रत्यक्ष एक सहस्र अश्वमेध यज्ञो का पुण्य-फल प्राप्त हुआ करता है । सिन्धु के जल मे स्नान करके जो परम पुण्य पूर्ण है और श्री पुरुषोत्तम प्रभु का दर्शन करके जो चातुर्मास्य के व्रत में स्थित रहता है वह कहीं भी शोक से युक्त नहीं हुआ करता है। जो चातुर्मास्य में श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र मे निवास किया करता है उस पर भगवान का साक्षात् दृष्टि होती है और वह मुक्ति का परम साधन होता है ।३—७।

तस्मात्सर्वाणि सन्त्यज्य श्रौतस्मार्त्तानि मानवः ।
प्रयत्नान्निवसेत्पुण्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ।८।
भोगिभोगासने सुप्तश्चातुर्मास्येषु वै प्रभुः ।
सर्वक्षेत्रेपुसान्निध्यंनकरोति जगद्गुरुः ।९।

यत्र साक्षान्निवसति यथा वैकुण्ठवेश्मनि ।
द्वादशस्वपि मासेषु भगवानत्र मूर्तिमान् ॥१०॥
मुक्तिदश्चक्षुषा दृष्टश्चातुर्मास्ये विशेषतः ।
अष्टमासनिवासेन दृष्ट्वा विष्णुं दिने दिने ॥११॥
यदाप्नोति फलं तद्धि चातुर्मास्यदिनैकतः ।
चातुर्मास्यनिवासेन क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे ॥१२॥
दिनं दिनं महापुण्यं सर्वक्षेत्रनिवासजम् ।
फलं ददाति भगवानत्र वर्षनिवासितः ॥१३॥
सर्वपापप्रसक्तोऽपि सर्वाऽऽचारच्युतोऽपि च ।
सर्वधर्मबहिर्भूतो निवसेत्पुरुषोत्तमे ॥१४॥
चातुर्मास्यमथैकं यः कुर्याद्धि पापकृन्नरः ।
विहाय सर्वपापानि बहिरन्तश्च निर्मलः ।
नरसिंहप्रसादेन वैकुण्ठभवनं व्रजेत् ॥१५॥

इसलिए समस्त श्रौत और स्मार्त साधनों का परित्याग करके मनुष्य को चाहिये कि वह प्रयत्नपूर्वक परम पुण्यमय श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में ही जाकर अपने कल्याण प्राप्त करने के लिए निवास करे ।८। शेष की शय्या पर चतुर्मास्यों में शयन करने वाले प्रभु जगत् गुरु अन्य समस्त क्षेत्रों से सान्निध्य नहीं किया करते हैं। यही एक स्थल ऐसा है जहाँ पर वैकुण्ठ के घर की भाँति वे साक्षात् निवास किया करते हैं यहाँ वर्ष के बारहों मासों में भगवान मूर्तिमान निवास किया करते हैं और अपने नेत्रों से दर्शन करने वाले को मुक्ति प्रदान करने वाले होते हैं और चातुर्मास्य में विशेष रूप से कृपा किया करते हैं। अन्य वर्ष के आठ मासों में प्रतिदिन विष्णु के दर्शन करने से जो फल प्राप्त होता है वह चातुर्मास्य के केवल एक ही दिन में दर्शन करने से हुआ करता है। श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में चातुर्मास्य के निवास से दिन-दिन में समस्त क्षेत्र के निवास से समुत्पन्न महा पुण्य हुआ करता है। वर्ष भर निवास

से क्षेत्र में भगवान फल देते हैं। सब पापों से प्रसक्त भी, समस्त आचार से च्युत भी सब धर्मों से बहिर्मुख भी जो मनुष्य पुरुषोत्तम क्षेत्र में एक चातुर्मास्य में पापहारी निवास करता है वह सब पापों को त्याग-कर बाहिर भीतर से निर्मल होता हुआ नरसिंह के प्रसाद से वैकुण्ठ भवन में गमन किया करता है।६—१५।

तस्मान्नरः सर्वभावैर्विष्णोः शयनभाविताम् ।
वार्षिकाश्चतुरोमासान्निवसेत्पुरुषोत्तमे ।१६।
कुर्यादन्यन्न वा कुर्याज्जन्मसाफल्यमृच्छति ।१७।
आषाढशुक्लैकादश्यां कुर्यात्स्वापमहोत्सवम् ।
मण्डपं रचयेत्तत्र शयनागारमुत्तमम् ।१८।
देवस्य पुरतः शय्यारत्नपल्यङ्किकोपरि ।
स्वास्तीर्य सोपधानां तु मृदुचीनोत्तरच्छदाम् ।१९।
कर्पूरधूलिविक्षिप्तासाधुचन्द्रातपाशुभाम् ।
सर्वतोवेष्टिताच्छिद्ररहितां चन्दनोक्षिताम् ।२०।
साधुद्वारा समां स्निग्धां नानाचित्रोपशोभिताम् ।
एकं स्वापगृहं कृत्वा निशीथे प्रतिमात्रयम् ।२१।
एह्येहि शयनागारं सुखमत्र स्वप प्रभो ! ।
इति सम्प्रार्थ्य देवेशं स्वापयेत्पुरुषोत्तमम् ।२२।
सुदृढबन्धयेद्द्वारं विष्णोः शयनवेश्मनः ।
स्वापयित्वाजगन्नाथं लभते सुखमुत्तमम् ।२३।
वार्षिकांश्चतुरोमासान्प्रसुप्ते वै जनार्दने ।
व्रतैरनेकैर्नियमैर्मासान्वै चतुरः क्षिपेत् ।२४।

इसलिए मनुष्य को सब प्रकार के भावों से भय विष्णु के शयन से भावित वार्षिक चार मास तक उस श्री पुरुषोत्तम क्षेत्र में निवास करना चाहिए। अन्य कुछ करे अथवा न करे यदि मानव-जीवन को

सफलता चाहता है तो यह अवश्य ही करना चाहिए ।१६–१७। आषाढ़ शुक्ल पक्ष की एकादशी में इस स्वाप के महोत्सव को करे । वहाँ पर मंडप की रचना करे और उत्तम शयनागार की रचना भी करनी चाहिए । देव के आगे एक रत्न निर्मित पल्यङ्किका के ऊपर शय्या रक्खे । उस पर सुन्दर आस्तरण बिछाकर उपधान रक्खे और अत्यन्त मृदु वारीक उत्तरच्छद रक्खे । वह शय्या कपूर की धूलि से विलिप्त करे तथा साधु चन्द्रातप वाली बनावे । सब ओर से वेष्टित और छिद्रों से रहित एवं चन्दन से उक्षित करे । उस शय्या में एक बहुत अच्छा द्वार बनावे । शय्या सम, स्निग्ध और अनेक चित्रों से उपशोभित निर्मित करावे । ऐसा एक स्वाप गृह बनाकर निशीथ में (अर्ध रात्रि में) दोनों प्रतिमाओं का शयन कराना चाहिए । वहाँ पर प्रार्थना करे – हे प्रभो ! इस शयनागार में आप पदार्पण कीजिये और यहाँ पर आप सुखपूर्वक शयन कीजिए । इस तरह से अच्छी तरह प्रार्थना करके देवेश श्रीपुरुषोत्तम प्रभु को वहाँ पर शयन करावे । वहाँ के द्वार को सुदृढ़ता से बन्धित कर देवे जिससे कि भगवान विष्णु का शयन वेश्म (गृह) हो । इस प्रकार से भगवान जगन्नाथ को सुलाकर परमोत्तम सुख को मनुष्य प्राप्त किया करता है वर्ष में चार मास पर्यन्त भगवान जनार्दन के प्रसुप्त हो जाने पर अनेक नियमों तथा व्रतों के द्वारा वहीं पर चार मासों को व्यतीत करना चाहिये ।१८—२४।

कल्पस्थायी विष्णुलोके नरो भक्तो भवेद्ध्रुवम् ।
नियमव्रतानि वदतः शृणुध्वं मुनयो मम ।२५।
पञ्चखट्वादिशयनं वर्जयेभक्तिमान्नरः ।
अनृतौ न व्रजेद्भार्यां मांसं मधु परौदनम् ।२६।
राजमाषमसूरांश्च त्यक्त्वा नाऽऽरोहेत्समं पादुके ।
वार्षिकांश्चतुरो मासान्व्रतेन नयेद्यदि ।२७।

जो ऐसा करता है वह मनुष्य विष्णु लोक में एक कल्प तक स्थित रहता है और वह नर निश्चित रूप से परम मुक्त होता है। जो नियम एवं व्रत मैंने बतलाये थे उनको भी अब हे मुनिवरो ! मुझसे श्रवण करलो। मन्दिमान् मनुष्य को मद्य और कडुवा आदि का शाक चार मास पर्यन्त त्याग देना चाहिये। ऋतुकाल के बिना कभी भी नारी का गमन न करे। मधु, मांस और पराम्न को त्याग देवे। शाक और पत्तियों का त्याग करके चमड़े के जूते न पहिने चार मास तक इसी तरह के व्रतों से रहना चाहिये। २५—२७।

तस्य पापस्य शान्त्यर्थं कार्तिके वा व्रती भवेत् ।२८।
नमः कृष्णाय हरये केशवाय नमोनमः ।
नमोस्तु नारसिंहाय विष्णवे पापजिष्णवे ।
सायम्प्रातर्दिवामध्ये कर्मान्तेषु च योजयेत् ।२९।
तस्य पापानि घोराणि चितानिबहुजन्मसु ।
निर्दहत्येव सर्वाणितूलराशिमिवानलः ।३०।
एकाहारोमिताहारोविष्णुनिर्माल्यभोजनः ।
आषाढीमवधिकृत्वाकार्तिक्यवधियोभवेत् ।३१।
नक्तभोजी भवेद्वापि स्वर्गस्तस्याऽल्पकं फलम् ।३२।

उस पाप की शान्ति के लिए अथवा कार्तिक मास में इस रीति से व्रतों वाला होकर रहे।२८। श्रीकृष्ण हरि केशव के लिए बारम्बार नमस्कार है। नरसिंह, विष्णु पापों को जीतने वाले प्रभु के लिए बारम्बार नमस्कार है। इसको सायङ्काल, प्रातःकाल और दिवा के मध्य में कर्मान्तों में इस मन्त्र का योजन करना चाहिए।२९। ऐसा करने वाले पुरुष को बहुत जन्मों में संचित घर घोर पापों का भी निःशेष रूप से दहन हो जाया करता है। वे समस्त ऐसे जलकर भस्म हो जाया करते हैं। जैसे रुई के ढेर को अग्नि जला दिया करता है। एक समय में

आहार करे, नियत भोजन करे, भगवान विष्णु के निर्माल्य का ही भोजन करे। इस तरह से आषाढ मास की एकादशी की अवधि से कार्तिक मास की एकादशी की अवधि तक करना चाहिये अथवा केवल एक ही बार रात्रि में भोजन किया करे तो उस पुरुष के लिए स्वर्ग का वास प्राप्त होता तो बहुत ही स्वल्प फल होता है।३०—३२।

२८—भगवत-प्रसादनिर्माल्यादिमाहात्म्यवर्णन

इतिदत्त्वावरंतस्मैश्वेतराजायवैपुरा ।
अगारमाऽन्तर्हितोविप्राः प्रासादान्तः स्थितोहरिः ।१।
समस्तजगदाद्यस्यैः सृष्टिस्थितिविनाशकृत् ।
वैष्णवीशक्तिरतुलाविष्णुदेहार्द्धहारिणी ।२।
सुधोपमं सुपक्वान्नं भुङ्क्ते नारायणः प्रभु ।
तदुच्छिष्टोपभोगो हिसर्वाघक्षयकारकः ।३।
नतादृशम्मंपुण्यमस्त्यस्तिपृथिवीतले ।
[प्रायश्चित्तशेषाणाम्पापानांपरिकीर्तितम् ।४।
भगवत्पादपद्मानुप्रेक्षणोपासनादिभि] ।
पापसंहारं कर्तृणा सम्पर्कात् न दुर्लभ ।५।
पद्मायाः सन्निधानेन सर्वे तेषुसगः स्मृताः ।
विष्ण्वालयगतंतद्धिनिर्माल्यंपतितादपि ।६।
स्पृशन्त्यस्तं न दुष्टंतद्यथाविष्णुस्तथैव तत् ।
व्रतस्थाविधवाश्चैवसर्वेवर्णाश्रमास्तथा ।७।

महर्षि जैमिनी ने कहा—हे विप्रगण ! इस तरह से पहिले समय में उस श्वेतराज के लिए इस प्रकार से वरदान देकर प्रासाद के अन्दर स्थित श्री हरि अन्तर्हित होकर चले गये थे।१। समस्त इस जगत् की आद्या और सृष्टि, स्थिति और विनाश के करने वाला, अतुला वैष्णवी शक्ति भगवान विष्णु के देहार्ध की धारण करने वाली है।२।

नारायण प्रभु सुधा के समान और सुपक्व अन्न को खाया करते हैं। उनके उच्छिष्ट का उपभोग ही समस्त अघों के क्षय को करने वाला होता है। इस पृथिवी में उसके समान पुण्य वस्तु अन्य नहीं है। यह श्रीभगवान के प्रसाद का उपभोग समस्त पापों का प्रायश्चित्त कहा गया है।३।४। श्री भगवान के चरण कमलों का अनुप्रेक्षण और उपासना आदि से पापों के संस्कार करने वालों के सम्पर्क से भी कोई दोष नहीं लगा करता है।५। भगवती पद्मा के सन्निधान से वे सब शुचि ही कहे गये हैं। भगवान विष्णु के आलय में रहने वाला वह निर्माल्य है उसको जो पवित्र आदि पुरुष स्पर्श किया करते हैं वह अन्न दुष्ट नहीं होता है और जैसे विष्णु हैं वैसा वह भी होता है। व्रतों में स्थित चाहे विधवा हो या किसी भी वर्ण में स्थित रहने वाले तथा किसी भी आश्रम में स्थित हों उस प्रसाद के खाने से पवित्र हो जाया करते हैं।५।६।७।

तत्प्राशनेन पूयन्ते दीक्षिताश्चाग्निहोत्रिणः।
दरिद्र कृपणो वाऽपि गृहस्थः प्रभुरेव वा।८।
स्वदेश्याः परदेश्या वा सर्वतस्समागताः।
नाभिमानप्रकुर्वीरन्विष्णोर्निर्माल्यभक्षणे।९।
भक्त्या लोभात्कौतुकाद्वा क्षुधासंशमनेन वा
आकण्ठभक्षितंतद्धि पुनाति सकलांहसः।
सर्वरोगोपशमनं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्
दारिद्र्यहरणं श्रेष्ठं विद्यायुः श्रीप्रदं शुभम्।१०।
पक्षपातो महांस्तत्र विष्णोरमिततेजसः।
निन्दन्ति ये तदमृतं मूढाः पण्डितमानिनः।११।
स्वयं दण्डधरस्तेषु सहते तान्यपराधिनः।
येषामत्र स दण्डश्चेदमुत्रातेषांहि दुर्गतिः।१२।

कुम्भीपाके महाघोरे पच्यन्ते तेऽतिदारुणे ।
न विक्रयः क्रयो वाऽपि प्रशस्तस्तस्य भो द्विजाः ! ।१३।
निर्माल्यं जगदीशस्य नाऽभिगत्वाऽस्नामि किञ्चन ।
इति सत्यप्रतिज्ञो यः प्रत्यहं तच्च भक्षयेत् ।१४।
सर्वपापविनिर्मुक्तः शुद्धान्तः करणो नरः ।
स शुद्धं वैष्णवस्थानं क्रमाद्यातिन संशयः ।१५।

उस महा प्रसाद के प्राशन करने से दीक्षित और मलिन होती पवित्र हो जाते हैं। दरिद्र हो या कृपण हो, गृहस्थ हो या प्रभु हो, अपने देश के रहने वाले हो या किसी दूसरे देश के निवासी हों सभी वहाँ पर समागत हुए हैं वहाँ पर विष्णु के निर्माल्य के भक्षण करने में अपने जाति वर्ण और पद आदि अभिमान नहीं करना चाहिए ।८।९। महा प्रसाद की भक्ति से, उदर पूर्ति के लोभ से अथवा क्षुधा के निवारण करने के कारण से किसी भी तरह से कण्ठ पर्यन्त भक्षण किया हुआ वह महा प्रसाद (जगन्नाथ जी का प्रसादी भात) सब प्रकार के पापों से मुक्त कर पवित्र कर दिया करता है। यह सब रोगों का उपशमन करने, वाला, पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला, दरिद्रता को दूर भगा देने वाला, विद्या, आयु और श्री को प्रदान करने वाला परम श्रेष्ठ एवं शुभ होता है।१०। अपरिमित तेज वाले भगवान् विष्णु का वहाँ पर महान् पक्षपात है। जो लोग उस अमृत की निन्दा किया करते हैं वे महान् मूढ और पण्डित मानी हुआ करते हैं। स्वयं उनके लिए प्रभु दण्ड धर होते हैं और उनके अपराधों को वे सहन नहीं किया करते हैं। जिनको यहाँ पर तो वह दण्ड होता है और उनकी निश्चित ही दुर्गति हुआ करती है।११।१२। वे लोग अत्यन्त घोर कुम्भी पाक नामक नरक में जो अत्यन्त दारुण होता है यातनाएँ भोगा करते हैं। हे द्विजगण ! उस महा प्रसाद का क्रय अथवा विक्रय भी प्रशस्त नहीं हुआ करता है। जगदीश के निर्माल्य को प्रदान करके अन्य कुछ भी नहीं खाऊँगा — इस

तरह से सत्य प्रतिज्ञा वाला जो होता है और जो प्रतिदिन उसका ही भक्षण किया करता है वह शुद्ध अन्तः करण वाला मनुष्य सभी तरह के पापों से विनिर्मुक्त हो जाता है तथा वह क्रम से परम शुद्ध वैष्णव स्थान को गमन किया करता है, इसमें कुछ भी संशय नहीं है ।१३।।१४।१५।

चिरस्थमपि संशुष्क नीतं वा दूरदेशतः ।
यथातथोपयुक्त तत्सर्वं पापापनोदनम् ।१६।
कुक्कुरस्य मुखाद्भ्रष्टं तदन्नं पतितं यदि ।
ब्राह्मणेनाऽपि भोक्तव्यमितरेषां तु का कथा ।१७।
उतोष्य तिष्ठता वाऽपि नोपवास च कुर्वता ।
अशुचिर्वाप्यनाचारोमनसापापमाचरन् ।
प्राप्तमात्रेण भोक्तव्यं नाऽत्र कार्या विचारणा ।१८।
नैवेद्यान्न जगद्भर्त्तुर्गाङ्गं वारि समं द्वयम् ।
दृष्टेः स्वर्गादिसम्प्राप्तिर्भक्षणाच्चाऽघनाशनम् ।१९।
जगद्धात्र्या हि यत्पक्वं वैष्णवेऽग्नौ सुसंस्कृते ।
भुङ्क्तेऽन्वहं चक्रपाणियु गमन्वन्तरादिषु ।२०।
सप्तदीपधरामध्ये सान्निध्य नेदृशं हरेः ।
यादृशं नीलशैलेऽस्मिन्व्याजमानुषचेष्टितम् ।२१।

बहुत अधिक समय तक रहा हुआ, भली भाँति सूखा हुआ, दूर देश से लाया हुआ और जैसे-तैसे भी प्राप्त होने वाला यह श्री जगदीश भगवान् का महा प्रसाद सब पापों का अपनोदन करने वाला होता है। यदि वह अन्न कुक्कुर के मुख से भी भ्रष्ट होकर पतित हो गया हो तो भी उसको ब्राह्मण के द्वारा खा लेना चाहिए अन्यों की तो बात ही क्या है। उपवास करके स्थित रहने वाले तथा उपवास न करने वाले को उसका भक्षण करना चाहिए। अशुचि हो अथवा आचार से हीन हो तथा मन से पापों का समाचरण करने वाला हो कैसी भी दशा में क्यों न स्थित हो जैसे ही श्री जगदीश प्रभु का महा प्रसाद प्राप्त हो

वैसे ही तुरन्त ही उसका भक्षण कर डालना चाहिए—इसमें तनिक भी विचारणा नहीं करे ।१६।१७।१८। जगत् के स्वामी का नैवेद्यान्न और गङ्गा का जल ये दोनों ही समान होते हैं । इनके दर्शन मात्र से स्वर्ग आदि लोकों की प्राप्ति होती है । और इनके भक्षण करने से अघों का नाश हुआ करता है । सुसंस्कृत वैष्णव अग्नि में जिसको जगत् की धात्री के द्वारा पक्व किया गया है और युग मन्वन्तरादि में जिसको भगवान् चक्रपाणि स्वयं खाते हैं । इस सात द्वीपों वाली धरा के मध्य में ऐसा श्री हरि का सान्निध्य नहीं है जैसा कि इस नील गोत्र में भगवान् का व्याज मानुष चेष्टित है अर्थात् मानव शरीर धारण करके एक बहाने से जैसी लीलाएँ यहाँ पर की हैं ।१९।२०।२१।

दारुरूपं परंब्रह्म सर्वचाक्षुषगोचरम् ।
प्रकाशते भो मुनयो न दृष्टं न श्रुतं क्वचित् ।२२।
तस्मै प्रवृत्तिरूपाय ब्रह्मणे परमात्मने ।
प्रवृत्तिरूपा शक्तिः श्रीः प्रवर्तयति यद्धविः ।२३।
तदश्नाति जगन्नाथस्तच्छेषं दुरितापहम् ।
किमत्र चित्रंभो विप्रायदुक्तंमुक्तिकारणम् ।२४।
नाऽल्पपुण्यवतां तत्र विश्वासश्च प्रजायते ।
वेदाचारप्रधानेषु युगेष्वेतदप्रकीर्तितम् ।२५।
महिमानं न वेदास्य विशेषाच्छ्रूयतां कलौ ।
घोरे कलियुगे तस्मिंस्त्रिपादो धर्मविप्लवः ।२६।
धर्मः स्यादेकपादस्तुक्वचित्तस्य भयाच्चरेत् ।
सर्वेऽनृतप्रधानाहि दाम्भिकाः शठवृत्तयः ।२७।
प्रायश्च धर्मविमुखा जिह्वोपस्थपरायणाः ।
न ध्यायन्ति तपस्यन्तिव्रतयन्तिकदाचन ।२८।

हे मुनि गणो ! दारु (काष्ठ) के स्वरूप में साक्षात् पर ब्रह्म यहाँ पर सबके चक्षुओं के द्वारा प्रत्यक्ष दर्शन देने वाले हैं और प्रकाश

वाले हो रहे हैं—ऐसा कहीं पर भी न कभी देखा ही है और न कहीं पर श्रवण ही किया है ।२२। उस प्रवृत्ति के स्वरूप वाले परमात्मा ब्रह्म के लिए प्रवृत्ति स्वरूप वाली शक्ति थी जिस हवि को प्रवृत्त किया करती है। उसी को श्री भगन्नाथ प्रभु अशन किया करते हैं। उसका जो शेष है वह, पापों को अपहरण करने वाला है। हे विप्रगण ! इसमें क्या अद्भुत बात है जिसको मुक्ति प्रदान कर देने वाला कारण कहा गया है। जो अति स्वल्प पुण्य वाले पुरुष होते हैं उनका उसमें विश्वास ही नहीं हुआ करता है। वेदाचार प्रधान युगों में यह प्रकीर्तित है। इस कलियुग मे इसकी महिमा नहीं जानते हैं और विशेष रूप से सुनिये। इस महान् घोर कलियुग मे त्रिपाद धर्म का विप्लव होता है अर्थात् धर्म के तीन पाद होते ही नहीं हैं ।२३।२४।२५।२६। धर्म केवल एक ही पाद वाला है सो भी विचारा उस के भय से कहीं पर चरण किया करता है। इस कलियुग में सभी लोग मिथ्या की प्रधानता वाले हैं—दम्भ से परिपूर्ण है और एक दम शठता की वृत्ति वाले हैं। इस युग में प्राय मनुष्य धर्म्म से विमुख रहने वाले होते हैं और वे केवल जिह्वा के स्वाद के लालची तथा उपस्थ (जननेन्द्रिय) के रसास्वादन करने में तत्पर रहा करते हैं। न तो ये लोग कभी कुछ ध्यान ही किया करते हैं, न कुछ तपश्चर्या करने की ओर इनका थोड़ा सा भी झुकाव होता है और न ये कोई व्रत एवं नियमों के ही पालक होते हैं ।२७।२८।

अधर्मबहुलाः सर्वे हिंसका लोलुपाः परम् ।
परेषां परिवादेन तुष्यन्ति स्वकृतंविना ।२९।
प्रसङ्गात्कौतुकाद्वाऽपि निघ्नन्ति परकर्म वै ।
क्षुद्रकार्याशयात्स्वस्यपरकार्यप्रबाधकाः ।३०।
धर्मलब्धां स्त्रियं रम्यामवज्ञाय स्ववेश्मनि ।
परयोषिति निन्द्यायां प्रसक्ताः पशुचेष्टिताः ।३१।

अग्निहोत्रादिकं वाऽपि व्रतं नाऽन्यत्वत्क्वचित्क्वचित् ।
जीविका तद् द्विजातीनां येषां वा पारलौकिकम् ।३२।
अव्रताधीतवेदेन अन्यायाऽऽप्तधनेन च ।
वित्तशाठ्येन च कृतं न तथा फलदायि तत् ।३३।
प्रायः कलियुगे भूपाः प्रजावनपराङ्मुखाः ।
करादानपरानित्यं पापिष्ठाश्चौर्यवृत्तयः ।३४।
वर्णसङ्कारिणः सर्वे शूद्रप्रायाः कलौयुगे ।
हर्तारः पार्थिवाः एव शूद्राश्च नृपसेवकाः ।३५।

सभी लोग धर्म ध्वंस करने वाले हैं, सब हिंसक, परम लोलुप और स्वकृत के बिना दूसरों की निन्दा करके ही सन्तुष्ट होने वाले हैं। प्रसङ्ग से अथवा कौतुक से ही दूसरे के कर्मों का हनन करने वाले हैं। अपने बहुत ही तुच्छ कार्य के सिद्ध करने के विचार से दूसरों के बड़े-बड़े कार्य्य के बाधक हो जाया करते हैं। धर्म विधि से प्राप्त हुई सुन्दर स्त्री का अपने घर में अपमान करके पराई निन्दनीय स्त्री में प्रसक्ति करने वाले पशु के समान चेष्टा वाले हैं। अग्निहोत्र आदि तथा व्रत अन्य कहीं-कहीं पर नहीं हैं, यही उनकी जीविका है जिनका पारलौकिक भी यही है। बिना व्रत वाले और बिना वेदों के अध्ययन वाले के द्वारा तथा अन्याय से प्राप्त किये हुए धन वाले के द्वारा और वित्त शाठ्य वाले के द्वारा जो किया गया है वह फलदायी नहीं हुआ करता है। बहुधा इस कलियुग में राजा लोग अपनी प्रजा के मनुष्यों के विमुख ही हुआ करते हैं। नित्य ही वे करों के वसूल करने में तत्पर, महा पापी और चोरों की वृत्ति वाले होते हैं। कलियुग में वर्णसङ्कर और प्रायः शूद्र ही होते हैं। राजा लोग हरण करने वाले हैं और नृपों के सेवक भी सब शूद्र होते हैं।२६-३५।

श्रौतस्मार्तादिकं कर्म न तथासदनुष्ठितम् ।
युगे चतुर्थे भो विप्राः परलोकायकल्पते ।३६।

दानधर्मः परो ह्येष नाऽन्योधर्मः प्रशस्यते ।
कर्मणा मनसा वाचा हितमिच्छेद् द्विजन्मनाम् ।३७।
इतिहोवाचभगवान्ब्राह्मणोमामकीतनुः ।
ब्राह्मणायस्यसन्तुष्टाः सन्तुष्टस्तस्यचाप्यहम् ।३८।
उभयत्र समो भूयाद्ब्राह्मणे च जनार्दने ।
यद्वदन्तिद्विजावाक्यं तत्स्वयंभगवान्वदेत् ।३९।
यथा तथा वर्तमानो वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः ।
भगवानपि देवेशः सः साक्षाद् ब्राह्मणप्रियः ।४०।
सदाऽवतारं कुरुते ब्राह्मणार्थं जनार्दनः ।
तत्पालनार्थं दुष्टान्वं निगृह्णाति युगे युगे ।४१।
ससर्जब्राह्मणानग्रे सृष्ट्यादौ स चतुर्मुखः ।
सर्वे वर्णाः पृथक्पश्चात्तेषां वंशेषु जज्ञिरे ।४२।

हे विप्रो ! जो परलोक के लिये कल्पित हैं वे श्रौत और स्मार्त आदिक कर्म उस प्रकार से भली भाँति अनुष्ठित नहीं होते हैं यह चौथा युग कलियुग ऐसा ही है । यह दान का धर्म ही सबसे परम है और अन्य धर्म कोई भी प्रशस्त नहीं माना जाता है । मन-वचन और कर्म से द्विजन्माओं के हित की इच्छा करनी चाहिए ।३६।३७। भगवान् ने यही कहा था कि ब्राह्मण मेरा ही शरीर होता है । जिस पुरुष से ये ब्राह्मण सन्तुष्ट होते हैं उससे मैं भी परम सन्तुष्ट रहा करता हूँ । दोनों के प्रति अर्थात् ब्राह्मण तथा भगवान् जनार्दन में सम भाव वाला होना चाहिए । जो वचन ब्राह्मण लोग कहा करते हैं यह समझना चाहिए कि उसे स्वयं भगवान् ही कह रहे हैं । जैसा-तैसा भी वर्त्तमान रहने वाला ब्राह्मण सब वर्णों का गुरु होता है । देवेश्वर भगवान् भी साक्षात् ब्राह्मणों से प्यार करने वाले होते हैं । भगवान् जनार्दन इन ब्राह्मणों के ही हित सम्पादन क ने के लिए ही सदा अवतार ग्रहण किया करते हैं । उनके पालन करने के लिए ही युग-युग में प्रभु दुष्टों का निग्रह

किया करते हैं। चतुर्मुख ब्रह्माजी ने सृष्टि के आदि काल में आगे ब्राह्मणों का ही सृजन किया था। अन्य सब वर्ण पीछे पृथक उन्हीं के वंशों में समुत्पन्न हुए थे।३८-४२।

तस्मात्कलियुगे तस्मिन्ब्राह्मणो विष्णुरेव च।
उभौ गतिश्च सर्वेषां ब्राह्मणानां हरिर्गतिः ।४३।
हरिरेवाऽत्र सर्वेषांगतिः प्राप्तेकलौयुगे।
शालग्रामादिके क्षेत्रे स्मर्यतेकीर्त्यतेऽपि च।४४।
तस्मन्नीलाचलेपुण्ये क्षेत्रे क्षेत्रज्ञवर्ष्मणि।
जीवभूतः स सर्वेषां दारुव्याजशरीरभृत् ।४५।
कलिकल्मषनाशाय प्रायो दुष्कृतकर्मणाम्।
दर्शनस्तवनोच्छिष्टभोजनैर्मुक्तिदायकः ।४६।
उच्छिष्टेन सुरेशस्य व्याप्तं यस्यकलेवरम्।
तदाहारस्तदात्माहिलिप्यते न सपातकैः ।४७।
निवेदनीयमप्यासु मूर्तिष्वीशस्य वर्तते।
पावनं तदपि प्रोक्तमुच्छिष्टं तु विमोचकम् ।४८।
भुङ्क्ते स्वत्रैवभगवान्पश्यत्यन्यत्रचक्षुषा।
पुराऽयंप्रार्थितो देवो योगिभिः परिवेष्टितः।४९।
निर्माल्योच्छिष्टभोगेन तव मायां जयेमहि।
अत्यन्तरितमिताक्षाणामनायासेन मुक्तिदः ।५०।

इसी लिए इस कलियुग में ब्राह्मण ही साक्षात् विष्णु हैं। सबकी ये दोनों ही गति होते हैं अर्थात् उद्धार करने वाले हैं और ब्राह्मणों की भगवान् श्री हरि हुआ करते हैं।४३। इस कलियुग के प्राप्त होने पर सबकी गति यहाँ पर श्री हरि ही हुआ करते हैं। शालग्राम आदि क्षेत्र में श्री हरि का स्मरण तथा कीर्तन किया जाया करता है। उस पुण्य मय क्षेत्र नीलाचल में जो क्षेत्रज्ञ का वर्ष्म है। उसमें वह दारु के व्याज से शरीर को धारण करने वाले सबको जीव भूत हैं। कलि के

कल्मषों के नाश के लिए जो कि बहुधा दुष्कृत कर्मों वाले मनुष्यों के होते हैं वह भगवान् अपने दर्शन, स्तवन, उच्छिष्ट भोजनों के द्वारा मुक्ति के प्रदान करने वाले होते हैं ।४४।४५।४६। सुरेश प्रभु के उच्छिष्ट से जिस मानव या प्राणी का शरीर व्याप्त रहता है । उसी महा प्रसाद के आहार करने वाला तथा उसी में अपनी आत्मा के ध्यान को लगाने वाला पुरुष पातकों से कभी भी लिप्त नहीं हुआ करता है । अन्य मूर्तियों में जो निवेदनीय होता है वह भी ईश का ही होता है । उसको भी परम पावन कहा गया है और वह उच्छिष्ट भी विभोजन करने वाला होता है । भगवान् यहीं पर भोजन किया करते हैं और चक्षु के द्वारा अन्यत्र देखते हैं । पहिले योगियों के द्वारा परिवेष्टित यह देव प्रार्थित किये गये थे—हे भगवन् हम लोग आपके निर्माल्य उच्छिष्ट भोज के द्वारा ही आपकी इस माया पर विजय प्राप्त किया करते हैं । यह अत्यन्त स्तिमित नेत्र वालों को अनायास से ही मुक्ति देने वाला होता है ।४७।४८।४९।५०।

२६—बदरिकाश्रमस्यसर्वतीर्थाधिकत्ववर्णन

सूतसूतमहाभाग ! सर्वधर्मविदाम्वर ! ।
सर्वशास्त्रार्थतत्त्वज्ञ ! पुराणे परिनिष्ठित ! ।१।
व्यासः सत्यवतीपुत्रोभगवान्विष्णुरव्ययः ।
तस्यप्रियशिष्यस्त्वत्तोवेत्तानकश्चन ।२।
प्राप्ते कलियुगे घोरे सर्वधर्मबहिष्कृते ।
जना वै दुष्टकर्माणः सर्वधर्मविवर्जिताः ।३।
क्षुद्रायुषः क्षुद्रप्राणबलवीर्यतपः क्रियाः ।
अधर्मनिरताः सर्वे वेदशास्त्रविवर्जिताः ।४।
तीर्थाटनतपोदानहरिभक्तिविवर्जिताः ।
कथमेषामल्पकानामुद्धारोऽल्पप्रयत्नतः ।५।

तीर्थानामुत्तमं तीर्थं क्षेत्राणामुत्तमं तथा ।
मुमुक्षूणां कुतः सिद्धिः कुत्रवाऽऽषिसञ्चयः ।६।
कुत्रवाऽल्पप्रयत्नेन तपोमन्त्राश्च सिद्धिदाः ।
कुत्र वा वसतिश्रीमाञ्जगतामीश्वरेश्वरः ।
भक्तानामनुरक्तानामनुग्रहकृपालयः ।७।

श्री शौनक जी ने कहा—हे महाभाग श्री सूतजी ! आप तो समस्त धर्मों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं । आप सभी शास्त्रों के अर्थों के तत्त्वों को जानने वाले हैं । आप पुराणों में परिनिष्ठित विद्वान हैं ।१। सत्यवती के पुत्र भगवान साक्षात् विष्णु श्री व्यासदेव हैं । उन व्यास जी के आप परम प्रिय शिष्य हैं । आपसे अधिक ज्ञाता अन्य कोई भी नहीं है ।२। समस्त धर्मों से बहिष्कृत इस अत्यन्त घोर कलियुग में मनुष्य अत्यन्त दुष्ट कर्मों के करने वाले हैं और सब धर्मों से रहित होते हैं । क्षुद्र आयु, प्राण, बल, वीर्य, तप और क्रिया वाले मनुष्य होते हैं । अधर्म में निरत रहने वाले और सब वेद तथा शास्त्रों के ज्ञान से हीन होते हैं । तीर्थों का अटन, तपस्या, दान और श्री हरि की भक्ति से वर्जित मनुष्य होते हैं । इन अल्पकों विचारों का उद्धार अल्प प्रयत्न से कैसे उद्धार होगा ? ।३।४।५। तीर्थों में अतीव उत्तम तीर्थ तथा क्षेत्रों में अत्यन्त उत्तम क्षेत्र कौन है ? जो मुक्ति के इच्छुक जन हैं उनको सिद्ध कहाँ पर है अथवा ऋषियों का सञ्चय कहाँ पर है ? कहाँ पर अत्यल्प प्रयत्न से तप और मन्त्र सिद्धि के प्रदान कर देने वाले होते हैं और वह कौन सा क्षेत्र है जहाँ पर जगतों के ईश्वरेश्वर श्रीमान् स्वयं निवास किया करते हैं ? ।६।७।

एतदन्यश्च सर्वं मे परार्थकप्रयोजनम् ।
ब्रूहि भद्राय लोकानामनुग्रहविचक्षण ! ।८।
साधुसाधुमहाभाग ! भवान्परहिते रतः ।
हरिभक्तिकृताभक्तिप्रक्षालितमनोमलः ।९।

अथ मे देवकीपुत्रो हृत्पद्ममधिरोहति ।
प्रसङ्गात्तव विप्रर्षे ! दुर्लभः साधुसङ्गमः ।१०।
हरति दुष्कृतसञ्चयमुत्तमां गतिमलं तनुते तनुमानिनाम् ।
अधिकपुण्यवशादवशात्मनां जगति दुर्लभसाधुसमागमः ।११।
हरति हृदयबन्धं कर्मपाशार्दितानां
वितरति पदमुच्चैरल्पजल्पैकभाजाम् ।
जननमरणकर्मश्रान्तविश्रान्तिहेतुस्त्रिजगति
मनुजानां दुर्लभः सत्प्रसङ्गः ।१२।
अयं प्रश्नः पुरासाधो ! स्कन्देनाऽकारिसर्वतः ।
कैलाशशिखरेरम्यन्नपीणांपरिश्रुण्वताम् ।
पुरतो गिरिजाभर्तुः कर्तुं निःश्रेयसं सताम् ।१३।

अनुरक्त भक्तों के ऊपर अनुग्रह एवं कृपा के जो स्वयं आलय हैं उनके निवास का क्षेत्र कौन सा है ? हे भगवन् ! आप तो लोकों पर अनुग्रह करने में परम विचक्षण हैं। भद्र अर्थात् कल्याण के लिए दूसरों का अर्थ ही जिसका एकमात्र प्रयोजन है ऐसे इस सबको मुझे आप बतलाइये ।८। श्री सूतजी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छी बात है कि आप दूसरों के हित करने में रति रखने वाले हैं और श्रीहरि भगवान की भक्ति में आसक्ति होने के कारण से आपने अपने मन के मल को प्रक्षालित कर दिया है। इसके अनन्तर भगवान देवकीनन्दन मेरे हृदय रूपी पद्म में अधिरोहण किया करते हैं। हे विप्रर्षे ! प्रसङ्ग से आपका साधु-सङ्गम दुर्लभ है ।९।१०। इस जगत् में साधु पुरुषों का समागम अत्यन्त ही दुर्लभ हुआ करता है जो दुरितों के सञ्चय का हरण कर दिया करता है और तनुमानियों की गति को अलङ्कृत कर दिया करता है। यह अवशात्माओं के अत्यधिक पुण्यों से ही होता है ।११। इस जगत् के सत्पुरुषों का संगम मनुष्यों को बहुत ही दुर्लभ हुआ करता है। यह सत्पुरुषों का समागम कर्मों के पाश में अर्दित पुरुषों के हृदय

के अन्धकार का हरण कर देता है और जो अत्यन्त छल-बल करने वाले मनुष्य हैं उनको उच्च पद वितरण कर देने वाला होता है। संसार में बारम्बार जन्म ग्रहण करने और मृत्यु प्राप्त करने के कर्म में जो परम श्रान्त हैं उनको विश्रान्ति प्रदान करने का हेतु होता है ।१२। श्रीसूतजी ने कहा—हे द्विजो ! पहिले यही प्रश्न परम रम्य कैलाश पर्वत के शिखर पर समस्त ऋषि वृन्दों के श्रवण करते हुए श्री गिरिजा पति के सामने सत्पुरुषों का निश्रेय करने के लिए स्वामी स्कन्द ने किया था ।१३।

भगवन्सर्वलोकानांकर्त्ता हर्त्ता पिता गुरुः ।
क्षेमाय सर्वजन्तूनां तपसैकुलनिश्रयः ।१४।
कलिकाले ह्यनुप्राप्ते वेदशास्त्रविवर्जिते ।
कुत्र वा वसति श्रीमान्भगवान्धर्मवत्सलः ।१५।
क्षेत्राणि कानि पुण्यानि तीर्थानिसरितस्तथा ।
येनवाप्राप्यतेसाक्षाद्भगवान्मधुसूदनः ।
अनुग्रहाय भगवन्कृपया वद ते पितः ! ।१६।
बहूनि सन्ति तीर्थानिक्षेत्राणि च षडानन ! ।
हरिवास निवासैकपराणि परमार्थिनाम् ।१७।
काम्यानि कानिचित्सन्ति कानिचिन्मुक्तिदान्यपि ।
इहाऽमुत्रार्थदान्येव बहुपुण्यप्रदानि वै ।१८।
गङ्गा गोदावरीरेवातपतीयमुनासरित् ।
क्षिप्रा सरस्वतीपुण्या गोमतीकौशिकीतथा ।१९।
कावेरी ताम्रपर्णी च चन्द्रभागा महेन्द्रजा ।
चित्रोत्पला वेत्रवती सरयूः पुण्यवाहिनी ।
चर्मण्वती शतद्रुश्च पयस्विन्यसमप्रभा ।
गण्डिका बाहुदा सर्वाः पुण्याः सिन्धुः सरस्वती ।२०।
भुक्तिमुक्तिप्रदाश्चैताः सेव्यमाना मुहुर्मुहुः ।
अयोध्याद्वारिका काशी मथुराऽवन्तिका तथा ।२१।

कुरुक्षेत्रं रामतीर्थं काञ्ची च पुरुषोत्तमम् ।
पुष्करं दर्दुरं क्षेत्रं वाराहं विधिनिर्मितम् ।२१।
बदर्य्याख्यं महापुण्यं क्षेत्रं सर्वार्थसाधनम् ।२२।

स्कन्दजी ने कहा था—हे भगवन ! आप समस्त लोकों की रचना करने वाले पिता, गुरु और संहार कर देने वाले हैं। समस्त जन्तुओं के कल्याण करने के लिए ही आप तपश्चर्या करने को निश्चय करने वाले हैं। इस महान घोर कलि काल के सम्प्राप्त होने पर जोकि वेदों और शास्त्रों से एकदम रहित है श्रीमान् सात्वतों के स्वामी भगवान् कहाँ पर निवास किया करते हैं? कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र हैं तथा कौन से तीर्थ एवं ऐसी सरितायें हैं तथा किसके द्वारा भगवान मधुसूदन की प्राप्ति की जाया करती है ? हे पिताजी ! मुझे इसके जानने की अत्यधिक श्रद्धा है अतएव हे भगवन् ! आप मुझे कृपा करके यह बतला दीजिए ।१४।१५।१६। श्री महादेवजी ने कहा था—हे षडानन ! परमार्थियों के लिए श्री हरि के वास, निवास में एक ही परायण बहुत से तीर्थ और क्षेत्र विद्यमान हैं। उनमें कुछ तो कामनाओं के ही पूर्ण कर देने वाले हैं। कुछ मानवों को जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा दिलाने वाले हैं। कुछ इस लोक और परलोक दोनों में अर्थों के प्रदान करने वाले हैं तथा अत्यधिक पुण्यों के देने वाले हैं।१७।१८। सर्वप्रथम उन पुण्यमयी सरिताओं के नाम मैं बताता हूँ। गंगा, गोदावरी, रेवा, तपती, यमुना सरित्, क्षिप्रा, सरस्वती, पुण्या गोमती, कौशिकी, कावेरी, ताम्रपर्णी, चन्द्रभागा, महेन्द्रजा, चित्रोत्पला, नेत्रवती, सरयू, पुण्यवाहिनी, चर्मण्वती, शतद्रु, पयस्विनी, अग्नि सम्भवा, गण्डिका, बाहुदा, सिन्धु, सरस्वती—ये सब सरितायें परम पुण्यमयी हैं और ये भुक्ति (सांसारिक सुखों का उपभोग) और मुक्ति (बारम्बार संसार में आवागमन से छुटकारा) दोनों को प्रदान करने वाली हैं जबकि इन नदियों का पुनः-पुनः सेवन किया जावे। अब कतिपय पुण्यमय क्षेत्रों

को बतलाता है—अयोध्या, द्वारका, काशी, मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन), कुरुक्षेत्र, रामतीर्थ, काञ्ची, पुरुषोत्तम, पुष्कर, दर्दुर क्षेत्र, वाराह, विधि निर्मित बदरीनाम वाला महान् पुण्यक्षेत्र है। जो सभी अर्थों का साधन करने वाला है ।१७-२३।

अयोध्यां विधिवद्दृष्ट्वा पुरीं मुक्त्येकसाधनीम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति हरिमन्दिरम् । २४ ।
विविधविष्णुनिषेवणपूर्वकाचरितपूजननर्तनकीर्तनाः ।
गृहमपास्य हरेरनुचिन्तनाज्जितगृहार्जितमृत्युपराक्रमाः ।२५।
स्वर्गद्वारे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा रामालयं शुचिः ।
न तस्यकृत्यंपश्यामिकृतकृत्योभवेद्यतः ।२६।
द्वारिकायां हरिःस साक्षात्स्वालयं नैव मुञ्चति ।
अद्यापिभवनंकैश्चित्पुण्यवद्भिः प्रदृश्यते ।२७।
गोमत्यां तु नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कृष्ण मुखाम्बुजम् ।
मुक्तिःप्रजायते पुंसो विना साङ्ख्यं षडानन !।२८।

इस अयोध्या पुरी का विधि पूर्वक दर्शन करे जो कि मुक्ति का एकमात्र साधन कराने वाली है। इसका दर्शन करने वाले मनुष्य समस्त पापों से छुटकारा पाकर श्री हरि के मन्दिर में प्रयाण किया करते हैं ।।२४।। अनेक प्रकार से भगवान विष्णु का सेवन पूर्वक समाचरण, पूजन, नर्त्तन और कीर्तन करने वाले, अपने घर का त्याग करके श्री हरि का चिन्तन करने से जिन्होंने गृह में आर्जित मृत्यु को जीत लिया है ऐसे पराक्रमी पुरुष होते हैं ।।२५।। स्वर्ग द्वार में मनुष्य स्नान करके परम शुचि होकर जो श्री राम के आलय का दर्शन किया करता है उसका तो फिर शेष रहने वाला कोई भी कृत्य मैं नहीं देखता हूं क्योंकि इसी से वह मानव कृतकृत्य हो जाया करता है ।।२६।। द्वारका पुरी में साक्षात् श्री हरि निवास किया करते हैं और वहाँ पर अपने आलय का कभी भी त्याग नहीं करते हैं। आज भी कुछ पुण्यात्मा जनों के द्वारा उनका भवन

वहाँ पर देखा जाया करता है। गोमती नदी में मनुष्य स्नान करके तथा श्री कृष्ण भगवान् मुख कमल का दर्शन करता है हे षडानन ! उस पुरुष की बिना ही सांख्य के मुक्ति हो जाया करती है ॥२७॥२८॥

असीवरुणयोर्मध्ये पञ्चकोश्यां महाफलम् ।
अमरा मृत्युमिच्छन्तिकाकथाइतरेजनाः ।२६।
मणिकर्ण्यां ज्ञानवाप्याविष्णुपादोदकेतथा ।
ह्रदे पञ्चनदेस्नात्वावानमातुः स्तनपोभवेत् ।३०।
प्रसङ्गेनापि विश्वेशं दृष्ट्वा काश्यांपडानन ! ।
मुक्तिः प्रजायतेपुंसांजन्ममृत्युविवर्जिता ।३१।
बहुना किमिहोक्तेन नैतत्क्षेत्रसमं क्वचित् ।
तपोपवासनिरतो मथुरायां षडानन !
जन्मस्थान समासाद्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ।३२।
विश्रान्तितीर्थे विधिवत्स्नात्वा कृत्वा तिलोदकम् ।
पितृनुद्धृत्य नरकाद्विष्णुलोकं प्रगच्छति ।३३।
यदि कुर्यात्प्रमादेनपातकं तत्र मानवः ।
विश्रान्तेस्नानमासाद्यभस्मीभवति तत्क्षणात् ।३४।
अवन्त्यां विधिवत्स्नात्वाशिप्रायांमाधवेनराः ।
पिशाचत्वंनपश्यन्तिजन्मातरशतैरपि ।३५।

असी और वरुणा के मध्य में पञ्चकोशी में महान फल होता है। वहाँ पर देवगण भी अपनी मृत्यु होने की कामना किया करते हैं। अन्य दूसरों की तो बात ही क्या कही जावे। मणिकर्णी, ज्ञानवापी, विष्णु-पादोदक और पञ्चनदह्रद में जो मानव स्नान कर लेता है वह फिर दूसरा इस संसार में जन्म ग्रहण करके माता का स्तन कभी भी नहीं पिया करता है। हे षडानन ! काशीपुरी में किसी अन्य प्रसङ्ग के वश होकर भी जो भगवान विश्वनाथ जी का दर्शन प्राप्त कर लेता है ऐसे पुरुषों की जन्म और मृत्यु से रहित मुक्ति हो जाया करती है। अत्यधिक हम क्या कथन

करे केवल यही कथन पर्याप्त है कि इसके समान कहीं भी अन्य कोई क्षेत्र नहीं है। हे षडानन! व्रत और उपवासों में निरत रहने वाला पुरुष मथुरा पुरी में भगवान के जन्मस्थान को प्राप्त करके समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है ॥२६॥३०॥३१॥३२॥ जहाँ पर कंस को वध कर भगवान ने विश्राम लिया है उस विश्रान्तितीर्थ में (यमुना में) विधि-विधान के साथ स्नान करके तिलोदक जो देता है वह मानव अपने पितरों को नरकों से उद्धृत कर दिया करता है और स्वयं सीधा विष्णु-लोक में गमन किया करता है ॥३३॥ यदि कोई मनुष्य वहाँ पर प्रमाद से पातक करता है तो वह विश्रान्त पर स्नान करने से अपने पातक को तुरन्त ही भस्मीभूत कर दिया करता है ।३४। अवन्तिका पुरी में जो मनुष्य माधव मास में शिप्रा में विधि पूर्वक स्नान करता है वह सैंकड़ों जन्मान्तरों में भी पिशाचत्व नहीं देखा करता है ॥३५॥

कोटितीर्थे नरःस्नात्वाभोजयित्वाद्विजोत्तमान् ।
महाकालं हरंदृष्ट्वासर्वपापैः प्रमुच्यते ।३६।
मुक्तिक्षेत्रमिद साक्षान्मम लोकैकसाधनम् ।
दानाद्दरिद्रताहानिरिहलोके परत्र च ।३७।
कुरुक्षेत्रे रामतीर्थे स्वर्णं दत्वा स्वशक्तितः ।
सूर्योपरागे विधिवत्स नरो मुक्ति भाग्भवेत् ।३८।
ये तत्र प्रतिगृह्णन्ति नरा लोभवशङ्गताः ।
पुरुषत्वं न तेषां वैकल्पकोटिशतैरपि ।३९।
हरिक्षेत्रे हरिंदृष्ट्वा स्नात्वा पादोदके जनः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो हरिणा सह मोदते ।४०।
खगगणा विविधा निवसन्त्यहो ऋषिगणाः फलमूलदलाशनाः ।
पवनसंयमनक्रमनिर्जितेन्द्रियपराक्रमणा मुनयस्त्विह ।४१।

विष्णुकाञ्च्यां हरिः साक्षाच्छिवकाञ्च्यां शिवः स्वयम् ।
अभेदादुभयोर्भक्त्या मुक्तिः करतले स्थिता ।
विभेदजननात्पुंसां जायते कुत्सिता गतिः ।४२।

उस अवन्तिका पुरी में मनुष्य कोटि तीर्थ में स्नान करके उत्तम श्रेणी वाले द्विजों को भोजन करावे और महा कालेश्वर शिव का दर्शन करे तो सभी तरह के पापों से छुटकारा पा जाया करता है। यह मेरे लोक के प्राप्त करने का एकमात्र साधन साक्षात् मुक्ति का क्षेत्र है। दान करने से दरिद्रता की हानि इसलोक और परलोक में हुआ करती है ॥३६॥३७॥ कुरुक्षेत्र में रामतीर्थ में अपनी शक्ति के अनुसार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर विधि पूर्वक सुवर्ण का दान करके मनुष्य मुक्ति प्राप्त कर लेने का पूर्ण अधिकारी हो जाया करता है। जो मनुष्य लोभ के वश में आकर वहाँ पर दान ग्रहण किया करते हैं उनको सैकड़ों करोड़ों कल्पों में भी पुरुषत्व नहीं हुआ करता है ॥३८॥३९॥ हरि क्षेत्र में श्री हरि का दर्शन प्राप्त करके और पादोदक में जो स्नान करता है वह समस्त पापों से मुक्त होकर भगवान श्रीहरि के साथ ही आनन्द प्राप्त किया करता है।४०। अहो ! यहाँ पर अनेक पक्षीगण निवास किया करते हैं और फल, मूल तथा पत्रों का अशन करने वाले ऋषिगण भी रहते हैं। पवन के संयमन के क्रम से निर्जित इन्द्रियों वाले तथा पराक्रमशील मुनिगण भी यहाँ पर निवास किया करते हैं।४१। विष्णु काञ्ची में साक्षात् श्रीहरि विराजमान रहते हैं और शिव काञ्ची में स्वयं भगवान शिव विराजते हैं। दोनों में अभेद भाव जो भक्ति होती है उससे मनुष्य के करतल में ही मुक्ति देवी स्थित रहा करती है। जब इन दोनों देवों में विभेद की भावना उत्पन्न हो जाती है तो बहुत बुरी कुत्सित गति हो जाती है।४२।

सकृद्दृष्ट्वा जगन्नाथं मार्कण्डेयह्रदे प्लुतः ।
विनाज्ञानेन योगेन न मातुः स्तनपोभवेत् ।४३।

रोहिण्यामुदधौस्नात्वा इन्द्रद्युम्नह्रदेतथा ।
भुक्त्वानिवेदितंविष्णोर्वैकुण्ठेवसतिलभेत् ।४४।
दशयोजनविस्तीर्णं क्षेत्रं शङ्खोपरि स्थितम् ।
चतुर्भुजत्वमायान्तिकीटा अपिनसंशयः ।४५।
कार्त्तिक्यां पुष्करे स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा सदक्षिणम्
भोजयित्वा द्विजान्भक्त्या ब्रह्मलोके महीयते ।४६।
सकृत्स्नात्वाह्रदे तस्मिन्यूपं दृष्ट्वासमाहितः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तोजायते द्विजसत्तम ।४७।
षष्टिवर्ष सहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम् ।
सौकरे विधिवत्स्नात्वा पूजयित्वा हरिं शुचिः ।४८।
सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ।
तीर्थराज महापुण्य सर्वतीर्थनिषेवितम् ।४९।

एक ही बार भगवान जगन्नाथ जी के दर्शन करके तथा मार्कण्डेय ह्रद में निमज्जन करने वाला पुरुष बिना ही ज्ञान और योग के फिर दूसरा जन्म ग्रहण कर अपनी माता का स्तन पान नहीं किया करता है। रोहिणी में उदधि में स्नान करके एवं इन्द्रद्युम्न ह्रद में स्नपन करके तथा भगवान विष्णु देव के निवेदित महाप्रसाद का अशन करके मानव वैकुण्ठ में निवास प्राप्त किया करता है ।४३।४४। दस योजन के विस्तार वाला क्षेत्र शङ्ख के ऊपर स्थित है। यहाँ पर कीट भी चतुर्भुज रूप को प्राप्त हो जाया करते हैं। कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर में स्नान करके दक्षिणा से युक्त श्राद्ध करे तथा भक्ति की भावना से द्विजों को भोजन करावे। फिर वह ब्रह्मलोक में प्रतिष्ठित हो जाता है ।४५।४६। हे द्विजसत्तम ! श्रेष्ठ द्विज एक बार ह्रद में स्नान करके तथा समाहित होकर यूप का दर्शन जो करता है वह सब पापों से विनिर्मुक्त हो जाया करता है ।४७। साठ हजार वर्ष तक योगाभ्यास करने से जो पुण्य फल प्राप्त होता है सौकर में विधि पूर्वक स्नान करके और परम शुचि होकर

श्रीहरि का पूजन करके सात जन्मों में किया हुआ पाप उसी क्षण में नष्ट हो जाता है। तीर्थराज महान पुण्यशाली है और समस्त तीर्थों के द्वारा निषेवित होता है।४८—४६।

कामिनां सर्वजन्तूनामीप्सितं कर्मनिर्मवेत् ।
वेण्यां स्नात्वा शुचिर्भूत्वा कृत्वा माधवदर्शनम् ।
भुक्त्वा पुण्यवतां भोगानन्ते माधवतां व्रजेत् ।५०।
माघे मासि नरः स्नात्वा त्रिवेण्यां भक्तिभावितः ।
बदरीकीर्तनात्पुण्यं तत्समाप्नोति मानवः ।५१।
दशाश्वमेधिकं तीर्थं दशयज्ञफलप्रदम् ।
संक्षेपात्कथितं पुत्र ! किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ।५२।
बदर्याख्यं हरेः क्षेत्रं त्रिषु लोकेषु दुर्लभम् ।
क्षेत्रस्यं स्मरणादेव महापातकिनो नराः ।
विमुक्तकिल्बिषाः सद्यो मरणामुक्तिभागिनः ।५३।
अन्यतीर्थे कृतं येन तपः परमदारुणम् ।
तत्समा बदरीयात्रा मनसाऽपि प्रजायते ।५४।
बहूनि सन्ति तीर्थानि दिवि भूमौ रसातले ।
बदरीसदृश तीर्थं न भूतं नभविष्यति ।५५।
अश्वमेधसहस्राणिवाधुभोजयेचयत्फलम् ।
क्षेत्रान्तरे विशालायांतत्फलंक्षणमात्रतः ।५६।

वेणी में स्नान करके परम शुचि होकर श्री माधव का दर्शन करे तो कामनायें रखने वाले पुरुषों के कर्मों से समस्त जन्तुओं का अभीष्ट सिद्ध हुआ करते हैं। पुण्यवान् पुरुषों के सुखोग भोगों को भोग-कर अन्त में श्रीमाधव के स्वरूप को प्राप्त हो जाते हैं।५०। माघमास में मनुष्य भक्ति की भावना से त्रिवेणी में स्नान करके मानव बदरी कीर्तन से उस पुण्य को समाप्त कर दिया करता है।५१। यह तीर्थ दश अश्व-

मेधों के दश यज्ञों के फलों का प्रदान करने वाला होता है। हे पुत्र ! हमने यह अति सूक्ष्म रीति से आपको बतला दिया है। अब आगे फिर तुम क्या श्रवण करना चाहते हो ? श्रीस्कन्द प्रभु ने कहा—श्री हरि का बदरी नाम वाला क्षेत्र तीनों लोकों में परम दुर्लभ है। इस क्षेत्र के केवल स्मरण करने मात्र से महान पातकों के करने वाले नर भी तुरन्त ही विमुक्त पापों वाले हो जाया करते हैं और अन्त समय में मुक्ति प्राप्त करने के अधिकारी हो जाते हैं।५२।५३। अन्य तीर्थ में जितने परम दारुण तपश्चर्या की है उसके तुल्य तो मन से भी की हुई बदर्याश्रम की यात्रा हो जाती है। दिवलोक, भूमण्डल और रसातल में बहुत से तीर्थ हैं किन्तु इस बदरी के सदृश कोई भी तीर्थ न तो अब तक हुआ और न होगा अश्वमेध सहस्रों के तथा वायु भोज्य से जो फल होता है और अन्य क्षेत्रों में जो परम विशाल हैं जो पुण्य का फल होता है वह यहाँ पर एक क्षण मात्र में ही हो जाया करता है।५४।५५।५६।

कृते मुक्तिप्रदा प्रोक्ता त्रेतायां योगसिद्धिदा।
विशाला द्वापरे प्रोक्ता कलौ बदरिकाश्रमः।५७।
स्थूलसूक्ष्मशरीरं तुजीवस्य वसतिस्थलम्।
तद्विनाशयति ज्ञानद्विशालातेनकथ्यते।५८।
अमृतं स्रवते या हि बदरीतरुयोगतः।
बदरी कथ्यते प्राज्ञैऋषीणां यत्र सञ्चयः।५९।
त्यजेत्सर्वाणि तीर्थानि काले काले युगे युगे।
बदरीं भगवान्विष्णुर्न मुञ्चति कदाचन।६०।
सर्वतीर्थावगाहेन तपोयोगसमाधितः।
तत्फलं प्राप्यते सम्यग्बदरीदर्शनाद् गुह !।६१।
षष्टिवर्षसहस्राणि योगाभ्यासेन यत्फलम्।
वाराणस्यां दिनैकेन तत्फलं बदरीगतो।६२।

तीर्थानां वसतिर्यत्र देवानां वसतिस्तथा ।
ऋषीणां वसतिर्यत्र विशालातेनकथ्यते ।६३।

कृतयुग मे मुक्ति के प्रदान करने वाली बताई गई है, त्रेतायुग में भोगों की सिद्धियों के प्रदान करने वाली कही गई है। द्वापर युग में परम विशाला होती है और इस कलियुग मे वह बदरिकाश्रम ही होता है ।५७। जीव का स्थूल, सूक्ष्म शरीर स्थल मे बसता है। वह ज्ञान से विनाश को प्राप्त हो जाता है। इसी से विशाला कही जाती है। जो बदरी तरु के योग से अमृत का स्रवण किया करती है इसीलिए प्राज्ञ पुरुषों के द्वारा इसको बदरी कहा जाता है जहाँ पर ऋषियों का सञ्चय होता है ।५८-५९। युग-युग और काल-काल मे समस्त तीर्थों का त्याग कर देते हैं किन्तु भगवान विष्णु बदरी को कभी भी त्याग नही किया करते हैं ।६०। हे गुह ! जो अन्य समस्त तीर्थों के अवगाहन करने से तथा तप तथा योग की समाधि से पुण्य-फल होता है वह अच्छी तरह से बदरी के दर्शन मात्र से हो जाया करता है ।६१। साठ हजार वर्ष तक योग के अभ्यास से जो फल होता है वह वाराणसी मे एक दिन में और बदरी में गमन मात्र में ही हो जाया करता है। जहाँ पर तीर्थों का निवास है तथा देवों की जो वसति है एवं ऋषियों का जो आवास स्थल है इसी से यह विशाला कही जाती है ।६२—६३।

३०—कार्तिकमासव्रतप्रशंसनवर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ।१।
सूत ! नः कथितम्पुण्यं माहात्म्यम्बदरिकस्य च ।
भूयोऽन्यच्छ्रोतुमिच्छामः कार्तिकस्य च वैभवम् ।२।
कलौ कलुषचित्तानां नराणांपापकर्मणाम् ।
संसाराब्धौनिमग्नानामनायासेन कागतिः ।३।

को धर्मः सर्वधर्माणामधिकोमोक्षसाधकः ।
इहाऽपि मुक्तिदो नृणामेतत्त्वंकथय प्रभो ! ।४।
भवद्‌भिर्यदहं पृष्टस्तदेतत्पृष्टवान्मुनिः ।
नारदो ब्रह्मणः पुत्रो ब्रह्माणं तु जगद्‌गुरुम् ।५
तथैवसत्यभामाच श्रीकृष्णंजगदीश्वरम् ।
अपृच्छत्कार्तिकस्यैव वैभवं श्रवणोत्सुका ।६।
बालखिल्यैश्च ऋषिभिर्युक्तमृषिसंसदि ।
श्रीसूर्यावरुणसंवादरूपेणाऽतिमनोहरम् ।७।

भगवान श्री नारायण प्रभु के चरणों में नमस्कार करके तथा नरोत्तम नर को प्रणाम करके एवं देवी सरस्वती को प्रणाम करके इसके अनन्तर जय शब्द का उच्चारण करना चाहिए (मङ्गला चरण श्लोक है) ऋषिगण ने कहा—हे श्री सूतजी ! आपने परम पुण्यमय आश्विन मास का माहात्म्य हमारे सामने वर्णन किया था। अब फिर हम लोग सब कार्त्तिक मास का वैभव आपके मुखारविन्द से श्रवण करना चाहते हैं ।१।२। इस महान घोर कलियुग में कलुषित चित्तों वाले पाप कर्मों मे निमग्न मनुष्यों की जो इस संसार रूपी सागर डुबकियाँ खा रहे हैं उनकी बिना ही परिश्रम के क्या गति होती है ? ऐसा कौन सा समस्त धर्मों में भी अधिक धर्म है जो मोक्ष का साधक हो ? हे प्रभो ! जो इस लोक में भी मुक्ति प्रदान करने वाला हो उसे ही आप अब तात्त्विक रूप से वर्णन कीजिए बड़ी कृपा होगी ।३।४। श्रीसूतजी ने कहा—आपने जो मुझसे पूछा है यही ब्रह्माजी के पुत्र देवर्षि श्री नारद जी ने जगत् के गुरु श्री ब्रह्माजी से पूछा था। इसी प्रकार से सत्यभामा देवी ने जगदीश्वर प्रभु श्रीकृष्ण से पूछा था क्योंकि वे इस कार्त्तिक मास के वैभव के श्रवण करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थीं। बालखिल्य ऋषियों की सभा मे श्री सूर्य और वरुण के सम्वाद के रूप से जो अत्यन्त मनोहर कहा था ।५।६।७।

कैलासे शङ्करेणैवकार्तिकस्यच वभवम् ।
वर्णितं षण्मुखस्याग्रे नानाख्यानसमन्वितम् ।८।
पृथक्प्रतिनारदेनकथितंचमाहात्म्यकम् ।
कार्तिकस्य च विप्रेन्द्रा श्रुत्वाब्रह्ममुखात्पुरा ।९।
एकदा नारदोयोगी सत्यलोकमुपागतः ।
पप्रच्छ विनयेनैव सर्वलोकपितामहम् ।१०।
पापेन्धनस्य घोरस्य शुष्कार्द्रस्यच भूरिशः ।
को वह्निर्दहते ब्रह्मंस्तद्भवान्ववतुमर्हति ।११।
नाऽज्ञातं त्रिषु लोकेषु ब्रह्माण्डातर्गतस्ययत् ।
विद्यतेतवदेवेशत्रिविधस्यसुनिश्चितम् ।१२।
मासनाम्प्रवरो मासो देवानामुत्तमोत्तमः ।
तीर्थानि तद्विशेषेण कथयस्व पितामह ! ।१३।
मासाना कार्त्तिकः श्रेष्ठो देवानाम्मधुसूदनः ।
तीर्थं नारायणाख्यं हि त्रितयंदुर्लभंकलौ ।१४।

कैलास पर्वत पर भगवान षण्मुख के सामने अनेक आख्यानों से समन्वित कार्त्तिक मास का वैभव को भगवान शङ्कर को वर्णित किया है। हे विप्रेन्द्रगण ! ब्रह्माजी के मुख से श्रवण कर सर्वप्रथम श्री नारद जी ने कार्त्तिक मास का माहात्म्य पहिले कहा है। एक बार योगीराज श्री नारद जी भ्रमण करते हुए सत्यलोक मे प्राप्त हो गये थे। उस सत्यलोक मे पितामह से उन्होने परम विनय के भाव से पूछा था। ।८।९।१०। देवर्षि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अधिकांश में शुष्क और आर्द्र (भीगा हुए) घोर पाप रूपी ईंधन को कौन सी वह्नि है जो जलाकर भस्म कर सकती है ? इसे आप कृपा करके हमको बतलाने के योग्य हैं। हे देवेश ! तीनों लोकों मे ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीन प्रकार के म पका जो सुनिश्चित है वह अज्ञात नही है अर्थात् सभी जानते हैं। हे पिता-मह ! सब मासो मे जो प्रकट मास हो तथा सब देवों में जो उत्तमोत्तम

देव हो और जो भी श्रेष्ठ तीर्थ हों उन्हें आप बतला दीजिए ।११-१३।
श्रीब्रह्माजी ने कहा—समस्त मासों में कार्तिक मास श्रेष्ठ होता है और सब देवों में भगवान मधुसूदन देव परम श्रेष्ठ देव हैं तथा नारायण नाम वाला तीर्थ सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है। ये तीनों ही इस लोक में कलियुग में परम ये तीनों दुर्लभ हैं ।१४।

भगवंस्तव दासोऽस्मि भक्तोऽस्मि हरिवल्लभः ।
वैष्णवान्ब्रूहि मे धर्मान्सर्वज्ञोऽसि पितामह ! ।१५।
आदौ कार्तिकमाहात्म्यंवक्तुमर्हसिमेप्रभो ! ।
दीपदानस्यमाहात्म्यव्रतिनांनियमांस्तथा ।१६।
गोपीचन्दनमाहात्म्यं तुलस्याश्च तथा विभो ! ।
धात्र्याश्चैव च माहात्म्यं विधि स्नानादिकस्य च ।
व्रतारम्भः कदा कार्य उद्यापनविधिं तथा ।१७।
यत्किञ्चिद्वैष्णवंधर्मं तत्सर्वंवक्तुमर्हसि ।
येनाऽहं त्वत्प्रसादेन पदं यास्याम्यनामयम् ।१८।
इति पुत्रवचः श्रुत्वा ब्रह्मा हर्षसमन्वितः ।
राधादामोदरं स्मृत्वा प्रोवाचतनुजम्प्रति ।१९।
साधुपृष्टं त्वया पुत्र ! लोकोद्धरणहेतवे ।
कथयामि न सन्देहः कार्तिकस्य च वैभवम् ।२०।
एकतः सर्वतीर्थानिसर्वेयज्ञाः सदक्षिणाः ।
कार्तिकस्यनुमासस्यकलांनार्हन्तिषोडशीम् ।२१।

श्री नारदजी ने कहा—मैं तो आपका दास हूँ और श्रीहरि भगवान का प्रिय भक्त हूँ। हे पितामह ! आप तो सर्वज्ञ हैं। मुझे सब वैष्णव धर्म बतलाइये ।१५। हे प्रभो ! सबसे आदि में कार्तिक मास का माहात्म्य आप बतलाने के योग्य होते हैं। दीपदान का माहात्म्य तथा व्रतधारियों के नियमों को भी बतलाने की कृपा कीजियेगा ।१६।

हे विभो ! गोपी चन्दन का तथा तुलसी का माहात्म्य भी बतलाइये। धात्री (आँवला) का माहात्म्य और स्नान आदि करने का विधान भी बतलाइये। इस व्रत का आरम्भ कब करना चाहिये तथा इसके उद्यापन करने की विधि क्या होती है ? जो कुछ भी वैष्णवों का धर्म हो वह सभी कुछ आप बतलाने के योग्य हैं। जिससे आपके प्रसाद से मैं अनामय पद को प्राप्त कर लूँगा ।१७।१८। श्री सूतजी ने कहा— इस तरह के अपने पुत्र नारद के वचन को सुनकर ब्रह्माजी परम हर्ष से सयुत हो गये थे। फिर भगवान श्री राधा दामोदर जी के चरणों का स्मरण करके ब्रह्माजी ने अपने पुत्र से कहना आरम्भ किया था।१९। श्रीब्रह्माजी ने कहा—हे पुत्र ! तुमने परम सुन्दर प्रश्न किया है। यह तुम्हारा प्रश्न तो समस्त लोगों के उद्धार का हेतु है। मैं इस कार्त्तिक मास के वैभव को कहूँगा—इसमें तनिक भी सन्देह मत करो।२०। एक ओर समस्त तीर्थ और दक्षिणा से समन्वित सभी यज्ञ हों और दूसरी ओर कार्त्तिक मास का माहात्म्य हो तो वे सब इस मास के वैभव की सोलहवीं कला को भी प्राप्त करके योग्य नहीं होते हैं।२१।

एकतः पुष्करेवासः कुरुक्षेत्रे हिमालये ।
एकतः कार्त्तिकः पुत्र सर्वपुण्याऽधिको मतः ।२२।
स्वर्णानि मेरुतुल्यानि सर्वदानानिचैकतः ।
एकतः कार्त्तिको वत्स ! सर्वदाकेशवप्रियः ।२३।
यत्किञ्चित्क्रियते पुण्यं विष्णुमुद्दिश्य कार्त्तिके ।
तस्य क्षयं न पश्यामि मयोक्तं तव नारद ! ।२४।
सोपानभूतं स्वर्गस्य मानुष्यंप्राप्यदुर्लभम् ।
तथाऽऽत्मानंसमादध्यान्नभ्रश्येतयथापुनः ।२५।
दुष्प्राप्यं प्राप्य मानुष्यं कार्त्तिकोक्तं चरेन्नयः ।
धर्मं धर्मभृतांश्रेष्ठ ! समातापितृघातकः ।२६।

कार्त्तिकः खलु वै मासः सर्वमासेषु चोत्तमः।
पुण्यानाम्परमं पुण्यं पावनानाञ्चपावनम् ।२७।
अस्मिन्मासेत्रयस्त्रिंशद्देवाः सन्निहिता मुने ।
अत्रस्नानिदानानिभोजनानिव्रतानिच ।२८।

हे पुत्र ! एक ओर तो पुष्कर में निवास तथा कुरु क्षेत्र में और हिमालय में निवास और दूसरी ओर कार्त्तिक मास का पुण्य हो तो यह कार्त्तिक सबसे अधिक पुण्य वाला होता है । सुमेरु पर्वत के समान सुवर्ण का राशि (ढेर) और अन्य समस्त प्रकार के दान सब एक ओर हैं तथा एक ओर हे वत्स ! सर्वदा भगवान केशव का परम प्रिय कार्त्तिक मास है । कार्त्तिक मास में भगवान विष्णु का उद्देश्य ग्रहण करके जो कुछ भी पुण्य किया जाता है हे नारद ! यह मैंने तुमको बतला दिया है कि यह कभी भी क्षय को प्राप्त नहीं हुआ करता है ऐसा मैं देख रहा हूँ ।२२।२३।२४। इस परम दुर्लभ मनुष्य जीवन को प्राप्त करके यह स्वर्ग का एक प्रकार का सोपान जैसा ही है । यह आत्मा को उस प्रकार से दे दिया करता है कि जहाँ से फिर कभी भ्रंश होता ही नहीं है ।२५। इस अति दुष्प्राप्य मनुष्य जीवन को प्राप्त करके कार्त्तिक मास में बतलाये हुए व्रतों एवं नियमों का जो समाचरण नहीं किया करता है हे धर्म धारियों में परम वरिष्ठ ! वह माता-पिता का घातक ही हुआ करता है । यह कार्त्तिक मास सभी अन्य मासों में अत्युत्तम मास होता है । यह पुण्यों में परम पुण्य है और पावनों में परम पावन होता है । हे मुने ! इस मास में तेतीस करोड़ देवता सन्निहित हुआ करते हैं । इस मास में स्नान, दान, भोजन और व्रत सभी परम श्रेष्ठतम हुआ करते हैं ।२६।२७।२८।

तिलधेनुं हिरण्यञ्च रजतं भूमिवाससी ।
गोप्रदानानि कुर्वन्ति सर्वभावेन नारद ! ।२९।

तानि दानानि दत्तानि गृह्णन्ति विधिवत्सुराः ।
यत्किञ्च दत्तं विप्रेन्द्र ! तपश्चैव तथा कृतम् ।३०।
तदक्षय्यफलं प्रोक्तं विष्णुना प्रभविष्णुना ।
पापानांमोक्षणञ्चैवकात्तिकेमासिशस्यते ।३१।
तस्माद्यत्नेन विप्रेन्द्र ! कात्तिके मासि दीयते ।
यत्किंचित्कात्तिके दत्तं विष्णुमुद्दिश्य मानवैः ।३२।
तदक्षयं हि लभते अन्नदानं विशेषतः ।
यथा नदीनाम्विप्रेन्द्र शैलानाञ्चैव नारद ! ।३३।
उदधीनाञ्च विप्रर्षे ! क्षयोनैवोपपद्यते ।
दानं कात्तिकमासेतु यत्किंचिद्दीयते मुने ! ।३४।
न तस्याऽस्तिक्षयोविप्र ! पापंयातिसहस्रधा ।
सम्प्राप्तंकात्तिकदृष्ट्वापरान्नंयस्तुवर्जयेत् । ३५।

हे नारद इस महान पुण्यमय मास में तिल, धेनु, सुवर्ण, रजत (चांदी), भूमि, वस्त्र, गौ इनका सर्व भाव से दान किए जाते हैं। इन किए हुये दानों को विधि के सहित देवगण ग्रहण किया करते हैं। हे विप्रेन्द्र ! जो कुछ भी इस मास मे दिया गया है वह उस प्रकार का परम तप ही किया हुआ समझना चाहिये ।२९।३०। इसका प्रभ विष्णु श्री विष्णु भगवान ने अक्षय्य फल बतलाया है। समस्त पापों का मोक्षण कात्तिक मास मे ही प्रशस्त बतलाया जाता है। हे विप्रेन्द्र ! इसीलिए यत्न पूर्वक कात्तिक मास मे विष्णु का उद्देश्य करके अर्थात् उन्ही को समर्पण करने की बुद्धि रखते हुए मनुष्यों को जो कुछ भी हो दान करना चाहिये। वह अक्षय लाभ किया करता है विशेष रूप से अन्न का दान परम अक्षय होता है। हे नारद ! हे विप्रेन्द्र ! जिस प्रकार से नदियों का, शैलों का और हे विप्रर्षे ! सागरों का कभी क्षय नहीं हुआ करता है। वैसे ही हे मुने ! कात्तिक मास में जो कुछ भी दिया जाता है हे विप्र ! उसका कभी क्षय नहीं होता है और पाप सहस्रों

टुकड़े होकर नष्ट हो जाया करता है। कार्त्तिक मास को प्राप्त हुआ समझकर जो पराये अन्न का ग्रहण करना छोड़ देता है वह परम पुण्य किया करता है।३१-३५।

दिने दिनेऽतिकृच्छ्रस्य फलम्प्राप्नोत्ययत्नतः।
न कार्त्तिकसमो मासो न कृतेन समं युगम्।३६।
न वेदसदृशं शास्त्रं न तीर्थं गङ्गया समम्।
न चान्नसदृशं दानं न सुखंभार्यया समम्।३७।
न्यायेनोपार्जितं द्रव्यं दुर्लभं दानकारिणाम्।
दुर्लभं मर्त्यधर्माणां तीर्थे च प्रतिपादनम्।३८।
कार्त्तिके मुनिशार्दूल ! शालग्रामशिलार्चनम्।
स्मरणं वासुदेवस्य कर्त्तव्यं पापभीरुणा।३९।
एतादृशं कार्त्तिकञ्च अकृतेनैव यो नयेत्।
पूर्वं कृतस्य पुण्यस्य क्षयमाप्नोत्यसंशयम्।४०।
अव्रतेन कथं कार्यं कार्त्तिकव्रतमुत्तमम्।
येन तत्फलमाप्नोति तन्मे वद पितामह !।४१।

दिन-दिन में उस दूसरे के अन्न को त्याग कर देने वाले पुरुष को अतिकृच्छ्र महा व्रत करने का पुण्य-फल प्राप्त हो जाता है और कुछ भी प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इस कार्त्तिक के समान अन्य कोई भी मास नहीं है और कृतयुग के तुल्य कोई युग नहीं है।३६। वेद के समान कोई शास्त्र नहीं है और गङ्गा के समान कोई तीर्थ नहीं है, अन्न के सदृश कोई अन्य दान नहीं है और भार्या के सदृश कोई दूसरा सुख नहीं होता है। न्याय से उपार्जित द्रव्य दान करने वालों को परम दुर्लभ होता है। मर्त्य धर्म वालों को तीर्थ में प्रतिपादन करना भी दुर्लभ है।३७।३८। हे मुनिशार्दूल ! कार्त्तिक मास में श लग्राम शिला का अर्चन और भगवान वासुदेव का स्मरण पाप भीरु मनुष्य को अवश्य ही करना चाहिये। ऐसे कार्त्तिक मास को जो व्रत से ही व्यतीत करता

है वह पूर्व में किए हुये पुण्य का बिना संशय के क्षय प्राप्त किया करता है ।३९।४०। श्री नारद जी ने कहा—हे पितामह ! जो अशक्त हो उसे इस उत्तम कार्तिक का व्रत कैसे करना चाहिये जिससे कि वह उस फल को प्राप्त कर लेवे, कृपा करके अब आप यही मुझे बतलाइए ।४१।

अशक्तस्तु यदा मर्त्यस्तदैवं व्रतमाचरेत् ।
अन्यस्मै द्रविणं दत्त्वाकारयेत्कार्त्तिकव्रतम् ।४२।
तस्मात्पुण्यंप्रगृह्णीत दानसङ्कल्पपूर्वकम् ।
द्रव्यदानेऽप्यशक्तश्चेद्यदा देवर्षिसत्तम ! ।४३।
तदा तेन प्रकर्त्तव्यं पानं तीर्थजलस्य च ।
तत्राऽप्यशक्तो यो मर्त्यस्तेन नित्यं हरेर्मुदा ।४४।
स्मरणं च प्रकर्तव्यं नाम्ना नियमपूर्वकम् ।
अखण्डितं तदा तेन कार्त्तिकव्रतजं फलम् ।४५।
विष्णोः शिवस्य वा कुर्यादालये हरिजागरम् ।
शिवविष्ण्वोर्गृहाभावे सर्वदेवालयेष्वपि ।४६।
दुर्गाटव्यां स्थितो वाऽथ यदि वाऽऽपद्गतो भवेत् ।
कुर्यादश्वत्थमूले तु तुलसीनां वनेष्वपि ।४७।
विष्णुनामप्रबन्धानां गायनं विष्णुसन्निधौ ।
गोसहस्रप्रदानस्य फलमाप्नोति मानवः ।४८।
वाद्यकृत्पुरुषश्चाऽपि वाजपेयफलं लभेत् ।
सर्वतीर्थावगाहोत्थं नर्तकः फलमाप्नुयात् ।४९।

श्री ब्रह्माजी ने कहा—जब मनुष्य अशक्त एवं सामर्थ्य से हीन हो तो उसको इस व्रत का इस प्रकार से आचरण करना चाहिये कि किसी अन्य को धन देकर इस कार्तिक मास के व्रत करावे ।४२। उससे दान और सङ्कल्प पूर्वक इस व्रत पुण्य को स्वयं ग्रहण कर लेवे। हे देवर्षि सत्तम ! जब अशक्त भी हो तो भी द्रव्य दान से इसको किया जा सकता है यदि द्रव्य देने की भी सामर्थ्य न हो तो उस समय में

उसको केवल तीर्थ के जल का पान ही करना चाहिए । यदि यह करने में भी अशक्त हो तो उसको प्रसन्नता से नित्य श्रीहरि का स्मरण नियम पूर्वक नाम से करना चाहिए ।४३।४४। तभी यह कार्तिक मास का व्रत का फल उससे अखण्डित होता है । भगवान विष्णु अथवा भगवान् शिव के आलय में हरि जागर करना चाहिये । शिव तथा विष्णु के आलय के अभाव होने पर सभी देवों के आलयों में भी यह अवश्य ही करे । ।४५।४६। दुर्गाटवी में स्थित यदि वा आपद्गत हो तो किसी अश्वत्थ (पीपल) के मूल में या तुलसी के वनों में इसे कर लेवे।४७। भगवान विष्णु की सन्निधि में विष्णु के नाम के प्रबन्धों का गायन करने से वह मानव एक सहस्र गौओं के प्रदान करने का फल प्राप्त किया करता है । वाद्यों के करने वाला पुरुष भी वाजपेय यज्ञ करने का पुण्य फल प्राप्त करता है । जो नृत्य करने वाला वहाँ पर नर्त्तक होता है वह भी सब तीर्थों के अवगाहन करने के पुण्य-फल को प्राप्ति कर लिया करता है ।४८।४९।

सर्वमेतल्लभेत्पुण्यमेतेषां द्रव्यदः पुमान् ।
श्रवणाद्दर्शनाद्वाऽपि षडंशं फलमाप्नुयात् ।५०।
आपद्गतो यदाऽप्यम्भो न लभेत्कुर्वन्नरः ।
व्याधितो वाऽथवा कुर्याद्विष्णोर्नाम्नाऽपि मार्जनम् ।५१।
उद्यापनविधिं कर्तुमशक्तो यो व्रतस्थितः ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्व्रतसम्पूर्तिहेतवे ।५२।
अशक्तो दीपदानाय परदीपं प्रबोधयेत् ।
तस्य वा रक्षणं कुर्याद्वातादिभ्यः प्रयत्नतः ।५३।
श्रीविष्णोः पूजनाऽभावे तुलसीधात्रिपूजनम् ।
सर्वाऽभावे व्रती कुर्याद् ब्राह्मणानां गवामपि ।
तस्याऽप्यभावे मनसि विष्णोर्नामानुकीर्तनम् ।५४।
ब्रह्मन् ! ब्रूहि विशेषेण धर्मान् कार्तिकसम्भवान् ।५५।

इन सब कर्मानुष्ठानों को करने वालों को जो द्रव्य देने वाला है वह पुरुष इनके सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है। इनके दर्शन करने से तथा श्रवण करने से भी छटवाँ भाग फल प्राप्त होता है। आपत्ति ग्रस्त पुरुष कहीं पर भी जिस समय में जल की प्राप्ति नहीं किया करता है अथवा वह किसी व्याधि से युक्त हो तो उसको चाहिये कि भगवान विष्णु के नामों का उच्चारण कर मार्जन मात्र ही कर लिया करे। ।५०।५१। जो कोई मनुष्य व्रत मे स्थित होकर उसके उद्यापन की विधि के सम्पादन करने में असमर्थ हो तो उसको व्रत की सम्पूर्त्ति के लिए पीछे ब्राह्मणों का भोजन करा देना चाहिए। यदि दीपदान करने की भी शक्ति न रखना हो तो पराये दीपों को ही प्रबोधित कर देना चाहिए। अथवा दूसरों के द्वारा जलाये हुए दीपों की वायु आदि से प्रयत्न पूर्वक सुरक्षा करनी चाहिए कि वे बुझने न पावें। यदि भगवान विष्णु के पूजन करने का अभाव ही हो तो केवल तुलसी अथवा धात्री (आँवला) का पूजन करना चाहिये। यदि सभी का अभाव हो तो व्रती को ब्राह्मणों का एवं गौओं का अर्चन करना चाहिये। यदि कोई ऐसा ही स्थल हो जहाँ इन सभी का अभाव हो तो केवल मन मे विष्णु के नामों का कीर्त्तन कर लेवे। देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा—हे महान् ! विशेष रूप से कार्त्तिक मास मे होने वाले धर्मों को बतलाइये ।५२—५५।

३१—सवैशाखमासप्रशंसनं तथा स्नानमाहात्म्यवर्णन

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यास ततो जयमुदीरयेत् ।१।
भूयोऽप्यङ्गभुवं राजा ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
पुण्यं माधवमाहात्म्य नारदं पर्यपृच्छत ।२।
सर्वेषामपि मसानांत्वत्तो माहात्म्यमञ्जसा ।
श्रुतं मया पुरा ब्रह्मन्यदाचोक्तंतदात्वया ।३।

वैशाखः प्रवरो मासो मासेष्वेतेषु निश्चितम् ।
इति तस्माद्विस्तरेण माहात्म्यं माधवस्य च ।३।
श्रोतुं कौतूहलं ब्रह्मन्कथं विष्णुप्रियो ह्यसौ ।
के च विष्णुप्रियाधर्मामासेमाधववल्लभे ।४।
तत्राऽप्यस्य तु कर्त्तव्याः के धर्मा विष्णुवल्लभाः ।
किं दानं किं फलं तस्य कमुद्दिश्याऽऽचरेदिमान् ।५।
कैर्द्रव्यैः पूजनीयोऽसौ माधवो माधवागमे ।
एतन्नारद ! विस्तार्य मह्यं श्रद्धावतेवद ।६।
मया पृष्टः पुरा ब्रह्मामाधवमङ्घ्रिपुरातनात् ।
कथाकहारपुराप्रोक्तं यच्छिष्यै परमात्मना ।७।
ततो मासा विशिष्योक्ताः कार्त्तिको माघ एव च ।
माधवस्तेषु वैशाखं मासानामुत्तमं व्यधात् ।८।

मङ्गलाचरण — भगवान नारायण को नमस्कार करके तथा नरोत्तम नर, देवी सरस्वती एवं व्यास को प्रणाम करके जय शब्द का उच्चारण करना चाहिये। श्री सूतजी ने कहा —राजा ने फिर भी परमेष्ठी ब्रह्माजी के अङ्गभू (तनय) श्री नारद जी से परम पुण्यमय श्री माधव का माहात्म्य पूछा था। राजा अम्बरीष ने कहा—हे ब्रह्मन् ! सभी मासों का माहात्म्य भयानक ही पहिले मैंने आपसे सुना था। जिस समय में आपने कहा था उस समय में कहा था कि इन समस्त मासों में वैशाख मास सबसे प्रवर अर्थात् श्रेष्ठ है—ऐसा निश्चित है। हे ब्रह्मन् ! यह सुनने का बड़ा भारी हृदय में कौतूहल है कि यह विष्णु का प्रिय कैसे है ? इस माधव प्रिय मास में भगवान विष्णु के प्रिय वे धर्म कौन से हैं ? वहाँ पर भी इसको कौन से विष्णु के वल्लभ धर्म करने के योग्य हैं। क्या दान है और उसका क्या फल है और इन सबका समाचरण किसका उद्देश्य लेकर करना चाहिये ।१ – ५। माधव के आगम में किन द्रव्यों से यह भगवान माधव पूजने के योग्य होते हैं ?

हे नारद ! यह सब विस्तार के साथ यहां शान मुझको आप कृपाकर के बतलाइये ।६। देवर्षि प्रवर नारद जी ने कहा—पहिले मेरे द्वारा ब्रह्माजी पुरातन मासों के धर्मों के विषय पूछे गये थे । परमात्मा श्री नारायण ने जो श्री देवी से पहिले बतलाया था वह कहा था । इसके अनन्तर विशेष करके कार्तिक और माघ ये दो मास बताये गये थे । उनमे माधव ने वैशाख को मासों में उत्तम कहा था ।७,८।

मातेव सर्वजीवानां सदैवेष्ट प्रदायकः ।
दानयज्ञव्रतस्नानैः सर्वपापविनाशनः ।९।
धर्मयज्ञक्रियासारस्तपः सारः सुरार्चितः ।
विद्यानां वेदविद्य व मन्त्राणां प्रणवोयथा ।१०।
भूरुहाणां सुरतरुर्धेनूनां कामधेनुवत् ।
शेषवत्सर्वनागानां पक्षिणां गरुडो यथा ।११।
देवानां तु यथाविष्णुर्वर्णानांब्राह्मणो यथा ।
प्राणवत्प्रियवस्तूनां भार्येवसुहृदांयथा ।१२।
आपगानां यथा गङ्गा तेजसांतुरविर्यथा ।
आयुधानां यथा चक्रं धातूनांकाञ्चनंयथा ।१३।
वैष्णवानांयथारुद्रोरत्नानांकौस्तुभोयथा ।
मासानां धर्महेतूनां वैशाखश्चोत्तमस्तथा ।१४।

जैसे समस्त जीवों की माता हुआ करती है उसी भांति सर्वदा अभीष्ट वस्तु का प्रदान करने वाला यह वैशाख मास हुआ करता है । इसकी ऐसी महिमा है कि यह दान, व्रत और स्नानों के द्वारा समस्त पापों का विनाश करने वाला है ।९। यह मास धर्म-यज्ञ और क्रियाओं का सार स्वरूप है तथा तपस्या का सार है और सुरों के द्वारा समर्चित है । समस्त विद्याओं में वेद विद्या के समान ही है । सम्पूर्ण मन्त्रों में जैसे परम प्रधान प्रणव होता है वैसे ही यह समस्त मासों में प्रमुख है । वृक्षों में कल्प वृक्ष के तुल्य तथा धेनुओं में कामधेनु के सदृश यह मास सबमें

श्रेष्ठ माना गया है। सब नागों में शेष और पक्षियों में गरुड़ की भाँति होता है। सब देवों में जैसे भगवान विष्णु हैं—समस्त वर्णों में जिस तरह ब्राह्मण हैं वैसे ही यह मास होता है। प्रियतम वस्तुओं में प्राण के समान और हित के चिन्तक सुहृदों में भार्य्या के ही सदृश यह होता है। नदियों में भागीरथी गङ्गा जैसे सर्वश्रेष्ठ है तथा तेजस्वियों में जिस प्रकार से रवि होते हैं—आयुधों में सुदर्शन चक्र, धातुओं में सुवर्ण, वैष्णवों में रुद्रदेव, रत्नों में कौस्तुभ होता है ठीक उसी भाँति से धर्म हेतु मासों में वैशाख हुआ करता है।१०-१४।

नाऽनेन सदृशो लोके विष्णुप्रीतिविधायकः ।
वैशाखस्नाननिरते मेषे प्रागर्यमोदयात् ।१५।
लक्ष्मीसहायो भगवान्प्रीतिं तस्मिन्करोत्यलम् ।
जन्तूनांप्रीणनंयद्वदन्नेनैवहिजायते ।१६।
तद्वद्वैशाखस्नानेन विष्णुः प्रीणात्यसंशयम् ।
वैशाखस्नाननिरताञ्जनान्दृष्ट्वाऽनुमोदते ।१७।
तावतापिविमुक्तोऽघैर्विष्णुलोकेमहीयते ।
सकृत्स्नात्वामेषसंस्थेसूर्येप्रातः कृताह्निकः ।१८।
महापापैर्विमुक्तोऽसौ विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
स्नानार्थं मासि वैशाखे पादमेकं चरेद्यदि ।१९।
सोऽश्वमेधायुतानाश्चफलमाप्नोत्यसंशयम् ।
अथवाकूटचित्तस्तुकुर्यात्सङ्कल्पमात्रकम् ।२०।
सोऽपिक्रतुशतंपुण्यं लभेदेव न संशयः ।
यो गच्छेद्धनुरायामं स्नातुं मेषगते रवौ ।२१।
सर्वबन्धविनिर्मुक्तो विष्णोः सायुज्यमाप्नुयात् ।
त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि ब्रह्माण्डान्तर्गतानि च ।२२।

इसके समान लोक में भगवान् विष्णु की प्रीति का विधायक अन्य कोई भी मास नहीं है। अर्यमा (सूर्य) के उदय होने से पूर्व मेष

के सूर्य के समय में जो पुरुष वैशाख मास में स्नान में निरत रहा करता है उस पर लक्ष्मी देवी के साथ भगवान अत्यधिक प्रीति किया करते हैं। जिस तरह से जन्तुओं की प्रसन्नता एवं सन्तुष्टि अन्न से ही हुआ करती है उसी प्रकार से वैशाख मास के स्नान से निःसंशय भगवान विष्णु प्रसन्न एवं तृप्त हुआ करते हैं। जो वैशाख मास के स्नान में निरत रहने वाले पुरुषों को देखकर अनुमोदित होता है उतने मात्र के करने से भी मनुष्य पापों से विमुक्त हो जाया करता है और अन्त में विष्णु लोक जाकर प्रतिष्ठित होता है। एक बार मेष राशि पर संस्थित सूर्य के रहने के समय में स्नान करके प्रातःकाल में जो अपना आह्निक कृत्य करने वाला है वह महान पापों से विमुक्त होकर भगवान विष्णु के सायुज्य को प्राप्त कर लिया करता है। वैशाख मास में स्नान करने के लिए यदि एक कदम भी चरण करता है तो वह पुरुष अयुत (दश हजार) अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त कर लिया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है। अथवा कृत चित्त वाला होकर ऐसा करने का सङ्कल्प-मात्र कर लेता है वह भी सौ क्रतुओं के करने का पुण्य-फल प्राप्त कर लेता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। जो मेष राशि पर सूर्य के आने पर स्नान करने के लिए अनुगमन को जाता है वह इस आवागमन के सर्ग के बन्धन से विमुक्त होकर विष्णु भगवान के सायुज्य की प्राप्ति कर लेता है। त्रैलोक्य में जो भी तीर्थ हैं और जो इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत तीर्थ हैं हे राजेन्द्र! वे सभी बाहर थोड़े से जल में होते हैं। ।१५—२२।

तानि सर्वाणि राजेन्द्र ! सन्ति बाह्येऽल्पके जले ।
तावल्लिखितपापानि गर्जन्ति यमशासने ।२३।
यावन्न कुरुते जन्तुर्वैशाखे स्नानमम्भसि ।
तीर्थादिदेवताः सर्वा वैशाखेमासिभूमिप ! ।२४।

बहिर्जलं समाश्रित्यसदासन्निहितानृप ।
सूर्योदयं समारभ्य यावत्पड्घटिकावधि ॥२५॥
तिष्ठन्ति चाऽऽज्ञया विष्णोर्नराणां हितकाम्यया ।
तावदागच्छतां पुंसां शापं दत्वा सुदारुणम् ।
स्वस्थानं यान्ति राजेन्द्र ! तस्मात्स्नानं समाचरेत् ॥२६॥

उतने समय तक यमराज के शासन में स्थित एवं लिखित पाप अपनी गर्जना किया करते हैं जब तक जीव वैशाख मास में जल में स्नान नहीं करता है । हे राजन् ! हे भूमिपालक ! तीर्थादि के समस्त देवगण वैशाख मास मे जल के बाहिर समाश्रय लेकर सदा सन्निहित रहा करते हैं और वे सूर्य के उदय से लेकर जब तक छै घड़ियों की अवधि होती है तब तक भगवान विष्णु की आज्ञा से मनुष्यों की हित करने की कामना से ही वहाँ पर स्थित रहते हैं । उतने समय तक भी जो नहीं गमन करते हैं उनको वे सुदारुण शाप देकर हे राजेन्द्र ! अपने-अपने स्थान को प्रस्थान कर जाया करते हैं । इसलिए सूर्योदय से पूर्व ही अवश्य वैशाख मास में स्नान का समाचरण करना चाहिये ॥२३-२६॥

३२—ज्ञानस्वरूपनिरूपण

अथज्ञानस्वरूपं तेवच्मिसाङ्ख्येननिखिलम् ।
क्षेत्रादिज्ञायतेयेन तज्ज्ञानंहिनिरूप्यते ॥१॥
वासुदेवः परं ब्रह्म बृहत्यक्षरधामनि ।
आदावेकोऽद्वितीयोऽभून्निर्गुणो दिव्यविग्रहः ॥२॥
सकार्यमूलप्रकृतिः सकलाऽक्षरतेजसि ।
प्रकाशेऽर्कस्यरात्रीव तिरोभूता तदाऽभवत् ॥३॥
सिसृक्षाऽथाभवत्तस्यब्रह्माण्डानांयदातदा ।
सकालाविबंभूवादौ महामायाततोहिसा ॥४॥

सां कालशक्तिमादाय वासुदेवोऽक्षरात्मना ।
सिसृक्षयैक्षत यदा सा चुक्षोभ तदैवहि ।५।
तस्याः प्रधानपुरुषकोटयोजज्ञिरे मुने ! ।
युज्यन्ते स्म प्रधानैस्ते पुरुषाश्चेच्छयाप्रभोः ।६।
पुमांसोनिदधुर्गर्भांस्तेषु तेभ्यश्चजज्ञिरे ।
ब्रह्माण्डानिह्यसङ्ख्यानितत्रैकंतुविविच्यते ।७।

भगवान श्री नारायण ने कहा—सङ्ख्य दर्शन के द्वारा जो निश्चित किया गया है उस ज्ञान के स्वरूप को मैं तुमको बतलाता हूँ। क्षेत्र आदि का जिसके द्वारा ज्ञान प्राप्त होता है वही ज्ञान अब बतलाया जाता है। इस बृहती अक्षर व्योम में वासुदेव परम ब्रह्म है। आदि काल मे निर्गुण और दिव्य विग्रह वाला एक ही अद्वितीय हुआ था।१।२। वह समस्त कार्यों की मूल प्रकृति सकल अक्षर तेज से युक्त सूर्य के प्रकाश मे रात्रि के समान उस समय में तिरोभूत हो गई थी।३। इसके अनन्तर जिस समय मे उसकी ब्रह्माण्डो के सृजन करने की इच्छा हुई थी उस समय मे आदि मे फिर वह महामाया आविर्भूत हो गई थी। ।४। भगवान वासुदेव ने अक्षरात्मा के द्वारा उस काल शक्ति को लेकर जिस समय मे सृजन करने की इच्छा से देखा था उसी समय में उसने क्षोभ किया था।५। हे मुने ! उससे करोड़ों प्रधान पुरुष समुत्पन्न हो गये थे और वे प्रभु की इच्छा से पुरुष प्रधानों के युक्त हो गये थे।६। पुमानों ने उनमे गर्भों को धारण किया था और उनसे समुत्पन्न हुए थे। असङ्ख्य ब्रह्माण्ड हुए थे उनमे से अब एक की विशेष विवेचना की जाती है।७।

आदौ जज्ञे महांस्तस्मात्पुंसो वीर्याद्धिरण्मयात् ।
अहङ्कारस्ततस्तस्माद्गुणाः सत्वादयस्त्रयः ।८।
तमसः पञ्च तन्मात्रा महाभूतानि जज्ञिरे ।
दशेन्द्रियाणि रजसा बुद्ध्यासहमहानसुः ।९।

सत्त्वादिन्द्रियदेवाश्च जायन्ते स्म मनस्तथा ।
सामान्यतस्तत्त्वसञ्ज्ञा एते देवाः प्रकीर्त्तिताः ।१०।
प्रेरिता वासुदेवेन स्वस्वांशैरैश्वरं वपुः ।
अजीजनन्विराट् सञ्ज्ञं तै चराचरसंश्रयम् ।११।
सच वैराजपुरुषः स्वसृष्टास्वप्स्वशेत यत् ।
तेन नारायणइतिप्रोच्यते निगमादिभिः ।१२।
तन्नाभिपद्माद् ब्रह्माऽभूद्राजसोऽथ हृदम्बुजात् ।
जज्ञे विष्णुः सत्त्वगुणो ललाटात्तामसो हरः ।१३।
एतेभ्यएवस्थानेभ्यस्तिस्रआसंश्चशक्तयः ।
तत्रासीत्तामसीदुर्गासाविश्रीराजसीतथा ।
सात्त्विकी श्रीश्चेति सर्वा वस्त्राऽलङ्कारशोभिताः ।१४।

आदि में उस पुरुष के हिरण्मय वीर्य से महान उत्पन्न हुआ था। उससे महङ्कार उत्पन्न हुआ था और फिर उस महङ्कार से सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण समुत्पन्न हुए थे।८। तम से पञ्च तन्मात्राएँ पञ्च महाभूत समुत्पन्न हुए थे। रज से दश इंद्रियाँ और बुद्धि के साथ महान असु उत्पन्न हुए थे।९। सत्त्व गुण से इन्द्रियों के देवता तथा मन की समुत्पत्ति हुई थी। सामान्य रूप से ये सब देव तत्त्व संज्ञा वाले थे। ऐसा कीर्तित किया गया है।१०। भगवान वासुदेव के द्वारा प्रेरित होकर अपने-अपने अंशों से ईश्वरीय वपु को उत्पन्न किया था और वे चर और अचरों का संश्रय विराट संज्ञा वाले थे।११। और वह वैराज पुरुष अपने द्वारा समुत्पन्न किये हुए जल में शयन करते थे इसी से निगम आदि के द्वारा वह नारायण इस नाम से कहे जाया करते हैं। ।१२। इसके अनन्तर उनके हृदय के अम्बुज से राजस ब्रह्मा समुत्पन्न हुये थे, सत्त्व गुण विशिष्ट विष्णु हुए और ललाट से तमोगुण युक्त हर की उत्पत्ति हुई थी।१३। इन्हीं स्थानों से ये तीन शक्तियाँ हुईं थी। वहाँ

पर तामसी देवी दुर्गा थी, राजसी भगवती सावित्री थी और सात्त्विकी महालक्ष्मी हुई थीं ये सभी वस्त्र और अलङ्कारों से विभूषित थीं ।१४।

ता वैराजाज्ञया त्रीश्च ब्रह्मादीन्प्रतिपेदिरे ।
दुर्गा रुद्रञ्च सावित्री ब्रह्माणं विष्णुमग्निमा ।१५।
चण्डिकाद्याश्च दुर्गाया अंशेनाऽऽसन्सहस्रशः ।
त्रयीमुख्याश्च सावित्र्याः शक्तयोंऽशेन जज्ञिरे ।
दुस्सहाप्रमुखाश्चासन्नंशेनैव श्रियो मुने ! ।१६।
तत्रादितो यो ब्रह्माऽऽसीद्वैराजनाभिपद्मतः ।
एकार्णवेतदब्जस्थः सकिञ्चिदपि नैक्षत ।१७।
विसर्गबुद्धिमप्राप्तोनात्मानञ्चविवेदसः ।
कोऽहं कुत इति ध्यायन्नदिदृक्षत्कआश्रयम् ।१८।
नाऽल प्रविश्याऽधो यातुस्तन्मूलञ्चविचिन्वतः ।
सम्वत्सरशतं यात तस्य नाऽन्तं तु सोऽलभत् ।१९।
ऊर्ध्वं पुनरुपेत्याऽथ श्रान्तश्च निषसाद सः ।
अदृश्यमूर्तिर्भगवानूचे तपतपेति तम् ।२०।
तच्छ्रुत्वा तत्प्रवक्तारमदृष्ट्वा च स सर्वतः ।
गुरूपदिष्टवत्तेपे दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।२१।

उनने वैराज की आज्ञा से तीनों ब्रह्मा, विष्णु और महेश इनको प्राप्त किया था दुर्गादेवी ने रुद्रदेव को प्राप्त किया था, सावित्री ने ब्रह्मा को प्राप्त किया था और महालक्ष्मी ने भगवान विष्णु का समाश्रय ग्रहण किया था।१५। चण्डिका आदि अन्य सहस्रों स्वरूप दुर्गा देवी के ही अंश से समुत्पन्न हुए थे। त्रयीमुख्य सावित्री के अंश से उत्पन्न हुए थे। हे मुने ! दुस्सहा प्रमुख श्री देवी के अंश से हुए थे।१६। वहाँ पर आदि में जो ब्रह्मा थे वह वैराज की नाभि देश में समुत्पन्न कमल से हुए थे। उस समय में यह सम्पूर्ण विश्व एकार्णव स्वरूप था अर्थात् सर्वत्र एक मात्र समुद्र ही था। उस समय में कमल में स्थित ब्रह्माजी

ने कुछ भी नहीं देखा था ।१७। वह विसर्ग की बुद्धि को प्राप्त नहीं हुए थे अर्थात् इस ब्रह्मा में विशेष रूप से सर्ग करने की बुद्धि बिल्कुल नहीं थी और न वे अपने आपके स्वरूप का ही कुछ ज्ञान रखते थे । मैं कौन हूं और कहां से समुत्पन्न होकर यहां प्राप्त हुआ हूं—ऐसा ध्यान करते हुए उन्होंने कजाश्रय को ही देख पाया था ।१८। उस भगवान् नारायण के नाभि प्रदेश से समुत्पन्न पद्म नाल में ब्रह्मा ने अधोभाग में प्रवेश किया था और उस नाल के मूल की खोज करने की इच्छा की थी किन्तु इसी खोज के करने में एक सौ वर्ष व्यतीत हो गये थे किन्तु फिर भी वे उसका अन्त प्राप्त न कर सके थे ।१९। वह ब्रह्मा फिर उसी पद्म के ऊपर आ गये थे और परम शान्त होकर उसी पर बैठ गये थे । उसी समय में अत्यन्त थके हुए और घबड़ाये हुए ब्रह्माजी से अदृश्य मूर्ति वाले प्रभु की यह आवाज हुई थी कि तपश्चर्या करो ।२०। ब्रह्माजी ने 'तप-तप' यह ध्वनि तो सुनी थी किन्तु इसके कहने वाला कौन है यह सभी ओर देखते हुए भी न देख पाये थे । फिर उन ब्रह्माजी ने गुरु के उप-देश को ही मानकर एक सहस्र दिव्य वर्षों तक तप किया था ।२१।

पद्मे तपस्यते तस्मै तपः शुद्धात्मने ततः ।
सस्याधो दर्शयामासधामवैकुण्ठमच्युतः ।२२।
प्राधानिकागुणा यत्र अयोपि रजआदयः ।
न भवन्त्यल्पमपि यत्कालमायाभयंन च ।२३।
सहोदिताकार्ययुतवद्भास्वरेतत्र तेजसि ।
वासुदेवंददर्शाऽसौ रम्यदिव्यासिताकृतिम् ।२४।
चतुर्भुजं गदापद्मशङ्खचक्रधरं विभुम् ।
पीताम्बरं महारत्नकिरीटादिविभूषणम् ।२५।
नन्दतार्क्ष्यादिभिर्जुष्टं पार्षदैश्च चतुर्भुजैः ।
सिद्धिभिश्चाष्टभिः षड्भिर्भगैःप्राञ्जलिपुटैःगंगैः ।२६।

सिंहासने श्रिया साकमुपविष्टं तमीश्वरम् ।
प्रणम्यप्राञ्जलिस्तयोर्विरञ्चो हृष्टमानसः ।२७।
तं प्राह भगवान्ब्रह्मा स्तुष्टोऽहंतपसा तव ।
वरं वरयमत्तस्त्वंस्वाभीष्टं यत्प्रियोऽसि मे ।२८।

उस पद्म में स्थित होकर तपश्चर्या करने वाले शुद्धात्मा ब्रह्माजी को समाधि में ही भगवान अच्युत ने अपना वैकुण्ठ धाम दिखलाया था ।२२। वहाँ पर सत्वादि तीनों प्रधान के गुण थे वहाँ पर अल्प भी काल माया के भय नहीं थे । वहाँ ऐसा तेज विद्यमान था जैसे दश सहस्र सूर्य एक साथ उदित हो रहे हो उस तेज मे परम रम्य दिव्य अखिल आकृति वाले भगवान वासुदेव का ब्रह्मा ने दर्शन प्राप्त किया था ।२३।२४। भगवान का चार भुजाओ से युक्त, गदा, शङ्ख, पद्म और चक्र इन आयुधो को धारण करने वाला, पीताम्बर धारी और महारत्नो से समन्वित किरीट आदि भूषणो से भूषित स्वरूप था ।२५। चार भुजाओं वाले नन्द और तार्क्ष्य आदि पार्षदो के द्वारा वे वहाँ पर सेवित थे। आठो अणिमादि सिद्धियाँ और छः भाग हाथ जोड़े हुए उनकी सेवा मे उपस्थित थे ।२६। एक दिव्य सिंहासन पर भगवान श्री देवी के साथ विराजमान थे । ऐसे ईश्वर का दर्शन प्राप्त करके ब्रह्माजी ने उनको अञ्जलि बाँधकर प्रणाम किया और इनके आगे परम प्रसन्न मन वाले होकर स्थित हो गये थे ।२७। उस समय मे भगवान ने उन ब्रह्माजी से कहा था—हे ब्रह्मन् ! मैं आपके इस अत्युग्र तप से परम प्रसन्न हो गया हूँ। अब आप मुझसे जो भी आपको अभीष्ट हो वह वरदान प्राप्त कर लो । मैं आपके प्रिय वरदान को देना चाहता हूँ ।२८।

इत्युक्तस्तेन तं जानस्तपसि प्रेरकं प्रभुम् ।
स्वच्चविश्वसृजं ब्रह्मायथाचेऽभिमतंवरम् ।२९।
प्रजाविसर्गशक्तिं मे देहि तुभ्यंनमः प्रभो ! ।
तथापित्वन्नदृष्येयं यथा कुरुतथाकृपाम् ।३०।

ततस्तं भगवानूचे सेत्स्यते ते मनोरथः ।
वैराजेन मयात्मैक्यमनावयित्वा समाधिना ।३१।
प्रजाः सृजाऽथ स्वसाध्ये जार्ये स्मर्योऽहमिष्टदः ।३१।
इत्युक्त्वाऽन्तर्दधे विप्रपुत्रं ह्याप्येकसमाधिना ।
वैराजेनाऽथ लोकान्प्राग्लीनान्सर्वान्स ऐक्षत ।३२।
विसर्गशक्ति सम्प्राप्य सः सर्गाय मनोदधे ।
ब्रह्मज्योतिर्मयस्तावदादित्यः प्रादुरास ह ।३३।
स्थापयित्वाऽण्डमध्ये तं ततः स मनसाऽसृजत् ।
तपोभक्तिविशुद्धेन मुनीनाद्यांश्चतुः सनान् ।३४।

उन प्रभु के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उनको ही अपनी तपस्या का प्रेरक प्रभु समझ कर ब्रह्माजी ने अपने आपको इस विश्व की सृष्टि करने वाला अभिमत वरदान उनसे माँग लिया था। ब्रह्माजी ने कहा—हे प्रभो! मुझे आप प्रजा के विसर्ग करने की महान दिव्य शक्ति प्रदान कीजिए। मैं आपको प्रणाम करता हूँ। इसमें भी मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है सो आप ऐसी कृपा करिये कि मैं विसर्ग का ठीक २ ज्ञान भी प्राप्त कर सकूं।२६।३०। इसके अनन्तर भगवान ने कहा—तुमको प्रजा की सृष्टि करने का ज्ञान प्राप्त हो जायगा और तुम्हारा मनोरथ सफल होगा। वैराज मेरे साथ आत्मा की एकता की समाधि द्वारा भावना करके प्रजा का सृजन करो। अपने लिए जब भी यह कार्य असाध्य समझो तभी अभीष्ट प्रदाता मेरा तुमको स्मरण कर लेना चाहिए।३१। इतना कहकर भगवान वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे और ब्रह्मा ने भी एक समाधि के द्वारा वैराज से प्राक्लीन सब लोकों को स्वतः ही देख लिया था।३२। ब्रह्मा ने विसर्ग की शक्ति को प्राप्त करके फिर विश्व की रचना की और अपना लगाया था। तब तक ब्रह्म ज्योति से परिपूर्ण आदित्य प्रादुर्भूत हुए थे।३३। उसको अण्ड के मध्य में स्थापित करके इसके पश्चात् ब्रह्माजी ने मन से ही सृजन का कार्य आरम्भ किया

था। तप से और भक्ति से परम विशुद्ध मन के द्वारा ब्रह्माजी ने आदि मे होने वाले सनकादि चार मुनियों का सृजन आरम्भ किया था।३४।

प्रजाः सृजतचेत्यूचेतास्तदातेतुतद्वचः ।
न जगृहुर्नैष्ठिकेन्द्रास्तेभ्यश्च क्रोध विश्वसृट् ।३५।
क्रुद्धस्य तस्य भालाच्च रुद्र आसीत्तमोमयः ।
मन्युं नियम्य मनसा प्रजेशान्सोऽसृजत्ततः ।३६।
मरीचिमत्रि पुलहं पुलस्त्यञ्च भृगुं क्रतुम् ।
वसिष्ठं कर्दमञ्चैव दक्षमङ्गिरसं तथा ।३७।
धर्मं ततः सहृदयादधर्मंपृष्ठतस्तथा ।
मनसः काममास्याच्चवाणींक्रोधं भ्रुवोऽसृजन् ।३८।
शौच तपो दया सत्यमिति धर्मपदानि च ।
चतुर्भ्यो वदनेभ्यश्च चत्वारि ससृजेततः ।३९।
ऋग्वेदं वदनात्पूर्वाद्यजुर्वेदं च दक्षिणात् ।
ससर्ज पश्चिमात्साम सौम्याच्चाऽथर्वसञ्ज्ञितम् ।४०।

उन सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार इन चारो को मन से सृष्टि करके उनसे ब्रह्माजी ने कहा था प्रजाओ का मेरे ही समान तुम लोग सृष्टि करो। उस समय मे उन्होंने ब्रह्माजी के वचन को ग्रहण नहीं किया था क्योंकि वे नैष्ठिको मे परम शिरोमणि थे। उन पर विश्व के स्रष्टा ब्रह्मा ने बहुत क्रोध किया था।३५। अत्यन्त क्रोधित हुए उनके भाल से तमोमय रुद्र हुए थे। उस समय में मन मे क्रोध को नियमित करके उन्होंने प्रजेशों का सृजन किया था।३६। उन प्रजापतियों के नाम ये हैं—मरीचि, अत्रि, पुलह, पुलस्त्य, भृगु, क्रतु, वसिष्ठ, कर्दम, दक्ष और अङ्गिरा, ये दश प्रजापतियो का सृजन किया था।३७। इसके अनन्तर उन्होंने हृदय से धर्म का और पृष्ठ भाग से अधर्म का सृजन किया था। मन से काम, मुख से वाणी और भृकुटियो से क्रोध की सृष्टि की थी।३८। धर्म के चार पद हैं—शौच, तप, दया, और सत्य

ये चार चरण हैं। ब्रह्माजी ने अपने चार मुखों से इन होत्रादिक चारों की रचना की था।३६। इसके अनन्तर चारों वेदों की सृष्टि की थी। ब्रह्माजी ने अपने पूर्व मुख से ऋग्वेद का उच्चारण कर उसे आविर्भूत किया था। दक्षिण दिशा की ओर जो मुख था उससे यजुर्वेद का सृजन किया था। पश्चिमाभिमुख से सामवेद को प्रकट किया और उत्तर की ओर वाले मुख से अथर्व वेद को प्रकट किया था।४०।

इतिहासपुराणानि यज्ञाग्निप्रशतं तथा ।
वस्वादित्यमरुद्भिश्चान्साध्यांश्च मुखतोऽसृजत् ।४१।
बाहुभ्यः क्षत्रियशतमूरुभ्यां चविशांशतम् ।
पद्भ्यांशूद्रशतचैमान्ससर्जमहवृत्तिभिः ।४२।
ब्रह्मचर्यं च हृदयाद्गार्हस्थ्यं जघनस्थलात् ।
वनाश्रमंतथोरस्तः सन्यासंशिरसोऽसृजत् ।४३।
वक्षः स्थलात्पितृगणानसुरांश्चघनस्थलात् ।
ससर्ज च गुदान्मृत्युं निऋतिं निरयाश्रयः ।४४।
गन्धर्वाश्चारणान्सिद्धान्सर्पान्यक्षान् राक्षसान् ।
नगान्मेघान्विद्युतश्च समुद्रान्सरितस्तथा ।४५।
वृक्षान्पशून्पक्षिणश्च सर्वान्स्थावरजङ्गमान् ।
स्वाङ्गेभ्य एव सोऽस्राक्षीद् ब्रह्मा नारायणात्मकः ।४६।
सृष्टिमेता विलोक्याऽपि नाऽतिप्रीतो यदा तदा ।
हरिं ध्यात्वा स ससृजे तपोविद्यासमाधिभिः ।४७।
ऋषीन्स्वायम्भुवादींश्च मनूंश्च मनुजानपि ।४७।

इतिहास पुराणों का सृजन, यज्ञों का तथा चित्र यत का और वसु, आदित्य, मरुद्गण और साध्यों की रचना ब्रह्माजी ने अपने मुख से ही की थी।४१। बाहुओं से शत क्षत्रियों को तथा ऊरुओं से वैश्यगण का एवं चरणों के शत शूद्रों को उनकी वृत्तियों के सहित ही निर्मित

किया था ।४२। अपने हृदय से ब्रह्मचर्य को, जघनस्थल से गार्हस्थ्य को, उरः स्थल से वनाश्रम अर्थात् वाण प्रस्थ को और शिर से सन्यास की सृष्टि की थी ।४३। ब्रह्माजी ने अपने वक्षः स्थल से पितृगणों का सृजन किया था, जघन स्थल से असुरों की सृष्टि की थी जो सुरों के शत्रु थे, और उनने गुदा से मृत्यु, निर्ऋति और नरकों की सृष्टि की थी ।४४। नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने अपने अङ्गों से गन्धर्व, चारण, सिद्ध, सर्प यक्ष, राक्षस, पर्वत, मेघ, विद्युत, सब समुद्र, सरितायें, वृक्ष, पशुगण पक्षी, समस्त जंगम और स्थावरों का सृजन किया था ।४५।४६। इतनी सृष्टि की रचना करके जिस समय में उन ब्रह्माजी ने इनका अवलोकन किया था तो उस समय में उनको अपनी इतनी विशाल रचना से भी कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई थी । उस समय श्रीहरि भगवान का ध्यान करके ब्रह्माजी ने तप किया और समाधि से युक्त अथवा तप आदि से ऋषियों को, स्वायम्भुव मनु आदि को और मनुष्यों की भी सृष्टि की ।४७।

ततः प्रीतः स सर्वेषां निवासायययोचितम् ।
स्वर्लोकंचभुवर्लोकंभूर्लोकंसमकल्पयत् ।४८।
येषां तु यादृशं कर्म प्राक्तलीनं हि तान्विधिः ।
संस्थाप्य तादृशे स्थाने वृत्तीस्तेषामकल्पयत् ।४९।
देवानाममृतं नृणामृषीणां चान्नमोषधीः ।
यक्षरक्षोसुरव्याघ्रसर्पादीनां सुरामिषाम् ।
चक्लृपे गोमृगादीना वृत्ति स यवसादि च ।।५०।
स देवानां तु विश्वेषां हव्यं वृत्तिमकल्पयत् ।
अमूर्तानांचमूर्तानांपितृणांकव्यमेवच ।५१।
दुर्गोद्भवानां शक्तीनां तदुपासनतत्परैः ।
दैत्यरक्षः पिशाचाद्यैर्दत्तां मद्यामिषादि च ।५२।

सावित्र्युद्भवानां शक्तीनां तदुपासकैः ।
दत्तमृष्यादिभिर्यज्ञे मुन्यन्नं चाप्यथौषधी ॥५३॥
श्रीजातानां च शक्तीनां तदुपास्तिपरायणैः ।
दत्तं देवासुरनरैः पायसाज्यसितादिच ॥५४॥

उस समय में इनको परम प्रसन्नता हुई थी और इन सबके निवास करने के लिए समुचित स्थानों की रचना करने की इच्छा से स्वर्लोक भुवर्लोक और भूलोक की सृष्टि की थी ।४८। प्राक् काल में अर्थात् पहिले जन्मों में जिसका भी जैसा कर्म था विधाता ने उसी के अनुसार उसी प्रकार के स्थान में उन सबको सम्स्थापित कर दिया था और उनकी वृत्ति की भी रचना करदी थी ।४९। देवों के आहार के लिए अमृत का सृजन कर दिया था, मनुष्यों और ऋषियों के लिए अन्न अन्न तथा औषधियों की रचना कर दी थी । यक्ष राक्षस, असुर, व्याघ्र और सर्पादि के लिए सुरा (मदिरा) तथा माँस की सृष्टि कर दी थी तथा गौ और मृग आदि और पशुओं के आहार के लिए यवस आदि का सृजन कर दिया था ।५०। ब्रह्माजी ने विश्वे देवताओं के लिए हव्य की वृत्ति निर्मित करदी थी और अमूर्त तथा मूर्त पितृगण के लिए कव्य का सृजन किया था ।५१। दुर्गा देवी से उद्भूत होने वाली शक्तियों के और उनकी उपासना करने में परायण दैत्य राक्षस पिशाच आदि के द्वारा दिया हुआ मद्य और माँस आदि का सृजन किया था ।५२। सावित्री से उद्‌भूत होने वाली शक्तियों के उपासकों के द्वारा दिया हुआ यज्ञ में ऋषि आदि के द्वारा मुन्यन्न और औषधियों की रचना की थी ।५३। श्री से समुत्पन्न शक्तियों के उपासना में परायणों के द्वारा दिया हुआ जोकि देवासुर नर थे, पायस, आज्य और सिता आदि की रचना की थी ।५४।

प्रजापतीनांसपतिस्ततः प्राहाऽखिलाः प्रजाः ।
इज्यादेवाश्चपितरोहव्यकव्यात्मकर्मभिः ॥५५॥

इष्टाः सम्पूरयिष्यन्ति ह्येतेयुष्मन्मनोरथान् ।
एतान्येनाऽर्चयिष्यन्तितेवैनिरयगामिनः ।५६।
इत्थं कृता हि मर्यादा तेन नारायणात्मना ।
दैवं पित्र्यमतोनित्य जनैः कार्यं यथाविधि ।५७।
ततो ब्रह्मा स सर्वेषाधर्मसेत्ववनायच ।
तत्तज्जातिपुयेमुख्यास्तान्मनू ञ्याप्यतिष्ठिपत् ।५८।
वासुदेवेच्छयैवेत्थं वैराजाद्ब्रह्मरूपिणः ।
कल्पेकल्पे भवत्येव सृष्टिर्बहुविधा मुने ।५६।
प्राक्कल्पे यादृशी सञ्ज्ञा वेदा शास्त्राणि च क्रियाः ।
कल्पेऽन्ये तादृशाः सर्वे धर्माः स्युश्चाऽधिकारिणः ।६०।
विष्णुर्यः कथितः सोऽपि वैराजपुरुषात्मकः ।
पोपयत्यखिलांल्लोकान्मर्यादाः परिपालयन् ।६१।
मन्वादिभिः पाल्यमानाः सेतवस्त्वसुरैर्यदा ।
कामरूपैर्विभिद्यन्ते वासुदेवस्तदा स्वयम् ।
ब्रह्मादिभिः प्रार्थ्यमानः प्रादुर्भवति भूतले ।६२।

प्रजापतियो के स्वामी उन ब्रह्माजी ने समस्त प्रजाओं से कहा था कि यजन किए हुये देव और हव्य कव्यात्मक मखो के द्वारा इष्ट पितर ये सब आप सब लोगो के मनोरथो को पूर्ण करेंगे। जो लोग इनकी अर्चना नही करेंगे वे नरक के गमन करने वाले होंगे ।५६। इस प्रकार से उन नारायण स्वरूप ब्रह्माजी ने मर्यादा की रचना कर दी थी। इसलिए मनुष्यों के द्वारा यथाविधि नित्य ही देव कार्य और पित्र्य कार्य करने चाहिए ।५७। इसके अनन्तर उन ब्रह्माजी ने धर्म सेतुकी रक्षा के लिये उन-उन जातियों मे जो मुख्य थे उन मनुओ की प्रतिष्ठा की थी। हे मुनिवर ! भगवान वासुदेव की इच्छा ही से ब्रह्मरूपी वैराज से इस प्रकार से बहुत प्रकार की सृष्टि प्रत्येक कल्प मे हुआ करती है। ।५८।५७। प्रथम कल्प में जैसी भी संज्ञा होती है तथा वेद, शास्त्र और

जो भी क्रियायें होती हैं अन्य कल्प में भी सभी धर्म इसी तरह के होते हैं और अधिकारी भी वैसे ही हुआ करते हैं।६०। जिसको विष्णु कहा गया है वह भी वैराज पुरुष स्वरूप है क्योंकि वह मर्यादाओं का पूर्ण रूप से पालन करता हुआ समस्त लोकों का पोषण किया करता है।६१। मनु आदि महापुरुषों के द्वारा पालन करने के योग्य सेतुओं का जिस समय में कामरूप असुरों ने विभेदन किया तो उस समय में स्वयं भगवान वासुदेव ब्रह्मा आदि देवों के द्वारा प्रार्थना की जाने पर भूतल में प्रादुर्भूत हुआ करते हैं।६१।६२।

अवतारा भगवतो भूताभाव्याश्च सन्ति ये ।
कस्तु न गणयते तेषां सङ्ख्या सङ्ख्याविशारदैः ।६३।
सद्धर्मं देवसाधूनां गुप्त्यै तद्द्रोहिमृत्यवे ।
श्रेयसेसर्वभूतानामाविर्भावोऽस्तिसत्पतेः ।६४।
स वासुदेवः प्रकृतौ पुंसि कार्येषु चैतयोः ।
अन्वितश्च पृथक् चाऽऽस्ते सर्वाधीशः स्वधामनि ।६५।
वयाप्य स्वांशैरिमाँल्लोकान्यथाग्निवरुणादयः ।
स्वस्थ्यासते स्वस्वलोके तथैव भगवान्मुने ! ।६६।
सर्गादिष्वपिसच्चिदानन्दः शुद्ध एकश्च निर्गुणः ।
यथाऽऽसीत्ताद्दृगेवासावन्वितोऽप्यस्ति निर्मलः ।६७।
वायुतेजोजलक्ष्मासु तत्तत्कार्येषु खं यथा ।
अन्वीदाऽप्यस्तिनिर्लेपस्तथा पूर्वंतथैवहि ।६८।
सर्वपाश्यो नियन्ता च व्यापकश्च प्रकीर्तितः ।
आत्यन्तिकेलयेऽथैपराभवत्यैवयथापुरा ।६९।

भगवान के जो अवतार हो चुके हैं या भविष्य में होंगे अथवा इस समय में हैं वे सब बड़े २ संख्या के करने वाले मनीषियों के द्वारा भी गणना में नहीं लाये जा सकते हैं।६३। साधु पुरुषों के स्वामी भग-

वान के प्राविर्भाव सद्धर्म और साधु पुरुषों की सुरक्षा करने के लिए और इनसे द्रोह करने वाले दुष्टों के संहार करने के लिए एवं समस्त भूतों के कल्याण का सम्पादन करने के लिये ही हुआ करता है ।६४। यह प्रभु अपने धाम में सबका आधीश प्रकृति मे, पुरुष में और इन दोनों के कार्यों मे अन्वित है और इन दोनों से पृथक् भी हैं ।६५। हे मुने ! अपने अंशों से इन समस्त लोकों मे व्याप्त होकर जैसे अग्नि और वरुण प्रभृति देवगण अपने-अपने लोक में कल्याण पूर्वक हैं वैसे ही यह भगवान भी हैं ।६६ इस विश्व की रचना के पूर्व सच्चिदानन्द शुद्ध, एक और निर्गुण जिस प्रकार से ये वैसे ही अन्वित होने पर भी निर्मल ही उनका स्वरूप है ।६७। जिस तरह से वायु और तेज के चिन्ह वालों में और उनके उन उन कार्यों मे आकाश है। वह अन्वित भी है तथा पूर्व की ही भाँति निर्लेप भी होता है ।६८। यह भगवान सबके उपासना करने योग्य हैं, सबके नियन्ता हैं और सबों व्यापक भी कहे गए हैं और जब आत्यन्तिक प्रलय होता है उस समय मे भी यह जैसे पहिले थे वैसे ही रहा करते हैं ।६९।

वैराजः पुरुषो योऽत्र प्रोक्तोऽसावीश्वराभिधः।
ज्ञेयः स्वतन्त्र सर्वज्ञोवश्यमायश्चनारद: ।७०।
एतस्यैव स्वरूपाणिब्रह्मविष्णुशिवाख्यः ।
रजआदिगुणोपेताः स्वगुणानुगुणक्रियाः ।७१।
ब्रह्मणो ये समुत्पन्ना देवासुरनरादयः ।
ते जीवसञ्ज्ञा ह्यल्पज्ञाः परतन्त्रा भवन्ति च ।७२।
जीवानामीश्वराणां च तनवः क्षेत्रसञ्ज्ञकाः ।
महदादितत्वमय्यः क्षेत्रज्ञास्यास्तुतद्विदः ।७३।
क्षेत्राणां च क्षेत्रविदां प्रधानपुरुषस्य च ।
मायायाः कालशक्तेश्चाऽक्षरस्यचपरात्मनः ।
पृथक्पृथग्लक्षणैर्यज्ज्ञानं तज्ज्ञानमुच्यते ।७४।

यहाँ पर जो सम्राज ईश्वर नाम वाला पुरुष कहा गया है, हे नारद ! वह जानने के योग्य, स्वतन्त्र सर्वज्ञ और बहुरूमाय है।७०। उस एक ही के ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये तीन स्वरूप हुआ करते हैं। इनके सत्त्व, रज और तम ये गुण हैं जिनसे वे युक्त होते हैं और उन गुणों के अनुसार उनकी क्रियायें भी हुआ करती हैं।७१। ब्रह्मा से जो देव, असुर आदि मनुष्य आदि उत्पन्न हुए थे वे सब जीव संज्ञा वाले प्राणी हैं—ये अल्पज्ञ हैं, पराधीन हैं ७२। जीवों के और ईश्वरों के जो शरीर हैं वे क्षेत्र संज्ञा वाले हैं ये महत् आदि तत्त्वों से परिपूर्ण हैं और उनके ज्ञाता लोग क्षेत्रज्ञ कहे जाते हैं।७३। क्षेत्रों का, क्षेत्रों के ज्ञाताओं का, प्रधान का और पुरुष का, माया का, काल की शक्ति का, अक्षर परमात्मा का पृथक् २ लक्षणों के द्वारा जो ज्ञान है उसी को ज्ञान कहा जाता है।७४।

३३—वैराग्यभक्तिनिरूपण

वैराग्यस्याऽथतेवच्मिलक्षणमुनिसत्तम ! ।
क्षयिष्णुवस्तुष्वरुचिः सर्वथेतितदीरितम् ।१।
आरभ्य मायापुरुषात्सर्वा ह्याकृतयस्तु याः ।
कालशक्त्याभगवतोनाश्यन्तेनाश्चतद्वशाः ।२।
प्रत्यक्षेणाऽनुमानेनशाब्देनचविवेकिभिः ।
असत्यताकृतीनांचनिश्चितासत्यतात्मनाम् ।३।
नित्येन प्रलयेनैष कालो नैमित्तिकेन च ।
प्राकृतिकेन रूपेण चात्यात्यन्तिकेन च ।४।
देहिदेहा इमे नित्यं क्षीयन्ते परिणामिनाः ।
क्रमेण दृश्यते यत्र बाल्यतारुण्यवार्द्धकम् ।५।
सूक्ष्मत्वान्नक्ष्यते तत्तु गतिर्दीपार्चिषो यथा ।
फलवृद्धिर्वाऽनुपदं जायमाना द्रुमेयथा ।६।

तस्यांतस्यामवस्थायां दुःखं चमहदीक्ष्यते ।
जाग्रदादिष्ववस्थासुदुः खचैव पुनः पुनः ।७।

भगवान श्री नारायण ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं आपको वैराग्य का लक्षण बतलाता हूं जो क्षय होने के स्वभाव वाली वस्तुयें हैं उन सबमे रुचि का न होना ही वैराग्य कहा गया है। माया पुरुष से आरम्भ करके जो भी समस्त आकृतियाँ हैं वे सब भगवान की काल-शक्ति के द्वारा विनाश कर दी जाया करती हैं क्योंकि वे सब उनके वश गत होती हैं ।१।२। प्रत्यक्ष के द्वारा, अनुमान से और शाब्द प्रमाण से विवेकियों के द्वारा असत्य स्वरूप वाली आकृतियों की असत्यता निश्चित करली गई है। यह काल नित्य प्रलय, नैमित्तिक प्रलय, प्राकृतिक रूप से और आत्यान्तिक के द्वारा चरण किया करता है।३।४। देहधारियों के ये देह परिणामी हैं और नित्य ही क्षीण हुआ करते हैं जिनमें क्रम से बाल्य (शैशवावस्था), तरुणता और वार्धक्य दिखलाई दिया करता है। दीप की अर्चि (लौ) की गति के समान वह सूक्ष्म होने के कारण दिखाई नहीं देता है। अथवा जिस प्रकार से वृक्ष में फलों की उत्पन्न होने वाली अनुपद वृद्धि होती है। उस-उस अवस्था में महान दुःख दिखलाई दिया करता है। जाग्रत् आदि जो तीन अवस्थायें हैं उनमें भी बारम्बार दुःख ही होता है।५।६।७।

दुःखमाध्यात्मिकं भूरि दृश्यते चाऽऽधिभौतिकम् ।
आधिदैविकमप्यत्र दुःखमेवाऽस्ति देहिनाम् ।८।
हाहा ममार मत्पुत्रो हा पत्नी म्रियते मम ।
तातं मेऽभक्षयद्व्याघ्रो दष्टा सर्पेणमेवधूः ।९।
महासौधोऽग्निना दग्धो हाहा सोपस्करोऽद्य मे ।
स्वकुटुम्बं कथं पोक्ष्ये नाऽवर्षत्पाकशासनः ।१०।
सस्यैः समृद्धं मत्क्षेत्रं हाहा दग्धंहिमाग्निना ।
ह्रियन्तेतस्करैर्गावः सर्वस्वमभलुण्ठितम् ।११।

नृपेण दण्डितोऽत्यर्थं शत्रुणा हाऽतिताडितः ।
किं करोमि क्व कं ब्रूयां माता व्यभिचारिणी ।।१२।
विषं पास्यामि हाहाऽद्य मत्पत्नी शत्रुराकृषत् ।
हा स्वसा मे हृता म्लेच्छैर्हाहाऽरिः प्राप मर्मभित् ।।१३।
म्रिये ज्वरालिव्यथया यमदूता इमे हाहा ।
इत्थं रोरूयमाणा हि दृश्यन्ते सर्वतो जनाः ।।१४।

देहधारियो को प्रत्यधिक प्राध्यात्मिक दुःख दिखाई देता है-प्राधिभौतिक दुःख भी होता है और प्राधिदैविक दुःख है। यहाँ पर इस शरीर के धारण करने की दशा में दुःख ही दुःख है।८। हाय-हाय मेरा पुत्र मर गया है, मेरी पत्नी मर रही है, मेरे पिता को व्याघ्र ने खा लिया है और मेरी वधू को सर्प ने काट लिया है।६। मेरा भवन आज अग्नि से दग्ध हो गया है जो सभी उपभोग की वस्तुओ से भरा पूरा था। अब मैं अपने कुटुम्ब का कैसे पोषण करूँगा। इन्द्रदेव ने भी वर्षा नही की है।६।१०। हिम को अग्नि से अर्थात् पाले से मेरा अच्छी फसल से भरा पूरा क्षेत्र भी हा हाय! नष्ट हो गया है अर्थात् मेरा खड़ी फसल को पाला मारा गया है। लुटेरो के द्वारा मेरी गाएँ भी चुरा ली गई हैं। मेरा सभी कुछ लुट गया है, राजा ने भी मुझे बहुत अधिक दण्डित किया है और मेरे शत्रु ने भी मुझे अधिक ताड़ित कर डाला है। मैं अब क्या करूँ, किससे अपनी व्यथा को सुनाऊँ। हाय! मेरी माता भी व्यभिचारिणी हो गई है।।११।१२। हाय-हाय! मैं आज विष का पान कर लूँगा, शत्रु ने मेरी पत्नी को बलात् कर्षण करके छीन लिया है। म्लेच्छों ने मेरी बहिन को भी अपहृत कर लिया है, हाय! मर्म से भेदन करने वाले शत्रु मेरे पास प्राप्त हो गए हैं।।१३। मैं ज्वरा की व्यथा से मर रहा हूँ और यहाँ पर ये यम के दूत आ गये हैं— इस भाँति से सभी ओर सांसारिक मनुष्य अपनी-अपनी

विभिन्न प्रकार की व्यथाओं से प्रपीडित होकर रुदन करते हुए दिखलाई दिया करते हैं। ४।

अवस्थाना शरीरस्यजन्ममृत्यू प्रतिक्षणम् ।
कालेनप्राप्नुवद्भि स्वप्रारब्धं दुः खमश्यते ।१५।
प्रारब्धान्ते मृत्युदु. खंभवत्यप्रतिमं हि तत् ।
मृत्वाऽपि नमहद्दुखंप्राप्यतेयमयातना ।१६।
ततो जरायुजोद्भिज्जस्वेदजाण्डजयोनिषु ।
भूत्वाभूत्वा यथाकर्मंम्रियतेदु.खितैः पुनः ।१७।
नित्य प्रलय एवं ते कीर्त्तितः सूक्ष्मया दृशा ।
स ज्ञेयोऽय मुने ! वच्मि लयं नैमित्तिकाभिधम् ।१८।
निमित्तीकृत्य रजनीं भवेद्विश्वसृजस्तु यः ।
नैमित्तिक स कथितोलयोदैनंदिनश्चसः ।१९।
चतुर्युगाणां साहस्रं दिनविश्वसृजो मुने ! ।
निशा चतावतीतस्यतद्द्वयंकल्पउच्यते ।२०।
एकैकस्मिन्दिने तस्य चतुर्दश चतुर्दश ।
भवन्ति मनवो ब्रह्मन्धर्मसेत्वभिरक्षका ।२१।

शरीर की अवस्थाओं के जन्म और मृत्यु प्रतिक्षण काल के द्वारा प्राप्त करने वाले लोग उस तरह से अपने प्रारब्ध दुःख का भोग किया करते हैं।१५। प्रारब्ध कर्म के भोग करने के अन्त मे इस ससार मे मृत्यु का भी अनुपम दुःख होता है। मर कर भी दुःख से छुटकारा नहीं होता है फिर भी यमलोक मे यम की नारकीय यातनाओं के भोगने का महान् दुःख होता है।१६। इसके भी पश्चात् फिर जरायुज, उद्भिज, स्वेदज और अण्डज इन चार प्रकार की योनियों में अपने २ कर्मों के अनुसार जन्म ग्रहण कर-करके बारम्बार दुःखित होते हुए मृत्यु प्राप्त की जाया करती है।१७। इस प्रकार मे यह सूक्ष्म दृष्टि से नित्य प्रलय कहा गया है। हे मुने ! इस प्रलय का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये। अब मैं

उस नैमित्तिक प्रलय के विषय में तुमको बतलाता हूं ।१८। विश्व के सृजन करने वाले की रजनी को निमित्त बनाकर जो होता है वही नैमित्तिक लय कहा गया है जो दिनों दिन हुआ करता है ।१६। हे मुने ! चारों सत्ययुग, त्रेता, द्वापर, कलियुग, युगों को जब एक सहस्र संख्या पूर्ण हो जाती है तभी विश्व के स्रष्टा ब्रह्मा का एक दिन होता है । उसकी निशा भी उतनी ही होती है । उस दो का एक कल्प होता है । ऐसा कहा जाता है ।२०। उसके एक-एक दिन में हे ब्रह्मन् ! धर्म सेतु के धर्मि रक्षक चौदह-चौदह मनुगण हुआ करते हैं ।२१।

आद्यः स्वायम्भुवस्तत्रमनुः स्वारोचिषस्ततः ।
उत्तमस्तामसश्चाऽथरैवतश्चाक्षुपस्ततः ।२२।
श्राद्धदेवश्च सावर्णिर्भौत्यो रौच्यस्ततः परम् ।
ब्रह्मसावर्णिनामा च रुद्रसावर्णिरेव च ।२३।
मेरुसावर्णिसञ्ज्ञोऽथदक्षसावर्णिरन्तिमः ।
चतुर्दशैते मनवः प्रोक्ता ब्रह्मैकवासरे ।२४।
एकैकस्य मनोः कालो युगानांचैकसप्ततिः ।
दिव्यैर्द्वादशसाहस्रैर्युगकालश्चवत्सरैः ।२५।
चतुर्दशस्यैव मनोरन्तरेऽन्तमुपेयुषि ।
सायंसन्ध्या विश्वसृजो जायते मुनिसत्तम ! ।२६।
दिनावसाने वैराजः शक्तोराकर्पति स्थितेः ।
वैराजात्मा तदा रुद्रस्त्रिलोकींहर्तुमीहते ।२७।
आदौभवत्यनावृष्टिरत्युग्राशतवार्षिकी ।
तदाऽल्पसारसत्त्वानि क्षीयन्ते सर्वशोभुवि ।२८।

उन मनुओं में सबसे आदि काल में होने वाला मनु स्वायम्भुव मनु था । इसके पश्चात् स्वारोचिष मनु हुए थे । उनके बाद में उत्तम नामक मनु हुए, फिर तामस, रैवत, चाक्षुप, श्राद्धदेव, सावर्णि, भौत्य, रौच्य, ब्रह्म सावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरु सावर्णि और अन्तिम दक्ष

सावर्णि हुए थे। ये चौदह मनु ब्रह्माजी के एक दिन के समय में होकर अपना काल पूरा कर दिया करते हैं।२२।२३।२४। एक-एक मनु का उपभोग काल चारों युगों की इकहत्तर चौकड़ी का होता है और दिव्य बारह हजार वर्ष एक युग का होता है। हे मुनिश्रेष्ठ! चौदह मनुओं के आहार मे अन्त को प्राप्त होने पर विश्व के स्रष्टा की सायं सन्ध्या हुआ करती है। दिवस के अवसान (आखीर) होने पर वैराज स्थिति की शक्तियों का आकर्षण किया करते हैं। उसी समय में वैराजात्मा भगवान रुद्र इस त्रिलोकी का हरण करने की इच्छा किया करते हैं। सब के आदि मे अनावृष्टि हुआ करती है अर्थात् सृष्टि के संहार काल का समय उपस्थित जब होता है तो सर्वप्रथम वृष्टि का अभाव होता है। वह अनावृष्टि भी ऐसी अत्यन्त उग्र होती है जो सौ वर्ष तक बराबर रहा करती है। उस समय मे इस भूमण्डल मे अल्पल्प सार वाले सत्व हैं वे क्षीण हो जाया करते हैं।२२–२८।

साम्वर्तीकस्य चाऽर्कस्य रश्मयोऽयुल्बणा रसम्।
आपातालात्पिबन्त्याशु धरण्यां सर्वमेव हि।२६।
सारसं चैव नादेयं सामुद्रं चाऽम्बु सर्वशः।
शोषयित्वाऽखिलांल्लोकान्सोऽर्को नयति सङ्क्षयम्।३०।
ततो भवतिनिः स्नेहा नष्टस्थावरजङ्गमा।
कूर्मपृष्ठोपमा भूमिः शुष्कासंकुचिताभृशम्।३१।
कालाग्निरुद्रः शेषस्य मुखादुत्पद्यते ततः।
अधोलोकान्सप्तभूमिभुवं स्वश्चदहत्यसौ।३२।
निर्दग्धलोकदशको ज्वालावर्तीभयङ्करः।
उद्भासितमहर्लोकः कालाग्निः परिवर्त्तते।३३।
गताधिकारास्त्रिदशाभुवः स्वर्गनिवासिनः।
महर्लोकाज्जनंयान्तिवह्निज्वालाभृशार्दिताः।३४।

निवृत्तिधर्मा ऋषयः प्राप्ताः सिद्धदशां तु ये ।
भूतलात्तेपितत्र्यं वऋषिलोकं प्रयान्तिच ।
उत्तिष्ठन्ति ततो घोरो व्योम्नि साम्वर्त्तका घनाः ।३५।

फिर साम्वर्त्तक सूर्य की किरणें जोकि अत्यन्त उल्बण (तीक्ष्ण) होती हैं वे शीघ्र ही पाताल तक के सब रस का क्षणों में पान कर जाया करती हैं ।२६। सूर्य देव ऐसे प्रखर हो जाते हैं कि समस्त नदियों की सरसता को और समुद्र के सम्पूर्ण जल को शोषित करके समस्त लोकों का संक्षय कर दिया करते हैं ।३०। इसके अनन्तर यह भूमि स्नेह रहित हो जाया करती है जिसके कारण सभी स्थावरों और जंगमों का पूर्णतया विनाश हो जाता है । फिर यह पृथिवी कच्छप की पीठ के सदृश शुष्क सेवाल जैसी दिखाई दिया करती है । यह एक दम शुष्क और अत्यन्त सङ्कुचित हो जाया करती है । उस समय में जङ्गमों की तो बात ही क्या है पहाड़, वृक्ष और नदियाँ यहाँ पर कुछ भी दिखाई नहीं देता है ।३१। तब शेष के मुख से कालाग्नि रुद्र उत्पन्न होते हैं । यह नीचे के लोकों को जो सात भूमि वाले हैं और भू-भुव तथा स्व सबको दाव कर देते हैं ।३२। इन लोकों को निर्दग्ध करके ज्वालाओं के आवर्त्त से अत्यन्त भयानक कालाग्नि महर्लोक को उद्भासित कर देने वाला चारों ओर वर्त्तमान होता है । अधिकार छिन जाने वाले देवगण भुव और स्वर्ग के निवास करने वाले वह्नि की ज्वाला से अत्यधिक अर्दित होते हुए महर्लोक से जन को जाते हैं ।३३।३४। निवृत्ति धर्म वाले ऋषि-गण जो सिद्ध दशा को प्राप्त हो गये हैं वे भी उस समय में इस भूतल से ऋषिलोक को चले जाते हैं । इसके पश्चात् फिर व्योम में परम घोर साम्वर्त्तक मेघ उठते हैं ।३५।

महागजकुलप्रख्यास्तडित्वन्तोऽतिनादिनः ।३६।
धूम्रवर्णाः पीतवर्णाः केचित्कुमुदसंनिभाः ।
लाक्षारसनिभाः केचिच्चापपत्रनिभास्तथा ।३७।

शमयित्वा महावह्निंशतंवर्षाण्यहर्निशम् ।
वर्षमाणाः स्थूलधाराः स्तनन्तस्ते घनाघनाः ।
ब्रह्माण्डस्यान्तरालञ्च पूरयन्ति ध्रुवावधि ।३८।
एकार्णवजले तस्मिन्वैराजपुरुषः स तु ।
अनिरुद्धात्मकः शेते नागेन्द्रशयने प्रभुः ।४०।
तदा देवाश्च ऋषयो रजः सत्वतमोधराः ।
ये ते सह विरिञ्चेनस्वकीयगुणकर्षिताः ।
प्रविश्य तस्य जठरे शेरते दीर्घनिद्रया ।४०।
ये तु ब्रह्मात्मैवप्रभावा वशीकृतगुणत्रयाः ।
निवृत्तेनैव धर्मेण वासुदेवमुपासते ।४१।
महर्रादिषु लोकेषु ते चतुर्षु कृतालयाः ।
त वैराजं संस्तुवन्तोनिवसन्तियथासुखम् ।४२।
नारायणः स भगवान्स्वरूपं परमात्मनः ।
चिन्तयन्वासुदेवाख्य शेते वै योगनिद्रया ।४३।

वे मेघ महान गजों के कुम्भ के समान दिखाई देने वाले, बिजली से युक्त और अत्यन्त घोर गर्जन करने वाले होते हैं ।३६। उन मेघों में कुछ तो धूम्र वर्ण वाले हैं, कुछ पीत वर्ण से युक्त हैं, कुछ कुमुद के सदृश हैं—कुछ लाख के रस के तुल्य हैं और कुछ ताम्रपत्र के सदृश है।३७। अहर्निश परम घोर वर्ष करके महान उग्र जो वह्नि थी उसका शमन उन्होंने करके वे निरन्तर घने होते हुए गर्जना करके स्थूल जल की धाराओं से वर्षमाण होते हैं और ब्रह्माण्ड के अन्तराल को ध्रुव की अवधि पर्यन्त पूरित कर दिया करते हैं ।३८। उस समय में सर्वत्र जलमय हो जाता है। उस एकार्णव जल में वह वैराज पुरुष अनिरुद्धात्मक होकर प्रभु शेष की शय्या पर शयन किया करते हैं।३६। उस समय में देवता और ऋषिवृन्द रजः सत्व और तप के वश वर्ती होकर जो भी है वे सब स्वकी गुणत्रय से कर्षित होते हुए विरिञ्चि के साथ

होकर उसके उदर प्रवेश कर दीर्घ निद्रा से शयन किया करते हैं ।४०। जो ब्रह्म के साथ आत्मैक्य भाव वाले हैं और जिन्होंने तीनों गुणों को वश में कर लिया है वे निवृत्त धर्म से ही भगवान वासुदेव की उपासना किया करते हैं ।४१। महः आदि चारों लोकों में वे अपना आलय बनाकर उसी वैराज प्रभु का स्तवन करते हुए सुख पूर्वक वहाँ पर निवास किया करते हैं ।४२। वह भगवान नारायण परमात्मा के वासुदेव नाम वाले स्वरूप का चिन्तन करते हुए योग निद्रा से शयन किया करते हैं ।४३।

निशान्ते ब्रह्मणा साकं सर्वे तेतस्य जाठराः ।
उत्पद्यन्तेयथापूर्वंयथाकर्माधिकारिणः ।४४।
एवं नैमित्तिको नाम त्रिलोकीक्षयलक्षणः ।
प्रलय कथितस्तुभ्यंप्राकृतंकीर्त्तयाम्यथ ।४५।
य एष कल्प कथितस्तादृशानाशतत्रयम् ।
षष्ट्याधिकश्चयः कालोवैधसः सतुवत्सरः ।४६।
पञ्चाशता तैः परार्द्धा ब्रह्मायुस्यद्द्वयंमतम् ।
परास्यकाले सम्पूर्णे महाभवतिसङ्क्षयः ।४७।
सहारस्द्ररूपेण सहृत्य स्व विराड्वपुः ।
स्वपर निर्गुणरूपवैराजोयातुमिच्छति ।४८।
तदा भवत्यनावृष्टिः पूर्ववच्छतवार्षिकी ।
साङ्कर्षणश्च कालाग्निर्दहत्यण्डमशेषतः ।४९।

उस दिव्य निशा का जिस समय में अन्त हो जाता है तो उस समय में वे सब जो उसके जठर में प्रविष्ट थे ब्रह्मा के ही साथ में पूर्व की भांति ही उत्पन्न हो जाते हैं और जैसे भी उनके पूर्व सञ्चित कर्म होते हैं उसी के अनुसार वे अधिकार प्राप्त करने वाले हुआ करते हैं । ।४४। इस प्रकार से इस त्रिलोकी के क्षय को करने वाला नैमित्तिक लय होता है । मैंने तुमको यह प्रलय का वर्णन का वर्णन करके बतला

दिया है अब प्राकृत प्रलय बतलाता हूँ ।४५। जो यह कल्प बताया गया है उसी प्रकार के तीन सौ साठ का जो काल होता है वह ब्रह्मा का एक वर्ष हुआ करता है इसको दिव्य वर्ष कहा जाता है। उनसे पश्चात् परार्द्ध जो वर्ष होते हैं वह ही ब्रह्मा की आयु होती है। यह दो माने गये हैं। जो पर नामक काल सम्पूर्ण हो जाता है तो उस समय में महान सक्षय हुआ करता है। इसी को महा प्रलय कहा जाता है। सहार रुद्र रूप से अपने विराट वपु का संहरण कर वैराज अपने दूसरे निर्गुण स्वरूप को प्राप्त करने की इच्छा किया करते हैं।४६—४८। उस समय में पूर्व की भाँति ही सौ वर्ष तक रहने वाली अनावृष्टि (वर्षा का अभाव) होती है। और साङ्कर्षण कालाग्नि सम्पूर्ण अण्ड को दग्ध कर दिया करता है।४९।

सांवर्त्तकास्ततो मेघा वर्षन्त्यतिभयानका: ।
शतवर्षाणधाराभिर्मुसलाकृतिभिर्मुने ।५०।
महादादेर्विकारस्य विशेषान्तस्य सङ्क्षय: ।
सर्वस्यापि भवत्येव वासुदेवेच्छयातत: ।५१।
आपो ग्रसन्ति वै पूर्वं भूमेर्गन्धात्मकं गुणम् ।
आत्तगन्धाततोभूमि: प्रलयत्वाय प्रकल्पते ।५२।
ग्रसतेऽम्बु गुणं तेजो रसंतल्लीयते तत: ।
रूपं तेजो गुणं वायुर्ग्रसते लीयतेऽथ तत् ।५३।
वायोरपि गुणं स्पर्शमाकाशो ग्रसते तत: ।
प्रशाम्यति तदा वायु: खन्तु तिष्ठत्यनावृतम् ।५४।
भूतादिस्तद्गुणं शब्दंग्रसतेलीयतेचखम् ।
इन्द्रियाणिविलीयन्तेतैजसाहङ्कृतौतत: ।५५।
अहङ्कारे विलीयन्तेसात्त्विके देवता मन: ।
यद्यद्यस्मात्समुत्पन्नं तत्तत्तस्मिन्विलीयते ।५६।

अहङ्कारो महत्तत्वे त्रिविधोऽपि प्रलीयते ।
तत्प्रधाने त तत्पुंसि स मूलप्रकृतौ ततः ।५७।

इसके अनन्तर अत्यन्त भयानक साम्वर्त्तक मेघ घोर वर्षा किया करते हैं। हे मुनिवर! ये मेघ सौ वर्ष तक निरन्तर मुसल के आकार जैसी मोटी जल की धाराओं से वर्षा किया करते हैं ।५०। इसके उपरान्त महत् आदि जो विकार होते हैं वहाँ से लेकर विशेष के अन्त पर्यन्त सम्पूर्ण का भगवान वासुदेव की इच्छा से सक्षय हो जाता है। ।५१। सर्वप्रथम जल भूमि के गन्ध स्वरूप वाले गुण का ग्रसन किया करते हैं। फिर वह गन्ध रहित पृथ्वी प्रलय के लिए ही हो जाया करती है ।५२। फिर तेज जल का गुण जो रस है उसे ग्रस लेता है और रस विहीन जलहीन हो जाता है। वायु तेज के गुण रूप को ग्रस लेता है और वह वायु भी गुण हीन होकर लय को प्राप्त हो जाया करता है। वायु का गुण स्पर्श है उसको आकाश ग्रस लेता है। उसी समत में वायु प्रशान्त हो जाया करता है और आकाश अनावृत होकर स्थित रहता है। ।५३।५४। उस आकाश के गुण शब्द को भूतादि ग्रस लेते हैं और आकाश फिर लय को प्राप्त हो जाता है। इन्द्रियगण तेज के द्वारा अहङ्कृति मे विलीन हो जाया करती हैं ।५५। सात्विक अहङ्कार मे देवता मन विलीन हो जाया करते हैं। जो-जो जिस-जिस से समुत्पन्न हुआ है वह-वह उसी-उसी मे विलीन हो जाया करता है ।५६। तीन प्रकार का अहङ्कार महत्तत्व में प्रलीन हो जाता है। वह महत्तत्व प्रधान में और प्रधान मूल प्रकृति पुरुष में लीन हो जाता है ।५७।

एष प्राकृतिको नाम प्रलयः परिगीयते ।
तिरोभवन्ति जीवेशायनऽव्यक्तेहरीच्छया ।५८।
यदा च मायापुरुषौ कालोऽत्यक्षरतेजसि ।
तदिच्छाया तिरोधत्ति स एवैको वर्तते प्रभुः ।
तदा स प्रलयो ज्ञेयो नारदात्यन्तिकाभिधः ।५९।

इत्थंप्रभोः कालशक्त्यालयैरेतैश्चतुर्विधैः ।
असद्वद्दृष्ट्वाऽखिलजन्याऽरुचिर्वैराग्यमुच्यते ।६०।
वासुदेवेतरान्देवान्कालमायावशीकृतान् ।
विदित्वा तेषु च प्रीतिं हित्वा तस्यैव नित्यदा ।
गाढस्नेहेन या सेवा सा भक्तिरिति गीयते ।६१।
श्रवणं कीर्तनं तस्यस्मृतिश्चरणसेवनम् ।
पूजाप्रणामौदास्यञ्च सख्यचात्मनिवेदनम् ।६२।
इत्येतन्नवभिर्भावैयः सेवेत तमादरात् ।
अनन्यया धिषणया स हि भक्त इतीर्यते ।६३।

यही प्राकृतिक प्रलय के नाम से गाया या कहा जाया करता है। जिसमें अव्यक्त में हरि की इच्छा से ये जीवेश तिरोभूत होते हैं। ।५८। जिस समय में माया और पुरुष ये दोनों और काल अक्षर तेज में इसकी इच्छा से निरोभूत हो जाया करते हैं तो उस समय में केवल एक प्रभु ही वर्त्तमान रहा करते हैं। हे नारद ! उस समय में आत्यन्तिक नाम वाला यह प्रलय जान लेना चाहिये अर्थात् यही महा प्रलय कहा जाता है जिसमें कहीं भी कुछ भी शेष नहीं रहा करता है एकमात्र प्रभु ही वर्त्तमान रहा करते हैं। ५६। इस प्रकार से प्रभु की काल शक्ति के द्वारा इन चारों प्रकार के लयों में इस सब सृष्टि को असत् समझकर उनमें जो अरुचि होती है वही वैराग्य कहा जाया करता है। ।६०। वासुदेव भगवान से इतर जो भी समस्त देवगण हैं वे सभी काल की माया के वशीकृत हैं—यह भली-भाँति समझकर और उन देवताओं में प्रीति का परित्याग करके उस भगवान वासुदेव की जो नित्य प्रति अत्यन्त गाढ स्नेह से सेवा की जाया करती है वही भक्ति कही जाया करती है ॥६१॥ भगवान के गुण, नाम आदि का श्रवण करना, भगवान के गुणों और चरित्रों का कीर्तन करना, भगवान के ही नाम और गुणों का स्मरण करना, भगवान के नित्य नियम से चरणों की सेवा

करना, भगवान की प्रतिमा की पूजा अथवा ध्यानावस्थित होकर मानसिक अर्चना करना, भगवान को प्रणाम करना, भगवान का दास अपने आपको समझना, भगवान की तेज एवं ज्योति का ही अपने आपको एक छोटा अंश समझकर उनके साथ सखाभाव का सम्बोधन करना, भगवान के दोनों चरणों की सेवा में अपने आपको सर्वतोभाव से समर्पित कर देना, ये नौ प्रकार की भक्ति का एक देवता या स्वरूप है जो भी जिससे बन पड़े या सभी प्रकारों की भक्ति करने के लिए अनन्य मन-भाव से युक्त रहने वाला पुरुष ही भगवान का भक्त कहा जाया करता है ।६२।६३।

त्रिभिः स्वधर्मप्रमुखैर्युक्ता भक्तिर्यदि मुने ! ।
धर्म एकान्तिक इति प्रोक्तो भागवतलक्षणः ।६४।
साक्षाद्भगवतः सङ्गात्तद्भक्तानाञ्च देहिनाम् ।
धर्मो ह्येकान्तिकः पुम्भिः प्राप्य तेनाऽन्यथा क्वचित् ।६५।
नैतादृशं परं किञ्चित्साधनं हि मुमुक्षताम् ।
निःश्रेयसकरं पुंसां सर्वाभिष्टवितारणम् ।६६।
एकान्तधर्मसिद्ध्यर्थं क्रियायोगपरो भवेत् ।
पुमान्स्यात्तु न नैष्कर्म्यं कर्मणा मुनिसत्तम ! ।६७।
एतन्मया वेदपुराणगुह्यं
तत्त्वं परं प्रोक्तमघौघनाशम् ।
एकाग्रया शुद्धधियावधार्यं
सच्छ्रद्धया चेतसि ते महर्षे ! ।६८।
न वासुदेवात्परमस्ति पावनं
न वासुदेवात्परमस्ति मङ्गलम् ।
न वासुदेवात्परमस्ति दैवतं
न वासुदेवात्परमस्ति वाञ्छितम् ।६९।

यन्नामधेय सकृदप्यबुद्ध्या
देहावसानेऽपि गृणाति योऽत्र ।
स पुल्कसोऽप्याशु भवप्रवाहा-
द्विमुच्यते त भज वासुदेवम् ।७०।

हे मुनिवर ! तीन प्रकार के अपने प्रमुख धर्मों से युक्त जो भगवान की यह भक्ति है वही एकान्तिक भागवत धर्म कहा गया है ।६४। भगवान के साक्षात् होने वाले परम सौभाग्य के सङ्ग से अथवा उपर्युक्त सब लक्षण सम्पन्न परम भक्तों के सङ्ग या सम्पर्क के ही पुरुषों के द्वारा इस प्रकार का एकान्तिक भागवत धर्म प्राप्त किया जाया करता है अन्यथा किसी भी प्रकार से कहीं भी यह नहीं मिला करता है ।६५। जो मुक्ति पाने के इच्छुक हैं उनको इस प्रकार का कोई अन्य साधन है ही नहीं जो परम निःश्रेयस के करने वाला और मानवों के सम्पूर्ण अनर्थों का विनाश करने वाला है ।६६। इस एकान्तिक धर्म की सिद्धि के लिये क्रिया योग में परायण होना चाहिये । हे मुनियों में परम श्रेष्ठ ! जिसके करने से मनुष्य कर्मों की निष्कर्मता का स्थिति प्राप्त हो जावे । भगवान की भक्ति के लिए जो क्रिया योग की परायणता है वही निष्काम कर्म की सिद्धि है ।६७। हे महर्षिवर ! यह जो मैंने आपके समक्ष में वर्णन किया है यह तत्त्व की बात है और वेदों तथा पुराणों में भी यह तत्त्व परम गोपनीय होता है । यह परम तत्त्व पापों के समुदाय का विनाश करने वाला होता है अर्थात् इस तत्त्व के ज्ञान प्राप्त करने पर सम्पूर्ण पाप मनुष्य के विनष्ट हो जाया करते हैं । इस तत्त्व को एकाग्र शुद्ध बुद्धि से और आप अपने चित्त में सद् श्रद्धा से धारण करिये ।६८। भगवान श्री वासुदेव से परम पावन (पवित्र बना देने वाला) अन्य कुछ भी नहीं है और भगवान वासुदेव से अधिक मङ्गल भी कुछ अन्य नहीं होता है । भगवान वासुदेव सर्वोपरि विराजमान देव हैं इनसे अन्य कोई श्रेष्ठतम देव नहीं है । भगवान वासुदेव ही सर्वभाव से अभीष्ट हुआ करते

है इनसे अन्य कुछ भी वाञ्छित नहीं होता है।६९। यहाँ संसार में अपने देह के त्याग करने के अवसर पर जो कोई भी एक बार भी जिस भगवान के परम शुभ नाम को अध बुद्धि से भी ग्रहण या स्मरण कर लेता है वह चाहे कितना भी पापी और निकृष्ट क्यों न हो शीघ्र ही इस संसार के बन्धन से विमुक्त हो जाया करता है अर्थात् बारम्बार जन्म-मरण ग्रहण करते हुए अनेक क्लेशों से छुटकारा पा जाता है। अतएव उन्हीं श्री वासुदेव प्रभु का भजन करो।७०।

३४—क्रियायोगाधिकारादिवर्णन

एकान्तधर्मविवृतिं श्रुत्वा भगवतोदिताम् ।
प्रहृष्टमानसो भूयस्तं पप्रच्छ स नारदः ।१।
धर्म एकान्तिकः स्वामिन्त्वया सम्यगुदीरितः ।
तमाश्रुत्य महानन्दो जातोऽस्ति मम मानसे ।२।
सिद्ध्यै तस्य भवताक्रियायोगोय उच्यते ।
तमहं वोद्धुमिच्छामि भगवंस्तवसम्मतम् ।३।
पूजाविधिः क्रियायोगो वासुदेवस्यकीर्त्यते ।
स तु वेदेपुराणेषु बहुधावास्तिवर्णितः ।४।
भक्तानां रुचिवैचित्र्यात्तथा बहुविधस्वनः ।
वासुदेवस्य मूर्तीना बहुधा सोऽस्ति विस्तृतः ।५।
साकल्येनोच्यमानस्य पारो नाऽऽप्यतिं तस्य वै ।
अतः सङ्क्षेपतस्तुभ्यं वच्मि भक्तिविवर्द्धनम् ।६।
ब्राह्मणाद्यैर्वर्णाश्चैवोक्तावर्णाश्चत्वारआश्रमाः ।
चातुर्वर्ण्यस्त्रियश्चैतेप्रोक्ताअत्राधिकारिणः ।७।

श्री स्कन्द ने कहा—भगवान (आपके) द्वारा वर्णित एकान्त धर्म की विवृति का श्रवण करके परम प्रसन्न मन वाले देवर्षि श्री नारदजी ने पुनः उनसे पूछा था।१। श्री नारद जी ने कहा—हे स्वा-

मित्र ! आपने जो एकान्तिक धर्म का भली-भाँति वर्णन किया है उसको सुनकर मुझे मन मे अत्यधिक प्रसन्नता हुई है ।२। आपने उसकी सिद्धि के लिए जो क्रिया योग कहा है हे भगवन ! उस आपके सम्मत क्रिया योग को मैं जानने की इच्छा रखता हूँ ।३। श्री नारायण भगवान ने कहा—भगवान वासुदेव की जो पूजन करने की विधि है वह ही क्रिया योग कीर्तित किया जाता है । वह अर्चन करने का विधान वेदो मे तथा ग्रन्थो मे जो कि तन्त्र शास्त्र के हैं बहुत से प्रकारो वाला बतलाया गया है ।४। भक्तो की रुचियो की विभिन्नता होने से तथा वासुदेव भगवान की प्रतिमाओ के बहुत से प्रकार होने से वह क्रिया योग अर्थात् अर्चन विधान भी अनेक प्रकार वाला विस्तृत बनाया गया है ।५। सम्पूर्ण रूप से कहे जाने का तो उसका कोई पार हो ही नहीं सकता है अर्थात् पूर्णतया उसका बतला देना तो सम्भव ही नहीं हो सकता है अतः एव मैं सक्षेप से ही उसके विषय मे आपको यहाँ पर उसे बतला देता हूँ जिसके करने से भक्ति का विशेष वर्धन होता है ।६। चारो तरह के वर्णों वाले पुरुष जो कि चारो आश्रमो का पालन किया करते हैं वह चातुर्वर्ण्य और स्त्रियाँ भी उसके करने के अधिकारी हुआ करते हैं जोकि वैष्णवी दीक्षा को प्राप्त कर लेते है ।७।

वेदतन्त्रपुराणोक्तैर्मन्त्रैर्मूलेन च द्विजाः ।
पूजेयुर्दीक्षितास्त्वपरा: सच्छूद्रा मूलमन्त्रतः ।
मूलमन्त्रस्तु विज्ञेयः श्रीकृष्णस्य षडक्षरः ।८।
स्वस्वधर्म पालयद्भिः सर्वरेतैर्यथाविधि ।
पूजनीयोवासुदेवोभक्त्यानिष्कपटान्तरैः ।९।
आदौ तु वैष्णवी दीक्षां गृह्णीयात्सद्गुरोः पुमान् ।
सदैकान्तिकधर्मस्थाद् ब्रह्मजातेर्यथाविधेः ।१०।
सम्यग्ज्ञानभक्तिभ्यांस्वधर्म रहितस्तु यः ।
सगुरुर्नैवकर्त्तव्यः स्त्रीहृतात्माचकर्हिचित् ।११।

प्राप्ता स्त्रैंगाद् गुरोर्दीक्षा ज्ञानं भक्तिश्च कर्हिचित् ।
फलेन्नैव यथाऽपत्यं युवतिः पण्डसङ्गिनी ।१२।
प्राप्याऽतः सद्गुरोर्दीक्षां तुलसीमालिका गले ।
ललाटादौ चोर्ध्वपुण्ड्रं गोपीचन्दनतो धरेत् ।१३।
विष्णुपूजारुचिर्भक्तो गुरोरेवागमोदितम् ।
पूजाविधिं सुविज्ञाय ततः पूजनमारभेत् ।१४।

वेद और तन्त्र तथा पुराणों में कहे गए मन्त्रों के द्वारा एवं मूल मन्त्र से दीक्षित द्विज और स्त्रियाँ सबको पूजा करनी चाहिये। जो सत् शूद्र हैं वे भी केवल मूल मन्त्र से पूजा करें। मूल मन्त्र तो श्रीकृष्ण भगवान का अष्ट अक्षरों वाला ही होना है ।८। अपने २ धर्मों का पालन करने वाले इन सबके द्वारा विधि-विधान के साथ निष्कपट हृदय वालों को भगवान वासुदेव का पूजन करना चाहिये ।९। जो पुरुष वासुदेव भगवान के अर्चन करने का इच्छुक हो उसे आदि में तो किसी योग्य गुरु से वैष्णवी दीक्षा का ग्रहण करना चाहिये जो गुरु सदा एकान्तिक धर्म में स्थित हो, ब्राह्मण जाति का हो और दया का निधि होना चाहिए ऐसे ही गुरु से वैष्णवी दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये ।१०। गुरु ज्ञान और भक्ति दोनों से सम्पन्न होना चाहिये। जो गुरु अपने धर्म से रहित हो और स्त्रियों के द्वारा जिसका हृदय अपहृत हो उसे कभी भी अपना गुरु कभी नहीं बनाना चाहिये अर्थात् स्त्रैण और अपने धर्म का पालन न करने वाले से दीक्षा ग्रहण न करे ।११। जो गुरु स्त्रैण हो अर्थात् स्त्रियों के साथ विलास क्रीड़ा करने वाला हो उससे प्राप्त की हुई दीक्षा ज्ञान और भक्ति का फल देने वाली कभी भी नहीं हुआ करती है जिस तरह से सन्तति और नपुंसक पुरुष के साथ संग करने वाली युवती फल शून्य होती है ।१२। अतएव किसी अच्छे सद्गुरु से दीक्षा प्राप्त करके गले में तुलसी की कण्ठी धारण करे और गोपी चन्दन से ललाट में आदि द्वादश शरीर के अंगों में ऊर्ध्व, पुण्ड्र (तिलक) धारण करे ।१३। भगवान विष्णु की पूजा में रुचि रखने वाले भक्त वैष्णव

को अपने गुरुदेव से ही आगम में वर्णित पूजा के विधान को अच्छी रीति से जानकर इसके अनन्तर भगवान के पूजन का आरम्भ करना चाहिये ।१४।

राज्यन्तयाम उत्थाय शक्तो ब्राह्मोक्षणेऽथवा ।
मुहूर्त्तार्द्धं हृदि ध्यायेत्केशवक्लेशनाशनम् ।१५।
कीर्त्तयित्वाऽभिधानस्य तदीयानाञ्च नाडिकाम् ।
ततः शौचविधिं कृत्वा दन्तधावनमाचरेत् ।१६।
अङ्गशुद्धिस्नानमादौ कृत्वा स्नायात्समन्त्रकम् ।
गृहीत्वाशुचिमृत्स्नादौन्कुर्यात्स्नानाङ्गतर्पणम् ।१७।
परिधायाऽशुके धौते उपविश्यासने शुचौ ।
कृत्वोर्द्ध्वपुण्ड्रं कुर्वीत सन्ध्यां होमं जपादि च ।१८।
वस्त्रचन्दनपुष्पादीनुपहारांस्ततोऽखिलान् ।
अहरेन्मामभ देराच्च शुचिस्पर्शविवर्जितान् ।१९।
देवेभ्यो वा पितृभ्यश्चाऽप्यन्येभ्यो न निवेदितान् ।
अनाघ्राताश्च मनुजैः केशकीटादिवर्जितान् ।२०।
संस्थाप्य तान्दक्षपार्श्वे पूजोपकरणानि च ।
उद्दर्त्य दीपमाज्येन कुर्यात्तैलेन वा ततः ।२१।
कौशेयोर्णे च वस्त्रादौ विकाष्ठे शुद्ध आसने ।
उपाविशेद्वासुदेवप्रतिमासन्निधौ ततः ।२२।

वैष्णव भक्त को रात्रि के अन्तिम प्रहर में उठकर ही अथवा ब्रह्म मुहूर्त्त में शयन से उठकर सर्व प्रथम आधे मुहूर्त तक (दो घड़ी के समय को मुहूर्त कहा गया है) क्लेशों के नाश करने वाले भगवान केशव का ध्यान करना चाहिये ।१५। भगवान के नामों का कीर्त्तन करके और तदीय अर्थात् विष्णु भक्तों की नाडि का कीर्त्तन करके फिर शौच विधि करके दन्त धावन करे ।१६। आदि में अङ्ग की शुद्धि के लिए स्नान करे और मन्त्रों के सहित ही स्नान करना चाहिये ।

फिर शुचि मृत्स्नादि का ग्रहण कर स्नान के अंग स्वरूप तर्पण को करना चाहिये ।१७। इसके उपरान्त धौत वस्त्रों को धारण करके शुचि आसन पर उपविष्ट होवे । ऊर्ध्व पुण्ड्र करके सन्ध्या की वन्दना, होम और जप आदि जो परमावश्यक नित्य कर्म है उसे सर्व प्रथम सम्वाहित करना चाहिए ।१८। इसके पश्चात् माँस-मदिरा आदि अशुचि पदार्थों के स्पर्श से रहित वस्त्र, चन्दन और पुष्प आदि पूजन के सम्पूर्ण उपचारों का आहरण करे ।।१६।। वे पूजन के उपचार ऐसे ही होने चाहिये जो अन्य देवताओं, पितृगणों को समर्पित न किये हुए हों । ये उपचार ऐसे ही होवें कि मनुष्यों के द्वारा भी आघ्रात न होवे तथा केश और कीट आदि से रहित होने चाहिये ।२०। इन समस्त पूजा के उपचारों अर्थात् सामग्रियों के अपने आसन के दाहिनी ओर ही रखना चाहिये । फिर सर्व-प्रथम घृत से अथवा घृताभाव में तैल से दीपक को भरकर जला देवे । बैठने का जो आसन हो वह भी परम शुद्ध होना चाहिए चाहे वह कौशेय (रेशमी) हो, ऊन का हो, वस्त्र आदि का हो अथवा विकाष्ठ हो उसी पर भगवान वासुदेव की प्रतिमा के समीप में उपविष्ट होना चाहिये ।२१।२२।

शैली धातुमया दार्वी लेख्या मणिमयी च वा ।
प्रतिमा स्यात्सिता रक्ता पीता कृष्णाऽथ वा मुने ! ।२३।
कृष्णस्य सा तु कर्तव्या द्विभुजावाचतुर्भुजा ।
मुरली धारयेत्तत्र द्विभुजायाः करद्वये ।२४।
अथवा दक्षहस्तेऽस्याश्चक्रं शङ्खं तथेतरे ।
पद्मं वा धारयेद्धो पाणावभयमुत्तरे ।२५।
द्वितीयायास्तु हस्तेषु दक्षिणाधः करक्रमात् ।
गदाब्जदरचक्राणिधारयेन्मुनिसत्तम ।२६।
द्विविधाया अपि हरेर्मूर्तेर्वामेश्रियं न्यसेत् ।
मुरलीधरवामे तु राधांरासेश्वरीन्यसेत् ।२७।

अप्येषा द्विविधा मूर्तिरखण्डा शुभलक्षणा ।
सर्वावयवसम्पन्ना भवेदर्च्चकसिद्धिदा ।२८।
लक्ष्मीस्तु द्विभुजाकार्यावासुदेवस्यसन्निधौ ।
दधतीपङ्कजहस्ते वस्त्रालङ्कारशोभना ।२९।
लक्ष्मीवद्राधिकाऽपि स्याद् द्विभुजा चारुहासिनी ।
पङ्कजं पुष्पमाला वा दधती पाणिपङ्कजे ।३०।

हे मुनिवर ! भगवान की प्रतिमा पाषाण की हो, धातुमयी हो, हो, काष्ठ की हो, लिखी हुई अर्थात् चित्रमयी हो, मणि (रत्न निर्मिता) मयी हो, इन पाँच छः प्रकार की रचित मूर्त्तियों में से किसी भी एक प्रकार की मूर्त्ति होनी चाहिए । उस प्रतिमा का वर्ण सफेद, रक्त, पीत अथवा कृष्ण किसी भी प्रकार का होवे ऐसी ही एक प्रकार की भगवन्मूर्त्ति होनी चाहिए जिसका अर्चन करना है ।२३।२४। भगवान श्रीकृष्ण की प्रतिमा या तो दो भुजाओं वाली बनवावे अथवा चार भुजाओं से युक्त बनवानी चाहिए । जो दो भुजाओं वाली प्रतिमा हो उसके दोनों हाथों में वंशी धारण करानी चाहिये । अथवा जो चार भुजाओं वाली प्रतिमा हो उस प्रतिमा को उसके दाहिने हाथ में चक्र और इतर (बाँये) हाथ में शङ्ख और उपर दोनों हाथों में पद्म एवं अभय धारण कराना चाहिये ।२५। दूसरी जो चतुर्भुजी मूर्त्ति है उसके हाथों में दक्षिण और अध पर क्रम से गदा कमल और चक्र हे मुनिश्रेष्ठ ? धारण कराने चाहिये ।२६। दोनों ही प्रकार की श्री हरि की मूर्त्ति के वाम भाग में लक्ष्मी देवी को विराजमान करे । जो मुरलीधर भगवान वासुदेव की मूर्त्ति के वाम भाग में रासेश्वरी श्री राधादेवी की मूर्त्ति का न्यास करना चाहिए ।२७। ये दोनों ही प्रकार की मूर्त्तियाँ अखण्ड और शुभ लक्षण वाली होनी चाहियें । ये मूर्त्तियाँ समस्त अवयवों से सम्पन्न और पूजा करने वाले व्यक्ति को सिद्धि प्रदान करने वाली होनी चाहियें । भगवान वासुदेव के समीप में लक्ष्मी देवी की जो प्रतिमा

विराजमान की जावे वह दो ही भुजाओं वाली होनी चाहिये । लक्ष्मी की प्रतिमा के हाथ में कमल होवे और वह परम दिव्य वस्त्र तथा अलङ्कारों से शोभित होनी चाहिए । लक्ष्मी देवी के ही सदृश श्री राधा देवी की मूर्ति भी दो भुजाओं वाली और सुन्दर हास से युक्त होवे जोकि कमल और पुष्पों की माला हस्त कमल में धारण करने वाली होवे ।२८—३०।

अचलाश्चचलाश्चेति द्विविधाप्रतिमाहरेः ।
तत्राऽऽद्यायां न कर्तव्यमावाहनविसर्जनम् ।३१।
तदङ्गदेवतानाञ्च कार्यमावाहनाद्यपि ।
नच दिङ्नियमोऽर्चायामस्याः स्थेयन्तु सम्मुखे ।३२।
शालग्रामेऽप्येवमेव कार्यं नावाहनादि च ।
अन्यत्र चलमूर्त्तौ तु कर्तव्यं तदर्चकैः ।३३।
तत्रापि दारवी लेख्यायां जलस्पर्शोऽनुलेपनम् ।
नच कार्यम्पूजकेनकर्तव्यपरिमार्जनम् ।३४।
उदङ्मुखः प्राङ मुखोवाचलायामग्रतोऽथवा ।
यथाशक्तियथालब्धोपचारैरर्चयेद्धरिम् ।३५।
श्रद्धानिरञ्जयभक्त्यामर्पितेनाम्बुनाऽपि सः ।
प्रीतस्तुष्यति विश्वात्मा किमुताऽशेषपूजया ।३६।
पुंसां श्रद्धादिहीनेन रत्नहेमाचलङ्क्रियाः ।
चतुर्विधं चाप्याद्यं दत्तं गृह्णातिनोमुदा ।३७।
तस्तादुद्भक्तिमता कार्यं पुंसा स्वश्रेयसे भुवे ।
श्रीकृष्णस्यार्चनं नित्यं सर्वाभीष्टासुदायिनः ।३८।

भगवान श्रीहरि की मूर्तियाँ दो प्रकार की हुआ करती हैं । कुछ चला और कुछ अचला होती हैं । जो चला प्रतिमा हैं उनमें आवाहन और विसर्जन नहीं करना चाहिये । उनके जो अङ्ग देवता हैं उन सबका आवाहन, विसर्जन आदि करे । इस अर्चना में कोई भी दिशा विशेष से

स्थित होने का नियम नहीं है केवल उस मूर्त्ति के सम्मुख में ही स्थित होना चाहिये। शालग्राम की पूजा के विषय में भी आवाहन और विसर्जन आदि नहीं करना चाहिये। अन्यत्र चल मूल वाली प्रतिमाओं में अर्चना करने वालों को आवाहनादि करना चाहिये।२१—२३। उनमें भी जो प्रतिमायें काष्ठमयी हों, लेख्या अर्थात् चित्रमयी हों उनमें जल का स्पर्श और चन्दनादि का अनुलेपन ही करना चाहिए। जो पूजन करने वाला व्यक्ति है उसे उनका केवल परिमार्जन करना चाहिए। उदङ्मुख अथवा प्राङ्मुख अथवा उस मूर्त्ति के सम्मुख में स्थित होकर यथाशक्ति और जो भी समय पर उपलब्ध हो उन उपकरणों से श्री हरि का यजन करे।२४।२५। श्रद्धा, कपट का अभाव और भक्ति से अर्पित केवल जल से भी वह विश्वात्मा प्रसन्न होकर तुष्ट हो जाते हैं पुनः पूजा की तो बात ही क्या है।२६। जो श्रद्धाहीन हो वस्त्र के रत्नादि के अलङ्करण को और चारों प्रकार के अन्न भक्ष्यादि को वह ग्रहण नहीं करते हैं। इससे भक्तिमान् होकर अपने श्रेय के लिए श्रीकृष्ण का अर्चन करना चाहिए जो सब अभीष्टों के प्रदान करने वाले हैं।२७—२८।

॥ वैष्णव खंड समाप्त ॥

स्कन्द-पुराण

३—ब्रह्म खण्ड

सेतु महात्म्य वर्णन

शुक्लाम्बरधरं विष्णुं शशिवर्णं चतुर्भुजम् ।
प्रसन्नवदनं ध्यायेत्सर्वविघ्नोपशान्तये ॥१॥
नैमिषारण्यनिलये ऋषयः शौनकादयः ।
अष्टाङ्गयोगनिरताब्रह्मज्ञानैकतत्पराः ॥२॥
मुमुक्षवोह्ममहात्मानो निर्ममाब्रह्मवादिनः ।
धर्मज्ञाअनसूयाश्च सत्यव्रतपरायणाः ॥३॥
जितेन्द्रियाजितक्रोधाः सर्वभूतदयालवः ।
भक्त्यापरमयाविष्णुमर्चयन्तः सनातनम् ॥४॥
तपस्तेपुर्महापुण्ये नैमिषे मुक्तिदायिनि ।
एकदातेमहात्मानः सभाञ्चक्रुरनुत्तमम् ॥५॥
कथयन्तोमहापुण्या कथाः पापप्रणाशिनीः ।
भुक्तिमुक्तेरुपायञ्चजितात्मानः परस्परम् ॥६॥
षड्विंशतिसहस्राणामृषीणाम्भावितात्मनाम् ।
तेषां शिष्यप्रशिष्याणां सङ्ख्या कर्तुं न शक्यते ॥७॥

मङ्गला चरण श्लोक—समस्त विघ्नों की शान्ति के लिए अत्यन्त शुक्ल वस्त्रों के धारण करने वाले, चन्द्र के समान वर्ण से संयुत चार भुजाओं से सम्पन्न, परम प्रसन्न मुख वाले भगवान विष्णु का ध्यान करना चाहिये। नैमिषारण्य के स्थान में शौनक आदि ऋषिगण जो अष्टाङ्ग योग से युक्त एवं आठ जिसके यम, नियम, ध्यान, धारणा

आदि आठ अंग होते हैं ऐसे योग के अभ्यास में सर्वदा निरत रहने वाले, ब्रह्म के ज्ञान में ही एकमात्र परायण, जो मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा वाले हैं, ममता से रहित, महान आत्माओं वाले ब्रह्मवादी धर्मों के ज्ञाता, असूया से रहित, सत्य व्रत में परायण, इन्द्रियों को जीत लेने वाले, क्रोध पर विजय प्राप्त किए हुये, समस्त प्राणियों पर दया करने वाले थे। वे परमोत्तम भक्ति से सनातन प्रभु विष्णु का अर्चन करते हुए उस महान पुण्यमय नैमिष क्षेत्र में जो मुक्ति का प्रदान करने वाला था तपश्चर्या किया करते थे। एक बार उन सब महात्माओं ने उत्तम समाज किया था।१-५। उस समाज में वे महान पुण्य से परिपूर्ण कथाओं को कह रहे थे जोकि महान पापों का विनाश कर देने वाली हैं और वे सब परस्पर में मुक्ति तथा मुक्ति के उपायों को भी जानने की इच्छाएँ कर रहे थे। वे भावित आत्माओं वाले ऋषिगण छब्बीस सहस्र थे। उनके जितने शिष्य एवं प्रशिष्य (शिष्यों के भी शिष्य) थे यह संख्या तो की ही नहीं जा सकती।६।७।

अत्रान्तरेमहाविद्वान्व्यासशिष्योमहामुनिः ।
अगमन्नैमिषारण्य सूतः पौराणिकोत्तमः ।८।
तमागतमुनिर्दृष्ट्वा ज्वलन्तमिवपावकम् ।
अर्घ्याद्यैः पूजयामासुर्मुनयः शौनकादयः ।९।
सुखोपविष्टं त सूतमासने परमेशुभे ।
पप्रच्छु परमगुह्यं लोकानुग्रहकाङ्क्षया ।१०।
सूतधर्मार्थतत्वज्ञसर्वागतमुनिपुङ्गव ।
श्रुतवांस्त्वपुराणानिव्यासात्सत्यवतीसुतात् ।११।
अतः सर्वपुराणानामर्थज्ञोऽसिमहामुने ।
कानिक्षेत्राणिपुण्यानिकानितीर्थानिभूतले ।१२।
कथवाप्स्यतमुक्तिर्जीवानाम्भवसागरात् ।
कथंहरेर्हरेर्वापि नृणांभक्तिः प्रजायते ।१३।
केनसिद्ध्यतेफलं कर्मणस्त्रिविधात्मनः ।
एतच्चाऽन्यच्चतत्सर्वं कृपया वद सूतज ! ।१४।

इस अन्तर मे पुराणों के ज्ञाताओं मे परम उत्तम—महान् मनीषी—व्यासदेवजी के शिष्य—महामुनीन्द्र श्री सूतजी वहाँ पर नैमिषारण्य में समागत हो गये थे ॥ ८ ॥ पावक (अग्नि) की भाँति जाज्वल्यमान उनको वहाँ पर समागत हुए देखकर समस्त शौनक प्रभृति ऋषियों ने विधि पूर्वक अर्घ्य आदि के द्वारा उनका पूजन किया था ॥ ९ ॥ परम शुभ सुन्दर आसन पर सुख पूर्वक उनके समुपविष्ट हो जाने पर उन सबने लोकों पर अनुग्रह करने की इच्छा से परम गुह्य प्रश्न श्री सूतजी से पूछा था ॥ १० ॥ हे मुनियों मे परम वरिष्ठ सूतजी ! आपका हार्दिक स्वागत हम करते हैं। आप तो धर्मार्थ के तत्वों के पूर्ण ज्ञान रखने वाले हैं। आपने समस्त पुराणों को सत्यवती के पुत्र श्री व्यासदेव जी के मुखारविन्द से ही श्रवण किया है। अतएव हे महामुनिवर ! आप तो सभी पुराणों के अर्थों को पूर्णतया जानने वाले है। आप अब कृपा करके हम लोगों को यह बतलाइये कि कौन से परम पुण्यमय क्षेत्र हैं और इस भूतल पर कौन-कौन में तीर्थ स्थल हैं ? यह भी बतलाने का आप हम सब पर अनुग्रह कीजिएगा कि इस भव सागर से जीवों को मुक्ति कैसे प्राप्त की जाया करती है ? ऐसा कौन सा साधन है जिससे इन माया-मुग्ध मानवों की श्री हरि मे अथवा श्री हर मे भक्ति समुत्पन्न हो जावे ? इन तीन प्रकार के कर्म्म का फल किसके द्वारा सिद्ध होता है—यह सब तथा अन्य भी जो हम नहीं पूछ सके हैं सभी कुछ हे सूतजी ! आप कृपा करके हमको बतलाइये ॥११-१४॥

शृणु ध्वं व्यासशिष्याय गुरवोगुह्यमच्युत ।
इतिपृष्टस्तदा सूतो नैमिषारण्यवासिभिः ॥१५
वक्तु प्रचक्रमे नत्वा व्यासं स्वगुरुमादितः ।
सम्यक्पृष्टमिदं विप्रा ! युष्माभिःजगतो हितम् ॥१६
रहस्यमेतदस्माकं वक्ष्यामिश्रृणुतावनिलं पूवनम् ।
मयानोक्तमिदंपूर्वं कस्याऽपि मुनिपुङ्गवा ! ॥१७

मनोनियम्यविप्रेन्द्रा शृणुध्वंभक्तिःपूर्वकम् ।
अस्तिरामेश्वरं नामरामसेतुपवित्रितम् ॥१८
क्षेत्राणामपिसर्वेषां तीर्थानामपिचोत्तमम् ।
दृष्टमात्रेणतत्सेतुं मुक्ति संसारसागरात् ॥१६
हरे हरौ च भक्ति स्यात्तथा पुण्यसमृद्धिता ।
कर्मणस्त्रिविधस्यापि सिद्धिः स्यान्नाऽत्र संशयः ।२०
योनरोजन्ममध्येतु सेतु भक्त्याऽवलोकयेत् ।
तस्यपुण्यफलवक्ष्येशृणुध्वमुनिपुङ्गवा ॥२१

श्री गुरुवृन्द जो स्नेह का परम पात्र शिष्य होता है उसको गोपनीय से भी गोपनीय बात बतला दिया करते हैं। इस तरह से जब सूतजी से पूछा गया तो उन नैमिषारण्य वासियों से आदि में अपने गुरुदेव व्यासजी को प्रणाम करके उन्होंने वर्णन करने का समारम्भ किया था।१५। श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रगण ! आपने इस जगत् की भलाई को दृष्टि में रखकर यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। यह हम लोगों का परम रहस्य है। मैं आप लोगों को इसे बतलाता हूँ। आप समादर पूर्वक इसका श्रवण कीजिए। हे मुनियों मे परम श्रेष्ठो ! इसके पूर्व में अभी तक मैंने इस रहस्य को किसी को भी नहीं बतलाया था। इसलिये आप लोग अपने मन को नियम नियन्त्रित करके हे विप्रेन्द्र वृन्द ! इसका भक्तिभाव से परिपूर्ण होते हुए श्रवण करिये। एक श्री रामेश्वर नाम वाला परम पवित्र श्रीराम का सेतु है। यह समस्त क्षेत्रों में और सम्पूर्ण तीर्थों में परमोत्तम स्थल है। इस सेतु की ऐसी अद्भुत महिमा है कि इसके केवल दर्शन मात्र से ही इस संसार रूपी सागर से मुक्ति हो जाया करती है तथा श्री हरि और श्री हर दोनों में पुण्यों से समृद्धि वाली सुदृढ भक्ति हो जाया करती है। तीनों प्रकार के कर्मों की सिद्धि भी प्राप्त हो जाती है—इस विषय में कुछ भी संशय नहीं है। हे मुनियों में परम श्रेष्ठो ! जो मनुष्य अपने इस मानव जीवन के मध्य में इस

सेतु का भक्ति भाव पूर्वक अवलोकन कर लेता है उसका जो महान् पुण्य-फल होता है उसे मैं आपको बतलाता हूँ आप श्रवण करिये ! ॥ १६-२१ ॥

मातृतः पितृतश्चैव द्विकोटिकुलसंयुतः ।
निर्विश्यशम्भुनाकल्पं ततोमोक्षत्वमश्नुते ॥२२
गण्यन्ते पांसवोभूमेर्गण्यन्तेदिवितारकाः ।
सेतुदर्शनजं पुण्यं शेषेणाऽपि न गण्यते ॥२३
समस्तदेवतारूपः सेतुबन्ध प्रकीर्तितः ।
तद्दर्शनवतः पुंसां कः पुण्यंगणितुं क्षमः ॥२४
सेतुं दृष्टवान्नरोविप्राः सर्वयागकरः स्मृतः ।
स्नानश्चसर्वतीर्थेषु तपश्चाप्यतचाखिलम् ॥२५
सेतुं गच्छेतिप्रोक्तश्चाद्यकम्वापिनरद्विजाः ।
सोऽपतत्फलमाप्नोतिकिमन्यंबहुभाषणः ॥२६
सेतुस्नानकरोमर्त्यः सप्तकोटिकुलान्वितः ।
सम्प्राप्यविष्णुभवनं तत्रैव परिमुच्यते ॥२७
सेतुं रामेश्वरलिङ्गं गन्धमादनपर्वतम् ।
चिन्तयन्मनुजः सत्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२८

मातृकुल और पितृकुल दोनों दो कुलों में ही करोड़ से संयुत होकर शम्भु के द्वारा कल्प में निर्दिष्ट हो जाता है और फिर वह मोक्ष को प्राप्त कर लिया करता है । इस भूमि के धूलि के कण भी गिने जा सकते हैं और आकाश में स्थित असीम तारों की गणना की जा सकती है अर्थात् ये दोनों ही अपरिमित हैं तो भी ऐसी सम्भावना हो सकती है कि इनकी गणना हो जावे किन्तु सेतु के दर्शन से समुत्पन्न पुण्य भगवान् शेष के भी द्वारा नहीं गिना या वर्णित किया जा सकता है-यह इतना असीमित होता है । यह सेतुबन्ध सम्पूर्ण देवता के स्वरूप वाला होता है—ऐसा कीर्तित किया गया है । उसके दर्शन करने वाले पुरुष के पुण्य को कौन

गिनने में समर्थ हो सकता है ? जिस मनुष्य ने इस सेतु का दर्शन कर लिया है हे विप्रो ! वह तो समस्त यज्ञो के करने वाला कहा गया है। उसको तो फिर यही समझ लेना चाहिए कि सभी तीर्थों मे स्नान कर लिया है और सम्पूर्ण तप का तपन भी वह कर चुका है। तात्पर्य यह है कि उसको शेष करने का कुछ भी रह ही नहीं जाता है। हे द्विजगण ! जो जिस किसी भी मनुष्य से यह कहदे कि सेतुबन्ध के दर्शन प्राप्त करने के लिये जाइये। वह भी उसी फल को प्राप्त कर लिया करता है फिर इससे अधिक अन्य भाषणों के करने से क्या प्रयोजन है। सेतु मे स्नान करने वाला मनुष्य सात करोड़ कुलो से युक्त होकर श्री विष्णु भगवान् के भवन को प्राप्त कर लेता है और वही पर वह मुक्त हो जाया करता है। सेतु श्री रामेश्वर लिङ्ग—गन्धमादन पर्वत—इनका चिन्तन करने वाला भी पुरुष समस्त पापो से मुक्त हो जाया करता है ॥ २२-२८॥

मातृतः पितृतश्चैव लक्षकोटिकुलान्वितः ।
कल्पत्रयशम्भुपदे स्थित्वातत्रैवमुच्यते ॥२९
मृपावस्थायसाकूप तथावैतरणीं नदीम् ।
श्वभक्षमूत्रपानञ्च सेतुस्नायीनपश्यति ॥३०
तप्तशूलन्तप्तशिला पुरीषह्रदमेवच ।
तथाशोणितकूपञ्च सेतुस्नायी न पश्यति ॥३१
शाल्मल्यारोहणरक्तभोजनकृमिभोजनम् ।
स्वमांसभोजनञ्चैव वह्निज्वालाप्रवेशनम् ॥३२
शिलावृष्टिवह्निवृष्टि नरक कालसूत्रकम् ।
क्षारोदकंचोष्णतोय नैयात्मैरववलोकक: ॥३३
सेतुस्नायीनराविप्रा' पञ्चपातकिनानपि ।
मातृतःपितृतश्चैव शतकोटिकुलान्वितः ॥३४
कल्पत्रयविष्णुपदे स्थित्वा तत्रैवमुच्यते ।

अधःशिरःशोषणं च नरकांक्षारसेवनम् ॥३५

मातृ कुल तथा पितृ कुल–इन दोनों के एक लक्ष कोटि कुलों से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त भगवान् श्री शम्भु के पद में स्थित रह कर वहीं पर मुक्त हो जाया करता है। मृगावस्था—वसा कूप–वैतरणी नदी—मलभक्ष–मूत्रपान इन महान् घोर यातनाएँ देने वाले नरकों को सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला प्राणी कभी देख ही नहीं सकता है। स्पन शूल—तप्त शिला—पुरीष ह्रद–शोणित कूप—इन नरकों को भी सेतु में स्नान करने वाला नहीं देखा करता है ॥२६, ३०, ३१॥ शाल्मल्यारोहण—रक्त भोजन—कृमि भोजन—स्वमांस भोजन—वह्नि ज्वाला प्रवेशन—शिला वृष्टि—वह्नि वृष्टि—काल सूत्रक नरक–क्षारोदक—उष्णतोय—इन नरकों में सेतुबन्ध के अवलोकन करने वाला पुरुष कभी भी गमन नहीं किया करता है। हे विप्रगण! सेतुबन्ध क्षेत्र में स्नान करने वाला पुरुष पाँच पातकों वाला भी हो तो भी मातृ एवं पितृ दोनों के शतकोटि कुलों से समन्वित होकर तीन कल्प पर्यन्त श्री विष्णु के पद में समवस्थित रहकर वहीं पर ही मुक्त हो जाया करता है। अधशिर–शोषण–क्षार सेवन नरक में सेतु में स्नान करने वाला कभी नहीं जाता है ॥३२–३५॥

पादाधायन्त्रपीडाञ्च मरुत्प्रपतनं तथा।
पुरीषलेपनञ्चैव तथा क्रकचदारणम् ॥३६
पुरीषभोजनं रेतः पानसन्धिप्रदाहनम्।
अङ्गारशय्याभ्रमणं तथा मुसलमर्दनम् ॥३७
एतानि नरकाण्यद्धा सेतुस्नायी न पश्यति।
सेतुस्नानं करिष्येऽहमिति बुद्ध्या विचिन्तनम् ॥३८
गच्छेच्छतपदं यस्तु समहापातकोऽपि सन्।
बहुनाकाष्ठायन्त्राणां पिण शस्त्रभेदनम् ॥३९
पतनोत्पतनं चैव गदादण्डनिपीडनम्।

गजदन्तैश्च हननं नानाभुजगदंशनम् ॥४०
धूमपानपाशबन्ध नानाशूलनिपीडनम् ।
मुखेच नासिकायाचक्षारोदकनिषेचनम् ॥४१
क्षाराम्बुपानरक्त तप्तायः सूचिभक्षणम् ।
एतानि नरकाण्यद्धा नयाति गतपातकः ॥४२

पाषाण यन्त्र पीड़ा—मलप्रयतन—पुरीषलेपन—ककच दारण—पुरीषभोजन—रेतः पान—सन्धिपुदाहन—अङ्गार शय्या भ्रमण मुसलमर्द्दन—इन महायन्त्रणा प्रद नरकों मे सेतुबन्ध मे स्नान करने वाला कभी नहीं जाता है तथा इनको कभी भी नहीं देखता है। मैं सेतुबन्ध मे स्नान करूँगा—यह इतना भर अपनी बुद्धि से चिन्तन ही परम पुण्य प्राप्त करने के लिये पर्याप्त है ॥ ३६, ३७, ३८ ॥ जो एक सौ कदम गमन करता है वह चाहे महापातकों वाला भी क्यों न हो, मुक्त हो जाता है। बहुत से काष्ठ यन्त्रों का कर्षण—शस्त्र भेदन—पतनात्पतन—गदादण्ड निपीडन—गजदन्तों से हनन—अनेक भुजङ्गों के द्वारा दशन—धूम्रपान—पाशबन्ध—नाना शूलों से निपीडन—मुख मे और नासिका में क्षारोदक का निषेचन—क्षाराम्बुपान नरक सतप्ताय—सूचि भक्षण—इन उपर्युक्त नरकों को वह सेतुबन्ध मे स्नान करने वाला प्राणी समस्त पातकों से शुद्ध हो जाने के कारण कभी भी गमन नहीं किया करता है ॥ ३६ । ४० ४१ । ४२ ॥

सेतुस्नानमोक्षदं च मनःशुद्धिप्रदं तथा ।
जपाद्धोमात्तथादानाद्यागाच्च तपसोऽपि च ॥४३
सेतुस्नानंविशिष्टहि पुराणेपरिपठ्यते ।
अकमनाकृतस्नानं सेतौ पापविनाशने ॥४४
अपुनर्भवदप्रोक्तं सत्यमुक्त द्विजोत्तमाः ।
यः सम्पद समुद्दिश्य स्नातिसेतौ नरोमुदा ॥४५
स सम्पदमवाप्नोति विपुलां द्विजपुङ्गवाः ।

शुद्ध्यर्थं स्नाति चेत्सेतौ तदा शुद्धिमवाप्नुयात् ॥४६
रत्यर्थं यदिचस्नायादप्सरोभिर्नरादिवि ।
तदारतिमवाप्नोति स्वर्गलोकेपरीजनैः ॥ ४७
मुक्त्यर्थं यदिचस्नायात्सेतौमुक्तिप्रदायिनि ।
तदामुक्तिमवाप्नोतिपुनरावृत्तिवर्जिताम् ॥४८
सेतुस्नानेनधर्मः स्यात्सेतुस्नानादघक्षयः ।
सेतुस्नानंद्विजश्रेष्ठाः सर्वकामफलप्रदम् ॥४९

यह सेतुबन्ध क्षेत्र का स्नान मन की शुद्धि करने वाला और मोक्ष प्रदान करने वाला है। जप—होम—दान—याग और तपस्या—इन सबसे भी विशिष्ट सेतुबन्ध का स्नान होता है जिसका कि पुराणों में परिपठन किया जाता है। इस पापों के विनाश करने वाले सेतु में बिना किसी कामना के भी किया हुआ स्नान अपुनर्भव का अर्थात् मोक्ष प्रदान करने वाला कहा गया है। हे द्विजोत्तमो ! यह सर्वथा सत्य ही कहा गया है। जो कोई मनुष्य इस सेतु में प्रसन्नता के साथ सम्पदा की वृद्धि का उद्देश्य लेकर स्नान किया करता है वह सम्पदा को प्राप्त करता है और बहुत बड़ी सम्पत्ति उसे मिलती है। हे द्विजपुङ्गवो ! जो केवल अपनी शुद्धि का उद्देश्य लेकर ही सेतु में स्नान करता है वह शुद्धि को प्राप्त कर लेता है ॥ ४३, ४४, ४५, ४६ ॥ यदि कोई रति की कामना लेकर ही स्नान करता है तो वह दिवलोक में अप्सराओं के साथ पुनरावृत्ति में रहकर उस समय में रति की प्राप्ति किया करता है और स्वर्गलोक में परिजनों के साथ रहता है। यदि कोई मुक्ति के लिए ही वहाँ पर स्नान करता है जो कि सेतु मुक्ति के प्रदान करने वाला है तो फिर जन्म न ग्रहण करने वाली मुक्ति को प्राप्त कर लेता है ॥४७॥४८॥ इससे सेतुबन्ध महान् क्षेत्र में स्नान करने से धर्म होता है और सेतु-स्नान से अघों का भी क्षय होता है। हे द्विज श्रेष्ठो ! यह सेतुबन्ध का स्नान समस्त कामनाओं के फलों को प्रदान करने वाला है ॥४९॥

सर्वव्रताधिकंपुण्य सर्वयज्ञोत्तरंस्मृतम् ।
सर्वयोगाधिकप्रोक्त सर्वतीर्थाधिकंस्मृतम् ॥५०
इन्द्रादिलोकभोगेषु रागोयेषा प्रवर्त्तते ।
स्नातव्यतद्विजश्रेष्ठाः सेतौ रामकृतेसकृत् ॥५१
ब्रह्मलोकेचवैकुण्ठे कैलासमपिशिवालये ।
रन्तुमिच्छाभवेद्येषातेसेतौस्नान्तुसादरम् ॥५२
आयुरारोग्यसम्पत्तिमतिरूपगुणाढ्यताम् ।
चतुर्णामपिवेदानासाङ्गानाम्पारगामिनाम् ॥५३
सवशास्त्राधिगन्तृत्व सर्वमन्त्राध्वभिज्ञताम् ।
समुद्दिश्य तु य. स्नायात्सेतौ सर्वार्थसिद्धिदे ॥५४
तत्तत्सिद्धिमवाप्नोति सत्य स्यात्रात्र सशयः ।
दारिद्र्याग्नरकाद्यं च बिभ्यन्ति मनुजा भुवि ॥५५

यह सेतुबन्ध समस्त व्रतो से अधिक पुण्य वाला है और सभी यज्ञों से अधिक कहा गया है। उसको समस्त योगो से अधिक ही बतलाया गया है तथा यह अन्य सभी तीर्थों से भी अधिक है—ऐसा ही माना गया है ॥५०॥ इन्द्र आदि के लोको के उपभोगो मे जिन मानवो का राग प्रवृत्त होता है हे द्विजों मे श्रेष्ठो ! उनको श्रीराम द्वारा किये गये इस सेतुबन्ध मे एक बार स्नान करना चाहिए ।५१। ब्रह्मलोक मे तथा वैकुण्ठलोक मे कैलाश मे और शिव के निवास स्थान मे भी जिनकी रमण करने की इच्छा रहती है वे बड़े ही समादर के साथ इस सेतुबन्ध मे स्नान अवश्य करें । आयु–आरोग्य–सम्पत्ति–मति–रूपलावण्य–गुणगण की सम्पन्नता—चारो साङ्गवेदो की पारगामिता—समस्त शास्त्रो का अधिगमन–सभी मन्त्रो का अभिज्ञान–इन सबका अथवा इसमे से किन्ही वस्तुओ का जो उद्देश्य ग्रहण करके सब अर्थों की सिद्धियाँ प्रदान करने वाले सेतु मे स्नान करता है वह उन्ही सिद्धियो को प्राप्त कर लिया करता है–यह सोलह आने सत्य है—इसमे किञ्चित-ममात्र भी सशय नहीं

है। इस भूमण्डल में मनुष्य दरिद्रता से और नरक आदि से भयभीत रहा करते हैं॥ ५२-५५ ॥

३६—ब्रह्मकुण्ड प्रशंसा

स्नात्वा त्वमृतवाप्यां वै सेवित्वैकान्तराघवम् ।
जितेन्द्रियो नर. स्नातुं ब्रह्मकुण्ड ततो व्रजेत् ॥१
सेतुमध्ये महातीर्थं गन्धमादनपर्वते ।
ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं सर्वदारिद्रयभेषजम् ॥२
विद्यते ब्रह्महत्यानामयुतायुतनाशनम् ।
दर्शनं ब्रह्मकुण्डस्य सर्वपापौघनाशनम् ॥३
किन्तस्य बहुभिस्तीर्थैः किन्तपोभिः किमध्वरैः ।
महादानैश्च किन्तस्य ब्रह्मकुण्डविलोकिनः ॥४
ब्रह्मकुण्डे सकृत्स्नान वैकुण्ठप्राप्तिकारणम् ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मयेनधृत द्विजाः ॥५
तस्यानुगास्त्रया देवा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनायस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥६
करोतितस्य कैवल्यकरस्थनाऽत्र संशयः ।
तद्भस्मपरमाणुर्ग्रीवोललाटे धृतोऽभवत् ॥७

महा महर्षि श्री सूतजी ने कहा—अमृत वापी में स्नान करके और एकान्त श्री राघव का सेवन करके इन्द्रियों को जीत लेने वाले मनुष्य को स्नान करने के लिये फिर ब्रह्मकुण्ड पर गमन करना चाहिए ॥ १ ॥ सेतु के मध्य में गन्धमादन पर्वत पर ब्रह्मकुण्ड इस नाम से विख्यात स्थल है जो सभी प्रकार की दरिद्रताओं का भेषज (औषध) है। अयुतायुत ब्रह्महत्याओं के नाश करने वाला श्री ब्रह्मकुण्ड का दर्शन

होता है और यह समस्त पापों के समूह का भी विनाश कर देने वाला है। फिर अन्य बहुत से तीर्थों के अटन करने से तथा तपश्चर्या करने से और अध्वरों के करने से उस मनुष्य को कोई भी आवश्यकता ही नहीं रहती है। जिसने ब्रह्मकुण्ड का विलोकन कर लिया है उसको महादानों के करने की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है ॥ २, ३, ४ ॥ ब्रह्मकुण्ड में एक ही बार स्नान करने का पुण्य वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति का कारण होता है। हे द्विजो! इस ब्रह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्म जिस मानव ने धारण करली है उसके अनुगामी तीनों देव हो जाया करते हैं जो कि ब्रह्मा—विष्णु और महेश्वर नाम धारी है। ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म से जिसने त्रिपुण्ड्र किया है उसके हाथ में ही कैवल्य विद्यमान रहा करता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उसकी भस्म का परमाणु वायु के ललाट में धारण किया गया था उतने ही से इसकी मुक्ति होगई थी। अतएव इसमें कोई भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। उस कुण्ड की भस्म से जो मनुष्य उद्धूलन करता है उसका महान् पुण्य फल होता है ॥ ५, ६, ७ ॥

तावतैवाऽस्य मुक्तिः स्यात्पाऽत्र कार्या विचारणा।
तत्कुण्डभस्मना मर्त्य. कुर्यादुद्धूलनन्तु यः ॥८
तस्य पुण्यफलवक्तु शङ्करो वेत्ति वा न वा।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्म योनैवधारयेत् ॥९
रौरवे नरके सोऽय.पतेदाचन्द्रतारकम्।
उद्धूलनं त्रिपुण्ड्रं वा ब्रह्मकुण्डस्थभस्मना ॥१०
नराधमो न कुर्याद्यः सुखं नास्य कदाचन।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्मनिन्दारतस्तु यः ॥११
उत्पत्तौतस्य साङ्कर्यमनुमेयं विपश्चिता।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूत भस्मैतल्लोकपावनम् ॥१२
अन्यभस्मसमं यस्तु नूनं वा वक्ति मानवः।

उत्पत्तौतस्यसाङ्कर्यमनुमेय विपश्चिता ।।१३
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतेऽप्यस्मिन्भस्मनि जाग्रति ।
भस्मान्तरेण मनुजो धारयेद्यस्त्रिपुण्ड्रकम् ॥१४

जो मनुष्य ब्रह्मकुण्ड की भस्म से उद्धूलन करता है उसके पुण्य-फल को जानना और उसका वर्णन करना साधारण मानव की तो चर्चा ही क्या की जावे प्रत्युत ऐसा सन्देह होता है कि भगवान् शङ्कर भी उसे कथन करना जानते हैं अथवा नहीं जानते हैं। जो पुरुष ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म को कभी भी धारण नहीं करता है वह रौरव नरक में जाकर जब तक चन्द्र और तारे रहते हैं नारकीय यातनाएं भोगता है। ब्रह्मकुण्ड में स्थित भस्म से उद्धूलन या त्रिपुण्ड जो नरों में अधम नहीं करता है उसको कभी भी सुख नहीं मिलता है। जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म की बुराई करने में रत रहता है उसकी उत्पत्ति में सङ्कर दोष होने का विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए। ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म इस लोक को पावन करने वाली है। अन्य भस्म के समान ही उसको जो मानव बतलाता है या उससे भी कम कहता है उसकी भी उत्पत्ति में साङ्कर्य दोष के होने का विद्वान् पुरुष को अवश्य ही अनुमान कर लेना चाहिए। जब ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न हुई भस्म वहाँ पर विद्यमान हो और उसके रहते हुए जो मनुष्य अन्य भस्म से त्रिपुण्ड्र को धारण किया करता है उसके भी उत्पन्न होने में विभिन्न माता-पिता के होने वाला वर्ण सङ्कर दोष समझ लेना चाहिए। ॥ ६-१४ ॥

उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यं मनुमेय विपश्चिता ।
कदाचिदपियोमर्त्यो भस्मैतत्तन धारयेत् ॥१५
उत्पत्तौ तस्य साङ्कर्यमनुमेय विपश्चिता ।
ब्रह्मकुण्डसमुद्भूतभस्म दद्याद् द्विजाय य. ॥१६
चतुरर्णवपर्यन्ता तेनदत्ता वसुन्धरा ।

सन्देहो नात्र कर्तव्यस्त्रिर्वा शपथयाम्यहम् ।।१७
सत्य सत्यपुन सत्यमुद्धृत्यभुजमुच्यते ।
ब्रह्मकुण्डोद्भूत भस्मधारयध्वंद्विजोत्तमाः ।।१८
एतद्धि पावन भस्म ब्रह्मयज्ञसमुद्भवम् ।
पुरा हि भगवान्ब्रह्मा सर्वलोकपितामहः ।।१९
सन्निधौ सर्वदेवाना पर्वते गन्धमादने ।
ईशशापनिवृत्त्यर्थं क्रतून्सर्वान्समातनोत् ।।२०
विधायविधिवत्सर्वानध्वरान्बहुदक्षिणान् ।
मुमुचेसहसाब्रह्माशम्भुशापाद्द्विजोत्तमाः ।।२१
तदेतत्तीर्थमासाद्य स्नान कुर्वन्तिये नराः
ते महादेवसायुज्यं प्राप्नुवन्ति न सशयः ।।२२

ब्रह्मकुण्ड से उत्पन्न भस्म को जो कभी भी धारण नहीं करता है वह मनुष्य भी अपनी उत्पत्ति से वर्णसङ्कर दोष वाला ही होता है—ऐसा विद्वान् पुरुष को अनुमान कर लेना चाहिए। जो ब्रह्मकुण्ड से समुत्पन्न भस्म को द्विज को देता है उसको यही समझना चाहिए कि उसने चारों सागरों पर्यन्त समग्र वसुन्धरा का ही दान दे दिया है। इस विषय में लेश मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिए। मैं तीन बार इसके लिए शपथ लेकर कहता हूं। यह सत्य है—यह पुनः सत्य है और मैं अपनी भुजा उठाकर कहता हूं कि यह सर्वथा सत्य है। हे द्विजोत्तमो! आप सभी लोग इस ब्रह्मकुण्ड से समुद्भूत भस्म को धारण करिये। यह भस्म परम पावन है क्योंकि यह ब्रह्मयज्ञ से समुत्पन्न हुई है। पहिले भगवान् श्री ब्रह्माजी ने जो इन समस्त लोकों के पितामह है गन्धमादन पर्वत पर सब देवगणों की सन्निधि में ईश से प्राप्त शाप की निवृत्ति के लिए सब क्रतुओं को किया था। उन समस्त अध्वरों को विधि-विधान के साथ बहुत-सी दक्षिणाओं से युक्त साङ्ग समाप्त करके हे द्विजोत्तमो! वे ब्रह्माजी सहसा शम्भु के शाप से मुक्त हो गये थे।

इसीलिये इस तीर्थ पर पहुँच कर जो नर स्नान किया करते हैं वे श्री महादेव जी के सायुज्य को प्राप्त होते हैं—इसमें संशय नहीं है ॥ १५-२२ ॥

३७—लक्ष्मीतीर्थ प्रशंसा वर्णन

जटातीर्थाभिधेतीर्थे सर्वपातकनाशने ।
स्नानंकृत्वाविशुद्धात्मालक्ष्मीतीर्थं ततोव्रजेत् ॥१
यं यं काममुद्दिश्यलक्ष्मीतीर्थे द्विजोत्तमाः ।
स्नानंसमाचरेन्मर्त्यस्तंतं काममसमश्नुते ॥२
महादारिद्र्यशमनं महाधान्यसमृद्धिदम् ।
महादुःखप्रशमनं महासम्पद्विवर्धनम् ॥३
अत्र स्नात्वा धर्मपुत्रो महदैश्वर्यमाप्तवान् ।
इन्द्रप्रस्थे वसन्पूर्वं श्रीकृष्णेन प्रचोदितः ॥४
यथैश्वर्यं धर्मपुत्रो लक्ष्मीतीर्थे निमज्जनात् ।
आप्तवान्कृष्णवचनात्तन्नो ब्रूहिमहामुने ॥५
इन्द्रप्रस्थे पुरा विप्रा धृतराष्ट्रेण चोदिताः ।
न्यवसन्पाण्डवाः पञ्चमहाबलपराक्रमाः ॥६
इन्द्रप्रस्थं ययौ कृष्णः कदाचित्ताश्रिरीक्षितुम् ।
तमागतमभिप्रेक्ष्य पाण्डवास्ते समुत्सुकाः ॥७

महामहर्षि श्री सूतजी ने कहा—समस्त पातकों के विनाश करने वाले जटातीर्थ नाम वाले तीर्थ में स्नान करके फिर लक्ष्मी तीर्थ में गमन करना चाहिए। हे द्विजोत्तमो! उस लक्ष्मी तीर्थ में जिस-जिस कामना का उद्देश्य ग्रहण करके मनुष्य यहाँ पर स्नान किया करता है उसी-उसी कामना को प्राप्त कर लिया करता है ॥ १, २ ॥ यह महान्

तीर्थ महान् दरिद्रता का शमन करने वाला है—महान् धान्य और समृद्धि का प्रदान करने वाला है—महान् दुःखों के प्रशमन करने वाला है और महती सम्पदा के वर्धन करने वाला है ॥ ३ ॥ इसमें धर्मपुत्र स्नान करके महान् ऐश्वर्य के प्राप्त करने वाला हो गया था। भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा प्रेरणा प्राप्त करके वह इन्द्रप्रस्थ में पहिले निवास करता था ॥४॥ ऋषिवृन्द ने कहा—हे महामुने ! जिस प्रकार से श्रीकृष्ण के वचन से प्रेरित होकर धर्म्म पुत्र ने लक्ष्मी तीर्थ में निमज्जन करने से ऐश्वर्य को प्राप्त किया था वह सम्पूर्ण आख्यान आप हम लोगों को बतलाइये ॥५॥ श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पुरातन समय में धृतराष्ट्र के द्वारा प्रेरित हुए पाँच महाबल पराक्रम वाले पाण्डव इन्द्रप्रस्थ में निवास करते थे। किसी समय में उन पाण्डवों को देखने एवं मिलने के लिए श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में गये थे। उनको वहाँ पर समागत हुए देखकर पाण्डव अत्यन्त ही सन्तुष्ट हुए थे ॥ ६, ७ ॥

स्वगृहं प्रापयामासुर्मुदा परमया युताः।
कञ्चित्कालमसौ कृष्णस्तत्रावात्सीत्सुरोत्तमे ॥८
कदाचित्कृष्णमाहूय पूजयित्वा युधिष्ठिरः।
पप्रच्छ पुण्डरीकाक्षं वासुदेवं जगत्पतिम् ॥९
कृष्ण ! कृष्ण ! महाप्राज्ञ ! येन धर्मेण मानवाः।
लभन्ते महदैश्वर्यं तन्मा ब्रूहि महामते ॥१०
इत्युक्तो धर्मपुत्रेण कृष्णः प्राह युधिष्ठिरम्।
धर्मपुत्र ! महाभाग ! गन्धमादनपर्वते ॥११
लक्ष्मीतीर्थमिति ख्यातमस्त्यैश्वर्यैककारणम्।
तत्र स्नानं कुरुष्व त्वमैश्वर्यं ते भविष्यति ॥१२
तत्र स्नानेन वर्धन्ते धनधान्यसमृद्धयः।
क्षयं सपत्ना नश्यन्ति क्षेमं चाभिवर्द्धते ॥१३
तीर्थे तस्मिन् पुरा देवा लक्ष्मानानि पुण्यदे।

अलभन्सर्वमैश्वर्यं तेन पुण्येनधर्मज ॥१४

ये सब पाण्डव परम प्रसन्नता से युक्त होते हुए उन भगवान् श्रीकृष्ण को अपने घर मे अन्दर ले गये थे। यह श्रीकृष्ण भी पहिले इस उत्तम स्थल मे कुछ समय पर्य्यन्त वहाँ पर रहे थे। किसी समय में धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण का समाह्वान कर उनका अर्चन किया था और जगत् के स्वामी पुण्डरीक के तुल्य नेत्रो वाले वासुदेव भगवान् से युधिष्ठिर ने पूछा था ॥ ८, ९ ॥ युधिष्ठिर ने कहा -हे श्रीकृष्ण ! हे श्रीकृष्ण ! आप तो महती प्रज्ञा से सम्पन्न हैं और आपकी मति भी परम महती है। आप हमको यह बतलाइये कि वह कौन सा धर्म है जिसके द्वारा मानव महान् ऐश्वर्य का लाभ किया करते हैं ? इस रीति से धर्मपुत्र के द्वारा पूछे गये भगवान् श्रीकृष्ण युधिष्ठिर से बोले—श्री कृष्ण ने कहा – हे धर्मपुत्र ! हे महान् भाग वाले ! इस गन्धमादन पर्वत पर लक्ष्मी तीर्थ—इस नाम से विख्यात एक तीर्थ है जो ऐश्वर्य की प्राप्ति का एक ही कारण है। वहाँ पर आप स्नान कीजिए। आपको भी महान् ऐश्वर्य की प्राप्ति हो जायगी ॥ १०, ११, १२ ॥ वहाँ पर स्नान करने से धन-धान्य और समृद्धियाँ बढ जाया करती हैं। स्नान करने वाले पुरुष के सभी शत्रु स्वतः ही विनष्ट हो जाया करते हैं और फिर इनका क्षेत्र वर्धित हो जाता है ॥ १३ ॥ हे धर्मज्ञ ! इस लक्ष्मी नाम वाले तीर्थ में जो परम पुण्य के प्रदान करने वाला है पहिले देव-गणों ने स्नान किया था और उन्होंने उस पुण्य से ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया था ॥ १४ ॥

असुरांश्चमहावीर्यान्समरेजघ्नुरञ्जसा ।
महालक्ष्मीश्च धर्मश्चतत्तीर्थस्नायिनांनृणाम् ॥१५
भविष्यत्यचिरादेव सशयं मा कृथा इह ।
तपोभिः क्रतुभिर्दानैराशीर्वादैश्चपाण्डव ॥१६
ऐश्वर्यं प्राप्यते यद्वल्लक्ष्मीतीर्थनिमज्जनात् ।

सर्वपापानिनश्यन्ति विघ्नायान्तिलयंसदा ॥१७
व्याधयश्च विनश्यन्ति लक्ष्मीतीर्थनिषेवणात् ।
श्रेयः सुविपुल लोके लभ्यते नात्रसशयः ॥१८
स्नानमत्रोणवैलब्ध्यास्तीर्थेस्मिन्धर्मनन्दन ! ।
रम्भामप्सरसाश्रेष्ठालब्धवान्नल कूबरः ॥१६
स्नात्वाऽत्रतीर्थेपुण्ये तु कुबेरोनरवाहनः ।
समहापद्ममुख्यानांनिधीनान्नायकोऽभवत् ॥२०
तस्मात्त्वमपि राजेन्द्र लक्ष्मीतीर्थेशुभप्रदे ।
स्नात्वा वृकोदरमुखैरनुजैरपि सवृतः ॥२१
लप्स्यसे महती लक्ष्मीं जेष्यसे च रिपूनपि ।
सन्देहोनात्रकर्तव्य. पैतृस्वस्त्रेयधर्मज ! ॥२२

देवो ने रण मे महान् वीर्य वाले असुरो को यो ही बडी आसानी से मार डाला था। उस तीर्थ मे स्नान करने वाले मनुष्यो को महा-लक्ष्मी और धर्म दोनो ही प्राप्त होते हैं। ये दोनो शीघ्र ही प्राप्त हो जायेंगे—इसमे कुछ भी सशय मत करो। हे पाण्डव ! बडी बडी तपश्चर्याओ से—क्रतुओ से—दानो से—और आशीर्वादो से जो ऐश्वर्य प्राप्त किया जाता है वह लक्ष्मी तीर्थ के निमज्जन करने से ही प्राप्त हो जाया करता है। समस्त पाप विनष्ट हो जाया करते हैं और सभी विघ्न सदा लय को प्राप्त हो जाते हैं। सभी व्याधियाँ नष्ट होती हैं। इस लक्ष्मी तीर्थ के सेवन करने से लोक मे अत्यधिक श्रेय प्राप्त किया जाता है—इसमे कुछ भी सशय नही है॥ १५, ६, १७, ८॥ हे धर्मनन्दन ! लक्ष्मी के इस तीर्थ मे स्नान मात्र से ही नल कूबर ने अप्सराओ मे परम श्रेष्ठ रम्भा को प्राप्त कर लिया था। इस पवित्र पुण्य तीर्थ मे नर वाहन कुबेर स्नान करके वह महापद्म मुख्य निधियो का नायक हो गया था। इसलिये हे राजेन्द्र ! इस शुभप्रद लक्ष्मीतीर्थ मे स्नान करके महती लक्ष्मी को तुम भी वृकोदर प्रमुख भाइयो से युक्त

प्राप्त कर लोगे और अपने शत्रुओं को भी जीत लोगे। हे पैत्रस्व-लोप धर्मज्ञ! इसमें किञ्चिन्मात्र भी सन्देह नहीं करना चाहिये। ॥ १५–२२ ॥

इत्युक्तो धर्मपुत्रोऽयं कृष्णेनाद्भुतदर्शनः।
सानुजः प्रययौ शीघ्रं गन्धमादनपर्वतम् ॥२३
लक्ष्मीतीर्थं ततो गत्वा महदैश्वर्यकारणम्।
सस्नौ युधिष्ठिरस्तत्र सानुजो नियमान्वितः ॥२४
लक्ष्मीतीर्थस्यतोये मसर्वपातकनाशने।
सानुजोमासमेकन्तुसस्नौनियमपूर्वकम् ॥२५
गोभूतिलहिरण्यादीन्ब्राह्मणेभ्योददौबहून्।
सानुजोधर्मपुत्रोऽसावन्द्रप्रस्थययौततः ॥२६
राजसूयक्रतुं कर्तुं ततऐच्छद्युधिष्ठिरः।
कृष्णं समाह्वयामास पियसुर्धर्मनन्दनः ॥२७
कृष्णोधर्मजदूतेन समाहूतः ससम्भ्रमः।
चतुर्भिरश्वैः संयुक्तं रथमारुह्य वेगिनम् ॥२८

इस प्रकार से भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा कहे गये इस अद्भुत दर्शन वाले धर्म पुत्र ने अपने छोटे भाइयों के सहित शीघ्र ही गन्धमादन पर्वत पर प्रस्थान कर दिया था। इसके अनन्तर महान् ऐश्वर्य के कारण स्वरूप लक्ष्मी तीर्थ पर गये थे। वहाँ पर अपने छोटे भाइयों के सहित नियमों से अन्वित होकर युधिष्ठिर ने स्नान किया था ॥ २३, २४ ॥ उस लक्ष्मीतीर्थ के जल में जो समस्त पातकों के नाश करने वाला है अपने छोटे भाइयों के साथ नियम पूर्वक धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने एक मास तक स्नान किया था और ब्राह्मणों के लिए अत्यधिक मात्रा में गौ—भूमि—तिल और सुवर्ण आदि का दान दिया था। इसके पश्चात् वह धर्म का पुत्र युधिष्ठिर अपने अनुजों के सहित इन्द्रप्रस्थ को चले गये थे। इसके उपरान्त राजा युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ के करने की मनमें इच्छा

की थी। यज्ञ करने की इच्छा वाले धर्मनन्दन ने भगवान् श्रीकृष्ण का आह्वान किया था। धर्म पुत्र के दूत के द्वारा समाहूत हुए भगवान् श्री कृष्ण सम्भ्रम से युक्त होगये थे और चार अश्वों से युक्त वेग गमन करने वाले रथ पर समारूढ होगये थे।।२५-२८।।

सत्यभामासहचर इन्द्रप्रस्थं समाययौ।
समागतं समालोक्य प्रमोदाद्धर्मनन्दनः।।२९
न्यवेदयत्सकृष्णाय राजसूयोद्यमं तदा।
अन्वमन्यत कृष्णोपि तथैव क्रियतामिति।।३०
वाक्यं च युक्तिसंयुक्तं धर्मपुत्रमभाषत
पैतृस्वस्रेय धर्मात्मञ्छृणु पथ्यं वचो मम।।३१
दुष्करो राजसूयोऽयं सर्वैरपि महीश्वरैः।
अनेकशतपादातिरथकुञ्जरवाजिमान्।।३२
महामतिरिमं यज्ञं कर्तुमर्हति नेतरः।
दिशो दश विजेतव्याः प्रथमं बलिना त्वया।।३३
पराजितेभ्यः शत्रुभ्यो गृहीत्वा करमुत्तमम्।
तेन काञ्चनजातेन कर्तव्योऽयं क्रतूत्तमः।।३४
रोचये युक्तिसदनं न हित्वा भीषयामि भोः।
अतः क्रतुसमारम्भात्पूर्वं दिग्विजयं कुरु।।३५

अपनी परम प्रिय सत्यभामा को साथ में लेकर श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में समागत हो गये थे। उनको वहाँ पर आये हुए देखकर धर्मनन्दन को बड़ा भारी हर्ष हुआ था। फिर युधिष्ठिर अपने किये जाने वाले राजसूय यज्ञ का उद्यम श्रीकृष्ण की सेवा में निवेदित किया था। उस समय में श्रीकृष्ण ने भी उसकी अनुमति दे दी थी कि ऐसा ही करिये। श्रीकृष्ण भगवान् ने युक्ति से युक्त वाक्य धर्मपुत्र से कहा था—हे पैतृस्वस्रेय ! आप तो धर्मात्मा है, मेरे परम पथ्य वचन का श्रवण करिये। यह राजसूय यज्ञ परम दुष्कर हुआ करता है और सभी महीपतियों के लिए

उसकी दुष्करता होती है। अनेक अश्व पैदल–रथ–हाथी और अस्त्रों वाला महान् मति से युक्त ही इस यज्ञ को करने के योग्य हुआ करता है अन्य कोई भी नहीं होता है। सर्व प्रथम तो दसों दिशाएँ बलवानी आपको जीत लेनी होगी। जो नृप पराजित हो जावें उनसे उत्तम कर ग्रहण करना होगा उस सब सुवर्ण से यह उत्तम क्रतु करना चाहिए। मैं स्वयं मुक्ति के सदन को पसन्द करता हूँ और मैं आपको विभीषिका उत्पन्न नहीं कर रहा हूं। अतएव अपने इस यज्ञ के आरम्भ करने के पूर्व में आप दिग्विजय करिये ॥२९–३५॥

ततोधर्मात्मजः श्रुत्वा कृष्णस्य वचनंहितम् ।
प्रशसन्देवकीपुत्रमाजुहावनिजानुजान् ॥३६
आहूय चतुरो भ्रातॄन् धर्मजःप्राहहर्षयन् ।
अयि भीम ! महाबाहो वहुवीर्यधनञ्जय ॥३७
यमौ च सुकुमाराङ्गौ शत्रुसहारदीक्षितौ ।
चिकीर्षामि महायज्ञं राजसूयमनुत्तमम् ॥३८
स च सर्वान् रणे जित्वा कर्तव्यः पृथिवीपतीन् ।
अतो विजेतुं भूपालाञ्चत्वारो य ससैनिकाः ॥३९
दिग्भ्रस्ततसोपगच्छन्तु भवन्तोवीर्यवत्तराः ।
युष्माभिराहृतंद्रव्यैः करिष्यामिमहाक्रतुम् ॥४०
इत्यु क्ताः सादरं सर्वे वृकोदरमुखास्तदा ।
प्रसन्नवदना भूत्वा धर्मपुत्रानुजाः पुरात् ॥४१
[illegible]
[illegible] ॥४२

इसके अनन्तर धर्मपुत्र ने श्रीकृष्ण के हितप्रद वचन का श्रवण किया था। देवकी पुत्र की अतीव प्रशंसा करते हुए फिर युधिष्ठिर ने अपने छोटे भाइयों को अपने पास बुलवाया था। अपने छोटे चारों भाइयों को बुलाकर प्रसन्न होते हुए भाइयों से यह कहा था— आप भीम !

हे महान् बाहुओं वाले ! हे बहुत अधिक वीर्य वाले ! हे धनजय ! हे शत्रुओं के संहार करने में परम कुशल तथा सुकुमार अङ्गों वाले दोनों नकुल और सहदेव ! मैं सर्वोत्तम राजसूय यज्ञ के करने की इच्छा करता हूँ जो एक महान यज्ञ होता है। वह राजसूय यज्ञ रणक्षेत्र में समस्त राजाओं को जीतकर ही करने के योग्य हुआ करता है। इस लिये समस्त राजाओं को जीतने के लिए आप चारों भाई अपने २ सैनिकों के सहित चारों दिशाओं में गमन करो। आप सब लोग महान् बलवीर्य शाली हैं। आप लोगों के द्वारा लाये हुए द्रव्यों से ही मैं इस महान् क्रतु को करूँगा ॥ ३६।३७।३८।३९।४० ॥ इस प्रकार से आदर के सहित जब वृकोदर प्रमुख सब भाइयों से कहा गया था तब उस समय में वे धर्मपुत्र के छोटे भाई परम प्रसन्न मुख होतेहुए पुरसे राजा के विजय के लिये सब दिशाओं में पाण्डव निकल कर चले गये थे। वे सब चारों दिशाओं में राजाओं को जीत लिया था जोकि बहुत से स्थित थे ॥४१। ४२॥

स्ववशेस्थापयित्वातान्नृपतीन्पाण्डुनन्दनाः ।
तैर्दत्तम्बहुधा द्रव्यमसंख्यातमनुत्तमम् ॥४३
आदाय स्वपुरं तूर्णमाययु.कृष्णसंश्रया. ।
भीम समाययौ तत्र महाबलपराक्रमः ॥४४
शतभारसुवर्णानि समादाय पुरोत्तमम् ।
सहस्रं भारमादाय सुवर्णाना ततोऽर्जुन ॥४५
शक्रप्रस्थं समायातो महाबलपराक्रमः ।
अयभारं सुवर्णाना प्रगृह्य नकुलस्तथा ॥४६
समागतो महातेजा.शक्रप्रस्थं पुरोत्तमम् ।
दत्तान्विभीषणेनाथ स्वर्णतालाश्चतुर्दश ॥४७
दाक्षिणात्यमहीपाना गृहीत्वा धनसञ्चयम् ।
सहदेवोऽपि सहसा समादाय निजाम्पुरीम् ॥४८

उन पाण्डु नन्दनों ने उन समस्त नृपों को अपने वश मे स्थापित

करके उन्हें छोड़ा था। उन्होंने असंख्य एवं उत्तम बहुत सा द्रव्य दिया था। उस सब को लेकर वे भगवान् श्रीकृष्ण के समाश्रय ग्रहण करने वाले शीघ्र ही अपने पुर में वापिस लौट कर समागत होगये थे। वहाँ पर महान् बल विक्रम वाले भीम आये थे जो कि अनन्त सुवर्ण लेकर उस उत्तमपुर में प्रवेश करने वाले हुए थे। इसके पश्चात् एक सहस्र भार सुवर्ण लेकर अर्जुन समागत हुए। महाबल पराक्रम से समन्वित नकुल एक सौ भार सुवर्ण ग्रहण करके इन्द्रप्रस्थ में प्रविष्ट हुए। महा तेजस्वी सहदेव भी उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ में विभीषण के द्वारा दिये हुए कोटि स्वर्ण तालों को तथा दाक्षिणात्य महीपतियों के धन के सञ्चय को ग्रहण करके सहसा अपनी पुरी में समागत हुए थे ॥४३—४८॥

लक्षकोटिसहस्राणि लक्षकोटिशतान्यपि ।
सुवर्णानि ददौ कृष्णो धर्मपुत्राय यादव ॥४९
स्वानुजैराहृतं वीक्ष्य मह्यस्यातैर्महाधनैः ।
कृष्णदत्तं तदृद्रव्यं चकारेऽपि युधिष्ठिरः ॥५०
कृष्णाज्ञयोपयज्ञ इष्टा राजसूयेन पाण्डवः ।
स सम्यग्यज्ञदोऽस्य ब्राह्मणेभ्यो यथेप्सितः ॥५१
अन्नानि प्रददौ तत्र ब्राह्मणेभ्यो युधिष्ठिरः ।
वस्त्राणि गाश्च भूमिश्च भूषणानि ददौ तथा ॥५२
अर्थिनः परितुष्यन्ति यावत्तावत्काञ्चनादिना ।
ततोऽपि द्विगुणं तेभ्यो दापयामास धर्मजः ॥५३
इत्थं तद्दत्तान्यर्थिभ्यो धनानि विविधान्यपि ।
इतीयत्तापारच्छेत्तुं नशक्ता ब्रह्मकोटयः ॥५४
सर्वैर्निदीयमानानि दृष्ट्वा तत्र धनानि वै ।
सर्वस्वमपहृतो राजा दरमिव सर्वोऽभवत् ॥५५
दृष्ट्वा कोशांस्तथानन्तानन्तमणिकाञ्चनान् ॥५६
स नृप हि दत्तमपि च द्रव्यराशिमनास्तदा ।

दृष्ट्वं वव राजसूयेनधर्मपुत्रःसहानुजः ॥५७

यादव भगवान श्री कृष्ण ने एक सहस्र लाख करोड तथा एक सौ लाख करोड सुवर्ण धर्म पुत्र के लिये दिया था । इस प्रकार से अनुजों के द्वारा समाहृत असंख्यात महान् धनों से तथा श्रीकृष्ण भगवान् के द्वारा प्रदत्त असंख्यात धनों से श्रीकृष्ण का आश्रय ग्रहण करने वाले राजा युधिष्ठिर ने हे विप्रगण ! उस राजसूय यज्ञ के द्वारा यजन किया था । उस यज्ञ में ब्राह्मणों के लिये यथेष्ट द्रव्य दिया था ॥ ४९, ५०, ५ ॥ उसमे युधिष्ठर ने ब्राह्मणों के लिये अन्नों का भी दान किया था । उसी भाँति वस्त्र-गौऐं-भूमि और सुवर्णों का भी दान दिया गया था । याचक गण जितने भी सुवर्ण आदि से परितुष्ट होते थे धर्मपुत्र ने उतने से भी दुगुना उनको दिलवा दिया था । अर्थियों के लिये विविध भाँति के इतने धनों का प्रदान किया गया था कि उसकी इयत्ता (इतना है-इसको) को करोड़ों ब्रह्मा भी कहने मे समर्थ नहीं हुए थे । वहाँ पर अर्थियों के द्वारा दीयमान धनों को देखकर जनगण यही कह रहे थे कि राजा ने अपना सर्वस्व ही दान कर दिया है । जिस समय में लोग उन अनन्त कोशों को तथा अनन्त मणियों और काञ्चनों को देखते थे तो उस समय में यही कहते थे कि अर्थियों के लिये तो बहुत थोड़ा ही दिया गया है क्योंकि वहाँ तो अभी भी अनन्त राशि विद्यमान थी । इस प्रकार से धर्मपुत्र ने अपने छोटे भाइयों के साथ राजसूय यज्ञ का यजन किया था ॥५२-५७॥

बहुवित्तसमृद्धः सन् रेमे तत्र पुरोत्तमे ।
लक्ष्मीतीर्थस्य महात्म्याद्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥५८
लेभे सर्वमिदं विप्रा अर्हणीयस्य वैभवम् ।
इदं तीर्थं महापुण्यं महादारिद्र्यनाशनम् ॥५९
धनधान्यप्रदं पुंसां महापातकनाशनम् ।
महानरकसंहर्तृ महादुःखनिवर्तकम् ॥६०

मोक्षदं स्वर्गदन्नित्यं महाऋणविमोचनम् ।
सुकलत्रप्रदं पुंसांसुपुत्रप्रदमेव च ॥६१
एतत्तीर्थसमं तीर्थं न भूतम्न भविष्यति ।
एतद्व.कथितं विप्रा लक्ष्मीतीर्थस्य वैभवम् ॥६२
दुस्स्वप्ननाशनं पुण्यं सर्वाभीष्टप्रसाधकम् ।
यः पठेदिममध्यायंश्रृणुतेवासमन्वितकम् ॥६३
धनधान्यसमृद्धस्स्यात्स नरो नास्ति संशयः ।
भुक्त्वेह सकलान्भोगान्देहान्ते मुक्तिमाप्नुयात् ॥६४

बहुत वित्त से युक्त होता हुआ समृद्ध होकर वहाँ पर उस उत्तम पुर इन्द्रप्रस्थ मे युधिष्ठिर रमण किया करते थे। यह सब उसी लक्ष्मी तीर्थ का ही महा माहात्म्य था ॥ ५८ ॥ हे विप्रगण ! यही उस तीर्थ का वैभव है कि धर्म पुत्र ने यह सब प्राप्त किया था। यह तीर्थ महान् पुण्य वाला है और महान् दारिद्य के विनाश को कर देने वाला है। पुरुषो को धन-धान्य के प्रदान कर देने वाला तथा महापातको को नष्ट कर देने वाला है। यह बड़े से भी बड़े नरको का निहनन करने वाला तथा महान् दुःखो से निवृत कर देने वाला है। मोक्ष का देने वाला—स्वर्ग प्रदान करने वाला और नित्य ही महान् ऋणो से मोचन करा देने वाला है। सुन्दर स्त्री और परम सुपुत्र का दाता है। यह ऐसा महा महिमा मय तीर्थ है कि इसके समान अन्य तीर्थ अब तक न तो कोई हुआ और न भविष्य मे ही कोई होगा। हे विप्रो ! यह आप लोगो को मैंने लक्ष्मीतीर्थ का वैभव कहकर बतला दिया है जो कि दुःस्वप्नो का नाश करने वाला—परम पुण्यमय और समस्त अभीष्टो का साधक होता है। जो कोई भी इस अध्यायका पठन करता है अथवा इसका श्रवण ही भक्तिभाव के सहित कर लेता है वह धन-धान्य से समृद्ध मनुष्य हो जाया करता है इसमे कुछ भी संशय नही है। इस लोक मे समस्त भोगो

का उपभोग करके देह के अन्त में वह मुक्ति को प्राप्त कर लिया करता है ।५६–६४॥

३८—गायत्री सरस्वती तीर्थ प्रशंसा

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि मुनयो लोकपावनम् ।
गायत्र्या च सरस्वत्या माहात्म्यं मुक्तिदं नृणाम् ॥१
शृण्वतां पठतां चैव महापातकनाशनम् ।
महापुण्यप्रदं पुंसां नरकक्लेशनाशनम् ॥२
गायत्र्यां च सरस्वत्यां ये स्नान्ति मनुजा मुदा ।
न तेषां गर्भवासःस्यात्किन्तु मुक्तिर्भवेद् ध्रुवम् ॥३
सरस्वत्यास्तु गायत्र्या गन्धमादनपर्वते ॥४
ब्रह्मपत्न्योः सन्निधानं तन्नाम्ना कथिते इमे ॥५
गायत्र्याश्च सरस्वत्या गन्धमादनपर्वते ।
किमर्थं सन्निधानं वै सूताभूत्तद्वदस्व नः ॥६

श्री सूतजी ने कहा—हे मुनिगण ! इसके अनन्तर अब मैं लोकों को पावन कर देने वाला तथा मनुष्यों को मुक्ति के प्रदान करने वाला गायत्री और सरस्वती तीर्थों का माहात्म्य बतलाता हूँ ॥ १ ॥ जो इस माहात्म्य को पढ़ते हैं अथवा इसका श्रवण किया ही करते हैं उनके महापातकों का यह नाश कर देने वाला है । महापुरुषों को महान् पुण्य को प्रदान किया करता है तथा नरकों के क्लेशों का विनाश कर देने वाला है । गायत्री तीर्थ में और सरस्वती तीर्थ में जो मनुष्य आनन्द के साथ स्नान किया करते हैं उनको फिर गर्भ का वास कभी भी नहीं होता है किन्तु निश्चित रूप से उनकी मुक्ति हो जाया करती है ॥ २, ३ ॥ गन्धमादन पर्वत पर गायत्री और सरस्वती इन दोनों ब्रह्मा की

पत्नियों के सन्निधान से उन्हीं के नाम से ये प्रसिद्ध हुए हैं। ऋषियों ने कहा—हे सूतजी ! गन्धमादन पर्वत पर गायत्री और सरस्वती इन दोनों का सन्निधान किस लिये हुआ था ? यह आप हमको बतला दीजिए ॥ ४, ५, ६ ॥

प्रजापतिः पुराविप्राःस्वांवैदुहितरंमुदा ।
याङ्नाम्नींकामुकोभूत्वास्पृहयामाससमोहनः ॥७
इतिनिन्दन्ति तं विप्रा. स्रष्टारं जगतां पतिम् ।
निपिद्धकृत्यनिरततं दृष्ट्वापरमेष्ठिनम् ॥८
हरः पिनाकमादाय व्याधरूपधरः प्रभुः ।
आकर्णपूर्णकृष्टेन पिनाकधनुषा शरम् ॥९
सयोज्य वेधसन्तेन चिव्याध निशितेन स ।
त्रिपुरान्तकबाणेन विद्धोऽसौन्यपद्भुवि ॥१०
तस्य देहादथोत्थाय महज्ज्योतिर्महाप्रभम् ।
आकाशेमृगशार्षाख्यंनक्षत्रमभवत्तदा ॥११
आर्द्रानक्षत्ररूपी सन्हरोऽप्यनुजगाममनम् ।
पीडयन्मृगशीर्षाख्य नक्षत्र ब्रह्मरूपिणम् ॥१२
अधुनाऽपि मृगव्याधरूपेणत्रिपुरान्तकः ।
अम्बरे दृश्यते स्पष्ट मृगशीर्षान्तिकेद्विजा ॥१३
एव विनिहितेतस्मिन्कृत्मुना परमेष्ठिनि ।
अनन्तरन्तुगायत्रीसरस्वत्योशुचार्दिते ॥१४

श्री सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! पहिले पुरातन समय में प्रजापति अपनी पुत्री जिसका नाम वाङ् है उसी पर कामुक होकर मोहित हो गया था और उसके प्राप्त करने की इच्छा की थी ॥ ७ ॥ विप्रगण जगत् के पति—सृजन करने वाले—निषिद्ध कृत्य को करने वाले उन ब्रह्माजी को देखकर परमेष्ठी की सब निन्दा करते थे। भगवान् हरि ने व्याध का स्वरूप धारण करके प्रभु ने पिनाक ग्रहण किया व

और कानों तक पूरा खींचकर पिनाक धनुष से शर को संयोजित करके उस तीक्ष्ण बाण से उन्होने ब्रह्माजी को बेध दिया था। त्रिपुरान्तक के उस बाण से विद्ध होकर यह ब्रह्माजी भूमि पर गिर गये थे। उस समय मे उनके देह से महती प्रभा वाली एक महान् ज्योति उठकर आकाश मे मृगशीर्ष नाम वाला नक्षत्र हो गया था ॥ ८, ९, १०, ११ ॥ आर्द्रा नक्षत्र के रूप वाले होकर भगवान् हर भी उसके ही पीछे चले गये थे। वहाँ पर आकाश मे भी उस ब्रह्मरूपी मृगशीर्ष नामक नक्षत्र को पीड़ा दे रहे थे ॥ १२ ॥ इस समय मे भी मृग और व्याधरूप से त्रिपुरान्तक भगवान् अम्बर मे हे द्विजो ! मृगशीर्ष के ही समीप मे स्पष्ट दिखलाई दिया करते हैं। इस प्रकार से शम्भु के द्वारा परमेष्ठी के विनिहित होने पर इसके उपरान्त मे गायत्री और सरस्वती दोनो ही चिन्ता से अत्यन्त पीड़ित होगई थी ॥१३, १४॥

सर्वाभीष्टप्रद पुंसां तपः कर्तुं समुद्यते ।
जग्मतुर्नियमोपेत तपः कर्तुं शिवं प्रति ॥१५
स्नानार्थमागमताविप्रा गायत्री च सरस्वती ।
तीर्थद्वयस्वनाम्नाथंचक्रतु पापनाशनम् ॥१६
तत्र त्रिषवणस्नान प्रत्यह चक्रतुर्मुदा ।
बहुकालमनाहारे कामक्रोधादिवर्जिते ॥१७
अत्युग्रानियमोपेते शिवध्यानपरायणे ।
पञ्चाक्षरमहामन्त्र जपेनियते शुभे ॥१८
तयोरथ तपस्तुष्टो महादेवो महेश्वरः ।
सन्निधत्ते महामूर्तिस्तपसा फलदित्सया ॥१९
ततःसंन्निहितशम्भु पार्वतीरमणशिवम् ।
गणेशकार्तिकेयाभ्यांपार्श्वयोःपरिसेवतम् ॥२०
दृष्ट्वासन्तुष्टचित्ते तेगायत्रीचसरस्वती ।
स्तात्रैस्तुष्टुवतुश्शम्भु महादेवघृणानिधिम् ॥२१

ये दोनो पुरुषों के समस्त अभीष्टों के प्रदान करने वाले तप को करने के लिये समुद्यत होगई थी और शिव के प्रति नियमो से समुपेत तपश्चर्या करने के लिये चली गयी ॥१५॥ हे विप्रो ! इन दोनो महादेवियो ने अपने स्नान करने के लिए गायत्री और सरस्वती इन दो अपने ही नामो से पापों के नाश करने वाले तीर्थ बनाये थे ।१६॥ वहाँ पर तीनों समयो में प्रतिदिन परम प्रसन्नता से ये स्नान किया करती थी। बहुत समय पर्यन्त बिना आहार के और काम-क्रोध आदि से रहित होकर अत्यन्त उग्र नियमो से ये दोनो समन्वित रही थी। निरन्तर भगवान् शिव के ध्यान मे परायण होकर परम शुभ इन्होने पञ्चाक्षर महामन्त्र का जाप नियत होकर किया था। इसके अनन्तर उन दोनो के तप से महेश्वर महादेव परम सन्तुष्ट हो गये थे। उन्होंने इन दोनो की तपस्या का फल देने की इच्छा से उन दोनो के समीप मे अपनी महामूर्ति का सन्निधान किया था ॥ १७, १८, १९ ॥ इसके अनन्तर पार्वती रमण शिव शम्भु को अपने सन्निहित उन दोनो ने देखा था। इनके दोनो ओर स्वामि कार्तिकेय और गणेश परिसेवन करने वाले विद्यमान थे। वहाँ पर भगवान् शम्भु का दर्शन करके वे गायत्री और सरस्वती दोनो परम सन्तुष्ट चित्त वाली हो गई थी। उन दोनो ने करुणा की निधि महादेव शम्भु का स्तोत्रो के द्वारा स्तवन किया था ॥२०, २१॥

नमोदुर्वारसंसारध्वान्तध्वंसकहेतवे ।
ज्वलज्ज्वालावलीभीमकालकूटविषादिने ॥२२
जगन्मोहनपञ्चास्त्रदेहनाशकहेतवे ।
जगदन्तकरक्रूर ! यमान्तक ! नमोऽस्तु ते ॥२३
गङ्गातरङ्गसम्पृक्तजटामण्डलधारिणे ।
नमस्तेऽस्तु विरूपाक्ष ! बालशीतांशुधारिणे ! ॥२४
पिनाकभीमटङ्कारत्रासितत्रिपुरौकसे ।
नमस्तेविविधाकार ! जगत्स्रष्टृशिरश्छिदे ॥२५

शान्तामलकृपादृष्टिसंरक्षिमृकण्डुज ! ।
नमस्ते गिरिजानाथ ! रक्षाऽऽवां शरणागते ॥२६
महादेव ! जगन्नाथ ! त्रिपुरान्तक ! शङ्कर ! ।
वामदेवमहादेव ! रक्षाऽऽवां शरणागते ।।२७
सहानेनब्रह्मलोकं याल मा भूद्विलम्बता ।
इति साध्व्या स्तुतः शम्भुर्देवदेवोमहेश्वरः ।
अब्रवीत्प्रीतिसंयुक्तोगायत्रींचसरस्वतीम् ॥२८

गायत्री और सरस्वती दोनों ने कहा—इस परम दुःख से निवारण किये जाने वाले संसार के अन्धकार के ध्वंस करने के एक मात्र कारण स्वरूप आपके लिये हम दोनों की नमस्कार समर्पित है। जलती हुई ज्वालाओं की पंक्तियों वाला महान् भयानक कालकूट विष का भक्षण करने वाले आपके लिये हमारा प्रणाम है ।२२॥ समस्त जगत् को मोहने वाले कामदेव के देह को भस्मीभूत करने के एक मात्र हेतु आप के लिये नमस्कार है। हे जगत् के अन्त कर देने वाले परम क्रूर ! हे यम के भी अन्त करने वाले देव ! आपकी सेवा में हम दोनों का नमस्कार अर्पित है। २३॥ भागीरथी देवी गङ्गा की तरङ्गों से सम्भृत जटाओं के मण्डल को धारण करने वाले। हे विरूपाक्ष ! आप बालचन्द्र को धारण करने वाले हैं आपको हम दोनों का नमस्कार है। पिनाक धनुष की टङ्कार से त्रिपुरत्रय को शमित करने वाले—विविध आकार धारी और जगत् के सृष्टा ब्रह्मा के भी शिर का छेदन करने वाले आपको हमारी नमस्कार है ॥ २४, २५ ॥ परम शान्त एवं अमल कृपा दृष्टि से मृकण्डुज का संरक्षण करने वाले गिरिजा के नाथ आपके लिये हमारा प्रणाम है। हम दोनों ही आपकी शरण में समागत हुई हैं। आप हम दोनों की रक्षा कीजिए। हे महादेव ! हे जगन्नाथ ! हे त्रिपुर के अन्त कर देने वाले। हे शङ्कर ! हे वामदेव महादेव ! शरण में समागत हम दोनों की आप रक्षा कीजिए ॥ २६, २७ ॥ इस भाँति उन दोनों के द्वारा

स्तवन किये जाने पर देवों के भी महेश्वर शम्भु प्रीति से संयुत होकर गायत्री और सरस्वती से बोले—॥२८॥

भोःसरस्वति ! गायत्रि ! प्रीतोऽस्मियुवयोरहम् ।
वरं वरयतं मत्तोयद्वांमनसि वर्तत ॥२९
इत्युक्ते ते तु गायत्रीसरस्वत्यौ हरेण वै ।
अव्रतां पार्वतीकान्तं महादेवघृणानिधिम् ॥३०
त्वमावयोः पितादेव ! तवाप्यावां सुते उभे ।
रक्षाचापतिदानेनतस्मात्त्वंत्रिपुरान्तक ॥३१
स एव प्रार्थितः शम्भुस्ताभ्यां ब्राह्मणपुङ्गवाः ।
एवमस्त्विति सम्प्रोच्य गायत्रीं च सरस्वतीम् ॥३२
सहानेनब्रह्मलोकं यात मा भूद्विलम्बता ।
युवतो सान्निधानेन सदाकुण्डद्वयेऽत्र वै । ३३
भविष्यति नृणां मुक्ति स्नानात्सायुज्यरूपिणी ।
युष्मान्नाम्ना च गायत्रीसरस्वत्याविति द्वयम् ॥३४
इदतीर्थं सर्वलोके ख्याति यास्यतिशाश्वतीम् ।
सर्वेषामपितीर्थानामिदतीर्थद्वयंसदा ॥३५
शुद्धिप्रदंतथा भूयान्महापातकनाशनम् ।
महाशान्तिकरं पुंसां सर्वाभीष्टप्रदायकम् ॥३६
ममप्रसादजननं विष्णुप्रीतिकरन्तथा ।
एतत्तीर्थद्वयसमं न भूतं न भविष्यति ॥३७
अत्रस्नानाद्धि सर्वेषां सर्वाभीष्टं भविष्यति ।
इदंकुण्डद्वयंलोके भवतीभ्यां कृतंमहत् ॥३८

श्री महादेवजी ने कहा—भो सरस्वति ! हे गायत्रि ! मैं आप दोनों से अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । जो भी आपके मनमें हो आप दोनों मुझसे वरदान की याचना करलो । इस तरह से जब वे दोनों गायत्री और सरस्वती भगवान् हर के द्वारा कही गयी तो वे दोनों करुणा के सागर पार्वती के स्वामी महादेवजी से बोलीं—गायत्री और सरस्वती ने कहा—

हे भगवन् ! हे देव ! आप तो सबके ईश हैं और करुणा के आकर हैं। अब आप कृपा करके हमारे भर्ता चतुरानन को प्राणों से युक्त कर देवें। हे देव ! आप तो हमारे पिता हैं और हम दोनो भी आपकी ही पुत्रियाँ हैं। पति के प्रदान के द्वारा हम दोनों की आप रक्षा कीजिए। आप तो त्रिपुर के अन्त करने वाले हैं।। २९, ३०, ३१ ।। इस प्रकार से उन दोनो के द्वारा प्रार्थना किये गये भगवान् शम्भु—हे ब्राह्मणो ! 'ऐसा ही होगा'—यह गायत्री और सरस्वती से कहकर भगवान् शम्भु ने कहा—अब इसके साथ ही आप दोनो ब्रह्मलोक को चली जाओ और यहाँ पर विलम्ब मत करो। आप दोनो के सन्निधान से ये सदा ही दोनो कुण्ड मनुष्यो को स्नान करने से मुक्ति एवं सायुज्य प्रदान करने वाले होगे। ये दोनो ही कुण्ड आप दोनो के ही नाम से गायत्री कुण्ड और सरस्वती कुण्ड विख्यात होगे।। ३२, ३३, ३४ ।। यह तीर्थ समस्त लोक मे शाश्वती प्रसिद्धि को प्राप्त होगे और अन्य सब तीर्थों से भी अधिक महत्त्वशाली सदा ये दोनो तीर्थ होंगे।। ३५ ।। ये शुद्धि के प्रदान करने वाले और महान् पातको के नाश करने वाले होगे। मनुष्यो के लिये ये अत्यधिक शान्ति प्रदान करने वाले तथा सम्पूर्ण अभीष्ट कामनाओ के देने वाले होगे। ये तीर्थ मेरी प्रसन्नता के करने वाले और भगवान् श्री विष्णु को परम प्रीति उत्पन्न करने वाले होगे। इन दोनो तीर्थों के समान अन्य कोई भी तीर्थ न तो अब तक इस भूमण्डल मे हुआ और न भविष्य मे भी होगा। यहाँ पर स्नान करने से सबको समस्त अभीष्टो की प्राप्ति होगी। ये दोनो कुण्ड आप दोनो ने एक महान् वस्तु बना दी ।। ३६ ३७ ।। ३८ ।।

३९—धर्मारण्य-माहात्म्य

पृथ्वीपुरन्ध्रयास्तिलकं ललाटे लक्ष्मीलतायाः स्फुटमालवालम्।
वाग्देवताया जलकेलिरम्यं धर्माटवीं संप्रति वर्णयामि ॥१
साधु पृष्टं त्वया राजन्वाराणस्यधिकाधिकम्।
धर्मारण्यं नृपश्रेष्ठ ! श्रृणुष्वाऽवहितो भृशम् ॥२
सर्वतीर्थानि तत्रैव ऊपर तेन कथ्यते।
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैरिन्द्राद्यैः परिसेवितम् ॥३
लोकपालैश्च दिक्पालैर्मातृभिः शिवशक्तिभिः।
गन्धर्वैश्चाप्सरोभिश्च सेवितं यज्ञकर्मभिः ॥४
शाकिनीभूतवेतालग्रहदेवाधिदवतैः।
ऋतुभिर्मासपक्षैश्च से-अमान सुरासुरैः ॥५
तदाद्य च नृप ! स्थान सर्वसौख्यप्रद तथा।
यज्ञैश्च बहुभिश्चैव सेवित मुनिसत्तमैः ॥६
सिंहव्याघ्रैर्द्विपैश्चैव पक्षिभिर्विविधैस्तथा।
गोमहिष्यादिभिश्चैव सारमैर्मृगशूकरैः ॥७

महा महर्षि प्रवर श्री व्यासदेव जी ने कहा—अब हम धर्माटवी का वर्णन करते हैं जो पृथ्वी पुरन्ध्री के ललाट मे तिलक के समान है तथा लक्ष्मी रूपिणी लता का आलवाल (थाँवला) है और वाग्देवता देवी सरस्वती की रम्य जल केलि है ॥ १ ॥ हे राजन् ! आपने यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है। यह वाराणसी से भी अधिक से अधिक है। हे नृप श्रेष्ठ ! अब आप इस धर्मारण्य क विषय मे अत्यन्त सावधान होकर श्रवण कीजिए ॥ २ ॥ वहीं पर समस्त तीर्थ विद्यमान रहते हैं इससे ऊपर कहा जाता है। यह ब्रह्मा-विष्णु और महेश आदि के द्वारा परिसेवित होता है। सब लोकपाल—दिग्पाल—मातृगण—शिवशक्तिवर्ग—गन्धर्व—यज्ञकर्म और अप्सराओ के द्वारा भी सेवित रहता है अर्थात् ये

सभी वहाँ पर रहा करते हैं ॥ ३ । ४ ॥ शाकिनी—भूत—वेताल-ग्रह-देवाधि—दैवन—ऋतु—लासिपक्ष और सुरासुरों के द्वारा यह धर्मारण्य सेव्यमान होता है ॥ ५ ॥ हे नृप ! यह आद्य स्थान है तथा सब प्रकार के सौख्यों का प्रदान करने वाला है। बहुत से यज्ञों और श्रेष्ठ मुनिवृन्दों द्वारा भी यह सेवित होता है। सिंह-व्याघ्र-हाथी तथा अनेक प्रकार के पक्षिगण से और गौ-महिषी आदि एवं सारस-मृग शूकरों से भी यह सेवित होता है ॥ ६, ७ ॥

सेवितं नृपशार्दूल श्वापदैर्विविधैरपि ।
तत्र ये निधनं प्राप्ताः पक्षिणः कीटकादयः ॥८
पशवः श्वापदाश्चैवजलस्थलचराश्च ये ।
खेचरा भूचराश्चैवडाकिन्यो राक्षसास्तथा ॥९
एकोत्तरशत-सार्द्धं मुक्तिस्तेषांहिशाश्वती ।
तेसर्वेविष्णुलोकांश्चप्रायान्त्येव नसंशयः ॥१०
सन्तारयति पूर्वजान्दश पूर्वान्दशापरान् ।
यवव्रीहितिलैः सर्पिर्बिल्वपत्रैन दूर्वया ॥११
गुडैश्चवोदकैर्नाथ तत्र पिण्डं करोति यः ।
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम् ॥१२
वृक्षैरनेकधा युक्तं लतागुल्मैः सुशोभितम् ।
सदा पुण्यप्रदं तच्च सदा फलसमन्वितम् ॥१३
निर्वैरं निर्भयं चैव धर्मारण्यं च भूपते ।
गावो व्याघ्रैः क्रीडयते तत्र तथा मार्जारमूषकैः ॥१४

हे नृपशार्दूल ! विविध भाँति के श्वपदों के द्वारा यह सेवित होता है। वहाँ पर जो भी पक्षी और कीटक प्रभृति निधन को प्राप्त हुए हैं। पशुगण और श्वापद आदि—जलचर स्थलचर—खेचर—भूचर—डाकिनी-राक्षस जो भी निधन को प्राप्त होते हैं उनको एकोत्तरशत सार्द्ध मुक्ति शाश्वती हुआ करती है। वे सभी विष्णुलोकों को प्रयाण किया

किया करते हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है ॥८, ६, १०॥ वह अपने दस पहिले पुरखाओं को और दस आगे होने वाली पीढ़ियों को भली भाँति तार दिया करता है। जो कोई जौ-व्रीहि-तिल-घृत-बिल्वपत्र-दूर्वा—पुष्प और उदक से वहाँ पर पिण्ड प्रदान किया करता है वह एकोत्तरशत कुल को और सात गोत्रों का उद्धार कर दिया करता है। यह धर्मारण्य अनेक प्रकार के वृक्षों और लता गुल्मों से सुशोभित है। यह सदा पुण्य प्रदान करने वाला और फलों से समन्वित रहा करता है। हे नृपते ! वैर रहित—भयहीन धर्मारण्य है वहाँ पर गौ और व्याघ्र तथा मूषक और मार्जार मिलकर क्रीड़ा करते हैं ॥११-१४॥

भेकोऽहिना क्रीडते च मानुषा राक्षसैः सह।
निर्भयं वसते तत्र धर्मारण्य च भूतले ॥१५
महानन्दमयं दिव्यं पावनात्पावनं परम्।
कलकण्ठः कलोत्कण्ठमनुगुञ्जति कुञ्जगः ॥१६
ध्यानस्थं श्रोष्यति सदा पारावत्योति वाऽर्थ्यते।
कोकः कोकीं परित्यज्य मौनं तिष्ठति तद्भयात् ॥१७
चकोरश्चन्द्रिकामोक्षनानन्त वनमिवस्थितः।
पठन्ति सरिका मारशुकसम्बोधयन्त्यहो ॥१८
अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिनः।
अपारसारमसारं सिन्धुपारप्रद शिवः।
आलस्येनापि यो यायाद्गृहाद्धर्मवनं प्रति ॥१९
अश्वमेधाधिको धर्मस्तस्य स्यान्तु पदेपदे।
शापानुग्रहसंयुक्ता ब्राह्मणास्तत्र सन्ति वै ॥२०

इस धर्मारण्य में भेक (मेंढक) सर्प के साथ मिलकर क्रीड़ा मैत्री के भाव में किया करता है और मनुष्य गण राक्षसों के साथ मिल-जुलकर आनन्द किया करते हैं। इस भूतल में वह ऐसा धर्मारण्य स्थल स्थल है कि जहाँ पर भय का नाम तक नहीं है। सभी निर्भय होकर

निवास करते हैं। यह महान् आनन्द से परिपूर्ण एवं परम दिव्य है तथा पावन से भी परम पावन है। कुञ्ज में गमन करने वाला कलकण्ठ (कोयल) अपने परम मधुर कण्ठ से सदा अनुगुञ्जन किया करता है। ॥ १५, १६ ॥ ध्यान में स्थित होकर सुभोगे उस समय में पारावसी के द्वारा धारण किया जाता है। उसके भय से कोक अपनी प्रिया कोकी का परित्याग करके मौन होकर स्थित रहा करता है ॥ १७ ॥ चन्द्र की किरणों का भोग करने वाला चकोर नक्त (रात्रि) व्रत करने वाले के समान परम शान्त होकर समास्थित रहा करता है। सारिकाऐं सार वचनों का पाठ किया करती हैं और शुक (तोता) को सम्बोधित किया करती है ॥ १८ ॥ बिना पारावार वाला यह संसार रूपी सागर है इसमें सिन्धु के पार का प्रदान करने वाला भगवान् शिव ही है। जो कोई आलस्य करके भी अपने घर से इस धर्मारण्य की ओर चला जाया करता है उसका पद-पद में अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक धर्म होता है क्योंकि वहाँ पर शाप देने की तथा परम अनुग्रह करने की सामर्थ्य रखने वाले ब्राह्मण निवास किया करते हैं ॥१९, २०॥

अष्टादशसहस्राणि पुण्यकार्येषु निर्मिताः।
षट्त्रिंशत्तु सहस्राणि भृत्यास्ते वणिजो भुवि ॥२१
द्विजभक्तिसमायुक्ता ब्रह्मण्यास्ते स्वयोनिजाः।
पुराणज्ञाः सदाचारा धार्मिकाः शुद्धबुद्धयः ॥
स्वर्गे देवा प्रशसन्ति धर्म्मारण्यनिवासिन. ॥२२॥
धर्मारण्यमिति त्रिदशै.कदा नामप्रतिष्ठितम्।
पावनभूतलेजातकस्मात्तेन विनिर्मितम् ॥२३
तीर्थभूतन्त्रिकस्मात्चाकारणात्तद्वदस्वमे।
ब्राह्मणा ...तिम...स्थाका वन...स्थापिता.पुरा ॥२४
अष्टादशसहस्राणि किमर्थंस्थापितानिवै।
कस्मिन्नशेषमुख्या ब्राह्मणाब्राह्मसत्तमा. ॥ ५

सर्वविद्यासु निष्णाता वेदवेदाङ्गपारगाः ।
ऋग्वेदेषु च निष्णाता यजुर्वेदकृतश्रमाः ॥२६
सामवेदाङ्गपारज्ञास्त्रैविद्या धर्मवित्तमाः ।
तपोनिष्ठाः शुभाचाराः सत्यव्रतपरायणाः ॥२७
मासोपवासैः कृशितास्तथा चान्द्रायणादिभिः ।
सदाचाराश्च ब्रह्मण्याः केन नित्योपजीविनः ॥
तत्सर्वमाविलः कृत्स्नं ब्रूहि मे वदताम्वर ॥२८
दानवास्तत्र दैतेया भूतवेतालसम्भवाः ।
राक्षसाश्च पिशाचाश्च उद्वेजन्ते कथ न तान् ॥२६

पुण्य कार्यों में अठारह सहस्र निर्मित किये हैं। छत्तीस हजार भूमण्डल में मुख्य वाणिजों को बनाया है। ये द्विजों की भक्ति से युक्त ब्राह्मण्य और अयोनिज हैं। पुराणों के ज्ञाता—सत् आचार वाले—परम धार्मिक और शुद्ध बुद्धि वाले हैं। स्वर्ग में देवगण भी इन धर्मारण्य के निवासियों की प्रशंसा किया करते हैं ॥ २१ । २२ ॥ युधिष्ठिर ने कहा—देवगणों ने 'धर्मारण्य'—यह नाम किस समय में प्रतिष्ठित किया है जो यह परम पावक भूतल में हुआ था—यह उसने किस कारण से निर्मित किया गया है ? हे भगवन् ! यह तीर्थ का स्वरूप धारण करने वाला किस हेतु से होगया है-यह आप मुझे बतलाने की कृपा कीजिये ? ब्राह्मण कितनी संख्या वाले हैं और पहिले किसके द्वारा ये स्थापित किये गये हैं ? ॥२३,२४॥ अष्टादश सहस्र किस प्रयोजन की सिद्धि के लिये स्थापित किये गये? किस वंश में ये महाश्रेष्ठ ब्राह्मण समुत्पन्न हुए थे ? ॥२५॥ समस्त विद्याओं में परम कुशल—वेदों और वेदाङ्गों के अत्यन्त ज्ञाता जो कि पूर्णतया पारगामी हैं—ऋग्वेदों में निष्णात यजुर्वेदपूर्ण श्रम करने वाले—सामवेदाङ्ग के पारगामी तीन तरह से वैविद्या वाले—धर्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ—तपश्चर्या में परमनिष्ठ—शुभ आचार वाले—सत्य के व्रत में परायण—मास पर्यन्त उपवास करके कृश शरीर वाले जो इन चान्द्रायण

आदि मास स्वामी हुआ करते हैं। सद्आचार से सुसम्पन्न ब्राह्मण से जिससे नित्य उपजीवी हुआ करते हैं—यह सभी आप आरम्भ से ही हे बोलने वालों में परम वरिष्ठ ! मुझे बतलाइये ! यहाँ पर दानव-दैत्य-भूत-वैताल गन्धर्व-राक्षस और पिशाच ये सभी उनको उद्विग्न क्यों नहीं किया करते हैं ? ॥२६-२६॥

४०—सदाचार वर्णन

अतः परं प्रवक्ष्यामि धर्मारण्यनिवासिना ।
यत्कार्यं पुरुषेणेह गार्हस्थ्यमनुतिष्ठता ॥१
धर्मारण्येषु ये जाता ब्राह्मणाः शुद्धवंशजाः ।
अष्टादशसहस्राश्च जिशैश्च विनिर्मिताः ॥२
सदाचारा पवित्राश्च ब्राह्मणा ब्रह्मवित्तमाः ।
तेषां दर्शनमात्रेण महापापैर्विमुच्यते ॥३
पाराशर्य ! समाख्याहि सदाचार च वै प्रभो ! ।
आचाराद्धर्ममाप्नोति आचाराल्लभते फलम् ॥
आचाराच्छ्रियमाप्नोति तदाचार वदस्व मे ॥४॥
स्थावराः कृमयाऽब्जाश्च पक्षिणः पशवो नराः ।
क्रमेण धार्मिकास्त्वेते एतेभ्यो धार्मिकाः सुराः ॥५
सहस्रभागात्प्रथमे द्वितीयानुक्रमास्तथा ।
सर्व एते महाभागा पापान्मुक्तिसमाश्रयाः ॥६
चतुर्णामपि भूतानां प्राणिनाऽतीव चोत्तमा ।
प्राणिभ्योऽपि मुनि (नृप) श्रेष्ठा सर्वे बुद्ध्युपजीविनः ॥ ७

महामहिम महर्षि श्री व्यासदेव जी ने कहा—इसके आगे अब हम यह बतलायेंगे कि धर्मारण्य में निवास करने वाले तथा गार्हस्थ्य आश्रम

में सस्थित पुरुषों को यहाँ पर जो कुछ करना चाहिए। इस धर्मारण्य में जो शुद्ध मन में समुत्पन्न ब्राह्मण हुए हैं वे अठारह सहस्र हैं और कायस्थों के द्वारा निर्मित हुए हैं। ये सब आचार वाले ब्रह्म के पूर्ण एवं श्रेष्ठ ज्ञाता तथा पवित्र ब्राह्मण हैं। उनके केवल दर्शन से ही मनुष्य महापापों से छुटकारा पा जाया करते हैं। युधिष्ठिर ने कहा—हे पाराशर्य देव ! हे प्रभो ! अब आप सदाचार का वर्णन कीजिए क्योंकि आचार एक महान् वस्तु है। इस आचार से ही मनुष्य धर्म की प्राप्ति किया करता है और आचार से फल पाता है। आचार से श्री का लाभ होता है इसलिये आप उस आचार को मुझे बतलाइये ॥ १, २, ३, ४ ॥ श्री व्यासजी ने कहा—स्थावर–कृमि–अब्ज—पक्षी—पशु और मानव—ये क्रम से धार्मिक होते हैं और इनसे विशेष धार्मिक सुर हुआ करते हैं ॥ ५ ॥ प्रथम सहस्र भाग से द्वितीयानुक्रम वाले हैं। ये सब महाभाग हैं जो पाप से मुक्ति के समाश्रय वाले होते हैं। चारों प्रकार के भूतों में जो प्राणी होते हैं वे अतीव उत्तम हुआ करते हैं। इन प्राणियों से भी श्रेष्ठ मुनिगण होते हैं। ये सभी बुद्धि के द्वारा उपजीवी हुआ करते हैं ॥ ६, ७ ॥

मतिमद्भ्यो नराः श्रेष्ठास्तु वाडवाः ।
विप्रेभ्योऽपि च विद्वांसो विद्वद्भ्यः कृतबुद्धयः ॥८
कृतधीभ्योऽपि कर्तारः कर्तृभ्यो ब्रह्मतत्पराः ।
न तेभ्योऽभ्यधिकः कश्चित्त्रिषु लोकेषु भारत ! ॥९
अन्योन्यं पूजकास्ते च तपोविद्याविशेषतः ।
ब्राह्मणो ब्रह्मणा सृष्टः सर्वभूतेश्वरोऽयतः ॥१०
अतो जगत्स्थितं सर्वं ब्राह्मणोऽर्हति नापरः ।
सदाचारोऽस्मिन्विहीनाचाराद्विच्युतः पुनः ॥११
तस्माद्विप्रेण सततं भाव्यमाचारशालिना ।
विद्वेषरागरहिता अनुतिष्ठन्ति यं मुने ! ॥१२
सिद्धमेतं सदाचारं धर्ममूलं विदुर्बुधाः ।

लक्षणैः परिहीनोऽपि सम्यगाचारतत्परः ॥१३
श्रद्धालुरनसूयश्च नरो जीवेत्समाः शतम् ।
श्रुतिस्मृतिभ्यामुदितस्वेषुस्वेषु च कर्मसु ॥१४

मतिमानों से परम श्रेष्ठ नर होते हैं। इनसे भी श्रेष्ठ ब्राह्मण हुआ करते हैं। विप्रों में भी श्रेष्ठ विद्वान् जो होते हैं वे हुआ करते हैं और विद्वानों से भी अधिक श्रेष्ठ कृतबुद्धि हुआ करते हैं ॥ ८ ॥ उन बुद्धि वालों में भी श्रेष्ठ कर्त्ता और कर्त्ताओं से अधिक ब्रह्म तत्पर श्रेष्ठ होते हैं। हे भारत! इनसे अधिक श्रेष्ठ कोई भी इन तीन लोकों में नहीं हुआ करता है ॥ ९ ॥ तप और विद्या की विशेषता से ये एक दूसरों के पूजक हुआ करते हैं। ब्रह्मा के द्वारा ही ब्राह्मण सृष्ट हुआ है क्योंकि यह तो सब भूतों का ईश्वर होता है। अतएव यह सब स्थित जगत् है और ब्राह्मण ही इसकी अर्हता रखता है अन्य दूसरा कोई भी नहीं है। सदाचार ही सब अर्हताओं से पूर्ण होता है जो आचार से विच्युत होता है वह कुछ भी नहीं है। इसीलिए विप्र को सर्वदा आचार के शील (स्वभाव) वाला होना चाहिए। हे मुने! विद्वेष और राग से रहित होते हुए जिनको अनुष्ठित किया करते हैं बुधगण उनको ही जो धर्म का मूल सदाचार होता है निर्दिष्ट करते हैं। लक्षणों से परिहीन भी पुरुष भली भाँति आचार में तत्पर रहने वाला होता है और श्रद्धा वाला तथा किसी को भी असूया न करने वाला हो वह सौ वर्षों तक जीवित रहा करता है। अपने २ कार्यों में श्रुति और स्मृति इन दोनों के द्वारा जो कहलाया है उसी आचार का सेवन करना चाहिए ॥ १०, ११, १२ १३, १४ ॥

सदाचारं निषेवेत धर्ममूलमतन्द्रितः ।
दुराचाररतो लोके गर्हणीयः पुमान्भवेत् ॥१५
व्याधिभिश्चाभिभूयेत सदाल्पायुः सुदुःखभाक् ।
त्याज्यं कर्म पराधीनं कार्यमात्मवशं सदा ॥१६

दुःखी यतः पराधीनःसर्वमात्मवशःसुखी ।
यस्मिन्कर्मण्यंतरात्माक्रियमाणेप्रसीदति ॥१७
तदेव कर्म कर्त्तव्यं विपरीतं न च क्वचित् ।
प्रथमधर्मसर्वस्व प्रोक्त यन्नियमा यमाः ॥१८
अतस्तेष्वेव वं यत्नः कर्त्तव्योधर्ममिच्छता ।
सत्यक्षमार्जवध्यानमानृशंस्यमहिंसनम् ॥१९
दमः प्रसादो माधुर्यं मृदुतेति यमा दश ।
शौच स्नानतपोदान मौनेज्याध्ययन व्रतम् ॥२०
उपोषणोपस्थदण्डो दशैतेनियमाः स्मृता. ।
काम क्रोध दम मोहमात्सर्यंलोभमेवच ॥२१
अमन्षड्वरिणोजित्वासर्वत्रविजयी भवेत् ।
शनैःसञ्चिनुयाद्धर्मंवल्मीकशृङ्गवान्यथा ॥२२

तन्द्रा से रहित होकर धर्म के परम मूल सदाचार का सेवन अवश्य ही करे। जो दुराचार में रति रखने वाला पुरुष होता है वह लोक में महान् निन्दा का पात्र हो जाया करता है ॥ १५ ॥ दुराचारी पुरुष होता है वह व्याधियों से अभिभूत हो जाया करता है अर्थात् उसे बहुत-से रोग घेर लिया करते है– वह सदा ही अल्प आयु वाला होता है और हमेशा दुःखों के भोगने वाला रहा करता है। जो पराये अधीन कार्य हो उसको परित्यक्त कर देवे और सदा जो आत्मवश हो उसे ही करना चाहिए ॥ १६ ॥ क्योंकि जो पराधीन होता है वह दुःखी रहा करता है और जो आत्मवश होता है वह सुखी हुआ करता है। जिस कर्म के करने या किये जाने पर अन्तरात्मा प्रसन्न होता है उसी कर्म को सदा करना चाहिए। इससे विपरीत कर्म को कभी भी न करे। सबसे प्रथम तो धर्म का सर्वस्व नियमों और यमों को बतलाया गया है। इसलिये जो भी कोई धर्म की इच्छा रखता है उसका उन्हीं में पूर्ण यत्न करना चाहिए अर्थात् यम और नियमों का पूर्ण पालन करे।

यम दश संख्या वाले होते हैं—सत्य—क्षमा—आर्जव (सीधापन)—ध्यान—आनृशंस्य (क्रूरता का अभाव)—अहिंसा—दम—प्रसाद—माधुर्य—मृदुता ये दश यम होते हैं। शौच—स्नान—तप—दान—मौन—इज्या—अध्ययन—व्रत—उपोषण—उपस्थ दण्ड—ये दश नियम कहे गये हैं। काम—क्रोध—मद—मोह—मात्सर्य और लोभ इन छै शत्रुओं को जीत कर मनुष्य सर्वत्र विजयी हो जाया करता है। धर्म का शनैः—शनैः सञ्चयन करना चाहिए जिस तरह से पुत्तिका वाल्मीक को किया करती है ॥१७-२२॥

परपीडामकुर्वाणं परलोकसहायिनम् ।
धर्म एव सहायो स्यादमुत्र परिरक्षितः ॥२३
पितृमातृसुतभ्रातृयोषिद्बन्धुजनादिकः ।
जायते चैकलः प्राणी म्रियते च तथैकलः ॥२४
एकलः सुकृतभुङ्क्ते भुङ्क्ते दुष्कृतमेकलः ।
देहे पञ्चत्वमापन्ने त्यक्त्वैनं काष्ठलोष्ठवत् ॥२५
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मो यान्तमनुव्रजेत् ।
अतः सञ्चिनुयाद्धर्ममत्रामुत्रसहायिनम् ॥२६
धर्मसहायिनं लब्ध्वा सन्तरेद्दुस्तरं तमः ।
सम्बन्धानाचरेन्नित्यमुत्तमैरुत्तमैः सुधीः ॥२७
अधमानधमांस्त्यक्त्वा कुलमुत्कर्षतां नयेत् ।
उत्तमानुत्तमानेव गच्छेद्धीनांस्तु वर्जयेत् ॥
ब्राह्मणः श्रेष्ठतामेति प्रत्यवायेन शूद्रताम् ॥२८

परलोक में सहायता करने वाला एक मात्र धर्म्म ही हुआ करता है। दूसरों को पीडा को न करता हुआ रहे और इस लोक में जिसकी भली भाँति सुरक्षा की गई है वह धर्म ही परलोक में सहायक होता है क्योंकि सुरक्षित धर्म्म ही रक्षक होता है। पिता—माता—पुत्र—भ्राता—स्त्री और बन्धु जन से अधिक केवल यह प्राणी एक ही समुत्पन्न होता है

और अकेला ही मरता है। उपर्युक्त लोगों में कोई भी साथी नहीं रहा करता है किये हुए सुकृत को भी अकेला ही भोगता है तथा दुष्कृत का फल भी अकेले को ही भोगना पड़ता है इन दोनों का भागीदार कोई भी नहीं होता है। इस देह के पञ्चत्व प्राप्त हो जाने पर इस अकेले को ही काष्ठ तथा ढेले के समान त्याग कर सभी प्रियतम बान्धव गण भी विमुख होकर चले जाया करते हैं। उस परलोक यात्रा में गमन करने वाले प्राणी के साथ एक धर्म ही जाया करता है। इसीलिये धर्म का सञ्चय करना चाहिए जो इस लोक और परलोक में सहायता करने वाला हुआ करता है। सहायक धर्म को प्राप्त करके प्राणी इस परम दुस्तर तम को तर जाया करता है। सुधी पुरुष का कर्त्तव्य है कि उत्तम उत्तमों से सम्बन्धों का समाचरण करे। जो अधम-अधम हों उनका परित्याग करके कुल को उत्कर्षता को प्राप्त करे। श्रीमान पुरुष को चाहिए कि उत्तम से उत्तम जो पुरुष हों उनकी सङ्गति करे और सबको वर्जित कर देना चाहिए। ब्राह्मण लाभो परम श्रेष्ठता को प्राप्त हुआ करता है तथा प्रत्यवाय से शूद्रता को भी प्राप्त हो जाया करता है ॥ २३-२८ ॥

अनध्यायनशीलं च सदाचारविलङ्घिनम्।
सालसं च दुरन्नादं ब्राह्मणं बाधतेऽन्तकः ॥२९
अतोऽभ्यस्येत्प्रयत्नेन सदाचारं सदा द्विज।
तीर्थान्यप्यभिवाञ्छन्ति सदाचारिसमागमम् ॥३०
रजनीप्रान्तयामार्द्धं ब्राह्मः समय उच्यते।
स्वहितचिन्तयेत्प्राज्ञस्तस्मिन्नुत्थाय सर्वदा ॥३१
गजास्यं संस्मरेदादौ ततः ईशं सहाम्बया।
श्रीरङ्गं श्रीसमेतं तु ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥३२
इन्द्रादीन्सकलान्देवान्वसिष्ठादीन्मुनीनपि।
गङ्गाद्याः सरितः सर्वाः श्रीशैलाद्यखिलान्गिरीन् ॥३३

क्षीरोदादीन्समुद्रांश्च मानसादिसरांसि च ।
वनानि नन्दनादीनिधेनूः कामदुघादयः ॥३४
कल्पवृक्षादिवृक्षांश्च धातून्काञ्चनमुख्यतः ।
दिव्यस्त्रीरुर्वशीमुख्याः प्रह्लादाद्यान्हरेः प्रियान् ॥३५

जो ब्राह्मण अध्ययनशील नहीं होता है—जो सदाचारों का विलङ्घन करने वाला होता है—जो आलसी होता है और दुष्ट अन्न का खाने वाला होता है ऐसे ब्राह्मण को यमराज बाधा दिया करता है। इसलिये प्रयत्न पूर्वक द्विज को सदा ही सदाचार का अभ्यास करना चाहिए। जो सदाचारी होता है उसके समागम प्राप्त करने के लिये तीर्थ भी अभिलाषा किया करते हैं। रात्रि के प्रान्तयामार्द्ध ब्राह्म समय कहा जाया करता है। उसी समय में शय्या से उठकर प्राज्ञ पुरुष को अपने हित के विषय में सर्वदा चिन्तन करना चाहिए। सबसे प्रथम उठ कर गजानन (श्री गणेश) का ध्यान करे फिर इसके उपरान्त भगवती अम्बा के सहित विराजमान श्री शम्भु का चिन्तन करना चाहिए। श्री के सहित श्रीरङ्ग प्रभु और कमलोद्भव ब्रह्माजी का ध्यान करे ॥ २६, ३० ३१, ३२॥ इसके अनन्तर इन्द्र प्रभृति समस्त देवगण तथा वसिष्ठ प्रभृति मुनिगण—भागीरथी गङ्गा आदि सरिताऐं—श्री शैल आदि समस्त शैल—क्षीरोदाध प्रभृति समुद्र—मानस आदि सरोवर—नन्दन आदि वन—कामदुघा आदि धेनु—कल्प वृक्ष आदि वृक्ष—काञ्चन आदि मुख्य धातु उर्वशी प्रमुख दिव्य स्त्री और प्रह्लाद आदि श्रीहरि के परम प्रिय भक्तों का क्रमशः ध्यान करना चाहिए ॥३३, ३४, ३५ ॥

जननीचरणौस्मृत्वासर्वतीर्थोत्तमोत्तमौ ।
पितरंचगुरूंश्चापिहृदिध्यात्वा प्रसन्नधीः ॥३६
ततश्चावश्यकं कर्तुं नैरृतीं दिशमाव्रजेत् ।
ग्रामाद्धनुःशतं गच्छेन्नगराच्चचतुर्गुणम् ॥३७
तृणैराच्छाद्य वसुधां शिरः प्रावृत्य वाससा ।

कर्णोपवीत उदङ्मुखो दिवसे सन्ध्ययोरपि ॥३८
विण्मूत्रे विसृजेन्मौनी निशायां दक्षिणामुखः ।
न तिष्ठन्नाशु नो विप्रगोवह्न्यनिल सम्मुखः ॥३६
न फालकृष्टे भूभागे न रथ्यासैव्यभूतले ।
नाऽऽलोकयेद्दिशो भागाञ्ज्योतिश्चक्रं नभोमलम् ॥४०
वामेन पाणिना शिश्नं धृत्वोत्तिष्ठेत्प्रयत्नवान् ।
अथो मृदं समादद्याज्जन्तुकर्करवर्जिताम् ॥४१

समस्त तीर्थों से भी परमोत्तम अपनी माता के चरणों का स्मरण करके फिर पिता तथा श्री गुरुदेव का हृदय में ध्यान करके प्रसन्न बुद्धि वाला होवे । इसके अनन्तर आवश्यक शारीरिक कृत्य करने के लिये नैऋत्य दिशा में गमन करना चाहिए । ग्राम से सौ धनुष दूर जाना चाहिए और यदि नगर हो तो इससे चौगुने फासले तक गमन करे । भूमि को तृणों से समाच्छादित करके तथा वस्त्र से अपने शिर को बाँध करके—कानों पर उपवीत को चढ़ा कर उत्तर की ओर मुख करके दिन में तथा दोनों सन्ध्या कालों में पुरीष और मूत्र का विसर्जन करना चाहिए । मल त्याग के समय में मौन रखना चाहिए । यदि निशा काल में मल-मूत्र का विसर्जन करना हो तो दक्षिण दिशा की ओर मुख करके करे । कभी भी खड़े होकर मल-मूत्र का त्याग न करे । विप्र—गौ—अग्नि—वायु—इनके सामने मल-मूत्र का त्याग कभी नहीं करना चाहिए ॥ ३६, ३७, ३८, ३६ ॥ जो भूमि का भाग हल से जुता हुआ हो उसमें—रथ्या (गली या मार्ग) में तथा सेव्य भूतल में कहीं भी मल-मूत्र का त्याग नहीं करना चाहिए । मल विसर्जन करने के समय में दिशाओं की ओर नहीं देखना चाहिए । ज्योतिश्चक्र और नभोमल को भी नहीं देखे । वाम पाणि (हाथ) से शिश्न (मूत्रेन्द्रिय) को पकड़ कर प्रयत्न वाला होता हुआ उठना चाहिए । इसके पश्चात् कीट जन्तु और कङ्कड़ों से रहित मिट्टी ग्रहण करे ॥ ४० ॥ ४१ ॥

विहायमूषकोत्खाताचोच्छिष्टाकेशसंकुलाम् ।
गुह्ये दद्यान्मृदचैकाप्रक्षाल्यचाम्बुनाततः ॥४२
पुनर्वामकरेणेति पञ्चधा क्षालयेद्गुदम् ।
एकैकपादयोदद्यात्तिस्रः पाण्यामृदस्तया ॥४३
इत्य शौच गृही कुर्याद्गन्धलेपक्षयावधि ।
क्रमाद्द्गुण्यत कुर्याद्ब्रह्मचर्यादिषु त्रिषु ॥४४
दिवाविहितशौचाच्च रात्रावर्द्धं समाचरेत् ।
परग्रामे तदर्धं च पथि तस्याधमेव च ॥४५
तदर्धंरागिणा चापिमुस्थेन्यून नकारयेत् ।
अपि सवनदीतोयैर्मृत्कूटश्चाप्यगोपमैः ॥४६
आपातमाचरेच्छौच भावदुष्टो न शुद्धिभाक् ।
आर्द्रधात्रीफलोन्माना मृदः शौचे प्रकीर्तिताः ॥४७
सर्वाश्चाहुतयोऽप्येव ग्रासाश्चान्द्रायणेपिच ।
प्रागास्य उदगास्यो वा सूपविष्टः शुचौ भुवि ॥४८
उपस्पृशेद्द्विहीनाभिस्तुषागारास्थिभस्मभिः ।
अतिस्वच्छाभिरद्भिश्च यावद्धृद्गाभिरत्वरः ॥४६

जो मृत्तिका मूषकों से उखाड़ी या खोदी हुई हो या जो उच्छिष्ट हो एवं केशों से संकुल हो उसका परित्याग कर देवे । एक बार जल से प्रक्षालन करके गुह्य भाग से मिट्टी लगावे और जल से प्रक्षालन करे । फिर वाम हस्त से गुदा को पाँच बार प्रक्षालित करना चाहिए । एक-एक बार पैरों में मिट्टी लगावे और तीन बार दोनों हाथों में मृत्तिका लगानी चाहिए । इस तरह से गृहस्थी मनुष्य को अपनी शुद्धि करनी चाहिए । जब तक गन्धलेप का क्षय न हो तब तक मटियाना आवश्यक है । ब्रह्मचारी आदि अन्य तीन आश्रमों वालों को क्रम से द्वैगुण्य भाव से अपनी शुद्धि करनी चाहिए । अर्थात् क्रम से एक-एक गुना बढ़ा करके करे ॥४२॥४३॥४४। दिन में जो शौच किया जाता है उससे रात्रि के

समय में आधा ही करना चाहिए ॥४५॥ जो रोगग्रस्त मनुष्य हो उनको भी इससे आधा ही शौच करना पर्याप्त होता है किन्तु जब स्वस्थता हो तो आलस्य या प्रमाद से न्यून नहीं करे। समस्त नदियों के जल से और आम्लगोपम मृत्कूटों से भी आपात शौच करे। जो भाव दुष्ट होता है वह कभी भी शुद्धि वाला नहीं होता है। शौच कर्म में आर्द्र धात्री के फल (कच्चे आँवला) के समान मिट्टी बतलायी गयी है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥ इसी प्रकार से सभी आहुतियाँ तथा चान्द्रायण व्रत में ग्रास भी होने चाहिए। पूर्व की ओर मुख वाला होकर या उत्तर दिशा की ओर मुख वाला होकर किसी शुचि भू भाग में बैठकर विहीन तुषाङ्गाराग्नि भस्म से उपस्पर्श न करना चाहिए। प्रयत्न क्रम से जब तक पूर्ण शुद्धि हो तब तक शान्ति पूर्वक करना चाहिए॥ ४८ ॥ ४९ ॥

ब्राह्मणो ब्रह्मतीर्येण दृष्टिपूताभिराचमेत् ।
कण्ठगाभिर्नृपः शुद्ध्येत्तालुगाभिस्तथोरुजः ॥५०
स्त्रीशूद्रावथ संस्पर्शमात्रेणापि विशुध्यतः ।
शिरः सवद नकण्ठं वा अन्नं मुक्तशिखोऽपि वा ॥५१
अप्रक्षालितपदस्त्वाचान्तोऽप्यशुचिर्मतः ।
त्रिः पीत्वाम्बु विशुद्धयर्थं ततः खानि विशोधयेत् ॥५२
अङ्गुष्ठमूलदेशे ह्यधरोष्ठौ परिमृजेत् ।
स्पृष्ट्वाऽऽत्मेन हृदयं समस्ताभिः शिरःस्पृशेत् ॥५३
अङ्गुल्यग्रैस्तथा स्कन्धौ साम्बु सर्वांस्तु संस्पृशेत् ।
आचान्तः पुनराचामेत्कृत्वा स्थ्योपसर्पणम् ॥५४
स्नात्वा भुक्त्वा पयः पीत्वा प्रारम्भे शुभकर्मणाम् ।
सुप्त्वा वासः परीधाय दृष्ट्वा तथाप्यमङ्गलम् ॥५५
प्रमादादशुचि स्पृष्ट्वा द्विराचान्तः शुचिर्भवेत् ।
दन्तधावनमकुर्वीत यस्मात्तस्मात्तथा स्मृतः ॥५६
आचान्तोऽप्यशुचिर्यस्मादकृत्वा दन्तधावनम् ॥५६

ब्राह्मण को ब्रह्मतीर्थ दृष्टि पूत जल से आचमन करना चाहिए। नृप. कण्ठगामी जल से शुद्ध होता है। वैश्य तालु पर्य्यन्त जल से और शूद्र तथा स्त्री जल के सस्पर्श मात्र से ही शुद्ध हो जाया करते हैं। शिर शब्द सकण्ठ अथवा जल मे मुक्त शिखा वाला भी बिना दोनो पैर धोये हुए आचान्त होने पर भी अशुचि ही माना गया है। विशुद्धि के लिये तीन बार जल का पान करके इसके पश्चात् खनों का विशोधन करे ॥५० ॥५१॥५२॥ अंगूठे के मूल देश से अधरोष्ठो का परिमार्जन करे। जल से हृदय का स्पर्श करके फिर शेष समस्त से शिरका स्पर्श करना चाहिए। अंगुलियो के अग्रभागो से तथा दोनो स्कन्धो को सर्वत्र जल के सहित सस्पर्श करे। यदि रथ्या का उपसर्पण किया हो तो भी आचमन करना चाहिए॥५३॥५४॥ स्नान करके–भोजन करके–पय.पान करके–शुभ कर्मों के आरम्भ काल मे–सोकर उठने पर–वस्त्रो का परिधान करके। किसी अमङ्गल को देखकर–प्रमाद से अशुचि हाने पर या किसी अशुचि का स्मरण करके दो बार आचमन करके ही शुचि होता है। धर्म शास्त्र मे जिस विधि-विधान से बतलाया गया है उसी भांति दन्तधावन (दंतून) करनी चाहिए। क्योंकि आचान्त होने वाला पुरुष भी जब तक दन्त धावन नही किया करता है अशुचि ही रहा करता है। दंतून करना भी शुचिता का एक प्रधान अङ्ग माना गया है ॥५५॥५६॥

प्रतिपद्दर्शषष्ठीषु नवम्या रविवासरे।
दन्ताना काष्ठसयोगो दहेदासप्तम कुलम् ॥५७
अलाभे दन्तकाष्ठाना निषिद्धे वाथ वासरे।
गण्डूषा द्वादश ग्राह्या मुखस्य परिशुद्धये ॥५८
कनिष्ठाग्रपरीमाणसत्वच निर्व्रणाऋजम्।
द्वादशाङ्गुलमान च सार्द्धं स्याद्दतधावनम् ॥५९
एककागुलमानंन्चर्वयेद्दन्तधावनम्।
प्रात स्नान चरित्वाचशुद्धये तीर्थे विशेषतः ॥६०

प्रातः स्नानाद्यतः शुद्ध्येत् कायोऽयं मलिनः सदा ।
यन्मलं नवभिश्छिद्रैः स्रवत्येव दिवानिशम् ॥६१
उत्साहमेधासौभाग्यरूपसम्पत्प्रवर्द्धकम् ।
प्राजापत्यसमप्राहुस्तन्महाघविनाशकृत् ॥६२
प्रातः स्नानंहरेत्पापमलक्ष्मीग्लानिमेव च ।
अशुचित्वंचदुःस्वप्नतुष्टिपुष्टिप्रयच्छति ॥६३

प्रतिपदा—दर्श—षष्ठी—नवमी तिथियों में और रविवार में दांतों से काष्ठ का संयोग करना सातकुलों को दहन कर दिया करता है। दन्त काष्ठों के लाभ न होने पर अथवा इन उपर्युक्त निषेध किये हुए दिनों में बारह कुल्ले को मुख की शुद्धि के लिये ग्रहण करने चाहिये। अपनी कनिष्ठिका अङ्गुली के बराबर प्रमाण वाली - छिलके के सहित—बिना व्रण वाली और दूरहित बारह अंगुल मान से युक्त—आर्द्र (गीली) दन्तधावन (दंतून) ग्रहण करनी चाहिए। एक एक अंगुल प्रमाण तक उसका घर्षण करे। प्रातः काल में शुद्धि के लिए विशेष रूप से तीर्थ में स्नान करे। क्योंकि यह मलिन शरीर सदा प्रातः काल के स्नान से ही शुद्ध हुआ करता है। रात दिन जो मल शरीर में रहने वाले इन नौ छिद्रों से स्रवित होता रहा करता है। इस प्रातःकाल के स्नान को उत्साह—मेधा—सौभाग्य—रूपलावण्य—और सम्पत्ति का प्रवर्धक प्राजापत्य के समान ही महान् अघों का विनाश करने वाला कहा गया है। प्रातःकाल किया हुआ स्नान पाप—अलक्ष्मी और ग्लानि का हरण करने वाला होता है तथा अशुचिता और दुःस्वप्न का भी विनाशक होता है एवं महातुष्टि और पुष्टि को प्रदान किया करता है ॥५७—६३॥

नोपसर्प्पन्ति वै दुष्टाः प्रातःस्नायिजनं क्वचित् ।
दृष्टादृष्टफलं यस्मात्प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥६४
प्रसङ्गतः स्नानविधिं प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम ! ।
विधिस्नानं यतः प्राहुः स्नानाच्छतगुणोत्तरम् ॥६५

विशुद्धां मृदमादाय बर्हिपस्तिलगोमयम् ।
शुचौ देशे परिस्थाप्य ह्याचम्य स्नानमाचरेत् ॥६६
उपग्रहीबद्धशिखोजलमध्येसमाविशेत् ।
स्वशाखोक्तविधानेनस्नानं कुर्याद्यथाविधि । ६७
स्नात्वेत्थं वस्त्रमापीड्य गृह्णीयाद्धौतवाससी ।
आचम्य च ततः कुर्यात्प्रात सन्ध्यां कुशान्वितः ॥६८
प्राणायामांश्चरन्विप्रो नियम्यमानसंदृढम् ।
आहोरात्रकृतं पापंमुक्तो भवतितत्क्षणाद् ॥६९
दश द्वादशसंख्या वा प्राणायामाः कृता यदि ।
नियम्य मानस तेन तदा तप्त महत्तप ॥७०

प्रात काल मे स्नान करने वाले मनुष्य को कभी भी दुष्ट जन उपसर्पण नहीं किया करते है क्योंकि इस प्रात:काल के समय मे स्नान का दृष्टादृष्ट फल हुआ करता है अतएव सर्वदा प्रात:काल मे ही स्नान का समाचरण करना चाहिए ॥ ६४ ॥ हे नृपोत्तम ! अब स्नान का प्रसंग प्राप्त हो गया है इसलिए मैं अब इस स्नान की विधि आपको बतलाता हूँ क्योंकि स्नान से शत-गुण उत्तर विधि स्नान को कहते हैं ॥ ६५ ॥ परम विशुद्ध मृत्तिका—बर्हि—तिल और गोमय लेकर किसी शुचि स्थल मे प्रतिष्ठापित करके आचमन करे और फिर स्नान करना चाहिए ॥ ६६ ॥ उपग्रही — शिखा को बद्ध करने वाला जल के मध्य मे प्रवेश करे । अपनी वेद की शाखा के अनुसार ही विधि के अनुसार शास्त्रोक्त विधान से स्नान करे । इस तरह से स्नान करके वस्त्र को समापीडित करके धुले हुए अर्थात् शुद्ध वस्त्रों को ग्रहण करना चाहिए । फिर आचमन करके कुशाओं को लेकर प्रात:काल की सन्ध्योपासना करे । ॥ ६७ । ६८ ॥ अपने मन को दृढ़ता के साथ नियमित करके विप्र को प्राणायाम करने चाहिए । दिन रात मे किये हुए पापों से प्राणायामों के करने पर मनुष्य उसी क्षण मे मुक्त हो जाया करता है ॥ ६९ ॥ दश

समता बारह संख्या वाले यदि प्राणायाम किये गये हैं और मन को भली भाँति से नियमन में कर लिया है तो उस समय में महान् तपस्या मानी है ॥ ७० ॥

सव्याहृतिप्रणवकाः प्राणायामास्तु षोडश ।
अपि भ्रूणहनं मासात्पुनन्त्यहरहः कृताः ॥७१
यथा पार्थिवधातूनां दह्यन्ते धमनान्मलाः ।
तथेन्द्रियैः कृता दोषा दह्यन्ते प्राणसंयमात् ॥७२
एकाक्षरं परं ब्रह्म प्राणायामः परं तपः ।
गायत्र्यास्तु परं नास्ति पावनं च नृपोत्तम ॥७३
कर्मणा मनसा वाचा यद्रात्रौ कुरुते त्वघम् ।
उत्तिष्ठन्पूर्वसंध्यायां प्राणायामैर्विशोधयेत् ॥७४
यदह्ना कुरुते पापं मनोवाक्कायकर्मभिः ।
आसीनः पश्चिमां संध्यां प्राणायामैर्व्यपोहति ॥
पश्चिमां तु समासीनो मलं हन्ति दिवाकृतम् ॥७५॥
नोपतिष्ठेत्तु यः पूर्वां नोपास्ते यस्तु पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥७६
अपां समीपमासाद्य नित्यकर्म समाचरेत् ।
तत्र आचमनं कुर्याद्यथाविध्यनुपूर्वशः ॥७७
आपोहिष्ठेति तिसृभिर्मार्जनं तु ततश्चरेत् ।
भूमौ शिरसि चाकाश आकाशे भुवि मस्तके ॥७८

व्याहृतियों के सहित तथा प्रणव से युक्त षोडश (सोलह) प्राणायाम भ्रूण का हनन करने वाले पुरुष को भी प्रति दिन करने पर एक मास में पवित्र कर दिया करते हैं ॥ ७१ ॥ जिस प्रकार से पार्थिव धातुओं के मल धमन करने से दग्ध हो जाया करते हैं उसी भाँति इन इन्द्रियों के द्वारा किये गये दोष प्राणों के संयम से दग्ध किये जाया करते हैं ॥ ७२॥ एकाक्षर प्रणव परम ब्रह्म होता है और प्राणायाम परम तप

हुआ करता है। हे नृपोत्तम ! इस गायत्री मन्त्र से अधिक परम पावन अन्य कोई भी मन्त्र नहीं होता है ॥ ७३ ॥ कर्म के द्वारा—मन के द्वारा तथा वचनों के द्वारा जो भी कुछ रात्रि में अघ (पाप) किया करता है उन सबको उठकर पूर्व सन्ध्या की उपासना के समय में किये गये प्राणायामों के द्वारा विशोधित कर डालना चाहिए ॥ ७४ ॥ जो दिन में मन—वाणी और शरीर के कर्मों के द्वारा पाप मानव किया करता है उन सबको पश्चिम अर्थात् सायकाल में की गयी सन्ध्योपासना में समासीन होकर किये गये प्राणायामों के द्वारा व्यपोहित कर दिया करता है ॥ ७५ ॥ पश्चिम सन्ध्या में समासीन पुरुष दिन में किये हुए मल का हनन कर दिया करता है। जो मनुष्य पूर्व सन्ध्या की उपासना नहीं करता है और जो पश्चिम सन्ध्या की उपासना नहीं किया करता है वह विप्र एक शूद्र की भाँति बहिष्कृत कर देना चाहिए क्योंकि उसमें एक द्विज का कोई कर्म विद्यमान ही नहीं हुआ करता है अतएव एक द्विज कर्मों में उसको कभी भी नहीं लेना चाहिए ॥ ७६ ॥ जल के समीपता को प्राप्त करके नित्य कर्म का समाचरण करना चाहिए। इसके पश्चात् यथाविधि आनुपूर्वशः आचमन करना चाहिए। इसके अनन्तर 'आपोहिष्ठा मयोभुव" इन तीन मन्त्रों के द्वारा शरीर का मार्जन करना चाहिए। भूमि में—शिर में और आकाश में तथा आकाश में—भूमि में—और मस्तक में मार्जन करे ॥ ७७ । ७८ ॥

मस्तकेन तथाकाशेभूमौ च नवधाक्षिपेत् ।
भूमिशब्देन चरणावाकाशं हृदयस्मृतम् ॥
शिरस्येव शिरःशब्दो मार्जनं तैरुदाहृतम् ॥७९॥
वारुणादपि चाग्नेयाद्वायव्यदपि चेन्द्रतः ।
मन्त्रस्नानादपिपरं ब्राह्मस्नानमिदं परम् । ८०
ब्राह्मस्नानेन यः स्नातः स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥८०
सधर्म चाहंतामेति देवपूजादिकर्मणि ।
नक्तं दिनं निमज्ज्याप्सु कैवर्ताः किमुपावनाः ॥८१

शतशोऽपि तथा स्नाता न शुद्धा भावदूषिताः ।
अन्तःकरणशुद्धाश्चेत्तान्विभूतिः पवित्रयेत् ॥८२
किम्पावनाः प्रकीर्त्यन्ते रासभा भस्मधूसराः ।
[illegible] ।८३
[illegible] ।
तदेव निर्मलं चेतो यथा स्यात्तन्मुने ! शृणु ॥८४

इस रीति से मस्तक—आकाश और भूमि में नौ बार जल को क्षिप्त करना चाहिए । भूमि शब्द से यहाँ पर चरणों का ग्रहण है और आकाश से हृदय को कहा गया है । इस तरह से इनके द्वारा मार्जन कहा गया है ॥ ७९ ॥ वरुण—आग्नेय—वायव्य—इन्द्र—इन दिशाओं से भी और मन्त्र स्नान से भी परम ब्राह्म स्नान कहा गया है । ब्राह्म स्नान जो स्नान किया हुआ पुरुष है वह बाह्य और आभ्यन्तर दोनों में शुचि हो जाया करता है ॥ ८० ॥ देव-पूजा आदि कर्मों में वह ब्राह्म स्नान पुरुष अर्हता को प्राप्त हो जाता है । रात दिन जल में निमज्जन करने वाले कैवर्त जाति वाले लोग क्या पावन हो जाया करते हैं ? अर्थात् जल में ही स्नान मात्र से कभी पावनता नहीं हुआ करती है । सैकड़ों बार भी स्नान किये हुए पुरुष यदि भावदूषित होते हैं तो वे शुद्ध नहीं होते हैं । जो अन्तःकरण में शुद्ध होते हैं उन्हीं को विभूति पवित्र किया करती है । अहर्निश भस्म से धूसर रहने वाले रासभ (गधे) क्या पावन कहे जाया करते हैं ? अर्थात् नहीं कहे जाते हैं । वही पुरुष समस्त तीर्थों में स्नात है जो सब तरह के मलों से रहित होता है । यहाँ संसार में जिसका चित्त निर्मल है उसने मानों सो शत्रुओं का दमन कर लिया है । हे मुनिवर ! जिस तरह से चित्त निर्मल होता है या जो मल रहित चित्त कहा गया है उसके विषय में आप अब श्रवण करो ॥ ८१—८४ ॥

विश्वेशश्चेत्प्रसन्नः स्यात्सदा रमाभान्यथा क्वचित् ।

तस्मान्चेतोविशुद्धयर्थं काशीनाथं समाश्रयेत् ॥८५
इद शरीरमुत्सृज्यपरं ब्रह्माधिगच्छति ।
द्रुपदान्त ततो जप्त्वा जलमादाय पाणिना ॥८६
कुर्यादृतंचमन्त्रेण विधिज्ञस्त्वघमर्षणम् ।
निमज्याप्सुत्रयोविद्वाञ्जपेत्त्रिरघमर्षणम् ॥८७
जले वापिस्थले वापि यःकुर्यादघमर्षणम् ।
तस्याघौघो विनश्येत यथासूर्योदयेतमः ॥८८
गायत्री शिरसा हीना महाव्याहृतिपूर्विकाम् ।
प्रणवाद्या जपस्तिष्ठन्क्षिपेदम्भोञ्जलित्रयम् ॥८९
तेन वज्रोदकेनाशु मन्देहानाम राक्षसाः ।
सूर्यतेज प्रलोपन्ते शैला इव विवस्वत ॥९०
सहायार्थंचसूर्यस्ययोद्विजोनाञ्जलित्रयम् ।
क्षिपेन्मन्देहनाशायसोऽपिमन्देहताव्रजेत् ॥९१

यह मानव का चित्त तभी निर्मल होता है जब भगवान् विश्व के स्वामी इस पर पूर्ण प्रसन्नता किया करते हैं अन्यथा यह कभी भी निर्मल नहीं होता है । इसीलिये अपने चित्त की विशुद्धि के लिये भगवान काशीनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥ ८५ ॥ इनका समाश्रित मनुष्य इस शरीर का त्याग करके परम ब्रह्म को प्राप्त कर लिया करता है । हाथ से जल ग्रहण करके द्रुपदान्त का जाप करे और विधि के ज्ञाता पुरुष को "ऋतंच" इत्यादि मन्त्र से अघमर्षण करना चाहिए । जो विद्वान् पुरुष जल मे डुबकी लगाकर तीन बार इस उक्त अघमर्षण मन्त्र का जाप करता है । जल मे या स्थल मे जो अघमर्षण किया करता है उस पुरुष के अघो का समुदाय विनष्ट हो जाता है जैसे सूर्योदय के होने पर अन्धकार विनष्ट हो जाता है । शिर से हीन महा व्याहृतियों को पूर्व मे लगाकर जिसके आदि मे प्रणव हो ऐसी गायत्री का जाप करते हुए स्थित होकर तीन अञ्जलियाँ जल की प्रक्षिप्त करे ॥ ८६ ।

८७ । ८८ । ८९ ।। उस वज्रोदक से बहुत ही शीघ्र मन्देहा नाम वाले राक्षस सूर्य के तेज को प्रलुप्त किया करते हैं जिस तरह से पर्वत विवस्वान् को छिपा लेते हैं ।। ९० ।। सूर्यदेव की सहायता के लिए जो द्विज तीन अञ्जलियाँ जल की प्रक्षिप्त नहीं किया करता है क्योंकि मन्देह राक्षस के नाश के लिए ही क्षिप्त की जाया करती हैं तो वह द्विज भी मन्देहता के स्वरूप को प्राप्त कर लेता है ।।९१।।

प्रातस्तावज्जपस्तिष्ठेद्यावत्सूर्यस्य दर्शनम् ।
उपविष्टो जपेत्सायमृक्षाणामाविर्लोकनात् । ९२
काललोपो न कर्त्तव्यो द्विजेन स्वहितेप्सुना ।
अर्द्धोदयास्तसमये तस्माद्वज्रोदकं क्षिपेत् ।।९३
विधिनाऽपि कृता सन्ध्या कालातीताऽफला भवेत् ।
अयमेव हि दृष्टान्तो वन्ध्यास्त्रीमैथुनं यथा ।।९४
जलेवामकरं कृत्वा यासन्ध्याऽऽचरिता द्विजैः ।
वृषलीसा परिज्ञेया रक्षोगणमुदावहा ।।९५
उपस्थानं ततः कुर्यान्छाखोक्तविधिना ततः ।
सहस्रकृत्वो गायत्र्या शतकृत्वोऽथवा पुनः ।।९६
दशकृत्वोऽथ देव्यां च कुर्यात्सौरीमुपस्थितिम् ।
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम् ।।९७
गायत्रीं यो जपेद्विप्रो न स पापैः प्रलिप्यते ।
रक्तचन्दनमिश्राभिरद्भिरग्र्य कुसुमैः कुशैः ।।९८
वेदोक्तैरागमोक्तैर्वा मन्त्रैरर्घं प्रदापयेत् ।
अर्चितः सविता येन तेन त्रैलोक्यमर्चितम् ।।९९

प्रातःकाल की वेला में तब तक जाप करता हुआ स्थित रहना चाहिए जब तक भगवान् भास्कर का दर्शन प्राप्त होवे । सायङ्काल में उपविष्ट होकर ही नक्षत्रों के देखने के पूर्व तक जाप करना चाहिये । अपने हित की चाह रखने वाले द्विज को काल का लोप नहीं करना

चाहिए । उदय और अस्त के समय में इसीलिये उस ब्रह्मोदक का सेवन करना चाहिए विधिपूर्वक की गई सन्ध्योपासना यदि कालातीत हो तो वह फलशून्य ही हुआ करती है—इसमें यही दृष्टान्त परम उपयुक्त होता है जैसे किसी वन्ध्या स्त्री के साथ किया हुआ मैथुन निष्फल हुआ करता है ।। ९२, ९३, ९४ ।। जल में अपना बायाँ हाथ करके जो सन्ध्या द्विजों के द्वारा समाचारित होती है वह राक्षसों के समुदाय को प्रसन्नता प्रदान करने वाली वृषली सन्ध्या समझी जाती है ।। ९५ ।। इसके अनन्तर शास्त्र में कही हुई विधि से उपस्थान करना चाहिए । एक सहस्र अथवा एक सौ या दश बार ही देवी के लिये सोरी उपस्थिति करे । एक सहस्र गायत्री मन्त्र का जाप परम श्रेष्ठ होता है । एक सौ बार जाप मध्यम श्रेणी का होता है । केवल दश ही बार जाप करना निम्न कोटि का जाप है । इस प्रकार इन तीनों प्रकार के जापों में किसी भी एक प्रकार का जाप जो विप्र किया करता है वह कभी भी पापों से प्रलिप्त नहीं हुआ करता है । रक्त चन्दन से मिश्रित जल से—कुश और कुसुमों से विमिश्रित जल से वेदोक्त तथा आगमों में कहे हुए मन्त्रों से जो अर्घ सूर्यदेव को देता है और जिसने भगवान् सविता का अर्चन कर लिया है उसने सम्पूर्ण त्रैलोक्य का ही समर्चन कर लिया है—ऐसा ही समझ लेना चाहिए ।। ९६–९९ ।।

अर्चितः सविता दत्ते सुतान्पशुवसूनि च ।
व्याधीन्हरेद्ददात्यायुः पूरयेद्वाञ्छितान्यपि ।।१००
अयं हि रुद्र आदित्यो हरिरेष दिवाकरः ।
रविर्हिरण्यरूपोऽसौ त्रयीरूपोऽयमर्यमा ।।१०१
ततस्तु तर्पणं कुर्यात्स्वशाखोक्तविधानतः ।
ब्रह्मादीनखिलान्देवान्मरीच्यादींस्तथा मुनीन् ।।१०२
चन्दनागुरुकर्पूरगन्धवत्कुसुमैरपि ।
तर्पये च्छुचिभिस्तोयैस्तृप्यन्त्विति समुच्चरेत् ।।१०३

सनकादींन्मनुष्यांश्च निवीती तर्पयेद्यवैः ।
अङ्गुष्ठद्वयमध्ये तु कृत्वा दर्भानृजून्द्विज. ॥१०४
कव्यवाडनलादींश्च पितॄन्दिव्यान्प्रतर्पयेत् ।
प्राचीनावीतिको दर्भैर्द्विगुणैस्तिल मिश्रितैः ॥१०५

भली भाँति समर्चित सविता देव सुत-पशु और धनों को प्रदान किया करते हैं। बहु व्याधियों का हरण करते हैं—आयु देते हैं और मनोवाञ्छितों को भी पूर्ण कर देते हैं। यह रुद्र-आदित्य-हरि-दिवाकर-रवि—हिरण्यरूप—सवीरुप—अर्यमा हैं। इसके अनन्तर अपनी वैदिक शाखा में समाविष्ट विधान के अनुसार तर्पण करना चाहिए। ब्रह्मादि समस्त देवों का तर्पण करे तथा मरीचि आदि सब मुनियों का तर्पण करना चाहिए। चन्दन अगुरु-कर्पूर—सुगन्धित आदि से मिश्रित परम शुद्ध जल "नृमल्ल"—इसका समुच्चारण करते हुए तर्पण करे। यवों के द्वारा निवीती होकर सनकादिकों का-मनुष्यों का तर्पण करना चाहिए। द्विज को चाहिए कि दोनों अंगुष्ठों के मध्य में सीधे कुशों को रक्खे। कव्य वाडनल आदि। दिव्य पितृगण को तर्पण करे। प्राचीनावीती होकर तिल मिश्रित द्विगुन कुशाओं से तर्पण करे। १०४—१०५॥

रवौ शुक्ले मघोद्दश्या सप्तम्या निशि सन्ध्ययोः ।
श्रेयोर्थी ब्राह्मणो जातु न कुर्यात्तिलतर्पणम् ॥१०६
यदि कुर्यात्तदा कुर्यात् शुक्लैरेव तिलैः कृती ।
चतुर्दश यमान्पश्चात्तर्पयेन्नामसुच्चरन् ॥१०७
ततः स्वगोत्रमुच्चार्य तर्पयेत्स्वान्पितॄन्सुधीः ।
सव्यजानुनिपातेन पितृतीर्थेन वाग्यतः ॥१०८
एकैकमञ्जलिं देवा द्वौ द्वौ तु सनकादिकाः ।
पितरस्त्रीन्प्रवाञ्छन्ति स्त्रियश्चैकैकमञ्जलिम् ॥१०९
मञ्जुल्यग्रेण वै देवमार्षमञ्जलिमूलगम् ।
ब्राह्मं मञ्जुष्ठमूले तु पाणिमध्ये प्रजापते. ॥११०

मध्येङ्गुष्ठप्रदेशिन्योः पित्र्यं तीर्थं प्रचक्षते ।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः ॥१११
तृप्यन्तु सर्वे पितरोमातृमातामहादयः ।
अन्येचमन्त्राः प्रोक्तायेवेदोक्ताःपुराणसम्भवाः ॥११२

मास के शुक्लपक्ष में रविवार त्रयोदशी तिथि में—सप्तमी तिथि में—निशा में और दोनों सन्ध्या कालों में श्रेय के सम्पादन करने की इच्छा वाला पुरुष (ब्राह्मण) किसी भी दशा में तिलों के द्वारा तर्पण नहीं करे ॥१०६। यदि तिलों से तर्पण भी करे तो शुक्ल तिलों से ही कृती ब्राह्मण को तर्पण करना चाहिए। चौदह यमों के नामों का समुच्चारण करते हुए पीछे तर्पण करना चाहिए। इसके पश्चात् अपने गोत्र का उच्चारण करते हुए अपने पितृगणों को तृप्त करना चाहिए। सव्य-जानु निपात से पितृतार्थ से मौनी होकर देवों को एक-एक अञ्जलि देवे और सनकादिकों को दो-दो अञ्जलियाँ देनी चाहिए। पितृगण तीन-तीन अञ्जलियों की इच्छा रखते हैं। स्त्रियों को एक-एक ही अञ्जलि देवे। अंगुलि के अग्रभाग में देव को—अर्थ अर्थात् ऋषिगण को अंगुलि के मूल से—ब्रह्म को अंगुष्ठ के मूल में और प्रजापति को पाणि के मध्य में देना चाहिए। अर्थात् ये ही स्थल इनके उपयुक्त होते हैं। अंगुष्ठ और प्रादेशिनी के मध्य भाग में पित्र्य तीर्थ कहा जाता है। मन्त्र में ब्रह्म से स्तम्ब पर्यन्त जो भी देव—ऋषि—पितृ एवं मानव हों वे सभी पितृ-मातृ और माता महादिक मेरे समर्पित इस जलाञ्जलि से सन्तृप्त हो जावें—यह उच्चारण करके ही जलाञ्जलि देनी चाहिए। इस तर्पण के लिये अन्य मन्त्र वेदोक्त कहे गये हैं और पुराणों में उक्त भी कहे गये हैं ॥१०७-११२॥

साङ्गं चतर्प्पणं कुर्यात्पितृणांचसुखप्रदम् ।
अग्निकार्यं ततः कृत्वावेदाभ्यास ततश्चरेत् ॥११३
श्रुत्यभ्यासः पञ्चधा स्यात्स्वीकारोऽर्थविचारणम् ।

अभ्यासश्च तपश्चापि शिष्येभ्यः प्रतिपादनम् ।।११४
लब्धस्य प्रतिपालार्थमलब्धस्यच लब्धये ।
प्रातःकृत्यमिदप्रोक्त द्विजातीनांनृपोत्तम ! ।।११५
अथवा प्रातरुत्थाय कृत्वावश्यकमेव च ।
शौचाचमनमादाय भक्षयेद्‌दन्तधावनम् ।।११६
विशोध्य सर्वगात्राणि प्रा:सन्ध्यां समाचरेत् ।
वेदार्थानाधिगच्छेद्द्ध शास्त्राणि विविधान्यपि ।।११७
अध्यापयेच्छुचीञ्छिष्यान्हितान्मेधामन्वितान् ।
उपेयादीश्वर चापि योगक्षेमादिसिद्धये ।।११८
ततो मध्याह्नसिद्धयर्थं पूर्वोक्त स्नानमाचरेत् ।
स्नात्वा माध्याह्निकीं सन्ध्यामुपासीत विचक्षणः ।।११९

इस प्रकार से पितृगण के लिये साङ्ग एव सुखप्रद तर्पण करना चाहिये। इसके अनन्तर अग्नि कार्य यर्थात् होम करे और इसके पश्चात् वेदों का अभ्यास करना चाहिए। श्रुति का अभ्यास पांच प्रकार का होता है—स्वीकार करना—अर्थ का विचार करना—केवल अभ्यास करना—तपश्चर्या करना और अपने शिष्यो के लिये प्रतिपादन करना ।। ११३ ।। ११४ ।। जो लब्ध है उसके प्रतिपालन करने के लिये तथा जो अलब्ध है उसकी लब्धि के लिये यह प्रातःकाल का कृत्य कहा गया है जो हे नृपोत्तम ! द्विजातीयो के लिये ही होना है। अथवा प्रातःकाल मे शय्या से उठकर आवश्यक शारीरिक कृत्य का सम्पादन करके शौचाचमन लेकर दन्त धावन का भक्षण करे ।। ११५ । ११६ ।। अपने समस्त अङ्गो का विशोधन करके प्रातःकालीन सन्ध्या का समाचरण करे। फिर वेदार्थों का ज्ञान प्राप्त करे और अनेक शास्त्रों का भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए ।। ११७ ।। जो परम पवित्र एव हित तथा मेधा से संयुत शिष्य हो उनका अध्यापन करे। और ईश्वर की भी योग क्षेम आदि की सिद्धि सम्प्राप्त करने के लिये उपासना करनी चाहिये ।। ११८ ।। इसक

उपरान्त मध्याह्न की सिद्धि के लिये पूर्वोक्त स्नान करे। विलक्षण पुरुष को स्नान करके माध्याह्नि की सन्ध्या की उपासना करनी चाहिये ॥११६॥

देवता परिपूज्याथ विधिनैमित्तिकं चरेत् ।
पचनाग्नि समुज्ज्वाल्यवैश्वदेवसमाचरेत् ॥१२०
निष्पावान्कोद्रवान्मापान्यलपाश्चणगांस्त्यजेत् ।
तैलपक्वमपक्वान्न सर्वं लवणयुक्त्यजेत् ॥१२१
आढक्यन्न मसूरान्न वर्तुलधान्यसम्भवम् ।
भुक्तशेषपर्युषित वैश्वदेवे विवर्जयेत् ॥१२२
दर्भपाणि समाचम्य प्राणायामविधायच ।
पृथोदिवीति मन्त्रेण पर्युक्षणमथाचरेत ॥१२३
प्रदक्षिणचपर्युक्ष्य द्वि परिस्तीर्यवैकुशान् ।
रापोद्ध देवमन्त्रेण कुर्याद्वह्निस्वसन्मुखे ॥१२४
वैश्वानर समभ्यर्च्य गन्धपुष्पाक्षतैस्तथा ।
स्वशाखोक्त प्रकारेण होमकुर्याद्विचक्षणः ॥१२५
अध्वग क्षीणवृत्तिश्च विद्यार्थी गुरुपोषकः ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च षडेतेधर्मभिक्षुका ॥१२६

देवता का अर्चन करके नैमित्तिक विधि को करे। पचनाग्नि को प्रज्वलित करके वैश्वदेव करे। निष्पावा—कोद्रव—माष—अन्यलाप और चणक—इनका परित्याग कर देवे। तैल से परिपक्व—अपक्वान्न और सब लवण से युक्त त्याग देवे ॥ १२० । १२१ ॥ आढक्यन्न—मसूरान्न वर्तुल धान्य समुत्पन्न—भुक्त शेष—पर्युषित (बासी) इन सबको वैश्वदेव मे वर्जित कर देना चाहिये। हाथ मे कुश ग्रहण करके भली भाँति आचमन करे और प्राणायाम करके "पृथोदिवि"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा पर्युक्षण करे। प्रदक्षिण और पर्युक्षण करके दो कुशाओं का परि-स्तरण करके 'रापोद्ध देव'—इत्यादि मन्त्र से वह्नि को अपने सामने

करे। गन्धाक्षत पुष्पादि के द्वारा वैश्वानर की समर्चना करके विचक्षण पुरुष को अपनी वैदिक शाखा के प्रकार से होम करना चाहिये। अध्वा मे गमन करने वाला—क्षीण वृति वाला—विद्यार्थी—गुरु का पोषण करने वाला—यति और ब्रह्मचारी—ये छः धर्म भिक्षुक होते हैं। ॥१२२-१२६॥

अतिथिः पान्थिको ज्ञेयोऽनूचानः श्रुतिपारगः।
मान्यावेतौ गृहस्थानां ब्रह्मलोकमभीप्सताम् ॥१२७
अपिश्वपाकेशुनिवा नैवान्नं निष्फलभवेत्।
अन्नार्थिनि समायातेपात्रापात्रानचिन्तयेत् ॥१२८
शुनांच पतितानाञ्चश्वपचा पापरोगिणाम्।
काकानांचकृमीणांचवहिरन्नं किरेद्भुवि ॥१२९
ऐन्द्रवारुणवायव्या.सौम्यावैनैऋतास्चाये।
प्रतिगृह्णन्त्विमपिंडकाकभूमौमयार्पितम् ॥१३०
इत्थ भूतवलिकृत्वाकालगोदोहमात्रकम्।
प्रतीक्ष्यातिथिमायात विशेद्भोज्यगृहततः ॥१३१
अदत्त्वा वायसवलि नित्यश्राद्धं समाचरेत्,
नित्यश्राद्धे स्वसामर्थ्यात्त्रीन्द्वावेकमथापि वा ॥१३२
भोजयेत्पितृयज्ञार्थं दद्यादुद्धृत्य वारि च।
नित्यश्राद्ध दैवहीनंनियमादिविवर्जितम् ॥१३३

जो गृहस्थ ब्रह्मलोक की चाह रखने वाले है उनके लिये अतिथि—पान्थिक—अनूचान—और श्रुति पारगामी ये मान्य हुआ करते हैं ॥१२७। श्वपाक और श्वान मे भी अन्न निष्फल नही हुआ करता है। यहा पर अर्थी के समायात होने पर पात्र है या अपात्र है—इसका चिन्तन नहीं करना चाहिए। कुत्तो को—पतितों को—श्वपचो को—पाप रोगियो को—कार्कों को तथा कृमियो को भी भूमि मे बाहिर अन्न का विकिरण कर देना चाहिए। भूत बलि करने के लिये ऐन्द्र—वारुण—वायव्य—सौम्य—

और जो नैऋत हो वे सभी और काक भूमि मे मेरे द्वारा समर्पित इस पिण्ड का प्रतिग्रहण करें–यह कहते हुए भूत बलि गोदोहन मात्र काल पर्यन्त इस प्रकार से भूत बलि करके किसी भी आये हुए अतिथि की प्रतीक्षा करे फिर भोज्य गृह मे प्रवेश करना चाहिए। वायस बलि को न देकर नित्य श्राद्ध का समाचरण करना चाहिए। नित्य श्राद्ध मे अपनी सामर्थ्य से तीन–दो अथवा एक को ही भोजन करावे। यह पितृ यज्ञ के लिये ही भोजन देवे और जल को उद्धृत करके देना चाहिये। नित्य श्राद्ध दैवहीन और नियम आदि से विवर्जित होता है ॥१२८–१३३॥

दक्षिणारहितं त्वेतद्दाभोक्तृसुतृप्तिकृत् ।
पितृयज्ञं विधायेत्थं स्वस्थबुद्धिरनातुरः ॥१३४
अदुष्टासनमध्यास्य भुञ्जीत शिशुभिः सह ।
सुगन्धि सुमनाः स्रग्वी शुचिवासोद्वयान्वितः ॥१३५
प्राग्मास्य उदगास्यो वा भुञ्जीतपितृसेवितम् ।
विधायाचमनं नतदुपरिष्टादधस्तथा ॥१३६
आपोशानविधानेन कृत्वाऽश्नीयात्सुधीर्द्विजः ।
भूमौ बालग्रय कुर्यादपोदद्यात्तदोपरि ॥१३७
सकृ चाप उपस्पृश्य प्राणाद्याहुतिपञ्चकम् ।
दद्याज्जठरकुण्डाग्नौदर्भपाणिः प्रसन्नधीः ॥१३८
दर्भपाणिस्तुयो भुङ्क्ते तस्यदोषो नविद्यते ।
केशकीटादिसंभूतस्तदश्नीयात्सदर्भकः ॥१३९
ततो मौनेन भुञ्जीत न कुर्याद्दन्तघर्षणम् ।
प्रक्षालितव्यहस्तस्य दक्षिणाङ्गुष्ठमूलतः ॥१४०

यह दक्षिणा से रहित यह दाता और भोक्ता की सुतृप्ति का करने वाला है। इस प्रकार से पितृयज्ञ को करके अनातुर होते हुए स्वस्थ बुद्धि वाला है। दोष रहित आसन पर अधिष्ठित होकर शिशुओं के

साथ स्वयं भोजन करे। सुन्दर गन्ध माला—सुन्दर मन से सुमन—माला धारण किये हुए और दो शुद्ध वस्त्र धारण करके भोजन करना चाहिए ॥ १३४। १३५ ॥ पितृ मेधित पदार्थ को पूर्व की ओर मुख वाला होकर अथवा उत्तर की ओर मुख करके खाना चाहिए। अन्न को ऊपर और बीच अनग्न करके आपोशान विधान से सुधी द्विज को भोजन करना चाहिए। भूमि मे तीन बलि करे और उसके ऊपर जल देवे। ॥ १३६। १३७ ॥ एक बार जल से उपस्पर्शन करके "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मन्त्रो से पाँच आहुतियाँ देवे फिर प्रसन्न बुद्धि होकर हाथ मे कुशा ग्रहण कर जठर रूपी कुण्ड मे देना चाहिए। हाथ मे दाभ लेकर जो भोजन किया करता है उसका कोई भी दोष नहीं होता है। केश कीटादि से सम्भूत दर्भ के सहित अशन करे। इसके अनन्तर मौन रह कर भोजन करे और दाँतों का घर्षण नहीं करना चाहिए और प्रक्षालन करने के योग्य हाथ के दक्षिणागुष्ठ मूल से न करे ॥ १३८। १३९। १४० ॥

रौरवेऽपुण्यनिलये अधोलोकनिवासिनाम् ।
उच्छिष्टोदकमिच्छूनामक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥१४१
पुनराचम्य मेधावी शुचिर्भूत्वा प्रयत्नतः ।
मुखशुद्धि ततः कृत्वा पुराणश्रवणादिभिः ॥१४२
अतिवाह्य दिवाशेष ततःसन्ध्यासमाचरेत ।
१४३
।
अनृत मद्यगन्ध च दिवामैथुनमेव च ॥
पुनाति वृषलस्थानं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥१४४
तदुद्देशतः समाख्यातएष नित्यतनोविधि. ।
इत्थ समाचरन्विप्रोनावसीदति कहिचित् ॥१४५

अपुण्यों का निलय रौरव नरक मे अधोलोकों के निवासी और

उच्छिष्ट जल की इच्छा रखने वालों का अक्षय्य उपस्थित होवे ॥१४१॥ फिर मेधावी को आचमन करके शुचि होकर प्रयत्न पूर्वक मुख की शुद्धि करे और इसके उपरान्त दिन के शेष भाग को पुराणों के श्रवण आदि के द्वारा व्यतीत करे और इसके अनन्तर फिर सायं सन्ध्या की उपासना करनी चाहिए। गृहों में की हुई सन्ध्या की उपासना प्राकृत होती है वही उपासना यदि गोष्ठ में की जावे तो दशगुने फल वाली हो जाती है। नदी पर की हुई सन्ध्योपासना दश सहस्र गुनी होती है तथा भगवान् की सन्निधि में की गयी सन्ध्या की उपासना अनन्त गुनी कही गयी है। मिथ्या भाषण—मदिरा की गन्ध—दिवा मैथुन और वृषल स्थान इन सबको बाहिर की गयी सन्ध्योपासना पवित्र कर देती है ॥ १४२। १४३ । १४४ ॥ यह नित्य ही की जाने वाली विधि उद्देश्य से समाख्यात की गयी है। इस प्रकार से समाचरण करने वाला विप्र किसी भी समय में दुःखित नहीं हुआ करता है ॥१४५॥

४१—हयग्रीवाख्यान वर्णन

नपश्यन्तियदापीपंब्रह्माद्यास्तुसुरास्तदा।
किमुमइतिहेत्युक्त्वाज्ञानिनस्तेऽयचिन्तयन् ॥
उवाच विश्वकर्माणं तदा ब्रह्मा सुरान्वितः ॥१
विश्वकर्मंस्त्वमेवासि कार्यकर्तासदाविभो।
शीघ्रमेव कुरु त्वमेवस्य सान्द्रचापान्वितः ॥२
नमस्कृत्यतदातस्मै स्तुतोऽसौदेवपङ्क्तिः।
उवाचपरयाभक्त्या ब्रह्माणंकमलोद्भवम् ॥३
यज्ञकार्यं (अज्ञकार्य) निवृत्याशु।
(निवृत्ताऽऽशु) वदन्ति विविधाः सुराः ॥४

यज्ञभागविहीनं मां किं पुनर्वच्मि तेऽग्रतः ।
यज्ञभागमहं देव लभेयेवं सुरैः सह ॥५
दास्यामि सर्वयज्ञेषु विभागं सुरवर्द्धके ! ।
सोमे त्वं प्रथम वीर पूज्यसेश्रुतिकोविदैः ॥६
तद्विष्णोश्च शिरस्तावत्सन्ध्यस्वाऽमरवर्द्धके ! ।
विश्वकर्माऽब्रवीद्देवानानयध्वं शिरस्त्विति ॥७

महा महर्षि श्री व्यासदेव जी ने कहा—जिस समय में ब्रह्मादि सुरगणों ने शीर्ष नही देखा था तो उस समय में हम इस समय में क्या करें—यह कहकर वे सब ज्ञानी गण विशेष रूप से चिन्तन करने लगे थे। उस समय मे समस्त सुरगणो से समन्वित ब्रह्माजी ने विश्वकर्मा से कहा था—॥ १, २ ॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! विश्वकर्मा सदा आप ही कार्यों के करने वाले हैं। अतएव अब आप बहुत ही शीघ्र धन्वी के मस्तक को सान्ध बनादो। उस समय में वह देववर्द्धकि नमस्कार करके स्तुति के द्वारा स्तुत किया गया था। तब परम भक्ति से वह कमलोद्भव ब्रह्माजी से बोला था। यज्ञ कार्य्य को शीघ्र ही नियुक्त कर के अनेक सुरगण मुझको यज्ञ के भाग से विहीन कहा करते हैं। फिर मैं इस समय में आपके आगे क्या कहूँ। हे देव ! इस प्रकार से मैं भी सुरों के साथ यज्ञ के भाग को प्राप्त किया करूँ॥३, ४, ५॥ ब्रह्माजी ने कहा—हे सुर वर्द्धके ! मैं आपको समस्त यज्ञों मे विभाग दूंगा। हे वीर ! श्रुति के कोविदों (विद्वान्) के द्वारा आप सोम मे सबसे प्रथम पूजे जाओगे। हे अमर वर्द्धक ! सो अब आप तब तक भगवान् विष्णु के शिर का अनुसन्धान करो। विश्वकर्मा ने देवों से कहा—शिर ले आओ॥ ६, ७ ॥

तच्छ्रुत्वेति सुराः सर्वेयदन्तिनृपसत्तम ।
मध्याह्नेतुसमुद्भूते रक्तस्त्रोदिविचांशुमान् ॥८
दृष्ट्वा तदा सुरैः सर्वे रथादश्वमथानयन् ।

छित्वा शीर्षं महीपाल कबन्धाद्वाजिनोहरेः ॥९
कबन्धे योजयामास विश्वकर्मातिचातुरः ।
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं सुराः स्तुतिमकुर्वत ॥१०
नमस्तेऽस्तु जगद्बीज ! नमस्तेकमलापते ।
नमस्तेऽस्तुसुरेशान ! नमस्तेकमलेक्षण ! ॥११
त्वं स्थितिः सर्वभूतानां त्वमेव शरणं सताम् ।
त्वं हन्ता सर्वदुष्टानां हयग्रीव ! नमोऽस्तुते ॥१२
त्वमोङ्कारोवषट्कारःस्वाहास्वधा चतुर्विधा ।
आद्यस्त्वं चसुरेशानत्वमेवरक्षणं सदा ॥१३
यज्ञो यज्ञपतिर्यज्वा द्रव्यं होता हुतस्तथा ।
त्वदर्थं हूयते देव त्वमेव शरणं सखा ॥१४

हे नृप सत्तम ! समस्त सुरों ने कहा—वह नहीं है । मध्याह्न के समुद्भूत होने पर शिवलोक में अंशुमान् रथ में संस्थित थे । उस समय में सुरगणों ने सबने देखा था और उस रथ से अश्व को ले आये थे । हे महीपाल ! हरि के घोड़े का कबन्ध में शिर काट करके अत्यन्त चतुर विश्वकर्मा ने उसे कबन्ध में योजित कर दिया था । उस देवदेवेश्वर को देखकर समस्त सुरों ने उसका स्तवन किया था । देवों ने कहा—हे इस जगत् के बीज ! हे कमला के स्वामिन् ! आपको हमारा नमस्कार है । हे सुरों के ईशान ! आपकी सेवा में हमारा नमस्कार समर्पित है । हे कमल के समान नेत्रों वाले ! आपको हमारा प्रणाम है । आप तो समस्त भूतों की स्थिति हैं और आप ही सबके शरण (रक्षक) हैं । सब दुष्टों के आप ही हनन करने वाले हैं । हे हयग्रीव ! आपकी सन्निधि में हम सबका प्रणाम अर्पित है ॥ ८, ९, १०, ११, १२ ॥ आपके चार प्रकार के स्वरूप हैं—आप ही ओंकार है—आप ही वषट्कार हैं—आप ही स्वाहा हैं और आप ही स्वधा हैं । आप सबके आद्य है । हे सुरेशान ! आप ही सदा सबके शरण हैं ॥ १३ ॥ आप ही यज्ञ—यज्ञों के पति—

यज्ञा—द्रव्य—होता तथा आप ही हुत भी हैं। हे देव ! आपके ही लिये आहुतियाँ दी जाया करती हैं और आप ही सखा एवं सबके शरण अर्थात् रक्षा करने वाले हैं ॥१४॥

कालःकरालरूपस्त्वंरवि श्च शीतदीधितिः।
त्वमग्निर्वरुणश्चैव त्वंचकालक्षयङ्कर ॥ १५
गुणत्रय त्वमेवेह गुणहीनस्त्वमेव हि।
गुणानामालयस्त्वं च गोप्ता सर्वषु जन्तुषु ॥१६
स्त्रीपुंसोश्चद्विधात्वं चपशुपक्ष्यादिमानवैः।
चतुर्विध कुल त्वंहिचतुराशीतिलक्षणः ॥१७
दिनान्तश्चैव पक्षान्तो मासान्तो हायन युगम्।
कल्पान्तश्च महान्तश्च कालान्तस्त्वं च वै हरे ! ॥१८
एवंविधैर्महादिव्यैः स्तूयमानः सुरै नृंप।
सन्तुष्टः प्राह सर्वेषां देवानां पुरतः प्रभुः ॥१९
किमर्थमिह सम्प्राप्ता सर्वे देवगणाभुवि।
किमेतत्कारणं देवा किनु दैत्यप्रपीडिताः ॥२०

हे भगवन् ! आप विकराल स्वरूप वाले काल हैं। आप ही सूर्य तथा शीत किरणों वाले चन्द्र हैं। आप ही अग्नि हैं—वरुण और आप ही काल के क्षय करने वाले हैं ॥ १५ ॥ सत्व-रज और तम ये तीनों गुण भी आपका ही स्वरूप हैं और आप स्वयं गुणों से हीन भी हैं। आप इन गुणों को आलय हैं और समस्त जन्तुओं में आपही गोप्ता रक्षा करने वाले हैं।१६। आप स्त्री और पुरुष दो प्रकार के रूप वाले हैं। पशु-पक्षी आदि मानवों के द्वारा चार प्रकार के कुल आप ही है और चौरासी लक्षणों वाले हैं। दिनान्त—पक्षान्त—मासान्त—हायनयुग कल्पान्त—महान्त और हे हरे ! कालान्त भी आप ही हैं। हे नृप ! इस तरह से महादिव्य सुरों के द्वारा स्तवन किये गये प्रभु परम सन्तुष्ट होकर उन समस्त देवों के आगे बोले—॥१७-१९॥ श्रीभगवान् ने कहा—आप समस्त देवगण इस भूमण्डल में किस लिये सम्प्राप्त हुए हैं। हे देवगणो ! इस आपके यहाँ पर समागमन करने

का क्या कारण है ? क्या आप लोग दैत्यों के द्वारा प्रपीडित हुए हैं ? ॥ २० ॥

न दैत्यस्य भयं जातं यज्ञकर्मोत्सुका वयम् ।
त्वद्दर्शनपरा सर्वे पश्यामोवैदिशोदिश ॥२१
त्वन्मायामोहिताः सर्वे व्यग्रचित्ता भयातुराः ।
योगारूढस्वरूपं च दृष्टं तेऽस्माभिरुत्तमम् ॥२२
वम्री च नोदितास्माभिर्जागराय तवेश्वर ।
ततश्चापूर्वमभवच्छिरश्छिन्नं बभूव ते ॥२३
सूर्याश्वशीर्षमानीयविश्वकर्मातिचातुर. ।
समधनच्छिरोविष्णोर्हयग्रीवोऽस्यत.प्रभो ! ॥२४
तुष्टोऽहनाकिनःसर्वोददामिवरमीप्सितम् ।
हयग्रीवोऽस्म्यहं जातोदेवदेवोजगत्पतिः ॥२५
न रौद्रं न विरूपं च सुरैरपि च सेवितम् ।
जातोऽहं वरदो देवा हयाननेति तोषितः ॥२६
कृते सत्रे ततो वेधा धीमान्सन्तुष्टचेतसा ।
यज्ञभागं ततो दत्त्वो वम्रीभ्यो विश्वकर्मणे ॥२७
यज्ञान्ते च सुरश्रेष्ठनमस्कृत्य दिवं ययौ ।
एतच्च कारणं विद्धि हयननो यतो हरिः ॥२८

देवों ने कहा—हमको इस समय में दैत्यों का कोई भी भय नहीं हुआ है । हम सब लोग यज्ञ कर्म करने के लिये समुत्सुक हैं । हम सब आपके दर्शन करने के लिये परायण हैं और दशों दिशाओं को देखते हैं । आपकी माया से जब मोहित हो जाते हैं तो उसी समय में हम सब व्यग्र चित्त वाले तथा भय से आतुर हो जाया करते है ॥ २१ ॥ हमने आपका अतीव उत्तम योगारूढ स्वरूप देखा है ॥ २२ ॥ हे ईश्वर ! आपके जागरण कराने के लिये वम्री से हमने नहीं कहा था । इससे यह अपूर्व घटना हुई कि आपका शिर छिन्न हो गया था । फिर अत्यन्त कुशल विश्वकर्म्मा

ने सूर्यदेव के अश्व का मस्तक लाकर विष्णु के कबन्ध पर धर दिया था। इसीलिये हे प्रभो ! आप इस समय में हयग्रीव हो गये हैं ॥ २२ । २३ ॥ २४ ॥ भगवान् विष्णु ने कहा—हे स्वर्ग वासियो ! मैं आप सबसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। मैं आपको अभीष्ट वरदान दूँगा। अब मैं देवों का देव जगत्पति हयग्रीव हूँ। न तो यह रौद्र है और न विरूप ही है और मुनी के द्वारा सेवित भी है। देवो ! मैं इस हय के आनन से शोभित हो गया हूँ और अब अमर हो गया हूँ ॥ २५, २६ ॥ श्री व्यास-देवजी ने कहा—इसके अनन्तर धीमान वेधा ने कृत युग में सत्र में सन्तुष्ट चित्त से यज्ञीयों से विश्वकर्मा के लिए यज्ञ का भाग दिलाया था। यज्ञ के अन्त में वह सुर श्रेष्ठ को नमस्कार करके दिवलोक को चले गये थे। जिस कारण से श्री हरि हयानन हुए—उसका यही कारण जान लेना चाहिए ॥ २७—२८ ॥

येनाक्रान्ता मही सर्वा क्रमेणैकेन तत्त्वतः ।
विवरे विवरे रोम्णावतन्तेचपृथक्पृथक् ॥२९
ब्रह्माण्डानिसहस्राणि दृश्यन्तेचमहाद्युते ।
नवेत्तिवेदोयस्यार शीर्षपालोहिवेदयम् ॥३०
शृणु त्वं पाण्डवश्रेष्ठ कथां पौराणिकीं शुभाम् ।
ईश्वरस्यचरित्रं हिनैववेत्तिचराचरे ॥३१
एकदा ब्रह्मसभायां गता देवाः सवासवाः ।
भूर्लोकाद्याश्च सर्वे हि स्थावराणि चराणि च ॥३२
देवाब्रह्मादयः सर्वे नमस्कर्तुं पितामहम् ।
विष्णुरप्यागतस्तत्र सभायामन्त्रकारणात् ॥३३
ब्रह्माचापि विगरिष्ठ उवाचेदंवचस्तदा ,
भोभोदेवाःशृणध्वं कथ्यमानं कारणमहत् ॥३४
सत्यं ब्रुवन्तुवं देवा ब्रह्माशविष्णुमध्यतः ।
तावाच्च समाकर्ण्यदेवा विस्मयं मागताः ॥३५

ऊचुश्चैव ततो देवा न जानीमोवयं सुराः।
ब्रह्मपत्नी तदोवाच विष्णुं प्रतिसुरेश्वरम् ॥
त्रयाणामपि देवानां महान्त च वदस्व मे ॥३६

महाराज युधिष्ठिर जी ने कहा—जिससे तात्विक रूप से एक ही चरण से क्रम से सम्पूर्ण मही को आक्रान्त कर लिया था और विवट-विवर मे रोमो के पृथक २ भाग वर्तमान हैं। हे महाद्युते! जिसके रोमो के विवरो मे सहस्रो ब्रह्माण्ड दिखलाई दिया करते हैं और जिसके पार को वेद भी नही जानते हैं उनके शीर्ष का घात कैसे हो गया था? श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे पाण्डव श्रेष्ठ! परम शुभा एक पौराणिकी कथा को इस समय मे आप श्रवण कीजिए। इस ईश्वर के चरित्र को कोई भी नही जानता है। एक समय की बात है कि ब्रह्म सभा मे इन्द्र-देव के सहित समस्त देवगण गये थे। भूलोक आदि सब स्थावर तथा चर सभी थे। देवर्षि और ब्रह्मर्षि सब पितामह को नमस्कार करने के लिए ही वहाँ पर पहुँचे थे। वहाँ पर सभा मे मन्त्र के कारण से भगवान् विष्णु की समागत हो गये थे ॥२६।३०।३१।३२॥ उस समय मे ब्रह्माजी भी विशेष रूप से गर्विष्ठ होते हुए यह वचन बोले थे—हे हे देवगणो! आप सब सुनिए तीन का णो मे महत् कारण कौन है? हे देववृन्द! आप इस समय मे ब्रह्मा—विष्णु और महेश इनके मध्य मे बड़ा कौन है? यह बिल्कुल सत्य २ आप बतलाइये! इस ब्रह्माजी की वाणी को सुनकर देवगण परम विस्मित हो गये थे? इसके पश्चात् समस्त सुरगणो ने कहा—हम यह नही जानते है। उस समय मे ब्रह्माजी की पत्नी ने सुरो के ईश्वर श्री विष्णु से बोली—आप ही यह बतलाइये कि इन देवो मे परम बड़ा देव कौन-सा है? ॥३३-३६॥

विष्णुमायाबलेनैव मोहिता भुवनत्रयम्
ततो ब्रह्मोवाच चेद न त्वं जानासि भो विभोः ॥३७
नव मुह्यन्ति ते मायाबलेन नैवमेव च।
गवहिमागो देवा जगद्भर्ता जगत्प्रभुः ॥३७

ज्येष्ठं त्वां न विदुः सर्वे विष्णुमायावृताः स्थिताः ।
ततो ब्रह्मा स रोषेण क्रुद्धःप्रस्फुरिताननः ॥३९
उवाच वचनं कोपाद्धे विष्णो शृणुमेवचः ।
येन वक्त्रेण सभायां वचनंसमुदीरितम् ॥४०
तच्छीर्षं पततादाशु चाल्पकालेन वै पुनः ।
ततो हाहाकृत सर्वे सेन्द्राः सर्षिपुरोगमाः ॥४१
ब्रह्माणं क्षमयामासुर्विष्णु प्रति सुरोत्तमाः ।
विष्णुश्च तद्वचः श्रुत्वा सत्यं सत्य भविष्यति ॥४२

भगवान् श्री विष्णु ने कहा—विष्णु की माया के बल से ही यह त्रिभुवन मोहित हो रहा है । इसके पश्चात ब्रह्माजी ने कहा—हे विभो ! क्या इसको आप नहीं जानते हैं ? इस प्रकार से वे इस माया के बल से भी कभी मोहित नहीं हुआ करते हैं । आप जगत् के भर्त्ता और इस जगत के प्रभु हैं अतएव यह गर्व और हिंसा में परायण हैं ये समस्त विष्णु की माया से समावृत आपको ज्येष्ठ नहीं समझा करते हैं । इसके अनन्तर वह ब्रह्माजी रोष से प्रस्फुरित मुख वाले अत्यन्त क्रुद्ध होकर कोप से यह वचन बोले—हे विष्णो ! आप मेरा वचन श्रवण करिये । जिस मुख से सभा में वचन कहा था वह शीर्ष बहुत ही शीघ्र अल्पकाल ही में गिर जायेगा । इसके पश्चात् सबने इन्द्र के सहित ऋषिवृन्द ने उस समय में हाहाकार किया था । सुरोत्तमों ने भगवान् विष्णु की ओर ब्रह्माजी से क्षमा प्रार्थना की थी और विष्णु ने कहा था कि यह सत्य-सत्य होगा ।॥३७-४२॥

ततो विष्णुर्महातेजास्तीर्थस्योत्पादनेन च ।
तपस्तेपेतु वै तत्र धर्मारण्ये सुरेश्वरः ॥
अश्वशीर्षमुख दृष्ट्वा हयग्रीवो जनार्दनः ॥४३
तपस्तेपे महाभाग ! विधिनासह भारत ।
न शक्यं केनचित्कर्त्तुं मात्मनात्मैवतुष्टवान् ॥४४

ब्रह्मापि तपसा युक्तस्तेपे वर्षशतत्रयम् ।
तिष्ठन्नग्रपुरो विष्णोर्विष्णुमायाविमोहितः ॥४५
यज्ञार्थमवदत्तुष्टो देवदेवो जगत्पतिः ।
ब्रह्मस्ते मुक्तताद्यास्ति ममायाप्यदुःसहा ॥४६
ततो लब्धवरो ब्रह्मा हृष्टचित्तो जनार्दनः ।
उवाच मधुरां वाचं सर्वेषां हितकारणात् ॥४७
अत्राभवन्महाक्षेत्रं पुण्यपापप्रणाशनम् ।
विधिविष्णुमयं चैतद्भवत्येतन्न संशयः ॥४८
तीर्थस्य महिमा राजन्हयशीर्षस्तदा हरिः ।
शुभाननो हि सञ्जातः पूर्वणवाननेन तु ॥४६

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने जो कि स्वयं ही महान् तेजस्वी थे तीर्थ के उत्पादन में वहाँ धर्मारण्य में सुरेश्वर तप करने लगे थे। अश्वशीर्ष मुख को देखकर जनार्दन हयग्रीव हो गये ॥४३॥ हे महान् भाग वाले भारत ! ऋषि के साथ तपश्चर्या का तपन किया था। किसी के द्वारा भी अपनी आत्मा से ही आत्मा को गुहवान् नहीं किया जा सकता है। ब्रह्माजी ने भी तपस्या से युक्त तीन सौ वर्ष तक तप किया था। विष्णु की माया से विमोहित होकर विष्णु के आगे स्थित होते हुए तपस्या की थी। देवों के भी देव इस जगत् के स्वामी परम तुष्ट होकर बोले—हे ब्रह्मन् ! आज तुम्हारी मुक्तता है। यह मेरी माया भी अदुःसहा है। इसके पश्चात् ब्रह्माजी वर प्राप्त करने वाले हुए थे और भगवान जनार्दन भी प्रसन्न चित्त वाले हो गये थे। सबके हित करने के कारण से परम मधुर वाणी बोले—यहाँ पर परम पुण्यमय पापों के विनाश करने वाला महाक्षेत्र हो गया है। यह विधाता और विष्णुमय हो गया है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे राजन् ! उस समय में श्री हरि ने स्वयं हयशीर्ष ने की थी। पहिले ही इससे वह परम शुभ आनन वाले हो गये थे ॥ ४४—४६ ॥

कन्दर्पकोटिलावण्यो जातःकृष्णस्तदा नृप ।
ब्रह्मापि तपसा युक्तो दिव्य वर्षशतत्रयम् ॥५०
सावित्र्या च कृत यत्र विष्णुमाया न बाधते ।
मायया तु कृतं शीर्षं पञ्चम शार्दुलस्य वा ॥५१
धर्मारण्ये कृतं रम्यं हरेण च्छेदितं पुरा ।
तस्मै दत्त्वा वरं विष्णुर्जगामादर्शनं ततः ॥५२
स्थापयित्वा विधिस्तत्र तीर्थञ्चैवत्रिलोचनम् ।
मुक्तेश्वनामदेवस्यमोक्षतीर्थमरिन्दम ॥५३
गतःसोऽपि सुरश्रेष्ठः स्वस्थानं सुरसेवितम् ।
तत्रपेतादिव यान्तितर्पणेनप्रतर्पिताः ॥५४
अश्वमेधफलस्नाने पानेगोदानज फलम् ।
पुष्करगङ्गानितीर्थानिगङ्गाद्या सरितस्तथा ॥५५
स्नानार्थमभ्यागच्छन्ति देवता पितरस्तथा ।
कार्त्तिक्यांकृत्तिकायोगेमुक्तेशपूजयेत्तु यः ॥५६
स्नात्वा देवसरे रम्ये नत्वा देवं जनार्दनम् ।
यः करोति नरो भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥५७

हे नृप ! उस समय में भगवान् श्रीकृष्ण करोड़ों कामदेवों के तुल्य रूप लावण्य वाले हो गये थे । ब्रह्माजी भी तपस्या में युक्त हुए जो कि दिव्य तीन सौ वर्ष पर्यन्त की थी ॥ ५० ॥ जहाँ पर सावित्रीदेवी ने तप किया था वहाँ विष्णु की माया बाधा नहीं देती है । माया से किया हुआ शीर्ष था अथवा शार्दूल का था ॥ ५१ ॥ पहिले हर के द्वारा छेदित धर्मारण्य में सुरम्य किया था । उनको वरदान प्रदान करके भगवान् विष्णु वहाँ से अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥ ५२ ॥ हे अरिन्दम ! विधि ने वहाँ पर त्रिलोचन तीर्थ की स्थापना करके जो नामदेव का मुक्तेश मोक्ष तीर्थ है ॥ ५३ ॥ वह भी सुरश्रेष्ठ सुरों से सेवित अपने स्थान को चले गये थे । वहाँ पर तर्पण के द्वारा तर्पित हुए प्रेत भी दिव्यलोक को

प्रयाण किया करते हैं ॥ ५४ ॥ वहाँ पर स्नान करने से एक अश्वमेध यज्ञ के करने का पुण्य-फल प्राप्त होता है। वहाँ के जल का पान करने से गोदान से समुत्पन्न फल मिला करता है। पुष्कर आदि तीर्थ तथा भागीरथी गङ्गा आदि सरिताऐं स्वयं स्नान करने के लिए यहाँ पर आया करती हैं और सब देवता तथा पितर भी समागत होते हैं। कार्तिक मास में कृत्तिका नक्षत्र के योग में जो कोई मुक्तेश भगवान् की पूजा किया करता है और उस मुक्तमय देवसर में स्नान करके जनार्दन देव को नमस्कार करता है। ऐसा जो नर भक्ति की भावना से करता है वह सब प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाता है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

भुक्त्वा भोगान्यथाकामं विष्णुलोकं स गच्छति ।
अपुत्रा काकवन्ध्या च मृतवत्सा मृतप्रजा ॥५८
एकाम्बरेण सुस्नातौ पतिपत्न्यौ यथाविधि ।
तद्दोषनाशयेन्नूनप्रजाभिप्रतिबन्धकम् ॥५९
मोक्षेश्वरप्रसादेन पुत्रपौत्रादि वर्द्धयेत् ।
दद्याद्वक्रन वित्तेन फलानि सत्यरायुता ॥६०
निधाय वशपाशोऽपि नागोदापात्प्रमुच्यते ।
प्राप्नुवन्ति च देवाश्च अग्निष्टोमफलं नृप ॥६१
वेधाहरिहरश्चैव तप्यन्ते परमं तपः ।
धर्मारण्ये त्रिसन्ध्यं च स्नात्वा देवसरस्यथ ॥६२
तत्र मोक्षेश्वरः शम्भुः स्थापितो वै ततः सुरैः ।
तत्र साङ्गं जपं कृत्वा न भूयः स्तनपो भवेत् ॥६३

वह प्राणी स्वर्गीय सर्वोत्तम सुख के उपभोगों का भोग करके यथा काम विष्णुलोक को चला जाता है। जो पुत्रहीना हो—काकवन्ध्या हो—मृतवत्सा हो और मृत प्रजा स्त्री हो तो वहाँ पर यथाविधि दोनों पति-पत्नी एकाम्बर से सम्यक् रीति से स्नान करें तो वह जो उसमें

सन्तान की प्राप्ति का प्रतिबन्धक दोष उनमें है वह निश्चय ही नष्ट हो जाया करता है। गोकेश्वर के प्रसाद से उसके पुत्र पौत्रादि की वृद्धि हो जाती है। अथवा एकचित्त होकर सत्य से संयुत होकर फलों का दान करे और उन्हें मद्य पात्र में रखकर देवे तो वह नारी दोष से विमुक्त हो जाती है। हे नृप! यहाँ देवगण अग्निष्टोम याग का फल प्राप्त किया करते हैं।। ५८, ५९, ६०, ६१ ।। वेधा (ब्रह्मा)—श्रीहरि—भगवान् शम्भु भी परम तप किया करते हैं। तीनों सन्ध्याओं में देवसरोवर में पर्वारिष्ट में स्नान करके मुनी ने गोकेश्वर भगवान् शम्भु की स्थापना की है। वहाँ अब्द सहित जाप करके फिर यह प्राणी जन्म ग्रहण करके स्तन का पान नहीं किया करता है ।।६२, ६३ ।।

एष प्रोक्तं महाराज प्रसिद्ध भुवनत्रये।
यस्तत्र कुरुते श्राद्धं पितॄणां श्रद्धयान्वितः ।।६४
उद्धरेत्सप्तगोत्राणि कुलमेकोत्तरं शतम्।
देवसरो महारम्य नानापुष्पैः समन्वितम् ।।
व्याप्तं सकानकल्हारैर्विविधैर्जलजन्तुभिः ।।६५
ब्रह्मविष्णुमहेशाद्यैः सेवितं सुरमानुषैः।
सिद्धगन्धर्वैश्च मुनिभिः सेवितं सर्वतः शुभम् ।।६६
कीदृशं तत्सरः स्यात्तु तस्मिन्स्थाने द्विजोत्तम।
तस्य रूपं प्रकारश्च कथयस्व यथातथम् ।।६७
साधुसाधु महाभाग ! धर्मपुत्र ! युधिष्ठिर ! ।
यस्य सङ्कीर्तनान्नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।६८
अतिस्वच्छतरं शीतं गङ्गोदकसमप्रभम्।
पवित्रं मधुरं स्वादु जलं तस्य नृपोत्तमः ।।६९
महाविशालं गम्भीरं देवखातं मनोरमम्।
महद्भिर्वीचिभिर्गम्भीरैः फेनावर्तसमाकुलम् ।।७०
मत्स्यमण्डूककमठैर्मकरैश्च समाकुलम्।

शङ्खशुक्त्यादिभिर्युक्तं राजहंसैः सुशोभितम् ॥७१

हे महाराज ! इस प्रकार से यह क्षेत्र तीनों भुवनों में प्रसिद्ध है। जो कोई वहाँ पर श्राद्ध किया करता है और पितृगण को श्रद्धा से युक्त तृप्त करता है वह अपने सात गोत्रों का उद्धार कर दिया करता है और एकोत्तर शत अर्थात् एक सौ एक कुल का उद्धार कर देता है। यह देवसर महान् सुरम्य है और अनेक प्रकार के पुष्पों से समन्वित है। सब तरह के कल्हारों से श्याम तथा अनेक जल के जन्तुओं से युक्त है ॥६४। ६५॥ ब्रह्मा—विष्णु और महेश आदि के द्वारा तथा सुरों एवं मनुष्यों के द्वारा यह सेवित है। सभी ओर यह परम शुभ सर सिद्ध—यक्ष और मुनिवृन्दों के द्वारा सेवित है ॥ ६६ ॥ युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! उस स्थान में वह सर किस प्रकार का विख्यात है ? उसका स्वरूप कैसा है और किस प्रकार का है ? आप कृपया ठीक ठीक यह बतलाइये । ६७ ॥ श्री व्यासदेव जी ने कहा—हे धर्मपुत्र ! आप तो अत्यधिक प्रज्ञा वाले हैं। हे युधिष्ठिर ! यह बहुत ही अच्छा प्रश्न किया है—यह अत्युत्तम है। इसके तो सङ्कीर्तन मात्र से ही मनुष्य निश्चित रूप से समस्त पापों से विमुक्त हो जाया करता है ॥ ६८ ॥ हे नृपोत्तम ! क्या वर्णन किया जावे, उसका जल अत्यन्त ही स्वच्छ है—अधिक ठण्डा है—और गङ्गा के जल के समान प्रभायुक्त है—परम पवित्र—महामधुर तथा स्वादयुक्त है ॥ ६९ ॥ यह देवखात सरोवर) महान् विशाल है—अत्यन्त गम्भीर है और परम मनोरम है। गम्भीर लहरियों के आने के कारण फेनों के आवर्तों से समाकुल रहता है। इसमें सर्प—मण्डूक कमठ और मकर निवास किया करते हैं और उनसे समाकुल है। यह सरोवर शंख और शुक्ति आदि से भी संयुक्त रहता है तथा राजहंस इसके समीप में निवास किया करते हैं उनसे इसकी विशेष शोभा रहा करती है ॥७०, ७१ ॥

वटप्लक्षैः समायुक्तमश्वत्थाम्रैश्च वेष्टितम् ।

चक्रवाकसमोपेतं वकसारसटिट्टिभैः ॥७२
कमनीयप्रगन्धाच्छ-छन्नपद्मैः सुशोभितम् ।
सेव्यमानं द्विजैः सर्वैः सारसाद्यैः सुशोभितम् ॥७३
सदैवमुनिभिश्चैव विप्रैर्मर्त्यैश्च भूमिप ।
सेवितं दुःखहं चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥७४
अनादिनिधनोपेतं सेवित सिद्धमण्डलैः ।
स्नानादिभिः सर्वदैवतत्सरोनृपसत्तम ! ॥७५
विधिना कुरुते यस्तु नीलोत्सर्गञ्च तत्तटे ।
प्रेता नैव कुले तस्य यावदिन्द्राश्चतुर्दश ! ॥७६
कन्यादान च ये कुर्युर्विधिना तत्रभूपते ! ।
ते तिष्ठन्ति ब्रह्मलोकेयावदाभूतसम्प्लवम् ॥७७
महिषी गृहदासी च सुरभी सुतसयुताम् ।
हेमविद्या तथा भूमि रणाश्वगजवाससी ॥७८
ददाति श्रद्धया तत्र सोऽक्षय स्वर्गमश्नुते ।
देवखातस्यमाहात्म्यमःपठेन्छिवसन्निधौ ॥
दीर्घमायुस्तथा सौख्य लभते नात्र संशयः ॥७९
यः शृणोति नरो भक्त्या नारी वा त्विदमद्भुतम् ।
कुले तस्य भवेच्छ्रेयः कल्पान्तेऽपि युधिष्ठिर ! ॥८०
एतत्सर्वं मयाख्यात हयग्रीवस्य कारणम् ।
प्रभावस्तस्यतीर्थस्यसर्वपापापनुत्तये ॥८१

इसके चारों ओर वट वृक्ष—प्लक्ष (पाखर) अश्वत्थ और आम्र के वृक्ष लगे हुए हैं इनसे वेष्टित—सा रहा करता है । चकवा—चक—सारस और टिट्टिभ आदि अनेक पक्षीगण से यह सर समोपेत है ॥७२॥ परम रम्य प्रकृष्ट गन्ध से युक्त अतीव स्वच्छ शतपत्रों से सुन्दर शोभा वाला है । सारस आदि पक्षियों के द्वारा यह निरन्तर सेव्यमान रहा करता है ॥७३॥ हे राजन् ! देवगण-मुनिवृन्द—विप्र वर्ग और मानव

के द्वारा सेवित है । यह परम दुखों के हनन करने वाला और सभी तरह के पापों का नाशक है ॥ ७४ ॥ अनादि निधन से उपेत तथा सिद्धों के मण्डलों के द्वारा सेवित है । हे नृपश्रेष्ठ ! सर्वदा ही वहा पर स्नानादि करने वाले बने ही रहा करते हैं ऐसा वह देवसर है । जो कोई उसके तट पर विधि के सहित नीलोत्सर्ग किया करता है उसके कुल मे जब तक चौदह इन्द्र होते हैं प्रेत कभी भी नहीं रहते हैं । हे राजन् ! वहा पर जो विधि विधान के साथ कन्या का दान किया करते हैं वे मनुष्य जब भूत संप्लव होता है तब तक ब्रह्मलोक मे निवास प्राप्त करते हैं । जो कोई वह महिषी—गृहदासी—सुरभी जो सुत से समन्वित हो—हेमविद्या—भूमि—रथ—गज—वस्त्र आदि का श्रद्धा से दान दिया करता है वह अक्षय स्वर्ग का निवास प्राप्त किया करता है । इस देवखात (सरोवर) का माहात्म्य भगवान् शम्भु के समीप मे बैठकर पढ़ा करता है उसकी आयु दीर्घ हो जाती है और वह परम सौख्य प्राप्त करता है—इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥ ७५, ७६, ७७, ७८, ७९ ॥ जो नर या नारी भक्ति भाव से इस अद्भुत माहात्म्य का श्रवण किया करता है । उसके कुल म परम श्रेय कल्पान्त तक हे युधिष्ठिर होता है । यह इसमे सम्पूर्ण भगवान् हयग्रीव का कारण वर्णित कर दिया है । इस तीर्थ का ऐसा ही प्रभाव होता है कि उससे समस्त पापों का अपनोदन हो जाया करता है ॥ ८०, ८१ ॥

४२—कलि धर्म वर्णन

अतः पर किमभवत्तन्मे कथय सुव्रत ! ।
पूर्वं च तदशेषेण व्यास मे वदताम्वर ! ॥१
स्थिरीभूत च तत्स्थानं कियत्कालं वदस्व मे ।
केन वै रक्ष्यमाणं च कस्याऽऽज्ञा वर्तते प्रभो ! ॥२

त्रेतान्तो द्वापरान्तं च यावत्कलिसमागमः ।
तावत्संरक्षणेष्वेको हनूमान्पवनात्मजः ॥३
समर्थो नान्यथा कोऽपि विनाहनुमतासुत ! ।
लंकाविध्वंसितायेनराक्षसा प्रबलास्तथा ॥४
स एव रक्षतेतत्र रामादेशेन पुत्रक ।
द्विजस्याज्ञा प्रवर्तेत श्रीमातायास्तथैव च ॥५
दिनेदिने प्रहर्षोऽभूज्जनानातत्रवासिनः ।
पठन्तितत्रद्विजास्तत्रऋग्यजुःसामलक्षणान् ॥६
अथर्वणश्चापि तत्र पठन्ति स्म दिवानिशम् ।
वेदनिर्घोषज शब्दस्त्रैलोक्येसचराचरे ॥७
उत्सवास्तत्र जायन्तेग्रामे ग्रामे पुरेपुरे ।
नाना यज्ञाःप्रवर्तन्तेनानाधर्मसमाश्रिताः ॥८

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे सुवन ! इससे आगे क्या हुआ था उसे अब आप मेरे सामने वर्णन कीजिए । हे सौम्य ! ज्ञानों में परम श्रेष्ठ ! और इसके पूर्व में क्या हुआ था वह सभी कृपा कर बतलाइये । वह स्थान कितने समय तक स्थिरीभूत रहा—यह मुझे बतलाइये । हे प्रभो ! उसकी रक्षा किसके द्वारा की गयी थी और वहाँ पर किसकी आज्ञा है ? ॥ १ । २ ॥ श्री ब्रह्माजी ने कहा—त्रेता से द्वापर युग के अन्त पर्यन्त जब तक कलियुग का समागम हुआ था उतने काल तक उसके संरक्षण करने में केवल एक पवन के पुत्र श्री हनुमान रहे थे । हे सुत ! हनुमान् के बिना अन्य कोई दूसरा इस संरक्षण के कार्य को करने में समर्थ भी नहीं था । जिसने लङ्कापुर का विध्वंस कर दिया और बड़े-बड़े बलवान् राक्षसों का हनन कर दिया था, हे पुत्र ! भगवान् श्रीराम के आदेश से वही वहाँ पर इसका संरक्षण किया करते हैं । द्विज की आज्ञा प्रवृत्त रहा करती थी और श्री माता की भी आज्ञा रहती थी । वहाँ पर जनों को सदा ही हर्ष होता था और वहाँ के निवासी द्विजगण ऋग्—यजु

और साम सगणों वाले वेदों का पाठ किया करते थे। अथर्ववेद का भी रात्रि दिन पाठ किया करते थे। वेदों के उच्चारण की ध्वनि चराचर त्रैलोक्य में फैलती रहा करती थी। यहाँ पर ग्राम-ग्राम में और नगर २ में अनेक उत्सव हुआ करते थे। अनेक यज्ञ भी नाना प्रकार के धर्मों के समाश्रित होते ही रहा करते थे॥ १—८॥

कदापि तस्यस्थानस्यभङ्गोजातोथ वा नवा।
दैत्यैर्जितकदास्थानमथवादुष्टराक्षसैः॥९
साधुपृष्ट त्वया राजन्धर्मज्ञस्त्वं सदा शुचिः।
आदौ कलियुगे प्राप्ते यद्वृत्तं तच्छृणुष्व भोः॥१०
लोकानां च हितार्थाय कामाय च सुखाय च।
यदहं कथयिष्यामि तत्सर्वं शृणुभूपते!॥११
इदानीं चकलौप्राप्तोआमोनाम्ना वभूवह।
कान्यकुब्जाधिपःश्रीमन्धर्मज्ञोनीतितत्परः॥१२
शान्तो दान्त सुशीलश्च सत्यधर्मपरायणः।
द्वापरान्तेनृपश्रेष्ठ अनागते कलौ युगे॥१३
भयात्कलिविशेषेण अधर्मस्य भयादिभिः।
सर्वेदेवाः क्षितिं त्यक्त्वा नैमिषारण्यमाश्रिताः॥१४
रामोऽपि सेतुवन्ध हि ससहायो गतो नृप!॥१५

महाराज युधिष्ठिर ने कहा—किसी भी समय में उस स्थान का भङ्ग भी हुआ था अथवा नहीं हुआ था? उस स्थान को दैत्यों ने अथवा दुष्ट राक्षसों ने कब जीत लिया था? श्री व्यासदेवजी ने कहा—हे राजन्! आपने यह बहुत ही उत्तम प्रश्न पूछा है। आप तो परम धर्म के ज्ञाता हैं और सदा ही शुचि रहा करते हैं। हे राजन्! आदि में कलियुग के प्राप्त होने पर जो भी कुछ हुआ था उसका आप अब श्रवण कीजिए। ॥ ९।१०॥ समस्त लोकों के हित के लिये—कामनाएँ पूर्ण होने के लिये और सुख के लिये जो भी मैं कुछ कहूँगा हे भूपते! उस सबको

आप सुनिये ॥ ११ ॥ इस समय में कलियुग की प्राप्ति होने पर नाम — इस नाम वाला कान्यकुब्ज देश का स्वामी हुआ था । वह परम श्रीमान् धर्म का ज्ञाता और नीति में परम परायण था ॥ १२ ॥ अत्यन्त शान्त स्वभाव वाला — दमनशील सुशील और सत्य तथा धर्म्म में परायण था । हे नृप द्वापर-युग के अन्त में और कलियुग के न आगत होने पर इस कलियुग के विशेष भय से और अधर्म के भय आदि से सब देवता इस क्षिति का परित्याग करके नैमिषारण्य में समाश्रित हो गये थे। हे नृप ! श्रीराम भी सब सहायकों के सहित सेतुबन्ध पर चले गये थे । ॥ १३-१५ ॥

कीदृश हि कालो प्राप्ते मर्यलोकेसुदुस्तरम् ।
यस्मिन्सुरैः परित्यक्तारत्नगर्भावसुन्धरा ॥ १६
शृणुष्व कलिधर्मास्त्व भविष्यन्ति यथा नृप ! ।
असत्यवादिनो लोकाः साधुनिन्दापरायणाः ॥१७
दस्युकर्मरताः सर्वे पितृभक्तिविवर्जिताः ।
स्वगोत्रदाराभिरता लौल्यध्यानपरायणाः ॥१८
ब्रह्मविद्वेषिणः सर्वे परस्परविरोधिनः ।
शरणागतहन्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥१९
वैश्याचाररता विप्रा वेदभ्रष्टाश्च मानिनः ।
भविष्यन्ति कलौ प्राप्ते सन्ध्यालोपकरा द्विजाः ॥२०
शान्तौ शूराः भयदीनाः श्राद्धतर्पणवर्जिताः ।
असुराचारनिरता विष्णुभक्तिविवर्जिताः ॥२१

युधिष्ठिर ने कहा — हे भगवन् ! इस कलियुग के प्राप्त हो जाने पर किस प्रकार का सुदुस्तर मर्त्य लोक में व्याप्त हो गया था जिसमें कि सुरगणों ने यह रत्नों को गर्भ धारण करने वाली वसुन्धरा का भी परित्याग कर दिया था ? श्री व्यासदेव जी ने कहा — हे नृप ! अब आप इस कलियुग के धर्मों का श्रवण कीजिए जिस प्रकार से वे भविष्य में होंगे ।

सभी लोक असत्य बोलने वाले और साधुओं की निन्दा में परायण रहा करेंगे ॥ १६ । १७ ॥ सब लोग दस्युओं (दूसरों के धन का हरण करने वाले) के कर्म में रति रखने वाले और माता—पिता की भक्ति में निरत न रहने वाले तथा अपने ही गोत्र की दारा (स्त्रियों) में रति रखने वाले और लौल्य (चञ्चलता) के ध्यान में परायण—ब्राह्मणों से विद्वेष रखने वाले—परस्पर में विद्वेष रखने वाले और शरण में समागत लोगों का हनन करने वाले कलियुग में होंगे ॥१८,१९॥ इस कलियुग में विप्रलोग वैश्यों के आचार वाले हो जायेंगे । वेदों से भ्रष्ट—मानी और सन्ध्योपासना के विलोप करने वाले विप्र कलियुग में होंगे ॥२०॥ शान्ति के समय में शूरता दिखाने वाले—भय प्राप्त होने पर दीन हो जाने वाले तथा श्राद्ध और तर्पण से रहित—असुरों के समान आचार में निरत एवं भगवान् विष्णु की भक्ति से रहित हुआ करेंगे ॥२१॥

परवित्ताभिलाषाश्च उत्कोचग्रहणेरताः ।
अस्नातभोजिनोविप्राःक्षत्रियारणवर्जिताः ॥२२
भविष्यन्तिकलौप्राप्ते मलिनादुष्टवृत्तय ।
मद्यपानरताः सर्वेऽप्ययाज्यानां हियाजका. ॥२३
भर्तृद्वेषकरा रामाः पितृद्वेषकराः सुताः ।
भ्रातृद्वेषकरा क्षुद्रा भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२४
गव्यविक्रयिणस्ते व ब्राह्मणावित्ततत्परा ।
गावो दुग्ध न दुह्यन्ते सम्प्राप्ते हि कलौ युगे ॥२५
फलन्ते नैव वृक्षाश्च कदाचिदपि भारत ! ।
कन्याविक्रयकर्त्तारोगाजाविक्रयकारका ॥२६
विषविक्रयकर्त्तारो रसविक्रयकारका ।
वेदविक्रयकर्त्तारो भविष्यन्ति कलौ युगे ॥२७
नारीगर्भं समाधत्ते हायनैकादशेन हि ।
एकादश्युपवासस्य विरताः सर्वतो जना ॥२८

विनास्नानंतुयत्कर्मपुण्यकार्यमयंशुभम् ।
क्रियतेनिष्फलं ब्रह्म स्तत्सगृह्णन्तिराक्षसाः ॥२४
स्नानेन सत्त्वमाप्नोति स्नानं धर्मः सनातनः ।
धर्मान्मोक्षफलम्प्राप्य पुनर्नैवाऽवसीदति ॥२५
ये चाध्यात्मविदः पुण्या ये च वेदाङ्गपारगाः ।
सर्वदानप्रदा ये च तेषां स्नानेशुद्धता ॥२६
कृतस्नानस्य च हरिर्देहमाधित्यतिष्ठति ।
सर्वक्रियाकलापेषु सम्पूर्णफलदो भवेत् ॥२७
सर्वपापविनाशाय देवतातोषणाय च ।
चातुर्मास्ये जलस्नानं सर्वपापक्षयावहम् ॥२८

चातुर्मास्य में भगवान् नारायण देव जल में ही निवास किया करते हैं । इसीलिए भगवान् विष्णु के तेज के अंश से उद्भूत स्नान समस्त तीर्थों से भी अधिक हुआ करता है ॥ २२ ॥ दस प्रकार का स्नान करना चाहिए । भगवान् विष्णु के नाम का महान फल होता है । देह के शुद्ध होने पर विशेष रूप से मनुष्य देवत्व को प्राप्त हो जाता है । स्नान के बिना कोई भी शुभ एवं पुण्यमय कर्म किया जाता है तो वह हे ब्रह्मन् ! बिल्कुल ही निष्फल हो जाया करता है और उसको राक्षस गण ग्रहण कर लिया करते हैं । स्नान से ही महत्त्व को प्राप्त किया करता है । यह स्नान सनातन (सर्वदा से चले आने वाला) धर्म है । धर्म से मोक्ष के फल को प्राप्त करके फिर यह प्राणी कभी भी अवसन्न अर्थात् दुःखित नहीं हुआ करता है ॥ २३, २४, २५ ॥ जो अध्यात्म ज्ञान के ज्ञाता—पुण्यात्मा हैं और जो वेद-वेदाङ्गों के पारगामी विद्वान् हैं तथा जो सब प्रकार के दानों के प्रदान करने वाले हैं उन सबकी स्नान करने से ही शुद्धता हुआ करती है । जो स्नान किये हुए मनुष्य होता है उसके देह का समाश्रय ग्रहण करके साक्षात् भगवान् श्री हरि स्थित रहा करते हैं और समस्त क्रिया कलापों में वे सम्पूर्ण फलों के प्रदान करने वाले होते हैं । सभी प्रकार के

पापो के विनाश के लिए और देवो के तोषण करने के लिए चातुम मे सब पापो के क्षय को करने वाला जल का स्नान करना चाहिए ॥ २७ । २८ ॥

निशायाञ्चैव न स्नायात्सन्ध्यायां ग्रहणम्विना ।
उष्णोदकेन न स्नानं रात्रौ शुद्धिर्न जायते ॥२९
भानुसन्दर्शनाच्छुद्धिर्विहिता सर्वकर्मसु ।
चातुर्मास्ये विशेषेणजलशुद्धिस्तुभाविनी ॥३०
अशक्त्या तु शरीरस्य भस्मस्नानेन शुध्यति ।
मन्त्रस्नानेन विप्रेन्द्र ! विष्णुपादोदकेन वा ॥३१
नारायणाग्रतःस्नानं क्षेत्रतीर्थनदीषु च ।
यः करोतिविशुद्धात्माचातुर्मास्ये विशेषतः ॥३२

निशाकाल मे और सन्ध्या के समय मे कभी भी ग्रहण के अवस को छोडकर स्नान नहीं करना चाहिए । उष्ण जल से रात्रि मे नहीं करे । इससे कभी शुद्धि नहीं हुआ करती है ॥ २९ ॥ समस्त कर्मे मे भानुदेव के दर्शन मात्र से ही शुद्धि कही गयी है । चातुर्मास्य विशेष रूप से जल के द्वारा होने वाली शुद्धि होती है । यदि जल से शुद्धि करने की शरीर मे शक्ति ही न हो तो भस्म द्वारा स्नान करने से भी शुद्धि हो जाती है । हे विप्रेन्द्र ! मन्त्रो के द्वारा स्नान से शुद्ध होना है और केवल भगवान् के चरणामृत से भी शुद्धि होती है । जो विशुद्ध आत्मा वाला विशेष करके चातुर्मास्य मे नारायण के आगे क्षेत्र—तीर्थ और नदियो मे स्नान करता है वह परम शुद्ध हो जाता है ॥ ३०–३२ ॥

॥ स्कन्ध पुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त ॥